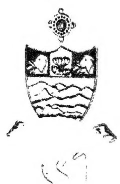
केशव साहित्य :
समाज, संस्कृति एवं दर्शन



डा० एन० ज्ञानप्प नायुडु





श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति

केशव साहित्य में : समाज, संस्कृति एवं दर्शन

[श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध]

डा० एन० ज्ञानप्प नायुडु

एम० ए० [हिन्दी, तेलुगु], शिरोमणि, पी० एच० डी०

प्राध्यापक—हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति



श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति,

प्रकाशक :

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति

मुद्रक :

नव जीवन प्रेस, सुभाष नगर, मथुरा

मूल्य :

प्रथम संस्करण—१९७८

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आर्थिक सहायता से प्रकाशित

स्वर्गीय माता (लक्ष्मम्मा)

एवं

पिता (वेंकटसुब्बैया नायुडु)

की

पुण्य—स्मृति

में

□ ज्ञानप्प नायुडु

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय ।
नवानि गृह्णाति नरो पराणि ।।
तथा शरीणाणि विहाय जीर्णा ।
न्यान्यानि संयाति नवानि देही ।।

—भगवद् गीता २।२२

आभार □ □

शुक्लयुगीन और शुक्लोत्तर समीक्षकों की सहानुभूति रीतिकाल को प्राप्त नहीं हुई। विशेष रूप से केशव उनकी दृष्टि में चुभते रहे। कारण यह था कि उनकी आदर्श समन्वित सुधारवादी दृष्टि भक्ति-साहित्य के आदर्शों से अनुप्राणित रही। जहाँ बौद्धिक युग की अन्य विशेषतायें हैं वहां एक विशेषता यह भी है कि वह उपेक्षितों का फिर से अध्ययन करे और उन पूर्वाग्रहों के स्थान पर तर्क की स्थापना करे जिनके कारण किसी सिद्धान्त या विचारधारा की उपेक्षा हुई। इसी अभियान के अन्तर्गत पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० नगेन्द्र और डा० भगीरथ मिश्र जैसे विद्वान आते हैं जिन्होंने रीतिकाल की पुर्नस्थापना की। यदि चाहें तो प्रस्तुत अध्ययन को भी इस परम्परा से जोड़कर देखा जा सकता है।

आरम्भ से ही मेरी रुचि हिन्दी और संस्कृत दोनों के साहित्यों की ओर रही। संस्कृत साहित्य और साहित्य शास्त्र की अनेक परम्परायें और प्रेरणायें रीतिकालीन कवियों और विशेष रूप से केशव साहित्य में प्रतिफलित होती मिलती है। इसलिए केशव साहित्य के प्रति मेरी रुचि आरम्भ से ही बनी रही। केशव के परम प्रसंशक पं० जगन्नाथ तिवारी के शिष्य डा० विजयपाल सिंह श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति के अध्यक्ष होकर आये। मैंने शोध कार्य के सम्बन्ध में परामर्श किया और अपनी रुचि की ओर भी संकेत किया। उन्होंने मुझे मेरी रुचि का विषय दे दिया। साथ ही केशव के अधिकारी विद्वान के रूप में उन्होंने अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण निर्देशन मुझे दिया। यह तो कहना कठिन है कि उनकी योजना की ऊँचाई के अनुसार मैं कार्य कर नहीं पाया। किन्तु यह निश्चित है कि मैंने उनकी प्रेरणाओं को अधिक से अधिक कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया। मैं श्रद्धेय डा० सिंह के प्रति आभारी हूँ।

मेरे परम मित्र और अब के सहयोगी श्रद्धेय डा० चन्द्रभान रावत का योगदान इस कार्य में महत्वपूर्ण रहा। घंटों तक साथ-साथ बैठकर हम दोनों परामर्श करते रहे। इस परामर्श के अन्त में जो सुझाव उनसे मुझे मिलते थे वे अत्यन्त मूल्यवान थे। मैं उनका भी ऋणी हूँ।

मेरे दूसरे मित्र और संप्रति श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० एस० टी० नरसिंहाचारी से भी समय समय पर मुझे सुझाव और प्रोत्साहन मिलते रहे। उनको भी मैं धन्यवाद देता हूँ।

अन्य सहयोगी मित्रों, विद्यार्थियों और विद्वानों के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनसे प्रस्तुत प्रबंध के प्रस्तुतीकरण में मुझे सहयोग मिला है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से तीन हजार रुपये का अनुदान प्राप्त हुआ। इसके कारण ही मेरा शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो सका। मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अधिकारियों को धन्यवाद देता हूँ। साथ ही श्री वेंकटेश्वर विश्व विद्यालय, तिरूपति के उन अधिकारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने अनुदान की प्राप्ति में मेरी सहायता की।

इन शब्दों के साथ ग्रन्थ प्रस्तुत है। इस अध्ययन की जो सीमायें हैं उनका उत्तर दायित्व मेरा है और इसमें जो कुछ मूल्यवान है वह विद्वानों के सहयोग और उनकी शुभकामनाओं का परिणाम है।

तिरुपति
श्रावणी, १९७८

—ज्ञानप्प नायुडु

★★ दो शब्द :

मेरे मन में केशव साहित्य के पुनर्मूल्यांकन की एक अनौपचारिक योजना थी। इसके अन्तर्गत श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के कुछ हिन्दी शोध क्षात्रों को शोध के लिए केशवकाव्य के कुछ पक्षों से संबन्धित विषय दिये गये। डा० ज्ञानप्प नायुडु का विषय भी मेरे निर्देशन में पंजीकृत हुआ। मुझे गर्व और प्रसन्नता है कि डा० नायुडु ने अपने परिश्रम से केशव साहित्य में अन्तर्निहित समाज, संस्कृति और दर्शन के तत्वों को उजागर किया। केशव काव्य में प्राप्त इन तत्वों की समुचित व्याख्या करके उन्होंने प्रसंशनीय कार्य किया है।

निर्देशक के रूप में मैं डा० नायुडु के शोध-प्रबन्ध की बारीकियों से परिचित हूं और यह भी मैं स्वीकार करता हूं कि डा० नायुडु जैसे अध्यवसायी अनुसंधित्सु अधिक नहीं होते। वस्तुचयन, विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण की प्राय: सभी अनिवार्य औपचारिकताओं का उन्होंने निर्वाह किया है। केशव जैसे बहुज्ञ कवि के काव्य में दार्शनिक और सांस्कृतिक तत्वों का होना स्वाभाविक है। इन तत्वों ने केशव के कविकर्म और काव्य प्रकृति को एक दूरी तक प्रभावित किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ इन तत्वों और उनके प्रभावों पर समुचित प्रकाश डालता है।

मुझे विश्वास है कि केशव काव्य पर कार्य करने वाले भावी शोधार्थी प्रस्तुत प्रयास से उपकृत होंगे। साथ ही रीतिकाल के ऐतिहासिक पुनर्लेखन और पुनर्मूल्यांकन में प्रस्तुत ग्रंथ का महत्वपूर्ण योगदान होगा।

डा० नायुडु बधाई के पात्र हैं और मेरी शुभकामनायें हैं कि उनकी साहित्य-साधना उत्तरोत्तर बलवती होती रहे। मेरा विश्वास है कि श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय द्वारा, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आर्थिक सहायता से प्रकाशित यह ग्रन्थ विद्वत्समाज में समादृत होगा।

जन्माष्टमी
१९७८

—विजयपाल सिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
[बनारस हिन्दी विश्वविद्यालय, वाराणसी]



प्राक्कथन ● ● ●

मध्यकालीन राज्याश्रित कवियों में केशव का व्यक्तित्व अत्यन्त भास्वर है। कुछ कारणों से यह भास्वर व्यक्तित्व आधुनिक युग के आरम्भ में धूमिल सा बना रहा। मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य की समीक्षा भक्ति साहित्य पर केन्द्रित होकर आदर्शोन्मुख हो गयी। जब हिन्दी शोध, प्रगति के निश्चित आयामों में प्रविष्ट हुई तब केशव का बहु पक्षीय व्यक्तित्व सिर उठाने लगा। इधर केशव के आचार्यत्व, उनके व्यक्तित्व एवं साहित्य पर कई शोध प्रबन्ध प्रस्तुत और स्वीकृत हो चुके हैं। केशव पर प्रस्तुत शोध की कई ज्ञात अज्ञात प्रेरणाएं प्रतीत होती हैं। पहली प्रेरणा यह हो सकती है कि जो कवि आदर्शवादी समीक्षा के चौखटे में ठीक प्रकार से न आ सका वह शोध के लिए प्रायः अछूता विषय बना रहा। दूसरी प्रेरणा केशव के प्रति आदर्शवादी स्वर की भर्त्सना की प्रतिक्रिया में मानी जा सकती है। चाहने पर भी कोई समीक्षक इस युग प्रवर्तक कवि के ऐतिहासिक मूल्य को कम नहीं कर सका। कई दृष्टियों से उनके इस मूल्य की प्रतिष्ठा है और भी कुछ प्रेरणाएँ हो सकती हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध केशव पर अब तक के शोधकार्य से प्रेरणा ग्रहण करके चला है। अब तक केशव के व्यक्तित्व, उनके आचार्यत्व, साहित्य एवं उनकी कृतियों तक अध्ययन सीमित रहा है। इस कवि पुंगव ने साहित्यिक विधाओं के वैविध्य के साथ-साथ विषय गत वैविध्य को भी बना रखा है। अपने संस्कारों से जो सांस्कृतिक प्रेरणा और सामग्री केशव को प्राप्त हुई थी, प्रायः उस समस्त सामग्री को साहित्य में उतारने का उन्होंने प्रयत्न किया है। भावात्मक और बौद्धिक व्यक्तित्व की ऐसी समग्र साहित्यिक परिणति प्रायः रीतिकाल का राज्याश्रित कवि नहीं कर पाया। केशव का व्यक्तित्व और साहित्य बहुमुखी है।

केशव के व्यक्तित्व में भारतीय संस्कृति का पारंपरिक वैभव अपनी समस्त ऊर्जस्विता के साथ व्याप्त है। पुरानी संस्कृति के प्रति विश्वास और गौरवज्ञान केशव में मिलता है। योग-वाशिष्ठ, धर्मसूत्र जैसे शास्त्रीय धर्म ग्रन्थों का सार भी उनमें प्रोद्भासित है। भावाश्रयी धर्मसाधना के प्रति भी यह कर्मकाण्डी व्यक्तित्व झुका है। इस सब का आनुषंगिक विवेचन तो केशव पर प्रस्तुत और स्वीकृत प्रबन्धों में मिल जाता है। पर यह सब एक स्वतन्त्र शोधकार्य की अपेक्षा रखता है। यही प्रेरणा मेरे शोधकार्य को अनुप्राणित करती रही है।

ज्यों ज्यों शोधकार्य चलता गया केशव साहित्य का यह पक्ष अधिक से अधिकतर प्रखर और आकर्षक होता गया। धर्म, दर्शन और संस्कृति में यद्यपि परम्परा का ही आग्रह अधिक है, फिर भी तत्कालीन जीवन की झांकियां भी केशव साहित्य में विरल नहीं हैं। इस प्रकार प्रेरणा और प्रक्रिया प्रबल से प्रवलतर होती गयी और प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उपस्थित हो गया।

जहाँ तक पद्धति का प्रश्न है मैंने दृष्टि को अधिक से अधिक वस्तु परक रखने का प्रयत्न किया है। अनुमानों, उनपर आधारित निष्कर्षों और प्रचलित पूर्वाग्रहों से बचत हुए केशव साहित्य के तथ्य परक सर्वेक्षण को ही आधार बनाया गया है। तथ्यान्वेषण को पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया हैं। तथ्यान्वेषण की पूर्णता ही निर्भान्त निष्कर्ष दे सकती है। समस्त तथ्यों को देने का मोह तो नहीं रहा, फिर भी तथ्य परक दृष्टि रखने के कारण विवेचन व्यवस्था में स्वाभाविक रूप से कुछ विस्तार आ गया है। तथ्यों की पृष्ठ-भूमि कहीं कहीं स्फीत होकर अन्य बाह्य स्रोतों से भी संतुष्ट हो गयी है। विस्तार का यह भी एक कारण है। अधिकांशत : केशव साहित्य से ही तथ्यांकलन किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध निम्न प्रकार से पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम परिच्छेद विषय प्रवेश का है। इसमें आधुनिक युग में प्रचलित साहित्य के अध्ययन की नवीन पद्धतियों का परिचय देते हुए साहित्य के अध्ययन की सांस्कृतिक पद्धति पर विशेष प्रकाश डाला गया है। इसके अनन्तर साहित्य और समाज तथा संस्कृति और दर्शन का पारस्परिक सम्बन्ध निरूपण करने की चेष्टा भी की गयी है। मुख्यत: केशव पर और सामान्यतः रीतिकाल पर हुए शोधकार्य का विश्लेषण भी इसके अन्त में आयासित है। साथ ही पुनर्मूल्यांकन की संभावना और आवश्यकता को भी स्पष्ट किया गया है। केशव के व्यक्तित्व और साहित्य में सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्वों की स्थिति की बड़ी संभावना है। अत: उनके विषय में भी विचार किया गया है। केशव का काव्य शास्त्र, कामशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि विषयों में न्यूनाधिक प्रवेश है जिनकी स्पष्ट झलक उनकी कृतियों में मिलती है। इन सभी बातों की ओर इसमें संकेत किया गया है। उस युग में आश्रयदाता सामन्तों की राजनैतिक परिस्थितियों का विश्लेषण भी इस अध्याय का अभि-प्रेत है।

द्वितीय अध्याय में केशव साहित्य में चित्रित सामाजिक जीवन की चर्चा की गयी है। परिवार का चित्रण करते हुए विभिन्न पारिवारिक संबन्धों माता, पिता, पुत्र, भाई, बहन—का स्वरूप बतलाया गया है। इसके पश्चात् विभिन्न संस्कारों की केशव साहित्य में प्राप्त झांकी प्रस्तुत की गयी है। भक्ति आंदोलन की सुधारवादी शक्तियों ने

वर्णाश्रम धर्म जैसी सुदृढ़ व्यवस्थाओं को हिला दिया था। उनकी रक्षा के प्रयत्न भी हो रहे थे। पर प्रेम और भक्ति का मूल्य सर्वोपरि हो गया था। केशव साहित्य में उनकी यही स्थिति है। इसके पश्चात् केशव युग की अन्य सामाजिक संस्थाओं का परिचय दिया है। केशव साहित्य में प्राप्त सामाजिक तथा पूर्ववर्ती राजधर्म, शासन व्यवस्था, दण्ड विधान आदि राजनैतिक पक्षों के उद्घाटन के बिना भी यह परिच्छेद अधूरा ही रह जाता। अन्त में केशव साहित्य में उपलब्ध आर्थिक-व्यवस्था पर भी विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय में केशव साहित्य के सांस्कृतिक तत्वों पर विचार किया गया है। इसमें प्राकृतिक संस्कृति, शिष्ट संस्कृति तथा लोक संस्कृति इन तीन विषयों का विवेचन किया गया है। प्राकृतिक संस्कृति के अन्तर्गत वन, पर्वत, वनस्पतियां, फल, फूल, पशु, पक्षी, समुद्र, नदी, तीर्थ आदि आते हैं। शिष्ट संस्कृति के अन्तर्गत यज्ञ-याग, वेद-पाठ, संध्योपासना, यज्ञोपवीत आदि अनुष्ठानों का समावेश है। इनके अतिरिक्त चित्र, मूर्ति, वास्तु, संगीत तथा नृत्य आदि कलाओं का जो चित्रण केशव साहित्य में मिलता है, उसके आधार पर तत्कालीन अभिरुचि और कलात्मक जीवन को स्पष्ट किया है। इसके पश्चात् सम्मान् दर्शन, अतिथि-सेवा, विनम्र व्यवहार, पर्व-त्यौहार, वस्त्र,आभरण, शृंगार प्रसाधन, खान-पान आदि के साथ मनोरंजन के विविध साधनों--खेल-कूद, पशुयुद्ध,मल्लयुद्ध, जुआ, शतरंज, वन-विहार, जल-विहार, मृगया, आदि--पर प्रकाश डाला गया है। काव्य संबन्धी संस्कृति काव्यशास्त्री अनुशासनों, कवि समयों आदि में व्याप्त रहती हैं। इसके स्वरूप को स्पष्ट करना केशव साहित्य के संदर्भों को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस पर भी इस परिच्छेद में विचार किया गया है। लोक-संस्कृति के अन्तर्गत ये विषय आते हैं—पौराणिक कथा प्रसंग, शाप और वरदान, उपचार, भूत-प्रेत, ज्योतिष आदि।

चतुर्थ अध्याय में केशव साहित्य के दार्शनिक पक्ष पर विचार किया गया है। इसमें ब्रह्म तथा उसके निर्गुण सगुण भेद, अवतारवाद, देव तथा देवियां दैत्य-दानव, ऋषि महर्षि आदि को केशव साहित्य में जो स्थान दिया गया है उसका स्पष्टीकरण है। इसके पश्चात् जीव, जगत, मन, माया, मुक्ति आदि पर विचार संलग्न हैं। इसके अनन्तर पुराणोक्त सृष्टि दर्शन आता है। इसके अन्तर्गत जगत और उसका स्वरूप, सृष्टिकर्ता, लोकों की कल्पना आदि का विवरण दिया गया है। साध्य पक्ष के विवेचन के पश्चात् धर्म के साधन पक्ष पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत योग, ज्ञान, भक्ति आदि रखे गये हैं। अन्त में कर्मवाद और भाग्यवाद पर विचार करते हुए केशव के जीवन दर्शनको स्पष्ट किया गया है।

पंचम अध्याय उपसंहार के रूप में है। उसमें केशव साहित्य का सांस्कृतिक

दृष्टि से संक्षिप्त मूल्यांकन किया गया है। केशव की बहुमुखी बहुज्ञता को उनके कवि कर्म के सन्दर्भ में रखकर देखा-परखा गया है। अन्त में यह निष्कर्ष दिया गया है कि केशव साहित्य का साँस्कृतिक अध्ययन एक नवीन दिशा का उद्घाटन करता है। इतना विस्तृत सांस्कृतिक परिवेश किसी भी कवि के साहित्य को महान बना सकता है। यदि दुरूहता का आवरण नहीं होता तो सांस्कृतिक उपादानों के आधार पर केशव मध्यकाल के अत्यंत लोक-प्रिय कवियों में होते। इस प्रकार प्रबन्ध का समापन किया गया है।

उक्त प्रबन्ध योजना कहाँ तक विषयों के साथ न्याय कर सकी है और यह किस स्तर तक पहुंची है, इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकता। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि केशव साहित्य में विषय से संबद्ध सामान्य से सामान्य सूत्र को भी नहीं छोड़ा गया है।

इस प्रबन्ध की प्रस्तुति में मेरे निर्देशक डा०विजयपाल सिंह, एम० ए० (हिन्दी) एम० ए० (संस्कृत), पी-एच० डी०, डी० लिट्० का योगदान महत्वपूर्ण है। केशव पर उनका विशेष अध्ययन है। मेरा सौभाग्य है कि उन जैसे विद्वान मुझे निर्देशक के रूप में प्राप्त हुए। अन्य विद्वानों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योगदान में स्वीकार करता हूं। अनेक विद्वानों के ग्रन्थों से सामग्री लेकर अपनी संधारणाओं को मैंने पुष्ट किया है। उन सभी विद्वानों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

एन० ज्ञानप्प नायुडु

अनुक्रमणिका

लोक करैं सुख दुखनि के जिनि राग विरागनि या यह आने।
डारैं उपारि समूल अहं तरु कंकच कांचन जो पहिचाने॥
बालक ज्यों सबै भूतल में भव आपुन से जड़ जंगम जाने।
केशव वेद पुरान प्रमान तिन्हें सब जीवन मुक्त बखाने॥

वि० गी० २१।३२

प्रथम अध्याय : विषय प्रवेश

१.५ रीतिकाव्य के सामान्यतः और केशव के विशेषतः पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता :

साधारणतः संस्कृति को समझने के लिए हम तत्कालीन साहित्य का अध्ययन करते हैं। उस साहित्य का अध्ययन हम इसलिए करते हैं कि वह आज भी हमारे जीवन स्पन्दन को वेगपूर्ण एवं समृद्ध बनाने की क्षमता रखता है। मनुष्य ऐतिहासिक प्राणी होने के कारण वर्तमान के साथ अतीत को भी लेकर जीवित रहता है। डा० देवराज के अनुसार हमारे जीवन में अतीत की स्मृतियों को ही अधिक महत्वपूर्ण स्थान है, वर्तमान के इन्द्रिय संवेदन उतने महत्वपूर्ण नहीं है।[1] जो जाति अपनी सांस्कृतिक धरोहर का ठीक से मूल्यांकन नहीं कर सकती और उसे गलत हेतुओं से अच्छा या बुरा समझती है वह संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में ऊँचे प्रयत्न नहीं कर सकती। यह सच है कि प्रत्येक जीवित जाति अपने इतिहास के प्रत्येक युग में पुराने सांस्कृतिक प्रयत्नों का फिर से मूल्यांकन करती है, इसलिए कि इस प्रकार का मूल्यांकन उसके सत्यान्वेषण एवं सांस्कृतिक उत्थान की प्रक्रिया का आवश्यक अंग है।

रीति युग में अमूल्य ग्रन्थों की रचना की गयी है। किन्तु उनका सही मूल्यांकन अभी तक पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। डा० सियाराम तिवारी के अनुसार 'मध्यकालीन साहित्य का जितना अंश प्रकाश में आ सका है उससे कहीं अधिक भाग अद्यावधि अंधकार में पड़ा हुआ है।'[2] वास्तव में शुद्ध साहित्य की दृष्टि से निर्माण करने वाले कर्ता इस युग में जितने अधिक हुए, हिन्दी साहित्य के सहस्र वर्षों के दीर्घकालीन जीवन में उतने अधिक कर्ता भी नहीं हुए। इस सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते

१—आधुनिक समीक्षा : कुछ समस्याएं, डा० देवराज, पृ० २८

२—हिन्दी के मध्यकालीन खंड काव्य, पृ० १३

हैं कि हिन्दी का सच्चा साहित्य युग यदि कोई था तो वस्तुतः यही था। मेरे गुरुदेव लाला भगवानदीन जी कहा करते थे कि जिसे इस युग के रीतिकाव्य का ज्ञान नहीं वह हिन्दी साहित्यज्ञ नहीं, जिसे इसका ज्ञान है उसे अन्य का ज्ञान अल्पप्रयास से ही हो सकता है।'[१]

रीतिकाल उत्तम साहित्य का जन्मदाता है। इस युग के साहित्यिक ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य की शोभा बढ़ गयी है। बहुत से आलोचकों ने उस साहित्य समुद्र से तथ्यमुक्ताओं को निकाला है, तो भी इस बात में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है कि यह युग एक प्रकार से उपेक्षित ही है। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र लिखते हैं कि 'हिन्दी रीति-काव्य प्रायः उपेक्षा का ही भागी रहा है। द्विवेदी युग के आलोचकों ने इस कविता को नीति भ्रष्ट कह कर तिरस्कृत किया। छायावाद के प्रतिनिधि कवि लेखक इसको अति ऐन्द्रिय और स्थूल कह कर हेय समझते रहे हैं और आज का प्रगतिशील समीक्षक इसको सामन्तवाद की अभिव्यक्ति मानकर प्रतिक्रियावादी कविता कहता है।[२]

रीतिकाल के प्रति उपेक्षा के संकेत तो आधुनिक युग के प्रथम चरण से ही मिलने लगे थे, परन्तु उसने द्विवेदी युग में एक कटु प्रतिक्रिया का रूप धारण किया। एक प्रकार से यह युग मर्यादावाद, आदर्शवाद और पुनरुत्थानवाद का था। पुनरुत्थान की मूल चेतना के साथ पश्चिम की नवीन दृष्टि ने भी भारतीय काव्य समीक्षा के क्षेत्र में पदार्पण किया। फलस्वरूप काव्य समीक्षा के सिद्धान्तों का नवीनीकरण हुआ और उनकी एकदेशीयता तथा अनुगतिता के परित्याग की चेष्टा हुई। इसकी पुनर्स्थापना सुरुचि, नैतिकता, सुधार भावना और राष्ट्रीय वैशिष्ट्य के आधार पर हुई। इस सम्बन्ध में डा० विजयपाल सिंह के विचार उद्धरणीय हैं। वे लिखते हैं कि 'आधुनिक समीक्षा ने सामाजिक दृष्टि से पुनर्नियोजित रससिद्धान्त, साहित्यिक, सामाजिक मर्यादावाद और वैष्णव जीवन मूल्यों को ग्रहण किया। इस नवोदित परिवेश में भक्तिकालीन साहित्य की प्रतिष्ठा और रीतिकाव्य की उपेक्षा स्वाभाविक हो गयी। समीक्षा पद्धति आन्तरिक मूल्यों पर आधारित हो गयी जिसमें कवि के उद्देश्य और काव्यगत उदात्तीकरण की संभावनाओं पर विचार किया जाता है। तुलसी इस दृष्टि से आदर्श बने। इन सभी कारणों से रीतिकाव्य के प्रति एक प्रतिक्रिया हो उठी। अभिव्यक्ति की सहजता और आन्दोलन की कर्मठ छाया में पले आदर्शवाद की भूमिका में रीतिकाव्य और तत्कालीन जीवन दृष्टि को स्थान मिलना प्रायः असंभव हो गया।'[३]

१—घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा-डा० मनमोहनलाल गौड़. 'परिचय' पृ० ३

२—रीतिकाव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र, पृ० १

३—'रीतिकाव्य का मूल्यांकन'—डा० विजयपालसिंह के अध्यक्षीय भाषण से उद्धृत (भारतीय हिन्दी परिषद, बाईसवां अधिवेशन उज्जैन, २७ दिसंबर, १९६६)

गत तीन चार शताब्दियों से हिन्दी साहित्य पर आलोचना की जाने लगी है। किन्तु रीतियुग उपेक्षित ही रहा। किसी ने रीतिकाव्य को रुग्ण मनका अनर्गल प्रलाप बतलाया है तो किसी ने साहित्यिक रौरव का नाम दिया है। शुक्लजी जैसी मेधा भी घनानन्द और मतिराम की कला पर रीझती रही, परन्तु युग के सामूहिक प्रभाव की ओर ध्यान नहीं दिया।

उन्नीसवीं और बीसवीं शती में ज्ञान विज्ञान की विविध प्रवृत्तियों के साथ शोध की नवीन प्रेरणा और पद्धतियां भी विकसित हुई हैं। हिन्दी के शोध का विस्तार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। रीतिकाव्य पर भी बहुत कुछ शोधकार्य हुआ है। रीतिकालीन शोध के सम्बन्ध में दिल्ली, लखनऊ, आगरा, अलीगढ़, तिरुपति आदि विश्वविद्यालयों का योगदान महत्वपूर्ण है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, आदि अनेक सस्थाओं के तत्वावधान में रीतिकालीन हस्तलिखित सामग्री की खोज हुई है। इस प्राप्त सामग्री से रीतिकालीन तथ्य तथा वैविध्य प्रकाश में आ सकते हैं।

जहां तक रीतिकालीन काव्य के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न है इसकी दो दिशाएं स्पष्ट हैं। एक दिशा सांस्कृतिक अध्ययन की है और दूसरी भाषा-तात्विक अध्ययन की। भक्तिकाल पर सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक शोध-कार्य हुआ है। रीतिकाल इस दृष्टि से प्रायः अछूता रहा। पर इस दिशा में भी अब कार्य हो रहा है। किसी साहित्य के सांस्कृतिक पुनर्मूल्यांकन में इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि सांस्कृतिक उपकरणों ने साहित्य वस्तु की योजना, विस्तृति और प्रभावान्वित को कहां तक प्रभावित किया है। अभिव्यंजना की प्रविधि और प्रकिया को भी साँस्कृतिक उपकरण तीव्र करते हैं। इस प्रकार कवि, कृति और ग्राहक को ध्यान में रखते हुए रीतिकालीन साहित्य के सांस्कृतिक पुनर्मूल्यांकन के गहरे स्तरों को उद्‌घाटित करना है।

यह सोचना केवल भ्रम है कि पुनर्मूल्यांकन के द्वारा अतीत की अवतारणा करके आधुनिकता को बाधित किया जाता है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि पुनर्मूल्यांकन 'आधुनिक पद्धतियों' में से एक है। रीतिकालीन काव्य का पुनर्मूल्यांकन किया जाय तो आधुनिकता किसी भी प्रकार बाधित नहीं होगी। यदि हमें अपनी अतीत की उपलब्धियों को स्वस्थ रखना है तो पुनर्मूल्यांकन करना ही होगा।

केशव और उनका साहित्य भी इसी प्रकार उपेक्षा का भागी रहा। केशव साहित्य का पुनर्मूल्यांकन का एक भाग समझना चाहिए। जो तर्क रीतिकालीन पुनर्मूल्याकन के सम्बन्ध में दिये जा सकते हैं वे केशव के सम्बन्ध में भी दिये जा सकते हैं।

केशव की कृतियों का साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। केशव के साहित्य पर अनेक विद्वानों ने आलोचना की है और अनेक शोध प्रवन्ध भी लिखे हैं।१ आधुनिक काल के कुछ आलोचकों ने केशव को हृदयहीन तथा कठिन काव्य का प्रेत कहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी लिखते हैं कि "केशव को कवि हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो कवि में होनी चाहिए। वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पाँडित्य और रचना कौशल की धाक जमाना चाहते थे।२ किन्तु आधुनिक काल के अनेक आलोचकों ने केशव को सहृदय कवि तथा महान् आचार्य के रूप में माना है। अतः केशव का अध्ययन अनेक दृष्टियों से आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। इसलिए सांस्कृतिक दृष्टि से भी उनका पुनर्मूल्यांकन करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी सिद्ध होता है।

१—६ केशव के व्यक्तित्व और साहित्य में सांस्कृतिक और सामाजिक तत्वों की स्थिति की सम्भावनाएं :

किसी कृति या किसी कवि के कृतित्व का अध्ययन करते समय लेखक, कृति व पाठक की त्रयी रहती है। एक मान्यता के अनुसार इन तीनों के अध्ययन से ही पूर्ण मुल्यांकन सम्भव है। एक दूसरी विचार-धारा यह भी है कि केवल कृति पर अध्येता का ध्यान केन्द्रित रहना चाहिए। कवि और ग्राहक का अध्ययन करते समय बहुत सी मनोवैज्ञानिक अथवा ऐतिहासिक समस्याओं में उसे उलझना पड़ता है तथा अनेक अनावश्वक तत्वों का समावेश भी अध्ययन में होता है। इन तीनों का समन्वय भी हो सकता है अर्थात् कवि के व्यक्तित्व तथा उसके एवं ग्राहक की अभिरुचि का अध्ययन कृति के चक्कर से बचना चाहिए। कुछ कवियों का व्यक्तित्व तथा उसकी परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिनसे उसका कविकर्म विशेष प्रभावित हो जाता है। इस स्थिति में उन सम्भावनाओं को देख लेना चाहिए जो कि उसके कविकर्म की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बनाने में सक्रिय हैं।

केशव के व्यक्तित्व का निर्माण एक ऐसे परिवार में हुआ जिसको आधुनिक भाषा में प्रतिक्रियावादी कहा जा सकता है।३ सांस्कृतिक जीवन की रूढ़ परम्पराओं को इस परिवार में आश्रय मिलता था। इन परम्पराओं की रक्षा के लिए भी यह परिवार दृढ़ संकल्प था। धार्मिक और साँस्कृतिक दृष्टि से उन नवीन प्रवृत्तियों को उस वंशवाले

१—द्रष्टव्य : प्रस्तुत अध्ययन का यही भाग।

२—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २०६ काशी नागरी प्रचारिणी सभा, दसवां संस्करण (सं० २०१२)

३—रामचन्द्रिका, १।४

स्वीकार नहीं कर सकते थे जो पुरातन व्यवस्था को धराशायी कर दे। इस तथ्य में पुरातन सांस्कृतिक तत्वों की संभावनाएं निहित हैं। ये सब केशव की प्रवृत्ति के अभिन्न और अनिवार्य अंग बन गये थे। संस्कार बद्ध तत्वों ने केशव के वस्तुचयन और अप्रस्तुत विधान को बहुत कुछ प्रभावित किया। यह सम्भावना तत्कालीन अन्य कवियों में भी सामान्यतः दिखलायी पड़ सकती है। किन्तु केशव की स्थिति इस दृष्टि से कुछ विशिष्ट माननी चाहिए। उदाहरण के लिए संस्कार, पुरातन संस्कृति के परिवेश में ही पले थे। किन्तु उन पर एक सांस्कृतिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलन में सक्रिय रूप में भाग लेने वाले नहीं थे। इसीलिए उनके काव्य में शुद्ध सांस्कृतिक तत्वों की संभावना अधिक बनी रही।

जहां तक तत्कालीन ब्राह्मण वंश की आर्थिक स्थिति का प्रश्न है राज्याश्रयी चर्चा के बिना उसे नहीं समझा जा सकता है। राज्याश्रित ब्राह्मण एक ओर पुराने सांस्कृतिक तत्वों की योजना करके अपने पराजित क्षणों से पीडित आश्रयदाता के लिए एक पलायन क्षेत्र तैयार करता था। गुरु के रूप में वह सामन्त के अन्तःपुर में पुराण-वाचक था।[१] वैद्यक का साधारण ज्ञान उससे अपेक्षित था। अन्तःकलह और आवश्यकता पड़ने पर राजनैतिक विग्रहों के समय भी उसकी मंत्रणाओं का मूल्य था। ब्राह्मण के इस बहुविध व्यवसाय वृत्ति के कारण भी उसके काव्य में सांस्कृतिक तत्वों की संभावना प्रबल हो जाती है। यहां ब्राह्मण का कार्य केवल पुरातन संस्कृति की उद्धरणीमात्र करना नहीं था। उसे तत्कालीन सांस्कृतिक गतिविधियों से भी परिचित होना पड़ता था। केशव की स्थिति इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

जहां तक तत्कालीन राजदरबारों का प्रश्न है उसकी संरक्षणा में भी सांस्कृतिक तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान था। यहां कवि का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य सांस्कृतिक दृष्टि से यह हो जाता था कि राजरुचि एवं युगव्यापी विलासिता को भी सांस्कृतिक संदर्भ से पूर्णतः विच्छिन्न न होने दे। प्रस्तुत विषय तत्कालीन अभिरुचि को ध्यान में रखकर चुना जाता था। इस चुनी हुई वस्तु में सामन्तीय संस्कृति के तत्कालीन रूप का परिचय हो जाता है। विलास से संबन्धित देशी-विदेशी उपकरणों एवं विलास की स्फीति के लिए कलाओं के नियोजन तत्कालीन अभिरुचि को ही प्रकट करते हैं। संस्कारवशात् और पुनरुत्थानवादी फलस्वरूप पुरातन सांस्कृतिक तत्व अप्रस्तुत विधान के अंग बनकर आ जाते हैं। रीतिकाल के कुछ कवियों में तत्कालीन अभिरुचि का विकास तो चरमस्पर्शी मिलता है। किन्तु सांस्कृतिक तत्व इतने सघनरूप में नहीं मिलते। केशव संस्कारों से

१—विज्ञानगीता, १।५

दृढ़ तथा प्रबन्धकार होने के कारण सांस्कृतिक तत्वों को भी सघन बना सके। इस दृष्टि से भी उनके काव्य में सांस्कृतिक तत्वों की संभावना व्यापक हो जाती है।

केशव ही नहीं अन्य रीतिकालीन कवि भी प्रायः प्रशस्ति गायक भी थे। प्रशस्ति एक व्यापक विषय है। आश्रयदाता के पूर्वजों की प्रशस्ति भी इसमें सम्मिलित होती थी। इसके अतिरिक्त जिस राज्य या जिस भूखंड से कवि का संबन्ध होता है उस भूमि की प्रशस्ति भी कवि को करनी पड़ती है। राजशेखर ने कन्नौज की प्रशंसा इसी रूप में की है। यदि कवि की जन्मभूमि वह हो तो प्रशस्ति के साथ निजी अनुभूतियां भी हो जाती हैं। केशव ओडछा राज्य के आश्रित कवि थे और उनकी जन्मभूमि भी वही थी। अतएव उस जन्मभूमि की प्रशस्ति का गान भी उन्होंने किया।[1]

केशव के व्यक्तित्व का एक और वैशिष्ट्य हमारा ध्यान आकर्षित करता है और वह है निर्भीकता का गुण। उनकी निर्भीकता के विषय में डा० किरण चन्द्र शर्मा लिखते हैं कि जब महाराज वीरसिह देव आक्रमण करते हैं तो वे निस्संकोच राजा रामशाह तथा उनके शुभचिंतक इन्द्रजीत तथा राव भूपाल को उनकी न्यूनता का ध्यान दिलाकर हठ छोड़ने तथा वीरसिंह देव को राज्य सौंपने का परामर्श देते हैं।[2] इसी प्रकार वीरसिंह के पास जब मंगद, पायक प्रेमा और केशव चिरस्थायी संधि करने के निमित्त भेजे जाते हैं तब केशव वाम और दक्षिण मार्ग का अनुगमन अर्थात् रामशाह के चरणों की सेवा करने की सम्मति देते हैं।[3]

सभी राज्याश्रित कवि निर्भीक नहीं हो सकते। उनको ठाकुर सुहाति कहनी पड़ती है। किन्तु केशव की स्थिति अन्य राज्याश्रित कवियों से भिन्न थी। वे अपने आश्रयदाता के शिक्षक, दीक्षागुरु, सखा सब कुछ थे। इसीलिए समय आने पर वे निर्भीकता-पूर्वक अपने मन्तव्य को प्रकट कर सकते थे। इस गुण की पृष्ठभूमि में भी सांस्कृतिक अधिक है। इन सब संबन्धों का समुदाय उनके ब्राह्मणत्व का गौरव पुष्ट करता था। उनका शास्त्रज्ञान गंभीर था। व्यावहारिक दृष्टि से भी वे कुशल राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी परामर्शदाता थे। अतः उन्हें कुछ भी कहने में भय का अनुभव नहीं होता था। रामचन्द्रिका में एक स्थल पर केशव ने अपनी निर्भीकता का परिचय दिया है। उन्होंने भरत के मुख से कहलाया है कि निर्दोषी सीता के परित्याग के फलस्वरूप ही शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण को लवकुश के हाथों से पराजित होना पड़ा था।[4]

१—क० प्रि० छन्द सं० ५ पृ० १२५ और वी० च० प्रथमार्थ छ० सं० २० पृ० ४
२—केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व, पृ० ६६
३—वही, पृ० ६६
४—रामचन्द्रिका, ३६।३२

केशव के इन्हीं गुणों के कारण इन्द्रजीत सिंह के पश्चात् भी वीरसिंह देव ने उन्हें उतना ही सम्मानित किया। ऐसे स्वच्छन्द व्यक्तित्व वाले कवि के काव्य में सांस्कृतिक तत्वों की अधिक मुक्त परिणति मिलने की संभावना होती है।

१-७ केशव के कवि कर्म की पोषक शास्त्रीय-धारणाएं — कामशास्त्र, धर्मशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि :

कवि के लिए अनेक शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक माना गया। काव्य-प्रकाशकार आचार्य मम्मट का कहना है कि स्वाभाविक शक्ति, लोक, शास्त्र और काव्यों के निरीक्षण और मनन से प्राप्त निपुणता और किसी काव्य मर्मज्ञ से प्राप्त शिक्षा द्वारा अभ्यास, ये बातें काव्य सृजन में हेतु होती हैं।[1] मम्मट द्वारा कवि के लिए जो गुण आवश्यक बताये गये हैं उनमें भी शात्र ज्ञान एक ऐसा अनिवार्य गुण है जिसके विना कवि को अपनी रचनाओं में सफलता मिलना असंभव हो जाता है। महाकवि क्षेमेंद्र ने भी अपने ग्रंथ 'कविकुल कंठाभरण' में लिखा है कि कवि को तर्क, व्याकरण, नृत्यशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीति, महाभारत, रामायण, वेद, पुराण, आत्मज्ञान' रत्न परीक्षा, धातुवाद, वैद्यक, ज्योतिष, धनुर्वेद, गजतुरंग परीक्षा, इन्द्रजाल आदि का ज्ञान होना चाहिए।[2] केशवदास का ज्ञान और अनुभव भी बहुत विस्तृत था। इस संवन्ध में डा०हीरालाल दीक्षित लिखते हैं कि कदाचित ही कोई विषय हो जहाँ केशव की थोडी बहुत पहुंच न हो। ब्रजभाषा पर केशव का पूर्ण आधिपत्य था। छन्दशास्त्र का उन्हें अन्य कवि दुर्लभ ज्ञान था, संस्कृत का पांडित्य उनकी पैतृक संपत्ति थी तथा अलंकार, एवं काव्यशास्त्र के आचार्य थे। इनके अतिरिक्त भूगोल, ज्योतिष, वैद्यक, वनस्पति, विज्ञान, संगीतशास्त्र, राजनीति, समाज-नीति, धर्मनीति, वेदान्त आदि विषयों का भी केशव को पर्याप्त ज्ञान था। केशवदास जी ने इन विषयों से संबन्ध रखने वाले तथ्यों और बातों का अपने विभिन्न ग्रंथों में समय समय पर उपयोग किया है।[3]

अध्ययन की सुविधा के लिए केशवदास जी के शास्त्र ज्ञान को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: (१) काव्यशास्त्र ज्ञान (२) कामशास्त्र ज्ञान (३) भौगोलिक ज्ञान (४) ज्योतिष ज्ञान (५) वैद्यक ज्ञान (६) वनस्पति विज्ञान

१—शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात ।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥ काव्य प्रकाश १।३

२—क्षेमेन्द्र—कविकुल कंठाभरण

३—केशवदास, पृ० ५६

(७) संगीत शास्त्र ज्ञान (८) अस्त्र शस्त्र ज्ञान (९) पौराणिक ज्ञान (१०) राजनीति संबन्धी ज्ञान (११) धार्मिक शास्त्र संबन्धी ज्ञान (१२) दर्शनशास्त्र ज्ञान (१३) अश्व परीक्षा ज्ञान।

हिन्दी काव्यशास्त्र के महत्वपूर्ण आचार्यों में केशवदास का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। वे अपने समय तथा संपूर्ण रीति-काल में आचार्य और कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गये। वे सर्वप्रथम उल्लेखनीय आचार्य हैं जिन्होंने समग्र काव्यशास्त्र पर लिखा है। केशव चमत्कार को मानने वाले आलंकारिक सिद्धान्त पर श्रद्धा रखते थे, अतः उन्होंने प्राचीन संस्कृत के आलंकारिक भामह, दण्डी, उद्‌भट, रुद्रट आदि को ही अपने विवेचन का आधार बनाया।

संस्कृत के आचार्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : उद्‌भावक, व्याख्याता और कविशिक्षक। उद्‌भावकों में काव्यशास्त्रीय सम्प्रदायों के प्रवर्तकों की गणना होती है। व्याख्याता आचार्यों में मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्य आते हैं। कवि शिक्षकों का प्रतिनिधित्व राजशेखर करते हैं। केशव की कविप्रिया से उनका कविशिक्षक रूप स्पष्ट हो जाता है।[१] हिन्दी के आचार्यों में उद्‌भावक और व्याख्याता नहीं हुए। प्रायः उनको कवि शिक्षकों की कोटि में ही रखा जा सकता है। केशव का स्थान उनमें महत्वपूर्ण है। इसमें संदेह नहीं कि जहां हिन्दी के अन्य आचार्य प्रायः व्याख्याता आचार्यों से सामग्री प्राप्त करते हैं, वहां केशव मूल उद्‌भावक आचार्यों से सामग्री लेते हैं। यही केशव का वैशिष्ट्य कहा जाता है कि केशव का संस्कृत काव्यशास्त्र के मूल ग्रंथों से घनिष्ट परिचय था। केशव सर्वांग निरूपक-आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं, अर्थात् उन्होंने काव्य के प्रत्येक अंग का विधिवत् लक्षण निरूपण किया है। डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार 'अपनी दो प्रसिद्ध पुस्तकों, कविप्रिया और रसिक प्रिया, में केशव काव्यशास्त्र के इन अंगों पर प्रकाश डालते हैं : भाषा का कार्य, और कवि की योग्यता, कविता का स्वरूप और उसका उद्‌देश्य, कवियों के प्रकार, काव्य रचना के ढंग, कविता के विषय, बर्णन के प्रकार, काव्यदोष, अलंकार, रस विभिन्न वृत्तियां इत्यादि।[२]

केशव ने मात्रिक तथा वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया हैं। हिन्दी के किसी कवि ने उतने छन्दों का प्रयोग नहीं किया जितने केशव ने। उनके ग्रंथों में यत्र तत्र उपलब्ध सभी छन्द प्रायः मिल जाते हैं। केशव के काव्यशास्त्रीय ज्ञान की परिधि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाती है।

१—समुझे बाला बालकहु बर्णन पन्थ अगाध।
कविप्रिया केशव करी, छमियो कबि अपराध॥ क० प्रि० ३.२

२—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ५१

(१) पिंगल .... छन्दमाला

(२) अलंकार .... कवि वर्णन पद्धति (वर्ण्यालंकार)
शब्दालंकार—अर्थालंकार

(३) रस .... (१) नायिका भेद
.... (२) दूती सखी आदि
.... (३) नख-शिख
.... (४) बारहमासा-षट्ऋतु
.... (५) श्रृंगार का रस राजत्व

केशवकी रसिक प्रिया पर वात्स्यायन कृते कामशास्त्र का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। नायिकाओं के वर्गीकरण में केशव ने कामशास्त्र से प्रेरणा ली है। पद्मिनी, चित्रिणी शंखिनी तथा हस्तिनी ये चार नायिका भेद कामसूत्र के अनुसार ही किये गये हैं। कामसूत्र के अनुसार उक्त चार प्रकार की नायिकाएं प्रधान मानी जाती हैं। इस विषय में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि—"कामशास्त्रीय आधार पर स्त्रियों को पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी एवं हस्तिनी इस प्रकार चार रूपों में देखा गया है। इनमें प्रथम दो श्रेष्ठ समझी गयी हैं। अतः सौन्दर्य के आदर्श भी उन्हीं के लक्षणों से गृहीत किये गये हैं। सौन्दर्य के लक्षणों की दृष्टि से पद्मिनी, कमल-नयनी, क्षुद्ररन्ध्र नासिकावाली, अविरल कुच युग्मा, दीर्घकेशी, पद्मगन्धा, मृदुवचनी, सुकुमारी, लज्जाशीला, नृत्यगान में रुचि रखनेवाली एवं रति तथा भोजन में अल्पता बरतनेवाली होती है। चित्रिणी में सुन्दरता के साथ साथ चांचल्य, अल्पलज्जाशीलता, परिहास प्रियता, सकलगुण विचित्रा, रतिरसज्ञा एवं तन पर विरल रोम रखनेवाली होती है।"[१] केशव ने रसरीति[२] शब्द का प्रयोग कामकला के अर्थ में किया है। डा० गणपतिचन्द्र गुप्त लिखते हैं कि जिस प्रकार काम के क्षेत्र में कामकला या कोक कला का प्रचलन है वैसे ही रसिकता के क्षेत्र में रसरीति या प्रेममार्ग का है। अस्तु, रसरीति का सम्बन्ध भरत द्वारा प्रतिपादित काव्यरस से नहीं, अपितु रसिकता

१—हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १६१

२—बाढ़ै रति-पति अति बढ़ै, जानै सबु रसरीति।
स्वारथ परमारथ लहै, रसिकप्रिया को प्रीति॥ र० प्रि० १६।१६
अतिरति गति मति एक कर विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिक प्रिया कीन्हीं केशवदास॥ —वही, १,१२

या विलासिता से प्राप्त होनेवाले रस या आनन्द से है।[१] इससे स्पष्ट होता है कि केशव ने रसिकप्रिया का नामकरण कामशास्त्रीय उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही किया है। जयदेव के गीतगोविन्द में भी इस प्रकार का उद्देश्य कथन मिलता है। केशव ने वात्स्यायन के कामसूत्र से प्रभावित होकर ही अगम्या का निरूपण किया है। वात्स्यायन ने लिखा है कि पुष्टिनी, उन्मत्ता, पतिता, प्रार्थिनी, गतयौवना, अतिकेशा अतिकृष्णा, आदि स्त्री से सम्पर्क स्थापित करना त्याज्य है।[२] केशव की अगम्या का लक्षण इससे मिलता है।[३] केशव के कामसूत्र के अनुसार ही[४] दूती का वर्णन किया है।[५]

नायिका के मान मोचन के लिए साम, दान, भेद, प्रणति, उपेक्षा और प्रसंग विध्वंस ये छः उपाय भी कामशास्त्र के अनुसार ही हैं। इस प्रकार नायिका के द्वारा सारिका को कामशास्त्र पढ़ाना[६], नायक के द्वारा नायिका को प्रेम पत्र लिखा जाना[७], अन्तर्रति के सात प्रकार[८], बहिर्रति के सात प्रकार[९], तथा तिर्यक्-रति के सात प्रकार[१०], विपरीत रति[११], संकेत स्थल[१२] आदि भीकामशास्त्र के अनुसार ही लिखे गये हैं। इसी प्रकार केशव ने प्रथम मिलन स्थान[१३], सखियों के नियमित कर्म[१४], आदि में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

भूगोलशास्त्रियों के अनुसार पृथ्वी का विस्तार पश्चिम से पूरब की ओर है। रामचन्द्रिका में रामचन्द्र जी के विवाह के अवसर पर 'गारी' गाती हुई स्त्रियों के मुख से कवि ने कहलाया है कि "पृथ्वी रूपी स्त्री शेष के फण रूपी मणिजटित पलंक पर पश्चिम

१—हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी, पृ० २४४

२—कामसूत्र, कारिका ४६ पृ० ६७

३—तजि तरुणी सम्बन्ध की जानि मित्र द्विजराज।
राखि लेई दुख भूख ते ताकि तियजे बाज॥
अतिक बरन, अरु अङ्ग घटि, अन्त्यज जन की नारि।
तजि विधवा अरु पूजिता, रमियहु रसिक विचारि॥ —र० प्रि० ७।४२.४३

४—विधवे क्षणिका दासीभिक्षुकी शिल्पकारिका।
प्रविशत्याशु विश्वास दूती कार्यं च विन्दति॥

५—धाई, जनी, नाइन, नटी, प्रगट परोसिनी नारि। —र० प्रि० १।१,२

६—र० प्रि० १०।२५

७—र० प्रि० ६।७

८—वही, ३।४०

९—वही, ३।४१

१०—वही, ३।४२

११—वही, १।२०

१२—वही, ५,२४

१३—वही, ५।२४, २५

१४—वही, १३।१

की ओर सिर तथा पूरब की ओर पैर करके लेटती है।[१] कालिदास ने भी हिमालय का विस्तार पूरब से पश्चिम की ओर माना है।[२] इन भौगोलिक उपकरणों, जैसे पहाड़ नदी आदि का अध्ययन आगे प्रस्तुत किया गया है।[३]

केशवदास को ज्योतिष का भी थोड़ा बहुत ज्ञान है जिससे उनका अप्रस्तुत विधान समृद्ध हुआ है। उनके काव्यों में प्रधानतः रामचन्द्रिका में कुछ स्थलों पर इसका उल्लेख किया गया है।[४]

केशव के पूर्वज वैद्यशास्त्र में निपुण थे। इस वंश के प्रसिद्ध आयुर्वेद शास्त्रज्ञ झाऊराम ने 'भाव प्रकाश' नामक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ की रचना की थी। अतः केशव को भी थोड़ा बहुत वैद्यक शास्त्र में परिचय रहना स्वाभाविक है। आयुर्वेद के आदि पुरुष के रूप में धन्वन्तरि की मान्यता है। केशव ने भी धन्वन्तरि का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उनको देखते ही समस्त रोग भाग जाते हैं।[५] रामचन्द्रिका में परशुराम संवाद के अवसर पर परशुराम के मुख से वैद्यक के व्यावहारिक ज्ञान का परिचय दिया है। वैद्यक के अनुसार विष खाये हुए व्यक्ति का उपचार रक्त, घृत अथवा चूने का पानी पिलाना है। परशुराम जी के फरसे ने सहस्रार्जुन का मांस रूपी हलाहल खाया था, उसके उपचार में उसे अनेक राजाओं की चर्बी घी के स्थान पर पिलायी गयी। किन्तु विष शान्त न हुआ। अब उसे राम के रक्तपान की आवश्यकता है।[६] इसी प्रकार परशुराम ने देवताओं के जीर्णज्वर के उपचार के लिए स्वर्णभस्म बनाने का निश्चय किया था।[७] किसी विरहिणी को होनेवाले शीतल उपचार को देखकर एक अनुभवी सखी कहती है कि शीतल उपचार सब व्यर्थ है। नायक के दर्शन से ही इसे शान्ति मिल सकती है। आग का जला हुआ आग ही से अच्छा होता है।[८] मुनक्की खाने से पित्त का शमन होने का उल्लेख एक अन्य स्थान पर किया गया है।[९] इसी प्रकार विष खाने

१—रामचन्द्रिका, ६।३१

२—अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयोनाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ वारिनिधी विगाह्य स्थितः पृथिव्याः इवमानदण्ड ॥—कुमारसम्भव, १।१

३—द्रष्टव्य : प्रस्तुत प्रबन्ध का अध्याय ४।

४—द्रष्टव्य : प्रस्तुत प्रबन्ध का अध्याय ४।

५—विज्ञान गीता, १४।१३

६—रामचन्द्रिका, ७।२१

७—वही, ७।८

८—क० प्रि० ६।३८

९—र० प्रि० १४।२६

से ही विष का उपशमन होने[१] की भी बात कही गयी है ।

केशव को विविध वृक्षों तथा लता-गुल्मों का ज्ञान है । उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र वनस्पति सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है ।[२] केशव ने संगीत, नृत्य, आदि के सिद्धान्तों का शास्त्रीय पद्धति पर अध्ययन किया था । उन्होंने रामचन्द्रिका तथा वीरसिंहदेव चरित में स्वर, नाद, ग्राम आदि का पूर्ण परिचय दिया है ।[३] केशव के समय निरन्तर युद्ध होते रहे । उस युग में मुसलमान तथा राजपूतों में घोर संघर्ष चलता रहा । अपने आश्रय दाताओं के युद्धों से केशव का प्रत्यक्ष परिचय होना स्वाभाविक है । उन्होंने रामचन्द्रिका तथा वीरसिंह देव चरित में अनेक प्रकार के पौराणिक तथा सामयिक अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख किया है ।[४] केशव के पूर्वज तथा स्वयं केशव पुराणपाठी थे । अतः केशव ने अपनी रचनाओं में अनेक पौराणिक कथाओं का उल्लेख किया है ।[५] केशव राजनीति के धुरन्धर ज्ञाता थे । उन्होंने न केवल राजनीति के विषयों को लिखा है वरन् स्वयं राजकीय दौत्य कर्म में भी भाग लिया है । उन्होंने रामचन्द्रिका, वीरसिंह देव चरित विज्ञानगीता और जहांगीर जस चन्द्रिका तथा रतनबावनी में राजनीति का अच्छा परिचय दिया है ।[६]

धर्मशास्त्र में भी केशव का पाण्डित्य अगाध था । रामचन्द्रिका के २१वें प्रकाश में दान के सात्विक, राजसिक और तामसिक तथा उत्तम, मध्यम और अधम दानों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त जप, तप, तीर्थस्नान आदि धार्मिक विषयों का वर्णन उनके अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है ।[७]

विज्ञानगीता तथा रामचन्द्रिका ये दो ग्रन्थ केशव के दार्शनिक ज्ञान के ज्वलन्त उदाहरण हैं । इन ग्रन्थों में ईश्वर, जीव, माया, आदि विषयों पर बड़े विस्तार-पूर्वक विचार किया गया है । केशव को अन्य विषयों के साथ अश्व-परीक्षा सम्बन्धी ज्ञान भी था । वीरसिंहदेव चरित के १७वें प्रकाश में 'हयशाला' वर्णन के प्रसंग में केशव ने

१—वि० गी० २१।२१

२—द्रष्टव्य : प्रस्तुत अध्ययन का अध्याय ४ ।

३—द्रष्टव्य : वही

४—द्रष्टव्य : वही अध्याय ३ ।

५— ,, ,, ,, ४ ।

६— ,, ,, ,, ३ ।

७— ,, ,, ,, ४ ।

घोड़ों की जाति और उनके गुण आदि का विस्तृत विवेचन किया है जिससे अश्व परीक्षा ज्ञान का परिचय मिलता है।[१]

१-८ निष्कर्ष—

सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से साहित्यिक शोध की परम्परा अब नवीन नहीं है; उसके आयाम निश्चित हो चुके हैं; उसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। रीतिकालीन साहित्य की जिन आदर्शवादी दृष्टिकोणों से उपेक्षा या भर्त्सना हुई उनके हट जाने पर शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से रीतिकाल पर महत्वपूर्ण शोध कार्य सम्पन्न हुआ है। किन्तु अभी सांस्कृतिक दृष्टि से सन्तोषपूर्ण मूल्यांकन नहीं हुआ। प्रस्तुत प्रबन्ध की यही मूल प्रेरणा है। केशव के व्यक्तित्व और साहित्य में सांस्कृतिक तत्वों की सम्भावनाएं अत्यधिक हैं। इन तथ्यों का अन्वेषण और आख्यान महत्वपूर्ण होगा। केशव साहित्य युग की परिस्थितियों के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति की शास्त्रीय परम्परा से अत्यधिक प्रभावित है। उदाहरण के लिए काव्यशास्त्रीय, धर्मशास्त्रीय और कामशास्त्रीय परम्पराओं की ओर संकेत किया जा सकता है। इन शास्त्रीय परम्पराओं का प्रारम्भ और विकास भी सांस्कृतिक परिवेश की गाथा मानी जा सकती है।

१-९ केशव कालीन भारत में आश्रयदाता सामंत की राजनैतिक स्थिति :

किसी भी विभासित राज्य की व्यवस्था उसके सामंतों के द्वारा ही होती है। इन सामंतों को राजा की ओर से कुछ भूमि जागीर के रूप में मिलती है। शासन और रक्षा के कार्य में राजा की सहायता करना और युद्ध के समय में राजा की ओर से युद्ध करना, इन सामन्तों का कर्तव्य होता है। प्राचीन भारत में छोटे बड़े सभी सामन्त सम्राट के अधीन थे। ये सभी सामन्त सम्राट के नियंत्रण में काम करते थे। इन सामन्तों के कुछ अधिकार जन्मजात माने जाते थे। इस संबन्ध में जेम्स टाड लिखते हैं—

'राजा की तरह सामन्त लोग भी अपनी लड़कियों के विवाह में प्रजा से धन लेकर व्यय करते हैं। प्रजा को ऐसे अवसरों पर आर्थिक सहायता देनी पड़ती है। लड़कियों के विवाह में आर्थिक सहायता क ना प्रायः लोग परमार्थ समझते हैं। फ्रांस की प्राचीन सामन्त प्रणाली में भी इसी प्रकार के नियम धन संग्रह करने के लिए काम में लिए जाते थे।'[२]

१—द्रष्टव्य : प्रस्तुत अध्ययन का अध्याय ४।

२—राजस्थान का इतिहास, अनु० श्री केशव कुमार ठाकुर, पृ० १०२

अकबर के अधीन कई सामन्त राजा थे। किन्तु उसके उदार गुण तथा नीति कुशलता के कारण वे सामन्त उसकी पूर्ण अधीनता को स्वीकार कर चुके थे। यद्यपि वीरसिंह देव आदि कुछ स्वतंत्र चेता आजीवन उसके विरुद्ध विद्रोह करते रहे। अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहांगीर राज सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में विलासिता अपनी चरम सीमा तक पहुंची। डा० हीरालाल दीक्षित के अनुसार जहांगीर ने जागीर की प्रथा चलायी थी, जिसके फलस्वरूप अनेक जागीरदार हुए, जिन्होंने अपने जागीरों की श्रीवृद्धि की। राजाओं, महाराजाओं तथा जागीरदारों ने भी मुगल शासकों का अनुसरण करते हुए कवियों को प्रोत्साहन दिया। इनसे सम्मानित होकर अनेक कवि इन दरबारों में आने लगे।[1]

केशव के आश्रयदाता ओडछा के राजा थे। अकबर के समय ओडछा की राजनैतिक परिस्थिति में स्थिरता नहीं थी। आन्तरिक तथा बाह्य कलहों से उसकी दशा अव्यवस्थित हो गयी थी। राजा मधुकर शाह की मृत्यु के पश्चात् अकबर ने रामशाह को ओडछा का राजा बनाया। रामशाह के छोटे भाई इन्द्रजीत सिंह राज्य का शासन बड़ी कुशलता से संभालते रहे। वे बड़े ही रसिक तथा कलाभिमानी थे। उनके दरबार में संगीत तथा साहित्य के कलाकारों को आश्रय मिला। केशव के प्रधान आश्रयदाता ये ही थे। इधर अकबर का पुत्र सलीम अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करने लगा। वीरसिंह देव उससे मिल गये। सलीम की इच्छा के अनुसार उन्होंने अकबर के परम मित्र अबुलफजल का वध कर डाला। इस घटना के पश्चात् उनकी मैत्री सलीम से और भी बढ़ गयी। अकबर की मृत्यु के बाद सलीम जहांगीर नाम से राजसिंहासन पर बैठा। उसने वीरसिंह देव को सारे बुन्देलखण्ड का राजा बनाया। वीरसिंह देव ने केशव को अपने दरबार में आश्रय दिया। केशव ने अपनी सशक्त लेखनी से वीरसिंह देव के स्वातंत्र्य प्रेम का चित्रण किया। अकबर के विरुद्ध वीरसिंह देव के क्रिया कलापों की यशोगाथा ही वीरसिंह देव चरित की कथा वस्तु हुई। वीरसिंह देव के सहायक तथा परम मित्र जहांगीर से भी केशव का संबन्ध होना स्वाभाविक था। फलतः उसकी प्रशंसा में जहांगीर जस चन्द्रिका की रचना हुई।

केशव कालीन मुगल सम्राटों का तो जटिल राजनैतिक समस्याओं में संलग्न रहने के कारण ऐश्वर्य के उपभोग के साथ साथ कुछ कर्मण्यता का भी सहारा लेना पड़ता था। किन्तु उनके अधीनस्थ राजा महाराजा इस चिन्ता से अपेक्षा कृत अधिक मुक्त रहते थे। इस कारण ये वैभव और विलास का सुख लूटते थे। उनकी छत्रछाया में पलने वाले छोटे छोटे जागीरदार उनसे भी अधिक निश्चिंत और विलासी थे। उनके भवन आकाश-

---

१—आचार्य केशवदास, डा० हीरालाल दीक्षित, पृ० १०

स्पर्शी और वैभव से दीप्त थे। नगर के बाहर उपवनों में रंग-बिरंगे पुष्प विकसित हुए थे। इन उपवनों में पुष्प चयन के बहाने नायिका-नायक का मिलन होता था।

इस काल के कवि अपने आश्रयदाताओं के भोग परक जीवन के चित्रण में ही अपना अहोभाग्य समझते थे। इस संबन्ध में डा॰ बच्चनसिंह लिखते हैं—'सामन्तों की दिन चर्या का बड़ा विशद वर्णन देव ने अपने अष्टयाम में किया है। दिन और रात के चार चार पहरों में वे प्रायः उपभोग में ही संलग्न रहते हैं।'[1] इस युग के कवियों ने अपने विलासी आश्रयदाताओं को रसिकों के रूप में मान लिया था। संस्कृत के कवियों एवं आचार्यों ने रसिक शब्द का प्रयोग सहृदय के अर्थ में किया है। अभिनव गुप्त ने लोचन में यही मत प्रकट किया है।[2] प्राचीन काल के रसिक या सहृदय काव्य के भावात्मक मर्म को ही ग्रहण नहीं करते थे, किन्तु काव्य के शास्त्रीय एवं पारिभाषिक पक्ष से भी अवगत रहते थे, यद्यपि उनकी रसवृत्ति को तीव्र बनाने के लिए कवि शिक्षा संबन्धी कुछ ग्रंथों का प्रणयन अवश्य हुआ था। परन्तु रीतिकाल के रसिकों के लिए काव्य के शास्त्रीय पक्ष से परिचित होना अनिवार्य नहीं था। तत्कालीन कवि एवं रसिक काव्य की चमत्कारिक उक्तियों पर दाद देकर अपनी रसिकता का परिचय देते थे। ऐसी दशा में औदात्य, चमत्कार और बारीकी तो आ गयी, किन्तु उसके सहज प्रवाह और भावनामयता में कमी आ गयी।

इस प्रकार केशव के समय में सामन्त एक ओर राजनैतिक जटिल समस्याओं में फंस कर विक्षुब्ध हो रहे तो दूसरी ओर कठोर भौतिकवादी होकर जीवन को विलासिता के अर्पण कर चुके थे। इस घोर भौतिकवाद से प्रेरित होकर वे कवि पंडितों को आश्रय दे रहे थे और उनके नग्न-शृंगारिक वर्णनों को सुनकर परम आनन्द का अनुभव कर रहे थे।

१-१० राजनैतिक परिस्थितियां : केशव साहित्यके संदर्भ में :

केशव का समय राजनैतिक दृष्टिकोण से सम्राट अकबर (सन् १५५६–१६०५ ई०) तथा जहांगीर (सन् १६०५–१६२७ ई०) का समय था। मुगलों के पूर्व शासन सत्ता खिल्जी, तुगलक, सैयद, लोदी आदि वंशों के हाथ में रही। इन वंशों के प्रायः प्रत्येक शासक ने हिन्दुओं के प्रति कठोरता और धर्मान्धता का व्यवहार कर उन्हें भरसक कुचलने का प्रयत्न किया, जिससे हिन्दुओं की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति दिनों दिन

१—रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० १२

२—येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदी भूते मनो मुकुरे वर्णनीयतन्मयी भवनयोग्यता ते सहृदयाः ॥

गिरती ही गयी।[1] फलतः हिंदुओं में प्रतिक्रिया की भावना जागृत हो उठी। अनेक राजपूत लोग मुसलमानों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। किन्तु अकबर के सिंहासनासीन होने पर परिस्थिति बदली। अकबर बुद्धिमान तथा उदार शासक था। उसने हिन्दुओं के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया। अनेक योग्य हिन्दुओं को उसने बड़े बड़े पद दिये। राजपूतों से अपना घनिष्ठ संबन्ध थापित करने के लिए उसने अनेक राजपूत घरानों से वैवाहिक संबन्ध स्थापित किया और राजपूतों को राज्य के ऊंचे ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। परिणाम वरूप देश में कुछ सीमा तक सुख शान्ति की अभिबृद्धि हुई। यद्यपि अकबर की धार्मिक सहिष्णुता के परिणाम स्वरूप अनेक हिन्दू राजवंशों ने उसके साथ मैत्री कर ली थी, फिर भी कुछ राजवंश ऐसे भी थे जो अपनी मर्यादा की रक्षा क जिए मुगलों के साथ मैत्री के सूत्र में नहीं बन्धे। इसमें से एक राजवंश ओडछा का भी था।

सूर्यवंश की गहरवार शाखा में मधुकरशाह नामक एक प्रसिद्ध राजा हुए। ये अकबर के समकालीन थे। मधुकरशाह बड़े ही स्वाभिमानी और स्वतंत्र प्रिय थे। अकबर ने आजीवन उन्हें अपने अधीन करने का प्रयत्न किया। किन्तु सफल नहीं हो सका। मधुकर शाह के आठ पुत्र थे, जिन में से इन्द्रजीत सिंह और वीरसिंह देव अधिक प्रसिद्ध थे। मधुकर शाह की मृत्यु के पश्चात् रामशाह राजा हुए। वे अकबर के अनुयायी बन गये। किन्तु वीरसिंह देव इसके विपरीत स्वतन्त्र चेता बन गये। वे अकबर के विरुद्ध हो गये। वे जहांगीर के कृपा पात्र बन गये थे। उसके कहने से वीरसिंह देव ने अबुल-फजल का वध कर डाला। इस कारण वे जहांगीर के और भी कृपा बन गये थे। अकबर की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली के राज्य सिंहासन पर जहांगीर बैठा। राजा होते ही जहांगीर ने वीरसिंह देव को ओडछा का राजा घोषित किया।

केशव के पूर्वज ओडछा नरेशों द्वारा सम्मानित थे। अतः केशव का राजाश्रित कवि बनना स्वाभाविक ही था। केशव राजा इन्द्रजीत सिंह के आश्रय में रहे। इनके अतिरिक्त केशव का सम्बन्ध अन्य राज वंशों से भी प्रतीत होता है। उन्होंने स्वयं अपने एक आश्रयदाता राजा चन्द्रसेन का उल्लेख किया है। डा० हीरालाल दीक्षित के अनुसार केशव के प्रथम आश्रय दाता महाराजा चन्द्रसेन प्रतीत होते हैं। यह जोधपुर के राजा मालदेव के पुत्र थे।[2] ये बड़े स्वतन्त्र प्रिय तथा अभिमानी राजा थे। ये आजीवन मुगलों से लड़ते रहे और राजपूतों के हृदयों में स्वाभिमान की ज्योति जलाते रहे।

१—डा० हीरालालदीक्षित, केशवदास, पृ० ८

२—आचार्य केशवदास. पृ० ५२

केशवदास ने कविप्रिया नामक ग्रन्थ में महाराजा चन्द्रसेन के खड्ग की प्रशंसा में निम्न-लिखित छन्द लिखा है :

रजै रज केशवदास टूटत अरुण लार, प्रतिभट अंकन ते अंक पै सरतु है।
सेनासुन्दरीन के विलोकि मुख भूषननि किलकि किलकि जाहि ताही को धरतु है॥
गाढे गढ खेलही खिलौननि ज्यों तोरि डारै, जग जय यश चारु चन्द्र को अरतु है।
चन्द्रसेन भुवपाल आंगन विशाल रन तेरो करवाल बाल-लीला सी करतु है॥[१]

इस छन्द की अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त 'तेरो' शब्द से स्पष्ट है कि यह छन्द केशवदास जी ने महाराज चन्द्रसेन के सम्मुख पढ़ा था।

केशवदास के सबसे प्रथम और प्रसिद्ध आश्रयदाता महाराजा इन्द्रजीत सिंह थे। राजा रामशाह ने उन्हें राज्य भार के साथ ही साथ 'कक्षवाकमल' नामक गढ भी दे दिया था। वे साहित्य और संगीत दोनों के ही बड़े मर्मज्ञ थे। उन्होंने केशवदास से गुरु दीक्षा ली थी और उन्हें दक्षिणा में कुछ ग्राम भी दिये थे। रसिक प्रिया नामक ग्रन्थ की रचना उन्हीं की प्रेरणा से हुई।[२] इन्द्रजीत सिंह स्वयं कवि तथा गुण ग्राहक थे। संगीत की ओर आप की विशेष रुचि थी। यहां तक कि उनके यहां कई गायिकाएं थीं, जो नृत्य, गान और वाद्य कलाओं मेंपरम निपुण थीं। उनमें राय प्रवीण, नवरंगराय, विचित्र नयना तथा रंगमूर्ति वेश्याएं तो स्थायी रूप से रहती थीं।

राजा इन्द्रजीत के राज दरबार की वारांगनाओं के प्रति केशव की बड़ी प्रीति थी। केशव ने राय प्रवीण को हिन्दुओं की पूज्य देवियां रमा, शारदा और पार्वती तक बना डाला है :—

रतनाकर लालित सदा परमानन्दहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर रमा कि राय प्रवीन॥
राय प्रवीन कि शारदा, सुचि रुचि रंजित अंग।
वीणा पुस्तक धारिणी, राज हस सुत संग॥
वृषभ वाहिनी अंग उर, वासुकि लसत प्रवीन।
सिव संग सोहै सर्वदा, सिवा कि रायप्रवीन॥[३]

१—कविप्रिया, छ० ३८, पृ० २५६
२—सब सुख दे करियों कह्यो, रसिक प्रिया करि देहु। रसिक प्रिया, प्रथम प्रकरण, छ० १०
३—कवि प्रिया, ५८, ५६, ६०

केशवदास के तीसरे आश्रयदाता वीरसिंह देव थे। वे बड़े वीर, विद्वान तथा न्याय प्रिय थे। अकबर और सलीम के वैमनस्य का वीरसिंह ने पूरा लाभ उठाया। वीरसिंह देव सलीम से जा मिले। सलीम वीरसिंह देव के कार्यों से इतना प्रभावित हुआ कि अकबर की मृत्यु के बाद उसने वीरसिंह देव को ओडछा का राजा बनाया। ये बड़े विद्वान, न्यायप्रिय और वीर थे। सम्राट अकबर इन्हें अधीन करने का आजीवन स्वप्न देखता रहा। केशवदास ने 'वीरसिंहदेव चरित' नामक ग्रन्थ में इन के चरित्र का विस्तारपूर्वक गान किया है। केशव ने इन्हीं की प्रेरणा से विज्ञान गीता की भी रचना की थी। केशव ने वीरसिंह देव चरित के अतिरिक्त विज्ञान गीता में भी कुछ छन्दों में आपके दान और वीरता की प्रशंसा की है।

इनके अतिरिक्त केशवदास के आश्रयदाता के रूप में और दो व्यक्तियों के नाम लिये जा सकते हैं, ये हैं—रतनसेन और अमरसिंह। ये दोनों राजा भी केशवदास का आदर करते थे। केशवदास ने भी इनके सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है। रतनसेन की प्रशंसा में रतन बावनी नामक एक ग्रन्थ की ही रचना की है। इस ग्रन्थ में मधुकर शाह के स्वाभिमान तथा रतनसेन की वीरता की अमिट छाप है। राणा अमरसिंह महाराणा प्रतापसिंह के सुपुत्र थे। केशवदासजी ने अपने कविप्रिया नामक ग्रन्थ में इनकी प्रशंसा में कई छन्द लिखे हैं।[1]

केशव के समय में राजनैतिक हलचलों के रहते हुए भी सामन्तीय वैभव अपनी चरम सीमा को पहुंच चुका था। राजदरबारों में कुछ कवियों को स्थान मिल गया था।

१—धरत धरणि ईश सीस चरणोदकनि
गावत चतुरमुख सब सुख दानिये।
कोमल अमल पद कमलाकर कमल
ललित बलित गुण, क्यों न उर आनिये॥
हिरण कसिपु दानकारी प्रह्लाद हित
द्विज पद उर धारी वेदन बखानिये।
केशोदास दारिद दुरद के निदारिबेको
एकै नरसिंह कै अमरसिंह जानिये॥ —क० प्रि० ११।३०
परम बिरोधी अविरोधी ह्वै रहत सब
दानिन के दानि, कवि केशव प्रमान है।
अधिक अनन्त आप सोहत अनन्त संग
अशरण शरण निरछक निधान है॥
हुत भुक हित मति, श्रीपति बसत हिय
भावत है गंगा जल जग को निदान है।
केशवराय की सौं कहैं केशोदास देखि देखि
रुद्र की समुद्र की अमरसिंह रान हैं॥ —क० प्रि० ११।३१

इस सम्बन्ध में डा० विजयपाल सिंह अपने ग्रन्थ केशव और उनका साहित्य' में लिखते हैं:—

"इसमें सन्देह नहीं कि केशव की गणना उन कतिपय सौभाग्यशाली कवियों में की जा सकती है, जो राज दरबारों में सम्मान की दृष्टि से देखे गये। इस दृष्टि से चन्दबरदायी तथा भूषण का नाम उल्लेखनीय है। परन्तु इन दोनों से केशवदास जी का आदर अधिक हुआ। यह ठीक है कि चन्दबरदायी एवं भूषण क्रमशः पृथ्वीराज तथा शिवाजी के कृपापात्र थे। परन्तु केशवदास जी को इन्द्रजीत सिंह ने गुरु के रूप में माना। यह सौभाग्य न तो चन्द को प्राप्त हुआ और न भूषण को ही। इस दृष्टि से केशवदास जी का स्थान अद्वितीय है।[1]

इस विवेचन के आधार पर देश की तत्कालीन राजनैतिक हलचलों का चित्र सामने आ जाता है। दिल्ली का केन्द्रीय शासन हिन्दुओं के सहयोग से अधिक बलवान हो गया था। फिर भी उसके सामने समस्या उन राजवंशों की थी जो केन्द्र के विरुद्ध सतत संघर्ष करते रहे। जो राजा अपने को समर्पित कर चुके थे, उनके जीवन में विलासिता, कला प्रियता और आत्महीनता विशेष रूप से भर गयी थी। इस प्रकार के राजपुरुषों का प्रतिनिधित्व केशव के आश्रयदाता राजा इन्द्रजीतसिंह करते हैं। इनके द्वारा साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्नयन तो हुआ पर राजनैतिक चेतना को उन्होंने कोई योगदान नहीं दिया। अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्षशील राजपुरुषों का प्रतिनिधित्व अमरसिंह, चन्द्रसेन और वीरसिंह देव जैसे राजा करते हैं। केशव को इनके द्वारा भी सम्मान प्राप्त हुआ था। प्रथम राज्याश्रय में केशव की साधना शुद्ध साहित्यिक बनी रही। पर दूसरे वर्ग के राज्याश्रय में उनकी काव्य साधना राजनैतिक अथवा वीरगाथात्मक हो गयी। "रतन बावनी" वीर गाथात्मक कृति है और वीरसिंह देव चरित में राजनैतिक संघर्ष चित्रित हुआ है। जहांगीर जसचन्द्रिका एक राजनीतिक षडयन्त्र का ही भाग है, जिसमें एक हिन्दूराजा जहांगीर से मित्रता करके उसे अकबर के विरुद्ध प्रोत्साहित करता है। इन सूत्रों से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का प्रतीक चित्र प्रस्तुत हो जाता हैं। अकबर के विरुद्ध कुछ राजा तो प्रत्यक्ष युद्ध कर रहे थे और कुछ राजनीतिक दांवपेंच में उलझाकर अपने अभीष्ट को सिद्ध करना चाहते थे। इनमें वीरसिंह देव का प्रमुख स्थान है। □

१—केशव और उनका साहित्य, पृ० ४६

द्वितीय अध्याय : केशव साहित्य में समाज

२-० प्रस्तावना :

पिछले अध्याय में हमने यह स्थापना की थी कि केशव के व्यक्तित्व और साहित्य में सामाजिक तत्वों की सम्भावना कम नहीं है। प्रस्तुत अध्याय में केशव साहित्य में प्राप्त समाज व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है। यद्यपि अधिकांश रूढ़ रूप ही अधिक मिलते हैं, फिर भी तत्कालीन सामाजिक जीवन का केशव साहित्य में नितान्त अभाव नहीं है। केशव की सामाजिक दृष्टि बहुत अधिक प्रगतिशील कही नहीं जा सकती। इन मान्यताओं के समर्थन के लिए हमें कुछ विस्तार से केशव साहित्य में चित्रित समाज को देखना चाहिए।

२-१ केशव साहित्य का सामाजिक परिप्रेक्ष्य :

आज के वैज्ञानिक युग में जब कि अतीत हमारे लिए केवल गौरव, भक्ति या स्वान्तस्सुख का विषय न होकर ज्ञान वर्द्धन और प्रगति का भी एक साधन है, हमें चाहिये कि केशव साहित्य का लौकिक दृष्टि से समुचित मूल्यांकन करें। सामाजिक जीवन के प्रायः सभी पहलुओं पर केशव ने रोचक तथा स्थायी महत्व की सामग्री प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप में दी है। समाज और परिवार के विषय में तत्कालीन जनता की क्या धारणाएं थीं? समाज का संगठन कैसा था? वर्ण और आश्रम का स्वरूप कैसा था? जनसाधारण की स्थिति पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती थी? उच्च वर्ग के लोगों को समाज क्या सुविधाएं प्रदान करता था। निम्न वर्गों की क्या दशा थी और उनके जीवन का स्तर कैसा था? विवाह की प्रणाली कैसी थी और प्रेम का आदर्श क्या था? लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करते थे? स्त्रियों के साथ समाज में कैसा व्यवहार किया जाता था? शासन व्यवस्था, युद्ध-संचालन, अस्त्रशस्त्र, यातायात के साधन इत्यादि कैसे थे? इन प्रश्नों पर केशव साहित्य के आधार पर विचारकिया जा सकता है।

संस्कृत कवियों के साहित्य में जहां प्रकृति वर्णन, राजवर्णन, तथा संस्कृति के चित्रण ने स्थान पाया है वहाँ सामाजिक पक्ष ने भी। इस प्रकार का शोध कार्य कुछ विद्वानों ने किया है। प्रायः संस्कृत कवियों के विषय में यह धारणा पायी जाती है कि वे साम्राज्यवाद के युग में तत्कालीन राजाओं की सन्तुष्टि के लिए केवल उन्हीं का वर्णन करने तक सीमित रहे हैं। किन्तु ऐसा निर्णय औचित्य से कहीं दूर है। संस्कृत कवियों को राज्याश्रय अवश्य मिला था और उनका सम्बन्ध उनके साथ था। तथापि व्यक्त या अव्यक्त रूप से समग्र समाज की झांकियां भी आ गयी हैं। चाहे उनका वर्णन अपूर्ण हो फिर भी प्राप्त सूत्रों का अन्य सन्दर्भों के अनुसार पुनर्नियोजन करके तत्कालीन परिस्थिति देखी समझी जा सकती है। यही बात केशव तथा रीतिकालीन कवियों के विषय में भी कही जा सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐतिहासिक सामग्री की साहित्यिक पद्धति से परीक्षा अनेक निष्कर्षो का परिष्कार भी कर सकती है और बहुत सी अप्राप्त सूचना भी मिल सकती है। ऐतिहासिक पद्धति से प्राप्त तथ्य कंकाल साहित्यिक सामग्री से मांसल होकर सत्य की अधिक सजीव मूर्ति बन सकता है। साहित्य के इस महत्व को इतिहासज्ञों ने स्वीकार भी किया है।

केशव का समाज मध्यकालीन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि है। सामाजिक दृष्टि से दो धाराएं उस समय प्रवाहित मिलती हैं। पहली धारा परम्परागत रूढ़ जीवन क्रम को लेकर चलती थी। रूढ़ियों का संरक्षण मुख्यतः राजनैतिक और जातीय दृष्टि से उच्च वर्ग के दायित्व के अन्तर्गत आता हैं। दूसरी धारा पुनर्जागरण और पुनरुत्थान की शक्तियों से अनुप्राणित है। इस पुनरुत्थान की शक्तियों के भी दो रूप हैं—उद्धत और सौम्य। तथाकथित उद्धत विचार पद्धति अतीत की अनेक रूढ़ियों को अस्वीकार करके चलती है। इस अस्वीकार के मूल में सामाजिक भेद जन्य आक्रोश और कटुताएं रहती हैं। ये शक्तियां तेजी से प्रगतिशील आधार पर सामाजिक पुनर्व्यवस्था में संलग्न होती हैं। वर्तमान की पुनर्व्यवस्था चाहे पूर्ण नहीं हो पाती हो भावी सम्भावनाओं का उपजीव्य ग्रहण करके यह अपना अस्तित्व बनाये रखती है। इस उद्धत क्रिया का प्रतिनिधित्व निम्नवर्गीय सन्तों का साहित्य करता है। यह साहित्य, साहित्य की अपेक्षा एक सामाजिक संस्था अधिक है। साहित्य की अभिजात विच्छिन्तियों से सन्त साहित्य अलंकृत नहीं। उसमें अपनी बात कहने की अदम्य प्रेरणा, समाज की चेतना को जोर से झक-झोरने का प्रयत्न है। आनुपातिक दृष्टि से एक रूढ़िग्रस्त समाज की अस्वीकृति ही इसमें अधिक है। इसके विपरीत पुनरुत्थान का सौम्यरूप सगुण भक्त कवियों के साहित्य में अधिक उतरा है। इसमें भक्तिगत मूल्य इन सभी रूढ़ियों को आवृत करके सैद्धान्तिक रूप से निरस्त कर देता है पर व्यावहारिक पक्ष में इसकी सामाजिक परिणति साहित्य से स्पष्ट नहीं होती। फिर भी व्यक्तिगत मूल्य किसी न किसी रूप में समाज की सिराओं में प्रवाहित था। यहां भी शुद्ध मानवीय

मूल्यों को मर्यादागत मूल्य से अभिभूत कर देनेवाला तुलसी साहित्य मिलता है और मर्यादा निरपेक्ष कृष्णभक्ति साहित्य भी। सम्भवतः माधुर्याश्रित भक्ति का मूल्य राजवर्ग का भी स्पर्श कर सकता था। क्योंकि उसकी लौकिक विलासिता के लिए यह गुह्य शृंगारपरक साहित्य एक उदात्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर देता था। राजवर्ग रूढ़ियों के प्रति क्रांति की वाणी से किंचित् भी प्रभावित नहीं था। संक्षेप में यही केशव के समाज का परिप्रेक्ष्य है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केशव जिस वर्ग का आश्रित था उसमें क्रांति की अपेक्षा सामाजिक रूढ़ियों का आग्रह बहुत अधिक था। स्वभावतः अभिजात वर्ग अपने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए रूढ़ परम्पराओं के कवच को आवश्यकता मानता है। यदि पुनरुत्थान सम्बन्धी कोई संस्पर्श इस वर्ग पर माना जा सकता है तो वह माधुर्य भक्ति के रूप में ही माना जा सकता है। लोकोत्तर माधुर्य के प्रतीकों में लौकिक विलास का आरोप उच्चवर्गों और उनके आश्रितों को अधिक रुचिकर लगा। यह मिला-जुला रूप हम को केशव की रसिकप्रिया में मिलता है। इसके विषय और शिल्प में अभिजात तत्वों का इतना समावेश हो गया है कि सामान्य जन का इससे सम्बन्ध नहीं रहा। विषय की दृष्टि से निम्नवर्गों का प्रवेश भी अत्यन्त आनुषंगिक होता है। फिर भी उच्चवर्ग की प्रक्रियाएं शून्य में नहीं चलती। अतः उन की जीवन पद्धति से समाज का सामान्य जन भी ध्वनित हो उठता है। सामान्य जीवन की ये ध्वनियां स्पष्ट रूप से उल्लिखित न होने पर भी उतनी ही सत्य होती हैं जितनी कि उच्च वर्गीय जीवन की स्पष्ट विकृतियां। इस साहित्य के आधार पर समाज के कुछ खण्डों का यथार्थ तो प्रकट हो ही जाता है। इस सन्दर्भ में ही केशव साहित्य के आधार पर तत्कालीन समाज का विवरण सम्भव होता है।

२-२. केशव साहित्य में विभिन्न सामाजिक संस्थाएं :

२-२१ परिवार : उसके प्रति दृष्टिकोण और पारिवारिक सम्बन्ध :

२-२११ परिवार : भारतीय सामाजिक व्यवस्था में हिन्दुओं का सम्मिलित परिवार एक सुदृढ़ इकाई के रूप में प्राचीन काल से चला आ रहा है। संयुक्त परिवार की यह स्थिति अनेक शताब्दियों तक अबाधगति से आगे बढ़ी और पूर्ण विकास को प्राप्त किया। पांचवीं शती तक भारतीय समाज ज्ञान-विज्ञान, व्यापार व्यवसाय तथा अन्य सभी क्षेत्रों में अग्रसर होता जा रहा था। परन्तु छठी शताब्दी में ज्यों-ज्यों हिन्दुओं की राजनैतिक और सामाजिक शक्तियां विशृंखल होती गयीं त्यों त्यों आत्म रक्षा की भावना से प्रेरित होकर जातियों और वर्गों के ढांचों के साथ ही उन्होंने परिवार को भी एक

साधन के रूप में स्वीकार किया। जाति-पांति के बन्धनों के साथ-साथ संयुक्त परिवार का आश्रय भी अधिकाधिक बढ़ता गया। आर्थिक निर्भरता के कारण भी संयुक्त परिवारों की स्थिति अनिवार्य हो गयी थी।

किन्तु मध्यकाल में यह पारिवारिक संगठन एक इकाई के रूप में संगठित हो गया जिसके अन्तर्गत माता-पिता, सास-ससुर, भाई-बहिन, पति-पत्नी, देवर-जेठ, चाचा-ताऊ, जेठानी-देवरानी, बाबा-दादी आदि अनेक सम्बन्ध माने गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक पारिवारिक सम्बन्ध भी हैं, जैसे बुआ, फूफा, मौसा, नाना आदि।

केशव को इस संगठित स्वरूप का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने अपने ग्रंथों में न केवल इनका उल्लेख किया है, वरन् इनकी संबन्धात्मक स्थितियों पर भी प्रकाश डाला है। उनके साहित्य में जिस परिवार की अभिव्यंजना हुई है, वह राजद्वेष, हर्ष-शोक, ममता-मोह, लोभ-त्याग आदि सामान्य घटनाओं से संयुक्त होकर हमारे सामने एक मनोहर और हृदयग्राही परिवार की झांकी प्रस्तुत करता है। उनके साहित्य में पारिवारिक व्यवस्था से संबन्धित निर्देश दो प्रकार के हैं—परिवार का सर्वमान्य, सामान्य, परंपरित आदर्श रूप तथा तत्कालीन पारिवारिक व्यवस्था संबन्धी यथार्थ रूप। रामचन्द्रिका में हमको पहले रूप की झांकी मिलती है तो वीरसिंहदेव चरित से तत्कालीन परिवार की यथार्थताओं का परिचय मिलता है। पारिवारिक संबन्धों पर इन्हीं दो दष्टियों से नीचे विचार किया है।

२-२१२ पिता :

हिन्दू परिवार में शक्ति और अधिकार की दृष्टि से केन्द्रीय स्थिति पिता की होती है। मनोवैज्ञानिक रूप से उसका पुत्र-प्रेम निसर्ग सिद्ध है। पुत्र-प्रेम के प्रतीक के रूप में साहित्य में दशरथ की प्रतिष्ठा रही। केशव के दशरथ का पुत्र-प्रेम भी दो स्थलों पर प्रकट हुआ है—विश्वामित्र की याचना के समय और राम वनवास के समय। जब विश्वामित्र यज्ञ में बाधा डालनें वाले राक्षसों को मारनें के लिए रामचन्द्र को अपने साथ भेजने की याचना करते हैं तब राजा दशरथ उनसे कहते हैं कि मैं प्राण, धन आदि सब कुछ दे सकता हूं किन्तु राम को नहीं दे सकता।[१] अंततः वशिष्ट की बात मान कर वे मुनि के साथ राम को भेजना स्वीकार करते हैं। जब रामचन्द्रजी मुनि के साथ चलने लगते हैं तब राजा दशरथ के दोनों नेत्र अश्रु पूरित हो गये :

१—रा० चं० २।२०

रामचलत नृप के युग लोचन।
वारि भरित भये वारिध लोचन ॥१

जब कैकेयी ने राम को वन भेजने का वर मांगा. तब दशरथ के हृदय को वज्र के समान लगा और उनका हृदय जीर्णवस्त्र के समान फट गया।२

श्री कृष्ण नंद के बहुत प्यारे थे। वह उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक मानते थे। उन पर उनकी माता सब कुछ न्यौछावर कर देने सर्वदा तैयार है।३ हिन्दुओं का विश्वास है कि पुत्र पिता का ही प्रति रूप है। पिता ही पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है।४ पुत्र-प्रेम एक प्रकार से स्वात्म प्रेम का ही रूप है। पिता के रूप, गुण और स्वभाव का वह प्रतिनिधित्व करता है। पिता को अपना प्रतिबिम्ब ही उसमें दिखलायी पड़ता है। राम को लव और कुश में अपना ही रूप दिखलायी पड़ा।

गुण रूप सुशील जुसों रण में प्रतिबिम्ब मनों निज दर्पण में।५

पिता अपनी पुत्री के योग्य वर को पाकर अपने को धन्य समझता है। इसके विरुद्ध योग्य वर को प्राप्त करने में असफल हो जाता है तो उसका मन खिन्न हो जाता है। रामकुमारों के शिवधनुष को तोड़ने में असफल हो जाने पर राजा जनक का चिंतित होना तथा श्रीरामचन्द्र के वहां आ जाने पर यह सोच कर संतुष्ट हो जाना कि ये निश्चित ही धनुष को तोड़ेंगे और मेरी कन्धा का विवाह संपन्न होगा, स्वाभाविक है।६ पुत्र की उन्नति पिता पर निर्भर रहती है। यदि पिता यशस्वी तथा शूरवीर हो तो पुत्रों का भी सर्वत्र आदर होता है। राजा जनक के द्वारा राम और लक्ष्मण का परिचय पूछे जाने पर विश्वामित्र यह कहते हैं कि ये दोनों राजाधिराज और सर्वगुण संपन्न राजा दशरथ के पुत्र हैं।७ परिवार में पिता की बात सब को स्वीकार्य होती है। जब भरत ने घर लौटने की प्रार्थना की तो राम ने उनसे कहा कि पिता की आज्ञा राजाज्ञा के समान है। यदि कोई उसका तिरस्कार करता है तो उसे हत्या का पाप लगेगा।८

परिवार की रक्षा करने में पिता बड़ी आसक्ति दिखाता है। यह बात निश्चित रूप से कही जाती है कि जो पिता अपने कर्तव्य से च्युत हो जाता हैं, उसके प्रति पुत्र कभी कभी विद्रोह करने से संकोच नहीं करता। पत्नी अपनी कैकेयी के वश में आकर

१—वही, २।२७
२—रा० चं० ६।५
३—र० प्रि० ७।५
४—आत्मावै पुत्रनामासि।
५—रा० चं० ३८।२
६—रा० चं० ५।१७
७—वही, ५।३१
८—वही, १०।३५

श्रीराम को वनवास देने वाले दशरथ के विषय में, पिता की आज्ञा संबन्धी रूढ़ि विरोध में केशव के भरत की यह प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है। उन्होंने राम से कहा—'जो पिता मद्यपान करता हो, जो नारी के वश में रहे, जो सन्निपात में प्रलाप करता हो, व्यर्थ बकवादी हो और जो महापापी हो, ऐसा व्यक्ति चाहे पिता हो चाहे राजा उसकी आज्ञा नहीं माननी चाहिए।१ राजपरिवारों में राजा की विभिन्न पत्नियां और पुत्र अपने अपने पृथक-पृथक महलों में रहते थे। वे अपने महत्वपूर्ण गृह कार्यों में पिता के आदेशानुसार परिचालित होते थे। धनुर्भंग के बाद विश्वामित्र के आदेश पाकर राजा जनक ने ही दशरथ के पास बारात लाने का संदेश भेजा था।२ विवाह के बाद राम और उनके भाई पृथक प्रासादों में रहते थे। और अपने पिता का आदेश मानते थे। इसी प्रकार कालिदास ने भी अपने अभिज्ञान शाकुंतल नामक नाटक में कण्व के मुख से यह बात बतायी है कि विवाह के पश्चात् अपनी कन्या को घर में रखना धर्म विरुद्ध है।३ इसलिए उन्होंने शकुंतला को दुष्यंत के पास भेजने का समुचित प्रबन्ध कराया। पिता शब्द की व्युत्पत्ति 'पा - रक्षा करना' धातु से हुई है। केशव ने तात४, बाप५, जनक६ आदि शब्दों का प्रयोग किया है। 'तात' शब्द संभवतः त्राता का संकुचित रूप हो सकता है। 'जनक' शब्द उत्पादक अर्थात् जन्म देने वाले के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इन शब्दों के मूल रूपों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि पिता अपनी संतान को जन्म देने वाला, परिवार का पालन पोषण करने वाला तथा बाहरी संकटों से रक्षा करने वाला होता है।

२-२१३ पुत्र :

संतति के लिए संतान शब्द का प्रयोग प्रायः चलता है। पुत्र शब्द के पर्याय वाची ये शब्द केशव में मिलते हैं—कुमार७, पुत्र८, तनय९, सुत१०, सुअ११, लरिका१२, लाल१३। कुमार शब्द छोटी अवस्था का द्योतक है। पुत्र शब्द तो पुत् नामक करक से बचाने का भाव सूचित करता है। तनय शब्द पिता के शरीर के संबन्ध को प्रकट करता है।

१—रा० चं० १०।३६
२—वही, ६।१
३—अभिज्ञान शाकुंतल, ४।२२
४—के० ग्र० पृ० १५।४८
५—वही, ३६।५
६—रा० चं २३।३४
७—के० ग्र० पृ० ८६।२६
८—वही, ८।२
९—वही' ७८६।२
१०—वही, ४६५।२
११—वही, ४६५।७
१२—वही, ५८६।५
१३—वही, १२३।४१

पुत्र की प्राप्ति एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। इसका मूल कारण यही है कि वह वंश को चलाने वाला होता है। धार्मिक दृष्टि से भी पुत्र की आवश्यकता अनुभव की जाती है। हिन्दुओं का विश्वास हैं अपुत्रस्य गतिर्नास्ति - 'पुत' नाम्नःनरकात् त्रायत् इत पुत्रः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पुत्र नरक से पिता की रक्षा करता है। इसलिए वह पुत्र पितरों की सब प्रकार से रक्षा करने वाला कहलाता है। इसलिए प्रत्येक पिता पुत्र की प्राप्ति के लिए साधना और तपस्या करता है। पुत्रोत्पत्ति से पिता को बड़ा आनन्द होता है जब कि वह पुत्र अच्छे काम करे तथा संसार में ख्याति पावे। जनक रामचन्द्र की प्रशंशा करते हुए दशरथ से कहते हैं कि हे राजन्! जिसने पत्थर को सजीव स्त्री बना दिया और शिव के धनुष को तोड़ डाला ऐसे पुत्र को पाकर तुम राजवर्ग में धन्य हुए हो।१ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र का अधिकारपूर्ण स्थान था। राजवर्ग में उत्तराधिकार के नियम ने ज्येष्ठ पुत्र की स्थिति को महत्वपूर्ण बना दिया था। उसे अपने छोटे भाईयों से पहले राजसिंहासन पर बैंठने का अधिकार प्राप्त था संभवतः इसीलिए राजा दशरथ ने वशिष्ट से मंत्रणा करके राम को राज सिंहासन पर बैठाने का निश्चय किया। पिता पुत्र को आहार और शिक्षा देकर रक्षा करता है। अतः उसकी आज्ञा नहीं मानने वाला पुत्र नरक में जाता है।२ पिता की आज्ञा पुत्र सहर्ष स्वीकार कर लेता था। भरत के रामचन्द्र को अयोध्या लौट आने की प्रार्थना करने पर राम ने यह तर्क दिया कि राजा ने हम को वनवास दिया है और तुमको पूरा राज्य। अतः हम दोनों को मिलकर उनके वचन का पालन करना चाहिए।३ अपने पति से प्रत्याख्याता सीता वन में बाल्मीकि महर्षि के केवल इसी भविष्यवाणी से जीवित रही कि तुम्हारे दो बुद्धिमान पुत्र होंगे और तीनों लोकों को विदित होगा कि वे श्रीरामचन्द्र के पुत्र हैं। इस प्रकार पुत्र माता की विपन्नावस्था के सहारे भी होते थे।४ माता का हृदय हमेशा अपने पुत्र की मंगल कामना करता रहता है। जब वह कोई अलौकिक कार्य करता है तो वह बहुत प्रसन्न हो जाती हैं। रण में जीत कर लव और कुश ने अपनी माता सीताजी के चरणों का स्पर्श किया तो उसने उनका सिर सूँघकर गले से लगाया।५

२-२१४ भाई :

पारिवारिक जीवन में बड़े भाई का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। बड़े भाई के विवाह को प्राथमिकता दी जाती है। यहां तक कि केशव ने एक स्थान पर बड़े भाई

१—रा० चं० ६।१६
२—वही, ६।६
३—वही, १०।३४
४—वही, ३४।५५
५—रा० चं० ३६।१८

को विष्णु के समान भी कह दिया है। केशव ने वीरसिंह से कहा था कि जिस प्रकार से लोग विष्णु भगवान की आराधना करते हैं उसी प्रकार से आप अपने बड़े भाई रामशाह की सेवा कीजिए। जब तक रामशाह जीवित हैं तब तक उनकी सेवा करते रहने से ही राज्य की व्यवस्था बनी रहेगी।

केशव साहित्य में विविध प्रकार के भाइयों के लिए बन्धु[1] और बांधव[2] शब्द व्यापक हैं। सगे भाइयों के लिए सोदर,[3] भाई,[4] भाय,[5] भाइय,[6] भ्रातृ,[7] सहोदर,[8] अनुज,[9] तात,[10] और बीर[11] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें सोदर शब्द एक ही गर्भ से जन्म का सम्बन्ध सूचित करता है। 'अनुज' पीछे जन्म लेने का द्योतक है जिससे छोटे भाई का सम्बन्ध सूचित होता है।

वड़ा भाई पितृतुल्य माना जाता है। किन्तु विभीषण ने अपने बड़े भाई रावण की मृत्यु के बाद मन्दोदरी को अपनी पत्नी बनाया था। उसके इस कृत्य को निन्द्य माना गया था। लव ने उससे कहा कि बड़ा भाई, मालिक, राजा और पिता ये चारों समान हैं। तूने अपने बड़े भाई रावण की स्त्री को लेकर अपनी स्त्री बना लिया। क्या वह तेरी माता के समान नहीं![12] वाल्मीकि के अनुसार बड़े भाई का विवाह पहले हो जाना चाहिए। उससे पहले विवाह कर लेनेवाला छोटा भाई 'परिवेत्ता' कहलाता था और नरक का भागी बनता था। किन्तु भाइयों का सह विवाह शास्त्र सम्मत है। वाल्मीकी ने भी राम और उनके तीन छोटे भाइयों का विवाह एक साथ बताया है। केशव ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया है। धनुर्भंग के बाद राजा जनक का निमंत्रण पाकर राजा दशरथ अयोध्या से अपने चारों पुत्रों की बरात ले आये थे।[13] बड़े भाई का अपने छोटे भाइयों पर पूरा अधिकार था। वन जाते समय श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा था कि तुम घर पर रहो और राजा की सेवा करो तथा माताओं को प्रसन्न करने की चेष्टा

१—रा० चं० पृ० ४६७।१३ २—वही, ४७०।२६
३—वही, १० ।१६ ४—वही, २१।३७
५—वही, ६।२७ ६—वही, १६।२५
७—वही, ३६। ८—रा० चं० ११।३७
९—वही, ३०।८ १०—वही, ३३।२८
११—वही, २२।३०
१२—जेठो भैया, अन्नद, राजा, पिता समान।
ताकि पत्नी तू करि पत्नी मातु समान॥ —र० चं० ३७।१८
१३—रा० चं० ६।२

करो।[१] श्रीराम के हृदय में लक्ष्मण के प्रति अव्याज अनुराग था। रावण के शक्ति बाण से आहत होकर लक्ष्मण बेहोश हो गया तो राम ने जो विलाप किया है उससे उनका अनुराग प्रकट होता है।[२] कुंभकर्ण भी अपने बड़े भाई रावण का बड़ा आदर करता था। रावण के बुरे आचरण से उसे बड़ा दुःख हुआ और उसने उसे समझाने की चेष्टा की। जब उसने उसकी एक भी नहीं सुनी तब वह उसकी प्रदक्षिणा करके रण-भूमि को चला गया।[३] बुरे मार्ग पर चलनेवाले बड़े भाई को समझाना छोटे भाइ अपना कर्तव्य समझते थे। विभीषण ने रावण को समझाया था कि अपने वीरों के भरोसे रामजी से युद्ध करने का निश्चय कर लेना ठीक नहीं। इन में से कोई भी राम के सामते टिक नहीं सकते। अतः रामजी के समुद्र के इस पार आने के पहले ही तुम सीता जी को उन्हें सौंप दो और उनसे क्षमा मांगो।[४] शिष्टाचार सम्पन्न परिवारों में अपने बड़े भाई को अप्रसन्न देखकर छोटे भाई चिन्तित हो जाते हैं और उसकी अप्रसन्नता का कारण अपने को ही मानकर अपनी सफाई देते हैं। "हम मन, वचन और कर्म से आपके सेवक हैं। आज आप पहले के समान हमसे बातें नहीं करते। इसका कारण क्या है?"[५] भरत की इस उक्ति से इस बात का समर्थन मिल जाता है कि बड़े भाई को अप्रसन्त देखकर छोटा भाई विचलित हो जाता है। बड़ा भाई यदि राज परिवार का होता तो आज्ञा भंग करने पर अपने छोटे भाइयों को दण्ड भी देता था। श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा था—"हे लक्ष्मण तुम सीता को लेकर जल्दी जाओ और किसी घोर वन में छोड़ कर आओ। यदि तुम मेरी इस बात का उत्तर न दोगे तो राजाज्ञा के उल्लंघन के दण्ड के भागी बनोगे।"[६]

छोटा भाई भी अपने बड़े भाई को पूज्य मानता था और उसका आदर करता था। वन गमन के समय राम ने अपना अनुसरण करनेवाले लक्ष्मण को मना किया तो उसने कहा कि मैं आपकी आज्ञा का भंग नहीं करूंगा। किन्तु यह ठीक नहीं कि सेवक घर में रहकर आनन्द मनावें और मालिक वन में भटकता फिरे। यदि आप आज्ञा के बल

१—वही, ६।२३

२—बारक लक्ष्मण मोहिं बिलोको मोकः प्राण चले तजि रोको।
हौं सुमिरो गुण केतको तेरे सोदर पुत्र सहायक मेरे॥ रा० च० १७।४४

३—रा० चं० १८।२० ४—वही, १५।१०

५—मनसा, वाचा कर्मना हम सेवक सुन तात।
कौन दोष नहिं बोलियत ज्यों कहि आयो बात॥ रा० चं0 ३३।२८

६—सीतहि लै अब सत्वर जैये राखि महावन में फिरि ऐसे।
लक्ष्मण, जो फिर उत्तर दैहौ सासन भंग को पातक पैहो॥ रा० चं० ३३।४५

से घर पर ही रखेंगे तो मैं आत्महत्या करूंगा।[१] राजपरिवारों में कोई कठिन समस्या उपस्थित होने पर छोटे भाई बड़े भाई को सलाह भी देते थे। दूत के मुख से सीता का अपवाद सुनकर श्रीराम उनका परित्याग करना चाहते थे यह सुनकर भरत ने कहा कि आप सीता को पवित्र मानकर लाये हैं। आपके समक्ष ही आग की गोद में बैठी थी। जिस सीता की शुद्धता की साक्षी शिव, ब्रह्म, धर्म और पिताजी ने दी है उन्हें केवल एक निन्दक के कहने से कैसे निकालेंगे।[२] राम और उनके तीनों भाइयों के बीच अव्याज तथा प्रगाढ प्रेम भाव था। उनमें कोई स्पर्धा, कोई प्रतियोगिता या कलह नहीं था। राम को अपने भाई प्राणों से अधिक प्यारे थे। राम और उनके भाइयों का प्रेम चित्रकूट पर प्रकट हुआ है। भरत ने तो राम से यहां तक कह दिया कि यदि आप हठपूर्वक मुझसे राज्य करायेंगे तो मैं यहीं चित्रकूट में मन्दाकिनी के किनारे शरीर त्याग कर दूंगा। इसके विरुद्ध केशव साहित्य में ऐसे भाइयों के सम्बन्ध का भी चित्रण किया गया है जो तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के कारण परस्पर वैमनस्य के वशीभूत हो गये थे। राजा मधुकर शाह के पुत्र रामशाह तथा वीरसिंह देव में राज्याधिकार को लेकर सदा युद्ध होते रहे। इन अन्तःकलहों के कारण ही हिन्दुओं की राजनैतिक एकता को धक्का लगा और परिणाम स्वरूप भारत विदेशियों के अधीन हो गया।

२-२१५ माता :

परिवार में पिता के बाद माता को ही सबसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अपनी सन्तान के लालन का भार मां नाम के जीवधारी के ऊपर ही हुआ करता है। पुत्र के जन्म लेने पर माता अपने को धन्य समझती है। माता-पिता अपने सन्तान के परम स्नेह और श्रद्धा के पात्र बनते हैं। अपने नन्हें-अबोध बालकों के पालन-पोषण का सारा भार उन्हीं पर होता है। वे अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम खाद्य पदार्थ देने, अच्छे कपड़े पहनने, सदा मीठी–मीठी बातें बोलने, लालन-पालन करने आदि के द्वारा जो उपकार करते हैं वह अनुपम है और उसका बदला चुकाना असम्भव होता है। इस पितृ-ऋण से मुक्ति पाने के लिए उनके मरणान्तर उसे अनेक धार्मिक कृत्यों का पालन करना पड़ता है। माता-पिता के जीवित रहते उनकी आज्ञा का ननु नच किये बिना पालन करना पड़ता है।

पत्नी के जीवन की गौरवमय परिणति उसके व्यक्तित्व का पूर्णतम विकास मातृत्व में जाकर होता है। वंश प्रवर्तन ही उसके समस्त स्नेह और सौन्दर्य की सफलता

१—रा० चं० ६।२२   २—वही, ३३।३२

का सूचक है। डा० शांतिकुमार नानूराम व्यास के अनुसार "भारत में अनुरूप पत्नी से पुत्र प्राप्ति सदा से विवाहित आनन्द का चरम रूप माना जाता रहा है। अपने अंगांग से हृदय के सुकुमार तन्तुओं से एक नूतन सप्राण पदार्थ की सृष्टि करके उसका जगतीतल पर नवोन्मेष करना नारी के अस्तित्व की इससे बढ़कर और क्या प्रतिष्ठा हो सकती है। पुत्र प्रसव करके पत्नी वास्तव में अपने पति को ही पुनर्जन्म देती है। इसलिए वह धात्री और जननी कहलाती है।[१]

केशवदास ने माता के लिए माता,[२] मां,[३] जननी,[४] तातनी,[५] मातु,[७] मात,[८] माह,[९] जननि[१०] आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

केशव साहित्य में पवित्र मातृ-मूर्ति को अंकित किया गया है। रामचन्द्रिका में कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी तथा सीता ये चारों मातृ रूप में हमारे सामने आती हैं। पुत्र माता को सबसे पूजनीय मानता था। विवाह के अनन्तर जब राम मिथिला से लौटे तब वे सर्वप्रथम अपने भाइयों तथा बन्धुओं के साथ कौशल्या के अन्तःपुर में गये।[११] माता को अपनी सन्तान से बढ़कर प्रिय इस संसार में कोई नहीं। वह सर्वदा अपने पुत्र की कल्याण कामना करती रहती है। वनगमन के समय राम आशीर्वाद पाने के लिए अपनी माता कौसल्या के पास गये तब उसने दुःखी होकर कहा कि तुम्हारे पिताजी अब बावले हो गये हैं। अतः उनका वचन प्रामाणिक मत समझो।[१२] इतना ही नहीं उसने राम के साथ वन जाने की इच्छा भी प्रकट की थी।[१३] माता अपने पुत्र को उन्नत देखना चाहती है। इसके लिए वह अनुचित काम भी करने में संकोच नहीं करती। कैकेयी ने दशरथ से राम का वनवास इसीलिए मांगा था कि उससे उसके पुत्र भरत को राज्य मिल सके। उसने भरत से कहा कि तुम को राज्य मिलने से मुझे प्रसन्नता होगी। इसी कारण मैंने राम को वन भेजा।[१४] अपने पुत्र पर विपत्ति आ पड़ने पर माता विह्वल हो जाती है। लव के मूर्छित होने की बात सुनकर सीता अचेत हो गयी। मन, वचन और कर्म से थकित होकर चित्र की पुतली के समान हो

१—रामायण कालीन समाज, पृ० १७०
२—रा० चं० ६। ४
३—के० ग्रं० २६७।३५
४—वही, २२६।५५
५—र० प्रि० १।३
६—के० ग्रं० ११३।१८
७—वही, १७१।५७
८—वही, ७।१५
९—वही, ३०२।७३
१०—रा० चं० ८।१७,१८
११—रा० चं० ८।१७, १८
१२—वही, ९।८
१३—वही, ९।१०
१४—वही, १०।४

गयी ।[१] माता अपने वंश की मर्यादा की रक्षा के लिये सतत् प्रयत्नशील रहती है। यदि उसकी पुत्री कोई ऐसा काम करे जिससे वंश की मर्यादा में कलंक लगे तो माता उसे बाहर जाने नहीं देती थी। आलोच्य काल में मां इस बात का ध्यान रखती थी कि लोग उसकी बेटी के सम्बन्ध में कोई अपवाद न करे। राधा की प्रिय सखी ने उससे इस प्रकार कहा कि तू शतरंज खेलने का बहाना करके दिन रात श्रीकृष्ण के साथ बैठी रहती है। यदि कहीं तुम्हारी माता को इस बात का पता लग जाय तो फिर तुझे घर में बन्द रखेगीं।[२]

२-२१६ पति-पत्नी :

केशवदास ने पति के लिए कन्त,[३] पति,[४] पतिदेव,[५] प्रिया,[६] पिय, पी,[७] नाथ,[८] भर्ता,[९], भरता,[१०] भर्तार[११] और सजन[१२] शब्दों का प्रयोग किया है। इस शब्दावली में कुछ शब्दों का आधार पति का अधिकार और पत्नी की अधीनता है। प्रिया या पिय शब्दों का आधार दाम्पत्य प्रेम है। आर्थिक रूप से भरण-पोषण करने वाले का रूप भर्ता है। पति-पत्नी के युगल का सामूहिक रूप दम्पति[१३] दिया गया है। पत्नी के लिए केशव ने निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया है : कलत्र[१४] यह एक पुराना शब्द है। इसका भाव यह है कि पत्नी अन्य सम्पत्ति की भांति एक निर्जीव सम्पत्ति ही मानी जाती थी। पतिनी[१५] शब्द का प्रयोग भी केशव ने किया है। यह शब्द पति शब्द का सहगामिनी होकर आता है, जैसे पति-पत्नी। अन्य कुटुम्बियों की दृष्टि से यह वधू है। पत्नी का सबसे बड़ा धन सोहागु[१६] है। इसी कारण यह सुहागिन[१७] है। पति का एक से अधिक पत्नियों में परस्पर सम्बन्ध सौत१८, सौति१९ का रहता है। उससे अधिक ईर्ष्या और

१—सीता गीता पुत्र की सुनिकै भई अचेत ।
मनो चित्र की पुत्रिका मन क्रम बचन समेत ॥ रा० चं० ३५।२४

२—मोहन साथ कहा निशिद्यौस रहै शतरंज हि के मिस बैठि ।
केशव क्यों हु सुनै महतारी तो राखहिरी घर ही महं बैठि ॥ र० प्रि० १२।३

३—के० ग्र० पृ० १५५।२४
४—वही, ६।१६
५—रा० चं० ६।११
६—के० ग्रं० २६।१७
७—के० ग्रं० ३०६।१७
८—वही, पृ० ४७ छं० २२
९—वही, पृ० १२६ छं० ५१
१०—रा० चं० पृ० २० छं० ५
११—वही, पृ० ६ छं० १५
१२—वही, पृ० ६ छं० १३
१३—के० ग्रं० पृ० ४६६ छं० १३
१४—वही, पृ० ४६ छं० ३
१५—वही, पृ० ४०३ छं० १०
१६—वही, पृ० ३६ छं ६
१७—वही, पृ० १०३।३३
१८—वही, पृ० ७६ छं० १७
१९— „ „ ६७ छं० १४

द्वेष का सम्बन्ध और कोई नहीं हो सकता। केशव ने इस सम्बन्ध का प्रेम के सन्दर्भ में बड़ा सुन्दर प्रयोग किया है।

विवाह होने के बाद पितृ गृह से पतिगृह आने वाली कन्या वधू[१] कहलाती है। नये वातावरण से अभ्यस्त होने में उसे प्रयास करना पड़ता था। सास अपनी अनुभवहीन पुत्रवधू को इस विषय में भली भांति शिक्षित करती थी कि साधारण परिस्थितियों में उसे पति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। लोक और परलोक दोनों में पिता-पुत्र, माता सखियां कोई भी नारी का अपना नहीं, केवल पति ही उसका एक सहारा है। जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात शोभित नहीं होती उसी प्रकार पति के बिना नारी को सुख नहीं मिलता।[२] महाराज दशरथ को छोड़कर पुत्र के साथ बन चलने को उद्यत माता कौसल्या को राम ने जो उपदेश दिया था उसमें तत्कालीन स्त्री धर्म का आदर्श प्रस्फुटित हुआ है। पत्नी को सब प्रकार पति की सेवा करनी चाहिए। सारा संसार विरोधी हो सकता है किन्तु एकमात्र मित्र पति ही है। सुख-दुःख की उपेक्षा करके पति की तन-मन से सेवा करो और शुभ गति को प्राप्त करो। याग, यज्ञ, व्रत, स्नान, दान, धर्म, कर्म आदि आदि सभी निष्फल हैं किन्तु पति-सेवा ही फलप्रद है। माता-पिता, परिवार, सहोदर, देवर, जेठ, पुत्रसुत सभी पति विहीना को दुःख देने वाले हैं। यदि अपना पति लंगड़ा, गूंगा, बहरा, बावरा, अंधा, अनाथ, बृद्ध, नित्य रोगी, कुरूप, कटु भाषी, कलही, कोढी, कायर, जुआरी, व्यभिचारी, अधम, कुटिल और कुमति हो जाय तो भी पत्नी को उसे नहीं छोड़ देना चाहिए।[३] पतिव्रता स्त्री विपत्ति के समय अपने पति का साथ छोड़ना पसंद नहीं करती। सीता ने राम से कहा 'न मैं अयोध्या में रहूंगी न जनकपुरी जाऊंगी। भूख के समय माता ही अच्छी लगती है, विपत्ति में स्त्री ही अच्छी सेवा-सुश्रूषा करती है। अतः उसे साथ ले जाना चाहिए'।[४] मैं नींद, भूख प्यास, त्रास, हास, अग्नि की ज्वालाएं, सूर्य का ताप सब सह सकती हूँ, किन्तु मैं अपने पति का वियोग सहन नहीं कर सकती।[५] अचल पति भक्ति पत्नी में ऐसा आत्मविश्वास उत्पन्न कर देती है कि दुष्टों के चक्र में पड़ कर भी वह अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ हो जाती है। पातिव्रत्य के प्रभाव से

१—उह्यते पितृ गृहात् पतिगृहम् इति वधूः।

२—रा० चं० १३।१०

३—रा० चं० ६।११, १२, १३, १४, १५, १६

४—न हौं रहौं न जाहुं विदेह धाम कौं अबै।
कही जु बात मात पै सु आजु मैं सुनी सबै॥
लगै छुधा हिं मा बली विपत्ति मांह नारिये।
पिपास त्रास नीर बीर युद्ध में संभारिये॥—रा० चं० ६।२४

५—रा० चं० ६।२६

सुरक्षित सीता पर रावण को बलात्कार करने का साहस नहीं हुआ। इसी कारण उसने दो महीनों की अवधि देकर सीता को समझाने के लिए राक्षसियों को नियुक्त किया। रावण के साथ सती सीता ने सदा घोर घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार का भाव रखा था। वे उसके साथ संभाषण करते समय वह तिनका बीच में कर लेती थीं।[१] उनका तेज रावण को हतप्रभ करने के लिए पर्याप्त था। वे तो उसे मृतक के समान ही मानती थीं। इसीलिए वे अपना क्रोध उस पर नहीं दिखलाती थीं।[२]

पतिपरायणा स्त्रियों का अपहरण करने वालों की दुर्गति निश्चित मानी जाती थी। मंदोदरी का विश्वास था कि लंका ऐसा कठिन गढ़ था जिसे कोई जीत नहीं सकता था। यदि रावण सीता को लौटा देता तो वह युद्ध में निश्चित ही विजयी हो जाता।[३] इस युग में पत्नी पति को राजनैतिक विषयों में सम्मति भी देती थी। मंदोदरी ने रावण से कहा कि समय आपके प्रतिकूल हो गया है। इस समय युद्ध मत कीजिए : सीता को राम को लौटा दीजिए। समय प्रतिकूल होने पर निज हित अनुकूल कौन नहीं चलता। देव-दानवों के युद्ध में विष्णु सब देवताओं को छोड़कर भाग जाया करते हैं। क्षत्रिय संहारी परशुराम राम को अपने धनुष बाण देकर बचे।[४]

केशव ने मंदोदरी के प्रसंग में मौलिकता का समावेश किया है। मंदोदरी पत्नी के अतिरिक्त रावण की परामर्श दात्री भी थी, जो राजनीति के सभी नियमों से परिचित थी और पग-पग पर रावण को उचित परामर्श देती थी, रावण को हताश होकर संधि प्रस्ताव भेजने पर उसका वीर रूप जागृत हो उठा और युद्ध-क्षेत्र में जाने को सन्नद्ध हुई। उसने कहा कि लंकेश ! आप सुख से जीते रहे। अब मैं राम से इस प्रकार युद्ध करूंगी जैसे शिव, विष्णु इत्यादि के हार जाने पर शुंभ-निशुंभ से देवी दुर्गा लड़ी थी।[५] स्त्रियां अपने पतियों के साथ युद्ध क्षेत्र में भी जाती थी। पति की मृत्यु के कारण पत्नी के हृदय में जो पीडा होती है, उसकी कोई सीमा नहीं है। युद्ध क्षेत्र में घायल हुए अपने पतियों को जंघों पर रखकर अपने मुखों को आंचल से पोछने वाली स्त्रियों का उल्लेख भी केशव

१—तृन बिच दइ बोली सीय गंभीर बानी।
दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी ॥—रा० चं० १३।६१

२—निपट मृतक ताकों रोष मारै न मेरो। राम० चं० १३।६३

३—सोदर जूझयो सुतहितकारी। को गहि है लंका गढ़ भारी ॥
सीताहि दैके रिपुहि संहारौ। मोहित है विक्रम बल भारौ ॥ रा० चं० १६।५

४—रा० चं० १८।१५

५—दशमुख सुख जीजै राम सों हौं लरौं भौं।
हरिहर सब हारे देविदुर्गालरी ज्यों ॥ रा० चं० १६।२२

ने किया है।[१] इस प्रकार सुख दुःख में भाग लेने के कारण ही सहधर्मिणी के रूप में पत्नी की प्रतिष्ठा समाज में स्वीकृत हो गयी है। पत्नी पति की अर्धांगिनी और आत्मा है। यज्ञानुष्ठान में उसके बिना दीक्षा लेना संभव न था। सीता के परित्याग उत्पन्न पाप निवारण के लिए श्रीराम ने उनके बिना ही अश्वमेध याग करने की इच्छा प्रकट की तो कश्यप ने कहा था कि पत्नी के बिना धार्मिक कर्म संपन्न नहीं हो सकता। उसके बिना किया गया धार्मिक कर्म निष्फल हो जाता है। अतः आभूषणों से युक्त सीता की एक स्वर्ण की प्रतिमा बनाकर याग कर सकते हैं।[२]

सारे परिवार को संभालने का भार पत्नी पर ही रहता था। बच्चों का लालन पालन करना, पति के गृह कार्यों में सहायता देना, सास ससुरों की सेवा करना अतिथियों का सत्कार करना आदि सभी पारिवारिक कार्य पत्नी पर ही निर्भर हैं। इसी कारण वह 'गृहिणी' नाम से विभूषित हुई। इस प्रकार विवाह से लेकर मरण तक पति पत्नी का संबन्ध जीवन के सभी क्षेत्रों में चलता आ रहा है। परिवार की गाड़ी के ये दोनों पहिये हैं।

२-२१७ भाभी-देवर :

भाभी-देवर के संबन्ध का विकास विभिन्न स्थितियों में होकर हुआ है। इसके विविध अर्थ भी साहित्य में मिलते हैं। एक विवरण के अनुसार देवर शब्द की व्युत्पत्ति 'देवयति इति देवरः' की पद्धति से हुई। इससे देवर भाभी का सरस भाव व्यंजित है। दूसरी व्युत्पत्ति पारिवारिक जीवन के संदर्भ में देखी जा सकती है।[३] इसके दो विकास पथ यहां से हो जाते हैं। एक स्थान पर मनुस्मृति में व्याख्या है कि बड़े भाई की स्त्री छोटे भाई के लिए गुरु पत्नी के समान है और छोटे भाई की स्त्री बड़े भाई के लिए पुत्रवधू के समान।[४] किन्तु वहीं यह भी कहा गया है कि संतान न होने पर देवर के साथ नियोग भी हो सकता हैं।[५] वेद के अनुसार बड़े भाई की विधवा पत्नी, देवर के साथ विवाह भी कर सकती।[६]

१—वी० चं० ८।४८

२—धर्म कर्म कछु कीजई सफल तरुणि के साथ।
   ताबिन जो कछु कीजई निष्फल सोई नाथ॥
   करिये युत-भूषण रूपरती मिथिलेश सुता इक स्वर्णमयी। रा० चं० ३५।३.४

३—देवरो द्वितीयो वरो भवति। निरुक्त, ३।२४

४—मनुस्मृति, ९।५७

५—वही, ९।५९

६—ऋग्वेद १०।४०।२ तथा अथर्ववेद, १४।२।२८

इस प्रकार देवर-भाभी का आदर्श रूप भी समाज में विकसित होता गया और सरस सम्बन्ध भी। लोक साहित्य में सरस सम्बन्ध की व्यंजना अधिक मिलती है और शिष्ट साहित्य में आदर्श सम्बन्ध की। वाल्मीकि रामायण में आदर्श सम्बन्ध को ही मान्य ठहराया गया है। तुलसी में भी इसी की गूंज है। सीता और लक्ष्मण तथा राम के अन्य भाइयों के बीच जो देवर-भाभी सम्बन्ध हैं वह आदर्श ही बना रहा। केशव साहित्य में इस सन्दर्भ में यही रूप मिलता है। रामचन्द्र के वनगमन का वृत्तान्त सुनकर सीता ने भी उनका अनुसरण करने की इच्छा प्रकट की। लक्ष्मण ने उनको समझाते हुए कहा कि वन में अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करना पड़ता है। वहां भयंकर वन्यपशु तथा राक्षस रहते हैं। अतः आप वन जाने का विचार छोड़ दीजिए।[1] लेकिन सीता ने अपने निश्चय को नहीं छोड़ा। इस प्रसंग में यह बात उल्लेखनीय है कि लक्ष्मण यह सोचकर विचलित हो उठे कि अपनी भाभी को वनवास के समय अनेक प्रकार के कष्टों को सहना पड़ेगा। सीता लक्ष्मण को अप्रने पुत्र के समान मानती थी। जब रावण सीता को लंका ले जा रहा था तब उसने अपनी रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को बुलाया। इस सन्दर्भ में केशव ने राम के लिए 'रमन' तथा लक्ष्मण के लिए 'पुत्र' का प्रयोग किया है।[2] इस सन्दर्भ से यह बात विदित होती है कि सीता लक्ष्मण को अपने पुत्र के समान देखती थी।

पारिवारिक जीवन में भाभी-देवर का जो महत्वपूर्ण स्थान है वह सीता-परित्याग के समय स्पष्ट हो जाता है। जब राम ने अपने भाइयों से कहा कि सीता के पातिव्रत्य के विषय में प्रजा की धारणा बुरी है तब उन्होंने सीता के सौशील्य का समर्थन किया। भरत ने राम ने कहा कि जानकी जी सदा पवित्र हैं। दुष्टजन उसी प्रकार उनकी निंदा करते हैं जिस प्रकार स्वभावतः पाखण्डी जन वेदों की निंदा करते हैं :

सदाशुद्ध अति जानकी, निन्दत यों खल जाल।
जैसे श्रुतिः स्वभाव ही, पाखण्डी सब काल ॥[3]

यहां पर केशव ने सीता के प्रति भरत की भक्ति का उल्लेख किया है। पर यह महत्व भाभी-देवर सम्बन्ध जन्य है अथवा किसी दिव्य या न्याय भाव से उत्पन्न, यह

१—रा० चं ६।२५

२—हा राम ! हा रमन ! हा रघुनाथ धीर ।
लंकाधिनाथ वश जानहु मोहि वीर ॥
हा पुत्र लक्ष्मण ! छुडावहुवेगि मोहि ।
मार्तंड वंश यश की सब ला॰ तोही॥ —रा० चं० १२।२१

३—रा० चं० ३३।३०

कहना कठिन है। केशव ने भरत की दृष्टि में न्याय के तत्व को भी प्रमुखता दी है। देवर भाभी का सम्बन्ध इतना स्पष्ट नहीं है। भरत की दृष्टि में सती सीता का परित्याग अन्याय ही होगा।

वीरसिंहदेव चरित में देवर और भाभी बिगड़ा हुआ सम्बन्ध आया है। वीरसिंह देव और रामशाह के बीच होनेवाली सन्धि का विच्छेद एक प्रकार से भाभी–कल्याणदेवी-ही कराती है।[१] उस सम्बन्ध के बिगड़ने का कारण आर्थिक मानना चाहिए। सामूहिक कुटुम्ब के युग में यह सम्बन्ध सुरक्षित रहा और आर्थिक प्रतियोगिता के युग में इस संबन्ध की मूल भावना क्षत–विक्षत हो गयी। कल्याणदेवी इसी स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है।

२-२१८ दास-दासी :

अत्यधिक सम्पर्क में रहने के कारण दास-दासी भी परिवार के अंग ही माने जाते थे।[२]

२-२१९ अन्य सम्बन्ध :

उपर्युक्त सम्बन्धों का केशव ने अधिक परिचय दिया है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे पारिवारिक सम्बन्ध भी हैं जिनका उल्लेखमात्र ही केशव साहित्य में मिलता है। उनका उल्लेख नीचे किया जाता है।

पति के छोटे भाई को देवर[३] कहा जाता है। पति के बड़े भाई की पत्नी को जेठी[४] (ज्येष्ठी) कहा जाता है। पुत्री के लिए सुता[५], कहा गया है। उसके लिए लड़ैती[६] जैसे शब्द भी आये हैं। बहन की पुत्री के लिए भतीजी[७] है। पौत्र के लिए नाती[८], पुत्र - सुत[९] जैसे शब्द हैं। सखा[१०], मित्र,[११] मीत,[१२] साथी,[१३]

१—वी॰ च० १०।६५

२—रा॰ चं० ३२।४३

३—के० ग्रं० ४८५।१२

४—वही, पृ० ५७७।६

५—वही, पृ० ७६।१७

६—र० प्रि० १२।३

७—के० ग्रं० पृ० १३।१२

८—क० प्रि० २।१२

९—रा० चं० ३६।१७

१०—के० ग्रं० पृ० ६६।१६

११—वही, २४।६

१२—वही, पृ० ११४।१५

१३—वही, ४७२।३६

संघाती,[१] हेतु,[२] सखि,[३] सहेली[४] आदि मित्रवाची शब्द हैं।

२-२१-१० समाज में नारी :

भारतीय संस्कृति में नारियों को महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृति के प्रतीक साहित्य में नारी के महत्व तथा प्रतिभा की स्पष्ट छाया मिलती है : इस सन्दर्भ में डा० सावित्री सिन्हा लिखती हैं कि "भारतीय इतिहास पर अंकित भारतीय नारी के अनेक रूपों का परिचय उसकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्टभूमि का एक आभास देने में सहायक होगा।"[५] वेदमहाकाव्य, महाभारत, बौद्ध तथा जैन साहित्य, धर्मशास्त्र आदि में नारी के महत्व को प्रतिपादित करने वाले अनेक तत्वों का उल्लेख किया गया है। स्त्रियों के जीवन की सीमा परिवार की साधारण दिनचर्या से परे मानसिक तथा धार्मिक नेतृत्व के क्षेत्र में भी दृष्टिगत होती है। किन्तु सिद्धान्ततः नारी को अपने आपकी रक्षा करने में असमर्थ माना जाता था। अतः वह पति, पुत्र या बन्धु-बान्धवों के हो अधीन रहने के योग्य मानी जाती थी। मनु ने भी इस बात का समर्थन किया है।[६] फिर भी स्त्रियों के सामाजिक कार्यकलापों में सक्रिय भाग लेने के बहुत उदाहरण मिलते हैं। डा० शान्ति-कुमार नानूराम के मतानुसार जीवन कहीं नीरस न बन जाए, अतः वह सामूहिक बोझों, धार्मिक समारोहों, प्रदर्शनों और क्रीड़ा-विनोद में मुक्तभाव से सम्मिलित होती थीं। सामूहिक अवसरों पर वह अपने समस्त अलकरणों में पूरी सजधज के साथ उपस्थित होकर वातावरण में उल्लास और चमक-दमक का संचार कर देती थी।[७]

केशव साहित्य में नारी के विविध रूपों का चित्रण किया गया है। हम उस नारी के स्वरूप को दो वर्गों में बाँट सकते हैं। पहले वर्ग में माता, पत्नी तथा पुत्री आते हैं जिनका सम्बन्ध परिवार से अधिक संलग्न है। इसके विषय में अन्यत्र विचार किया गया है।[८] दूसरे वर्ग में विरहिणी, विधवा, वेश्या आदि हैं जिनका सम्बन्ध परिवार से बढ़कर समाज से संलग्न है। नीचे द्वितीय वर्ग की नारी के स्वरूप और समाज में उसके स्थान के विषय में विचार किया जाता है।

१—रा० चं० ६।८ २—क० प्रि० २।२१
३—के० ग्रं० पृ० २२।१६ ४—र० प्रि० १६।५४
५—मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—
डा० सावित्री सिन्हा, प्रथम संस्करण, पृ० १२
६—पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हसि। मनुस्मृति, ६।३
७—रामायणकालीन समाज, पृ० १४८
८—द्रष्टव्य प्रस्तुत अध्ययन का यही अध्याय।

(क) विरहिणी नारी :

पति के परदेश चले जाने अथवा विधि की विडंबना से अप्रत्याशित वियोग के संप्राप्त होने पर नारी का जीवन दुखःमय हो जाता है। प्राय: काव्यों में विरहिणी नारी का हृदय विदारक चित्रण किया गया है। वाल्मीकि की सीता, व्यास की दमयन्ती, कालिदास की यक्षिणी और शकुन्तला, भवभूति की सीता, सूर की गोपियां और तुलसी की सीता आदि इसके उदाहरण हैं। परंपरा के अनुसार केशव ने भी अपनी रामचन्द्रिका में विरहिणी सीता का चित्रण किया है।

रामचन्द्रिका में रावण के द्वारा अपहृत सीता राम के वियोग में अत्यंत विह्वल हो जाती है। वह हमेशा राम का स्मरण करती थी। हनुमान ने लंका में वियोगिणी सीता को देखा कि उसके सब केश उलझ कर सिर पर जटा सी बन गयी हैं और उसकी साड़ी मैली हो गयी है। सदा दीन स्वर से राम शब्द रटती है।[१] उसको चारों ओर राक्षसियां घेरे हैं और उनके बीच में वह राहु की स्त्रियों से घिरी हुई चन्द्रकला के समान है।[२]

रसिकप्रिया में विरहिणी नायिका राधा है। किन्तु इस ग्रंथ में नायिका के वियोग का मर्मस्पर्शी चित्रण नहीं किया गया है। क्योंकि राधा-कृष्ण का वियोग ऐच्छिक है। राम और सीता के वियोग में जो स्वाभाविकता है वह राधा और कृष्ण के वियोग में नहीं है। तो भी केशव ने इस ग्रंथ में कुछ ऐसे उदाहरण दिये हैं जिनसे राधा की विरह व्यथा सूचित होती है। घूंघट के आड़ में रहने के कारण श्रीकृष्ण को देखने में होने वाले विलंब को राधा सह नहीं सकती।[३]

(ख) विधवा नारी :

पतिहीना नारी को विधवा कहते हैं। नारी का एकमात्र आधार पति ही माना जाता है। हिन्दू धर्म ने प्राचीन काल से ही विधवा नारी के लिए अनेक प्रतिबन्ध रखे हैं। वह अपशकुन का प्रतीक मानी जाती है। किसी शुभ कार्य में वह भाग नहीं ले सकती। उसके आंतरिक वासनाओं को दबाने के लिए उसके आहार व्यवहार, खानपान, पहनना-ओढ़ना आदि में शुष्कता का समावेश किया गया है। आधुनिक युग में समाज-सुधारकों ने उसके प्रति कुछ उदारता दिखायी है। किन्तु प्राचीन काल में विधवा नारी की

१—धरे एक वेणी मिली मैल सारी।
सदा राम नामै रटै दीन बानी॥ रा० चं० १३।५३

२—रा० चं० १३।५४

३—र० प्रि० १।२३

स्थिति दयनीय थी। केशव साहित्य में विधवा का तत्कालीन रूप ही दृष्टिगोचर होता है। भरत ने ननिहाल से अयोध्या में आकर देखा कि उसकी माता वृक्ष के आधार से वंचित लता के समाम जमीन पर गिरी हुई थी।[१] इसी प्रकार का वर्णन कालिदास ने रतिदेवी के संबन्ध में किया है। वनगमन के समय राम ने अपनी माता कौशल्या को विधवा धर्म का जो उपदेश दिया है उससे तत्कालीन विधवा की स्थिति का परिचय मिलता हैं। यदि नारी पति की मृत्यु के बाद जीवित रहना चाहती है तो उसे कई धर्मों का आचरण करना पड़ता है। गाने, किसी से परिहास करने, गरम चीज खाने, ठंडा पानी पीने, तेल लगाने, मीठा भोजन करने और आभरण पहनने का उसे बिल्कुल अधिकार नहीं है। पुत्र के अधीन रहना उसे अनिवार्य हैं।[२] विधवा होना स्त्री के लिए अभिशाप हैं।[३] इस प्रकार विधवा का जीवन समाज में गर्हणीय समझा जाता था।

इसके अतिरिक्त नारी के कुछ अन्य रूप भी समाज में प्राप्त होते हैं। सती प्रथा एक हृदय विदारक प्रथा थी जिसके बारे में कालिदास[४], बाण[५] आदि कवियों ने उल्लेख किया है। केशव ने भी इस सती प्रथा का उल्लेख अपने साहित्य में किया है। राम ने कौसल्या से कहा था कि पति के मर जाने पर भी स्त्री को उसको नहीं छोड़ना चाहिए। यदि किसी कारणवश उसे जीवित रहना पड़े तो कठोर नियमों का पालन करना चाहिए।[६] पति के लिए पिता को छोड़कर दक्ष-कन्या सतीदेवी आग में भस्म हो गयी और संसार में अमर कीर्ति प्राप्त कर ली।[७]

इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव साहित्य में नारी जीवन का जो समग्र चित्र उपस्थित किया गया है उससे तत्कालीन सामाजिक गति-विधि का परिचय प्राप्त होता है। विरहिणी नारी अपने पति के वियोग में विवश होकर दुःखी जीवन व्यतीत करती थी और विधवा आजीवन समाज से उपेक्षित होती थी और अनेक प्रकार की नारकीय यातनाओं का अनुभव करती थी।

२-२२ विवाह :

(क) विवाह संस्कार का संक्षिप्त पूर्वेतिहास :

विवाह व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। यह गृहस्थाश्रम की

१—रा० चं० २०।२
२—वही, ९।२८, २९
३—वही, ३९।१
४—कुमार संभव, चतुर्थ सर्ग, ४-३८
५—कादम्बरी, पूर्वार्ध।
६—रा० चं० ९।२७
७—वही, ९।२०

भित्ति और पारिवारिक जीवन की आधार शिला है। यह हिन्दू समाज में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। ऋग्वेद में वैवाहिक रीति-रिवाजों की काव्यमय अभि-व्यक्ति हो चुकी हैं।[१] उपनिषद काल में व्यक्तित्व के विकास के लिए गृहस्थाश्रम तथा विवाह की महत्ता स्वीकृत हो चुकी है।[२] मनु ने इसे स्त्री पुरुष के संबन्धों को मर्यादा में रखने वाली कल्याणकारी लौकिक प्रथा माना हैं।[3] इससे प्रतीत होता है कि स्वच्छन्द प्रेम की उच्छृंखलताओं को मर्यादित करने और गृह को सुनिश्चित रूप देने के लिए ही विवाह संस्था का जन्म हुआ है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसका जन्मदाता मनु ही है। उन्होंने पूर्व-प्रचलित प्रथा को अपनी व्यवस्था में स्थान दिया है। मनुस्मृति में ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस, पैशाच नामक आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख पाया जाता है।[४] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचारानुसार ये आठ विवाह निश्चित रूप से किसी युग में व्यवहृत होते थे, परन्तु अब उनमें अधिकांश का चलन उठ गया है।[५] मनु ने इनमें से प्रथम चार को प्रशस्त अथवा समाज द्वारा प्रशंसनीय एवं शेष चार को अप्रशस्त माना हैं। अन्तिम दो प्रकारों को वर्जित माना गया है।

प्राचीन काल से ही पवित्र तथा शुद्धतम प्रकार ब्राह्म विवाह माना जाता है। मनु के अनुसार इसमें पिता विद्वान् तथा सुशील संपन्न वर को स्वयं आमंत्रित कर दक्षिणा के साथ यथाशक्ति वस्त्राभूषणों से अलंकृत कन्या का दान करता था। आजकल भारत में हिन्दू धर्म में विवाह की यही प्रथा सर्वाधिक प्रचलित है। देव विवाह में पिता कन्या को अलंकृत करके यज्ञ में पौरोहित्य करने वाले ऋत्विज को दे देता था। बौधायन गृह्य-सूत्र के अनुसार इस विवाह में कन्या दक्षिणा के रूप में दी जाती है।[६] आर्ष विवाह वह कहलाता है जिसमें कन्या का पिता वर से यज्ञादि धर्म विहित कार्य को संपन्न करने के लिए एक अथवा दो गोमिथुन प्राप्त करता था। प्रजापत्य विवाह प्रणाणी के अनुसार वर

१—ऋग्वेद १०।५ तथा अथर्ववेद, १४।१,२

२—हिन्दू संस्कार, पृ० १६६

३—एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा। —मनुस्मृति ६।२५

४—ब्राह्मो दैवस्तथा आर्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ मनुस्मृति, ३।२०

५—विचार वितर्क, पृ० १६५

६—दक्षिणासुदीयमानास्वन्तर्वेदि ऋत्विजे स दैवः। बोधायन गृह्यसूत्र

और कन्या सहधर्म का आचरण करने की प्रतिज्ञा करते हैं।[१] आर्ष विवाह में वर कन्या तथा संबन्धियों को यथाशक्ति धन प्रदान कर स्वच्छन्दता पूर्वक उससे विवाह करता था।[२] गान्धर्व विवाह आश्वलायन गह्यसूत्र के अनुसार वह प्रकार है जिसमे पुरुष और स्त्री परस्पर निश्चय कर एक दूसरे के साथ गमन करते हैं।[3] राक्षस विवाह मनु के अनुसार वह प्रकार है जिसमें रोती पीटती हुई कन्या का, उसके संवन्धिबों को मार या क्षत-विक्षत करके बलपूर्वक हरण किया जाता है। पैशाच विवाह में वर छल कपट के द्वारा कन्या पर अधिकार प्राप्त करता है।

रामायण काल में स्वयंवर की प्रथा भी प्रचार में थी। स्वयंवर का रूढ़ार्थ, स्वयं पति का वरण करना है। डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास के अनुसार "प्राचीन भारत में स्वयंवर की दो प्रणालियां प्रचलित थीं : एक तो वह जिसमें वधू एक नियत स्थान पर इकट्ठे हुए वरों में से अपनी रुचि के पति को चुन लेती थी। दूसरी वह जिसमें पूर्व-निर्धारित शर्तों को पूरा करने वाला ही कन्या के पाणिग्रहण का अधिकारी होता है।"[४] रामायण काल में दूसरी प्रकार की प्रथा प्रचलित थी जो कोई भी वीर नियतशर्तों का भली भांति पालन कर लेता, वधू उसको वरमाला को पहनाने को बाध्य थी। रामचन्द्रिका में इस प्रथा का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। जब श्रीराम ने शिव के धनुष को तोड़ दिया तब सीता ने उसे स्वच्छ कमलों की माला पहनायी।[५] श्रीकृष्ण अपनी सखी से कहते हैं कि राधिका की माता को कोई यह बात समझावे कि वह राधिका का स्वयंवर रचे। सभी गोप कुमारों को स्वयंवर में भाग लेने का आमंत्रण वृषभानु करें। मैं उस स्वयंवर में भाग लूं और राधिका मेरे कण्ठ में जयमाला डालें।[६]

सूत्र काल में कर्मकाण्डी शास्त्रियों ने विवाह को धार्मिक संस्कार का रूप प्रदान करके उसमें अन्यान्य कुलाचारों शास्त्र विहित कृत्यों एवं मांगलिक अनुष्ठानों का समावेश कर दिया। डा० राजबली पाण्डेय ने कुछ गुह्य सूत्रों के आधार पर इस प्रकार के कार्यों

१—आश्वलायन गृह्य सूत्र १।६

२—ज्ञातिभ्यो द्रविणंदत्वा कन्यायैचैव शक्तितः।
कन्या प्रदान स्वच्छन्दादासुरोधर्मं उच्यते ॥ मनुस्मृति, ३।३१

३—आ० गृ० सू० १।६

४—रामायण कालीन समाज- पृ० ११०

५—सीताजू रघुनाथ को अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की हृदयावलि भूपाल ॥ रां० चं० ५।४६

६—र० प्रि० ८।२६

की संख्या ४० के लगभग निश्चित की है।[१] डा० हरगुलाल के अनुसार मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में विवाह संस्कार सम्बन्धी समग्र रीतियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो वे जो शास्त्र सम्मत हैं और जिनका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है जिनमें वर वधू गुण-परीक्षण, वर प्रेक्षण, वाग्दान निमन्त्रण, मण्डपकरण, वरसत्कार, वधूगृहगमन, समंजन, अग्नि प्रदक्षिण, गृहप्रवेश, स्त्रियों का यशोगान आदि मुख्य हैं। दूसरी वे जो कुलाचारक कहलाती हैं और जिनमें देशकालानुसार विभिन्नता पायी जाती है। जैसे—सगाई, टीका, लगन लिखवाकर भेजना, लड़की की गोद भरना, देवी पूजा, वर की टीका, या पालकाचार, गाली गाना आदि।"[२]

केशवदास ने अपने साहित्य में कुछ परम्परागत और कुछ देश काल सम्बन्धी प्रथाओं का उल्लेख किया है।

(ख) वर प्रेक्षण :

(विवाह सम्बन्ध के लिए वर के पिता के पास दूत भेजना जिसे "लगन" भेजना कहते हैं)

धनुष भंग होने के बाद महाराज जनक ने दूतों को अयोध्या भेजा था तथा उनसे अपने चारों पुत्रों की बारातें ले आने की प्रार्थना की थी।[३] राजा दशरथ जनक का निमन्त्रण स्वीकार करके अपने चारों पुत्रों की बारातें लेकर मिथिला पहुंचे।[४]

(ग) सीमान्त पूजन (बारात का स्वागत) :

मिथिला पहुंचने पर दशरथ का जनक ने अपूर्व स्वागत किया और बारात में आये ब्राह्मणों, राजाओं तथा वरों को वस्त्र दान दिया।[५]

(घ) विवाह मण्डप :

विवाह के यिए जहां भंवर मण्डप पड़ता है वहां मंडप तैयार किया जाता है। "हर्ष चरित्र में राज्यश्री के विवाह के समय मण्डप तैयार करने में कुछ लोग

१—हिन्दी साहित्य वृहत् इतिहास, (सं० राजबली पाण्डेय) अ० ५ पृ० १३२ तथा हिन्दू संस्कार, पृ० २६३—८५

२—मध्यकालीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ0 ३०७

३—रा० चं० ६।१,२

४—वही, ६।३,४ ५—वही, ६।५

खम्भों को अपने हाथ से खड़ा कर रहे थे। ....कुछ स्त्रियां चित्र-विचित्र फूल पत्तियों का काम बनाने में चतुर थीं।"[1] मण्डप के भीतर वेदी बनाई जाती है। यह कन्या के गृह में बनती है। मण्डप और वेदी का वैवाहिक कार्य में महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त वैवाहिक कार्य, होम, कन्यादान आदि इसी के नीचे सम्पन्न होते हैं।

राजा दशरथ के साथ बारात में आए हुए सब लोग सज-धज कर भंवरों के लिए विवाह मण्डप में गए। वह मण्डप बहुत ऊंचा और विस्तृत था। रोशनी से खूब जगमगा रहा था। ऊपर लटकाए हुए मोतियों के गुच्छे नक्षत्रों के समान प्रकाशमान थे। सुन्दर स्त्रियां मंगलगान करने लगीं। अनेक प्रकार के वाद्य बजने लगे।[2]

(ङ) वर की सज्जा :

विवाह के अवसर पर वर के वेश की प्रधान विशेषता 'मौर' या 'सेहरा' धारण करने में होती है। 'मौर' विवाह के समय में एक शिरोभूषण को कहते हैं। विवाह मण्डप में राम और सीता के अनेक आभरणों तथा 'मौर' से शोभित होने का वर्णन किया गया है।

रामचन्द्र सीता सहित, सोभित हैं तेहि ठौर।
सुवरणमय मणिमय खचित, शुभ सुन्दरसिरमौर ।।[3]

उस मण्डप में मागध, सूत, विद्याधर, चारण, सिद्ध, भरद्वाज, जाबालि, अत्रि, गौतम, कश्यप, विश्वामित्र वामदेव आदि विभिन्न प्रकार के लोग बैठे थे।[4]

(च) वंशावलि कथन :

विवाह के समय वर वधू के वंश आदि का परिचय दिया जाता है। राम के विवाह के समय पुरोहित वशिष्ठ तथा शतानन्द दोनों ने कलश की पूजा की। वशिष्ठ ने इक्ष्वाकु वंश की वंशावली तथा शतानन्द ने विदेह वंशावली का परिचय दिया।[5]

(छ) होम और विवाह :

वेद विहित सभी कृत्य संपन्न होने के बाद पति-पत्नी संतानोत्पत्ति एवं वर्णाश्रम

१—हर्ष चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ७२
२—रा० चं० ६।६ ३—वही, ६।७
४—वही, ५—रा० चं० ६।७, ८

के अनुकूल अनेकानेक कर्म करने के लिए एक दूसरे से संबद्ध हो जाते हैं।[१] पुरोहित ने समिधाओं से अग्नि जलायी तथा मंत्रोच्चारण के साथ हवन किया। राजा जनक ने बड़ी संपत्ति के साथ सीता को कन्या दान दिया।[२]

(ज) अग्नि प्रदक्षिणा :

अग्नि प्रदक्षिणा में वर वधू अग्नि के चारों ओर घूम कर जीवन भर साथ रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। जन भाषा में इसे 'भंवर'[३] अथवा 'फेरे लेना' कहा जाता है। केशव ने इस संस्कार की सूचना मात्र दी है।

भांवरि पारि जगत जस लीन्हों।[४]

(झ) न्योछावर देना या भूर बांटना :

विवाह के बाद वर और वधू के ऊपर से न्योछावर उतार कर याचकों को दी जाती है। केशवदास ने इस प्रथा का उल्लेख किया है। विवाह के बाद अनेक प्रकार के हीरे, वस्त्र, गज और अश्व दान में दिये गये।[५]

(ट) विवाह के समय के मनोरंजन :

पाणि ग्रहण संस्कार समाप्त होने के बाद राजा जनक शतानन्द के साथ राजा दशरथ के निवास स्थान पर गये। कहीं बड़े बड़े नगाड़े बजते थे, कही तोपें भयंकर शब्द करती थी, कहीं नारियां मुरली और वीणा बजाती थी। कहीं किन्नरियां सारंगी बजाती थीं, कहीं नर्तकियां नाच रही थीं। कहीं भाट विरुदावली गाते थे, कहीं मल्ल परस्पर ललकारते और मल्लयुद्ध करते थे, कहीं चंचल वेश्याएं गीत गा रहीं थी, कहीं बैल भिड़ते थे और कहीं मत्तगज लड़ते थे।[६]

(ठ) शिष्टाचार :

विवाह के समय साधारणतः शिष्टाचार को प्रधानता दी जाती है। दो भिन्न परिवारों का संबन्ध इस विवाह के सूत्र में बांधा जाता है। विवाह के समय शिष्टाचार

१—रा० चं० ६।८
२—मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक-जीवन की अभिव्यक्ति, पृ० ३१८
३—रा० चं० ६।६
४—वही, ६।६
५—वही, ६।१०
६—वही, ६।१२, १३, १४

का जो प्रभाव दोनों पक्ष वालों पर पड़ता है वही भावी संबन्ध को सुरक्षित रखता है। राजा जनक शतानन्द के साथ जब दशरथ के पास आ गये तब दशरथ ने कुछ दूर तक उनका स्वागत किया।[१] शतानन्द ने भरद्वाज, वशिष्ट, जाबालि तथा विश्वामित्र से कहा कि आप लोगों की कृपा दृष्टि से जनक का निमिवंश पावन हो गया है।[२] राजा जनक ने भी भगीरथ, हरिश्चंद्र आदि महापुरुषों के चरित्र से पावन इक्ष्वाकु वंश के संपर्क में आने के कारण अपने को धन्य माना।[३] राजा दशरथ ने भी अपनी विनयशीलता दिखाते हुए जनक से कहा कि हे राजन, हमें तो आपके समान राजा की दासी भी मिलना कठिन था तो आपने हमारे ऊपर कृपा करके त्रिभुवन सिरोमणि अपनी कन्या दी है। आपकी कन्या के कारण हमारे वंश की प्रतिष्ठा बढ़ गयी है।[४] इस प्रकार केशव ने राजा जनक तथा दशरथ के संभाषण के द्वारा शिष्टाचार का एक प्रकृष्ट चित्र खींचा है।

(ड) जेवनार :

विवाह के समय खाने-पीने को प्रधान स्थान दिया जाता है। विवाह के समय के भोज्य पदार्थों का बड़ा लंबा-चौड़ा वर्णन भारत के हर प्रांत के साहित्य में मिलता है। केशव ने इसी प्रथा का अनुसरण किया है। राम के विवाह के समय पृथ्वी के समस्त राजा लोग तथा अगणित अन्य जातियों के लोग सज धजकर भोजन करने राजा जनक के घर गये तथा अनेक प्रकार के पदार्थ खाये।[५]

(ढ) गाली गाना :

विवाह के अनेक कृत्यों पर स्त्रियों द्वारा गाली गाने की प्रथा प्रचलित है। इसमें माता के अनुचित संबन्ध की बात कहकर वर-वधू के साथ उपहास किया जाता है।[१] ससुराल की जेवनार के साथ साथ गालियां भी खाने को मिलती हैं। जब श्रीरामचन्द्र विवाह के बाद राजवर्ग के साथ खाने बैठे तब नारियां गालियां देने लगी। 'हे दूलहरामजी सुनती हैं कि तुम्हारे पिताजी परस्त्री प्रेमी हैं और एक बुरी स्त्री से संपर्क स्थापित कर लिया है। उस बुरी नारी पृथ्वी-स्त्री आज तक अनेक पुरुषों के अधीन रही। सारा संसार कहता है कि उसका व्यवहार बुरा है। वह रूपवती व नव यौवना है। उसका शरीर

१—रा० च० ६।१५ — २—वही, ६।१६

३—वही, ६।१६,२० — ४—वही, ६।२३

५—वही, ६।२६

१—मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति, डा० हरगुलाल पृ० ३२१

रत्न-जटित आभूषणों से अलंकृत है। उसका चित्त बड़ा चंचल है। शेषनाग के फनों की मणियों से जटित पलंग पर लेटकर वह सुन्दर रसीली कविता पढ़ रही है। उसे सुन्दर देखकर हिरण्याक्ष दैत्य ने हठ पूर्वक हरण कर लिया। उसे मार कर वराह ने उसे छीन लिया। राजा पृथु ने उसे अपना कर उसका सारा रस निछोड़ लिया। उसकी मृत्यु के बाद हिरण्य कस्यप ने उसे अपनाया। उसे मारकर श्रीनृसिंह ने अपनाया। फिर उसे राजा हरिश्चंद्र को दे दिया। हरिश्चंद्र ने उसे चंचल समझकर विश्वामित्र को दिया। उसने उस तपस्वी को छोड़कर बली के साथ विवाह कर लिया। बली से उसे बामन ने छीन लिया। उसे भी छोड़कर वह सहस्राजु न के पास आयी। परशुराम ने सहस्राजु न को मारकर उसे ब्राह्मणों को दिया। ब्राह्मणों ने उसे अपवित्र मानकर छोड़ दिया। उस दुष्टा नारी को तुम्हारे पिता ने अपनाया है। हम यह सोचकर लज्जित हो रही हैं कि अब उसका नाता आप से होने वाला है। इसलिए तुम सावधान होकर उसे अपने अधीन में रखो।[१]

इस प्रकार केशव ने गाली की प्रथा को अलंकृत शैली में प्रस्तुत किया है। लोक में प्रचलित गालियों के भी कुछ अलंकृत रूप मिलते हैं। उनमें प्रमुख रूप यह है कि बाह्यतः वह कुत्सार्थक प्रतीत होती है, किन्तु उसको वक्रता कुछ समझ लेने के पश्चात् वह अर्थ समाप्त हो जाता है और उचित अर्थ की प्रतिष्ठा हो जाती है। इस प्रकार की गालियां ब्रज में आजकल भी प्रचलित हैं। केशवदास की आलंकारिक प्रियता ने इसी शैली की गालियों को अपनाना श्रेयस्कर समझा है।

(ण) पलकाचार :

स्त्रियां वर को दही, अक्षत, रोली आदि का तिलक करके भेंट में जो रुपया देती हैं वह पलकाचार कहलाता है। पलकाचार में वर-वधू एक पलंग पर बैठते हैं। इस रूप में उनको देखने के लिए कन्या पक्ष के स्त्री पुरुष आते हैं। वे वर को द्रव्यादि भेंट करते हैं और उसके बदले में वर उनको नारियल या अन्य कोई शुभ प्रतीक देता है। इस प्रथा का प्रचलन आज भी है। केशव ने इसका चित्रण किया हैं। उपहास करने की प्रथा की केवल सूचना मात्र ही केशव ने की है। उन्होंने लिखा है कि इधर-उधर सुन्दर स्त्रियां आती जाती हैं। अनेक प्रकार के व्यंग्य पूर्ण हास परिहास करती हैं।[२] इस प्रसंग में उन्होंने राम के नख शिख तथा सीता के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

१—रा० चं० प्र० ६।३० से ३६ तक।
२—रा० चं० ६।४२

(त) बिदा :

विवाह के अनन्तर कन्या पिता के घर से बिदा होती है। वास्तव में यह दृश्य अत्यन्त हृदय विदारक होता है। क्योंकि जन्म से लेकर जिस वातावरण में उसका लालन पालन होता है उसे छोड़कर एकदम नये वातावरण में जाने को बाध्य हो जाती है। संस्कृत साहित्य में इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं। महाकवि कालिदास के कण्व मुनि ने अपनी धर्म-पुत्री शकुन्तला को बिदा करते समय इस प्रकार कहा कि यदि मुझ जैसे विरागी की इस समय यह दशा होती है तो गृहस्थों की क्या दशा होती होगी।[1] वस्तुतः बेटी की बिदा के समय का दृश्य बड़ा ही करुण और मर्मस्पर्शी होता है। आश्चर्य की बात यह है कि केशव ने सीता और राम के विवाह के समय इस प्रथा का उल्लेख नहीं किया। यह भी उन अनेक कारणों में से एक है जिनके आधार पर केशव को हृदयहीन कहा गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि केशव की दृष्टि केवल वर पक्ष पर ही रही, कन्या पक्ष पर उसने ध्यान नहीं दिया।

(थ) दहेज :

भारतीय विवाह की एक प्रमुख रूढि है कि कन्या के साथ-साथ भेंट में ऐसा बहुत सा सामान दिया जाता है जो गृहस्थ जीवन में उनके उपयोगी सिद्ध हो। इस सामान में धन—सम्पत्ति, मणि-रत्न, हाथी, घोड़े, दास-दासियां सभी कुछ दिया जाता है।[2] भारतीय कवियों ने विवाह के साथ-साथ दायज या दहेज का भी वर्णन किया है। केशव के जनक ने भी रामचन्द्र को बड़े बड़े मस्तहाथी, घोड़े, सुवर्ण के आभरण, हीरे-मोतियों के हार और सुन्दर वस्त्र, सेवक समूह, शामियाने, कवच, आसन, बिछौने, अस्त्र-शस्त्र, भोजन पान के प्रात्र, ऊन और रेशम के कपड़े आदि दहेज में दी।[3] वीरसिंह देव चरित में दान लोभ से कहता है कि पुत्री के विवाह के अवसर पर बहुत सा दहेज दिया जाता है। किन्तु वह धन वापस नहीं लिया जायेगा।[4]

१—यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुक्तकण्ठया।
कण्ठस्तभित बाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजड दर्शनम्।
वैक्लव्यंमम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः।
पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेष दुखैर्नवैः॥ —अभिज्ञानशाकुन्तलम्
अंक ४, छं० ८

२—अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, डा० मायाराणी टंडन, पृ० २१०

३—रा० चं० ६।६३,६४ ४—वी० दे० ८८१

विप्र,[१] द्विज[२] जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मणों की माथुर या सनाढ्य[3] शाखाओं के संकेत भी मिलते हैं। पौराणिक दृष्टि से ब्राह्मणों को कुदेव,[४] भूदेव,[५] भुवदेव,[६] भूमिदेव,[७] कहा गया है। केशव ने एक जगह पर ब्राह्मण के लिए 'पंडित'[८] शब्द का प्रयोग किया है जिससे ब्राह्मणों का अधिकांश वर्ग विद्या संपन्न होने की सूचना मिलती है। कुदेव, भूदेव और भुवदेव आदि शब्दों के द्वारा पृथ्वी पर उन्हें देवताओं के समान प्रतिष्ठा प्राप्त होने का संकेत मिलता है। द्विज शब्द का प्रयोग केशव ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए किया है। द्विज शब्द का अर्थ है दो बार जन्म लेना। उपनयन संस्कार उनके दूसरे जन्म का सूचक है। इसी संस्कार से उन्हें शूद्रों की अपेक्षा विशेष अधिकार प्राप्त होते थे। वेदों का अध्ययन, व्रत नियमों का पालन, यज्ञों का अनुष्ठान तथा दान ये ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों के अनिवार्य सामान्य कर्तव्य क्रम थे। केशवदास के समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सामाजिक कार्यकलापों और राजकीय सभाओं में भाग लेते थे। अयोध्या नगर के वर्णन के संदर्भ में केशव ने लिखा है कि वहां ब्राह्मण सब गुणों से संपन्न और शिक्षित हैं। क्षत्रिय लोग क्षत्रिय धर्म से संपन्न तथा रणकुशल हैं। वैश्य लोग सत्य सहित तथा पाप रहित व्यवहार करते हैं और शूद्रों के मन में ब्राह्मण भक्ति रहती है।[९] इससे यह भी प्रकट होता है कि अन्य वर्ण ब्राह्मणों में भक्ति भाव रखते थे। वर्ण व्यवस्था के आरंभ से ही वेदों का पठन-पाठन और तपस्या ब्राह्मणों के मुख्य कर्म रहे हैं। मनु ने तो ब्राह्मणों के अध्ययन, अध्यापन, यजन-याजन, दान और प्रतिग्रह ये षट् कर्म बताये हैं।[१] वर्णाश्रम धर्म के आदर्श का प्रतिपादन करते हुए भी सूत्रकार सामाजिक वस्तु स्थिति की उपेक्षा न कर सके। यद्यपि उन्होंने स्ववर्णानुकूल व्यवसायों को ही श्रेयकर बताया है तथापि उन्होंने तत्कालीन वास्तविकता को स्वीकृत करते हुए एक वर्ण के द्वारा अन्य वर्ण के व्यवसाय के अनुसरण का भी अनुमोदन किया है। गौतम के मतानुसार ब्राह्मण की जीविका के तीन प्रमुख साधन थे, अध्यापन, यजन और प्रतिग्रह। धर्मशास्त्रों के अनुसार यदि ब्राह्मण इन तीनों साधनों से अपने परिवार का भरण-पोषण न कर सके वह क्षत्रिय एवं वैश्य का भी व्यवसाय कर सकता था। इसी कारण कई ब्राह्मण परिस्थिति वश अध्यापन, अध्ययन और प्रतिग्रह के अतिरिक्त आजीविका के अन्य भागों

१—के० ग्र० पृ० ४६६।२२
२—वही, ४६६।२२
३—वही, ४००।४५
४—वही, १०५।३७
५—रा० चं० ३६।३१
६—वही, ३६।३१
७—वही, २१।१८
८—वही, १३।१८
९—रा० चं० १।४३
१०—अध्यापनचाध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मनः॥ मनुस्मृति, १०।७५

का भी आश्रय देते थे। राम को धनुर्विद्या की शिक्षा देने वाले सुधन्वा, परशुराम, पांडवों के अस्त्रगुरु द्रोणाचार्य, महाभारत के वीर कृप और अश्वत्थामा आदि सभी ब्राह्मण ही थे। रामायण में त्रिजट ब्राह्मण का उल्लेख किया गया है जो वैश्यों की तरह हल और खुदाली चलाकर जीविकोपार्जन करता था। केशव ने भी वैश्य वृत्ति वाले ब्राह्मण का उल्लेख किया है। किन्तु ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता जिसमें ब्राह्मणों के कृषि कर्म करने की सूचना मिलती हो। फिर भी केशव के परशुराम ब्राह्मण वृत्ति से विरत होकर क्षात्रवृत्ति में संलग्न मिलते हैं। वे श्रीराम से कहते हैं कि मेरे इस कुठार ने संसार के राजाओं के सिर काट डाले हैं और अब तुम्हारे गले का रक्त पीना चाहता है।[1] इसी प्रकार विश्वामित्र क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण वृत्ति की ओर झुके हुए थे। वशिष्ट इनके तपोबल से यज्ञों की रक्षा करते हैं और राक्षसों की बाधा दूर करते हैं।[2] केशव चारों वर्णों के पृथक पृथक कर्म मानते थे। उन्होंने लिखा है विप्र अध्ययन करता है, क्षत्रिय दुष्टों का दमन करके प्रजा की रक्षा करता है, वैश्य व्यापार करता है और शूद्र कृषि कर्म तथा गोपालन करता है :

विप्र पठथ, नरपाल प्रजनि पालत बल खल हति।
बनिजनि विविध जघन्य सूद किषि गोकुल सों रति॥[3]

ब्राह्मण अपने सदाचार के कारण समाज में आदरणीय माना जाता था। उसमें अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए कतिपय विशिष्ट गुणों का होना भी अत्यन्त आवश्यक था। 'इनमें शम, दम, तप, शौच, क्षांति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य विशेष रूप से विवेचनीय हैं।[4] वह अपने वर्ण आचरण तथा उत्तरदायित्व के कारण समाज में अन्य वर्गों से उच्चतर एवं अधिक आदरणीय समझा जाता था।

केशव साहित्य में हमें ऐसे अनेक स्थल मिलते हैं जहां केशव ने ब्राह्मणों को पूजनीय अंकित किया है। उन्होंने कविप्रिया में राणा अमरसिंह के गुणों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि अमरसिंह ब्राह्मणों के चरणों को हृदय में रखते हैं और वेदों की व्याख्या करते हैं।

द्विजपद उर धारी वेदन बखानिये।[5]

१—रा० चं० ८।३१ २—वही. २।२४
३—ज० ज० चं० १६
४—शमो दमस्तप शौचं क्षान्तिरार्जव मेवच।
ज्ञानं विज्ञान मास्तिक्यं ब्राह्मणानां स्वभावजम्॥ महाभारत, ६।४२।४२
५—क० प्रि० ११।३०

जब ब्राह्मण अपने घर आ जाता तो बाकी तीनों वर्णों के लोग अपने को धन्य मानते थे। यमुनातटवासी एक ब्राह्मण अयोध्या आये तो रामने अधिक संतुष्ट होकर कहा था—"महाराज, आपकी दया से आज हमारे सब स्थान पवित्र हो गये हैं। आपका चरणोदक पाकर हमारा राजमहल पवित्र हो गया। आपके चरण छूने से हमारा जन्म सफल हो गया। आपका रूप देखकर हमारे नेत्र पवित्र हो गये। आपके चरणकमलों के स्पर्श से हमारा मस्तक पावन हो गया। अब सुधामधुर वचन सुनाकर कर्णों को भी पावन बनाइये।"[१] वीरसिंह देव ने भी एक ब्राह्मण से कहा था कि मेरे राज्य में ब्राह्मण को दुःख नहीं मिलना चाहिए। जो आदमी ब्राह्मण को दुःख देगा उसे मैं मार डालूंगा।[२] जब परशुराम, श्री राम से युद्ध करने के लिए संनद्ध हो गये तब राम ने उनसे कहा—"हे भृगु नन्दन ! ब्राह्मणों से लड़ने कोई सूर्य वंशी संसिद्ध नहीं होगा।

विप्रन के कुल को भृगुनन्दन सूर न सूरज के कुल कोऊ।[३]

इसी सन्दर्भ में लक्ष्मण ने परशुराम से कहा—"ब्राह्मण की कृपा सबके मंगलकारी वृद्धि करती है। अतः उन्हें दण्ड देने की बात सपने में भी सोची नहीं जाती। ब्राह्मण पर अस्त्र चलाना महापाप है। किसी भी परिस्थिति में ब्राह्मण अवध्य है अतः हम तुमको नहीं मारते।"[४] भरत ने मुनि बालक के वेश में युद्ध करने आये हुए कुश से कहा था कि तुम तो मुनि बालक हो। दूसरों से यज्ञ कराना तुम्हारा काम है। यदि हम से अपराध हुए तो क्षमा करो, आशीर्वाद दो। क्रोध को छोड़कर यज्ञ के अश्व को छोड़ दो।[५] इस घोड़े के सिर पर जो पट्टिका बांधी गयी है वह केवल क्षत्रियों के लिए है। तुम बिना कारण के ही हम पर क्रुद्ध हो गये हो। हम ब्राह्मणों के सेवक हैं :

बांध्यो पट्ट जो सीस यह क्षत्रिन काज प्रकाश।
रोष कर्‌यो बिन काज तुम, हम विप्रन के दास ॥[६]

१—र० चं० ३४।३६,३७,३८
२—वी० दे० च० २६।३४
३—रा० चं० ७।३३
४— ,, ,, ७।३२
५— ,, ,, ३७।८
६— ,, ,, ३७।६

ब्राह्मण को अवध्य, आदरणीय तथा यज्ञ का अधिकारी माना जाता था। शुक्र ने बलि को ब्राह्मण भक्ति का उपदेश इस प्रकार दिया है। ब्राह्मणों की सारी शिक्षा को सुनना चाहिए। उन्हें ब्रह्म समान मानना चाहिए।[१] अहंकार को छोड़कर ब्राह्मणों की पूजा करो। पृथ्वी तल पर देवताओं के बाद ये हैं। इनके पूजन से सभी काम पूर्ण हो जाते हैं। ब्राह्मणों को पाकर दूसरे की सेवा नहीं करनी चाहिए।

छांड़िय अहं कृत विप्रनि पूजो।
भूतल में एह, देवन दूजो॥
काम सबै तेहि पूजनि पूजै।
ब्राह्मण पावहु पूज न दूजै॥[२]

इन पंक्तियों से भी यह ध्वनि निकलती है कि कुछ अहंवादी लोग ब्राह्मण के संघर्ष में आ जाते थे। इसीलिए शुक्र अहंकार छोड़कर ब्राह्मण की पूजा की बात कहते हैं।

बीरसिंहदेव चरित में भी ब्राह्मण की प्रशंसा की गयी है। ब्राह्मण आचारी हो या अनाचारी, साधु हो या असाधु वह पूजनीय होता है। क्योंकि वह संसार में विष्णु का रूप है।[३] यह जन्मना जाति व्यवस्था की रूढि है। 'रतन बावनी' में रतनसिंह ने विप्र-वेश में आये हुए भगवान से कहा था कि मैं ब्राह्मणों के चरणों को मस्तक पर धारण करके उनकी पूजा करता हूँ। विप्र पर संकट आ जाने पर मैं अपना सीस देकर रक्षा कर सकता हूं। विष्णु भगवान ने भृगु महर्षि के चरणों को अपने वक्षस्थल पर धारण कर लिया था।

विप्र चरण मम माथ सदा यह सुभ करि लिक्खिय।
विप्र हि संकट परहि तहां हम सीस सु दिज्जिय॥
त्रिभुवनपति निज हृदय भृगु सु पूरन पद पिक्खिव।

ब्राह्मण जाति भी विविध शाखों में बंटी हुई हैं: पश्चिम क्षेत्र में सनाढ्य-ब्राह्मणों का प्राधान्य है। केशव भी इसी शाखा से सम्बद्ध थे। उन्होने अपने को सनाढ्य

१—वि० गी० १६।२३

२—वही, १६।२४

३—वी० दे० च० २८।२२

ब्राह्मण घोषित किया है। उन्होंने रामचन्द्रिका में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है।[१] वे सनाढ्य ब्राह्मण का उत्कर्ष प्रदर्शित करने में अधिक उदारता दिखाते है। कई स्थानों पर अपने वंश परिचय में इस शाखा की महत्ता दिखलाई है और राम के द्वारा सम्पन्न यज्ञ के अवसर पर भी सनाढ्यों की महत्ता कही गयी है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि ब्राह्मणों की जितनी शाखायें थीं उनमें से प्रायः सभी अपने को अन्यों से ऊंचा सिद्ध करने के प्रयत्न में रहती थी।

२-२३२२ क्षत्रिय :

केशव ने राजा के अनेक पर्यायों का प्रयोग करके क्षत्रिय वर्ग से अपना निकटतम सम्बन्ध प्रदर्शित किया है। भूप,[२] नरेश,[३] राजा,[४] राउ,[५] राय,[६] भुवपाल,[७] नरिंद,[८] महीप,[९] नृप,[१०] नृपति,[११] क्षितीश,[१२] आदि। रानी[१३] या महिषी[१४] का स्थान भी उस युग में महत्वपूर्ण था। युवराज के लिए कुंवर,[१५] जुवराउ,[१६] युवराज शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों में भूप शब्द भूमि का पालन करने के अर्थ को व्यक्त करता है। नरेश शब्द के द्वारा प्रजा के शासक होने का भाव सूचित होता है। राजा शब्द का अर्थ होता है प्रजा का रंजन करनेवाला। इस प्रकार केशव ने राजा के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया है उनके द्वारा उनके भूमि के अधिपति तथा सुशासक होने का भाव प्रकट होता है।

ब्राह्मणों की तरह क्षत्रियों का भी समाज में बहुत ऊंचा स्थान था। उनके मुख्य कर्तव्य प्रजा पालन, दान, यज्ञ, अध्ययन आदि थे। राज्य शासक सेनापति और योद्धा प्रायः ये ही होते थे। ब्राह्मणों के सम्पर्क में अधिक रहने के कारण ये बड़े विद्वान

१—सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जग सिद्ध शुद्ध सुभाव।
सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध है महिमिभ पंडित राव॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध का काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारिकै जिनि जानियो मन साध॥ —रा० चं० १।४

२—के० ग्रं० ४६६।२४
३—वही, ६६।३१
४—वही, ६।१३
५—वही, ३७४।२४
६—वही, ६७।३५
७—वही, ४६८।१८
८—वही, १३२।५
९—वही, ४८६।६
१०—वही, ६६।७
११—वही, ४६५।४
१२—वही, ३६६।५५
१३—वही, १३६।१
१४—वह, १२४।४३
१५—वही, ४७३।४३
१६—वही, ४६५।२६

भी होते थे। प्राचीनकाल में राजा बनने का अधिकार एकमात्र क्षत्रिय को प्राप्त था। क्षत्रियेतर जातियों को शासन करने का अधिकार नहीं मिल सकता था। केशव साहित्य में तत्कालीन क्षत्रियों का विशद वर्णन किया गया है। केशव ने राजा दशरथ, जनक आदि पौराणिक राजाओं तथा मधुकरशाह, वीरसिंह देव, रामशाही, इन्द्रजीत सिंह, रतनसेन, इन्द्रसेन आदि समकालीन राजपूत राजाओं का उल्लेख अपने साहित्य में किया है।

देश की रक्षा व्यवस्था तथा शरणागत की रक्षा करना क्षत्रियों का प्रधान कर्तव्य माना जाता था। रामचन्द्र ने अपनी शरण में आये हुए विभीषण की रक्षा करके अपनी शरणागत-रक्षा का परिचय दिया है। गौ-ब्राह्मणों की रक्षा करना क्षत्रियों का प्रधान कर्तव्य था। देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए ये अपने प्राणों का बलिदान देने में संनद्ध थे। वीरसिंहदेव ने अपने स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए अनेक कष्टों को सहन किया था। रतनसेन ने भी अपने कर्तव्य पर स्थिर रहने का परिचय दिया है। भगवान ने प्रकट होकर रतनसेन को युद्ध विमुख करना चाहा। किन्तु वह अपने मार्ग से विचलित नहीं हुआ।[१]

२-२३२३ वैश्य :

हिन्दू वर्णव्यवस्था में तृतीय स्थान वैश्य का था। वैश्य वर्णाश्रम व्यवस्था की आर्थिक धुरी था। केशव ने वैश्य के लिए वनिक,[२] शब्द का प्रयोग किया है। जिस स्थान पर वणिक अपना माल बेचता है उसके लिए केशव ने बाजार[३] शब्द का प्रयोग किया है। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने मध्यकालीन भारत में वैश्यों के मुख्य कर्म पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, कुसीद कृषि आदि माने हैं। परन्तु जैसे-जैसे बौद्धों और जैनियों के मतानुसार कृषि करना पाप माना गया वैसे वैसे सांतवीं शती के आरम्भ में ही वैश्यों ने कृषि को नीच कर्म विचार कर छोड़ दिया।[४] वैश्यों का उल्लेख केशव-साहित्य में बहुत कम मिलता है। रामचन्द्रिका में केशव ने वैश्यों का उल्लेख किया है। वैश्यलोग अपने व्यवहार में सत्य और धर्म का व्यवहार करते थे।

वैश्य सहित सत्य रहितपाप प्रगट मानिए।[५]

१—प्रान गए फिरि फिरि मिलिहि, पतिन गये पति पाइयै। —के० ग्रं० ४६७।१२

२—वी० च० ४।१७

३— ,, ,, ,,

४—मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० ३६

५—रा० चं० १।४३

युद्ध के समय वैश्य सेना के साथ अपना माल लेकर जाते थे और व्यापार करते थे। इस का उल्लेख वीरसिंह देव चरित में केशव ने किया है :

बनिक चलत इक लादि अपार एकनि के बैठे बजार।[1]

२-२३२४ शुद्र :

शूद्र का संबन्ध श्रम और सेवा से था। मध्यकालीन भक्त कवियों ने भी उच्च वर्णों की सेवा करना शूद्रों का कर्तव्य बतलाया है। सूरदास ने गोपियों के माध्यम से कृष्ण-कुब्जा के पारस्परिक संबन्ध की अनुपयुक्तता पर विचार करते हुए तत्कालीन समाज में शूद्रों की निम्न स्थिति पर विचार किया है।[2] हिन्दू वर्ण-व्यवस्था में चारों वर्णों के पृथक पृथक कर्तव्यों का निर्णय किया गया है और इन सबके कर्तव्य निर्वाह पर ही समाज का कल्याण निर्भर माना गया है।[3]

केशव ने भी वर्ण व्यवस्था को स्वीकार किया है। इसलिए अपने समय के शूद्रों को ब्राह्मण वृत्ति का अवलंबन करते हुए देखकर भर्त्सना की है :

शूद्र ज्यों सब रहत है द्विज धर्म कर्म कराल।[4]

केशव इस वर्ण व्यत्यय का कारण कलिकाल के प्रभाव को मानते है। शूद्र तपस्या का अधिकारी नहीं माना गया है। इसीलिए राम ने शूद्र तपस्वी शंमू का वध किया था।[5]

२-२३२५ अन्याजातियां :

इन चार वर्णों के अतिरिक्त समाज में कई अन्यजातियां भी हैं जिनका केशव साहित्य में उल्लेख मिलता है।

(अ) कायस्थ :

हिन्दू वर्ण-व्यवस्था में कायस्थ का नाम प्राचीन समय से नहीं मिलता जो इस युग में विशिष्ट जाति के रूप में समाज में आ गये थे। इन का द्विज से कोई संबन्ध

१—वी० च० ४।१७
२—भोजन साथ सूद्र ब्राह्मण के तैसौ उनको साथ। सूर सागर, द० स्कंद० ३
३—स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। भ० गीता०
४—वही० गी०
५—रा० च० ३३।१५

स्थापित न हो सका था। शूद्रों में कायस्थ को एक स्वतंत्र जाति मानना ही युक्ति संगत होगा। विभिन्न स्थानों में निवास करने के कारण उसमें उपजातियां पैदा हो गयीं।[१] बजरंगलाल लोहिया के अनुसार मारवाड़ में लेखन व्यवसाय में प्रधान जाति कायस्थ है। कायस्थों की वंशोत्पत्ति तथा पदम पुराण के अनुसार यह जाति ब्रह्मा के पुत्र चित्रगुप्त की संतान है। बजरंगलाल के मतानुसार इस जाति की उत्पत्ति तथा अक्षरों का आविष्कार समकालीन है, अर्थात् इस जाति की उत्पत्ति शारीरिक परिश्रम के लिए नहीं, बल्कि बौद्धिक कार्यों के लिए हुई है।[२] केशव ने वीरसिंहदेव चरित में कायस्थों का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ में उनका उल्लेख लेखक और लिपिक के रूप में हुआ है।[३]

(आ) वंशोच्चारक :

भारत के प्रायः सभी प्रांतों में वंशोच्चारण करने का व्यवसाय करने वाली जाति पायी जाती है। केशव ने इस जाति के लिए चारण,[४] बंदी,[५] भाट,[६] बाण,[७] बैताल,[८] ठाढी[९] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इस जाति के लोगों का व्यवसाय मनोरंजन, राज प्रशस्ति गायन और राज वंश का लेखा रखना होता है। राजा जनक के बंदियों का उल्लेख रामचन्द्रिका में किया गया है।[१०]

(इ) जागरी पातुर :

छोटी ढोलकें बजाकर नाचने और गाने का पेशा करने वाली जाति का नाम जागरी है। इसके पुरुष जागरी कहलाते है और स्त्रियां पातुरें। कहा जाता है कि ये लोग पहले गहलोत राजपुत थे। जब दिल्ली के बादशाह ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया तब ये भी चित्तौड़ छोड़कर भागे। कुछ लोग जैसलमेर चले गये। वहां धन के अभाव में भूखों मरने लगे। अंत में प्राणों की रक्षा के लिए उनकी लड़कियों को वेश्या की वृत्ति के लिए विवश होना पड़ा।[११] इस जाति की विवाहिता स्त्रियाँ नाचने गाने का पेशा नहीं करती। केवल कन्यायें ऐसा करती है। केशव ने अपने साहित्य में उनका उल्लेख किया है। राजा इन्द्रजीतसिंह के दरबार में प्रवीणराय नामक एक पातुरी थी।

१—पूर्व मध्यकालीन भारत, प्रो वासुदेव उपाध्याय, पृ० ३२२
२—राजस्थान की जातियां, पृ० १२४
३—वी० च० ३१।३, ६,१
४—के० ग्रं० १७८।१६
५—वही, १६०।५७
६—वही, २५५।१३,१४
७—वही, २५५।१३. १४
८—रा० चं० २।२
९—के० ग्रं० १७०।५७
१०—रा० चं० ३।१७
११-राजस्थान की जातियां, बजरंगलाल लोहिया, पृ० १४४

वह नाचने-गाने में बड़ी निपुण थी।[१] प्रवीणराय के अतिरिक्त अन्य पातुरों का परिचय कविप्रिया के आरंभ में दिया गया है।[२]

इन जातियों के अतिरिक्त व्यवसाय के आधार पर बनी हुई अन्य जातियां भी थीं—जैसे पटुआ,[३] पटइन,[४] यह जाति आजकल आभूषणों में धागे पिरोने आदि का काम करती है। नाई त्रि-वर्ण की सेवा करता था क्षौर कर्म भी। नाई की स्त्री नाइन[५] भी घरों में सेवा के लिए जाती थी। खवास[६] इसी प्रकार की एक सेवा जाति थी। आज भी समाज में इन की यही स्थिति मिलती है। सुनार,[७] करिया,[८] मल्लाह, बंसकार,[९] डोम, बिहन,[१०] धुनिया आदि जातियों का वर्णन भी केशव में मिलता है।

उक्त स्थायी जातियों के अतिरिक्त केशव ने कुछ अन्य जातियों का नामोल्लेख किया जैसे कोल,[११] भिल्ल,[१२] शबर,[१३] बहिलिया[१४] आदि। इन जातियों का उल्लेख आखेट के प्रसंग में वन्य वातावरण को सजीव करने के लिए किया गया है।

इस प्रकार परम्परागत वर्ण-व्यवस्था और अन्य व्यावसायिक जातियों का उल्लेख करके समाज की जाति व्यवस्था का परिचय दिया है। प्रायः उन्हीं जातियों का वर्णन मिलता है जिनका सम्बन्ध राजवर्ग से था।

२-२३२ आश्रम व्यवस्था :

चतुर्वर्ण्य-व्यवस्था के समान ही चतुराश्रम व्यवस्था का भी आरम्भ वैदिकधारा से हुआ है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों के नियमित और व्यवस्थित विकास के लिए मानव की नैसर्गिक आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर भारतीय आचार्यों ने आश्रम व्यवस्था की स्थापना की है। प्राचीन आर्य-ऋषियों के अनुसार मानव जीवन अनवरत आत्मशिक्षण एवं आत्म अनुशासन का समय था। उस शिक्षण काल को उन्होंने आश्रम के नाम से कई भागों में बांट दिया था। उन्हीं पर मनुष्य के सांसारिक जीवन का ढांचा

१—क० प्रि०
२—वही,
३—के० ग्रं० ६८।१२
४—वही, ७७५।२७
५—वही, ८०।२०
६—र० प्रि० १।१२
७—के० ग्रं० १७८।१३
८—रा० चं० १५।३५
९—वी० च० ३४।२६
१०—वही, १।२६
११—के० ग्रं० १३०।१३१
१२—वही, १४४।३२
१३—क० प्रि० ७।३०
१४—के० ग्रं० १४४।३२

अवस्थित रहता था।[1] रामायण काल में जीवन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास आदि चार भागों में विभक्त हो चुका था।[2] किन्तु पौराणिक कथाओं के आधार पर रचित ग्रन्थों में उस व्यवस्था का थोड़ा उल्लेख मिलता है।

२-२३२१ ब्रह्मचर्य :

उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचर्याश्रम आरम्भ होता था। इसमें विद्यार्थी ब्रह्मचारी रहकर कठोर एवं अनुशासनमय जीवन व्यतीत करता था। गुरु की सेवा तथा शास्त्रों का अध्ययन, उसके दो प्रमुख कर्तव्य थे। अगत्स्य, भरद्वाज, वाल्मीकि आदि ऋषियों के आश्रमों में असंख्य विद्यार्थी आकर विद्याध्ययन करते थे। केशव ने इस आश्रम का उल्लेख रामचन्द्रिका में किया है। वाल्मीकि ने सीता के गर्भ से लव और कुश के जन्म होने पर जात कर्मादि सब कृत्यों को वेद विधि से किये। पहले साधारणतः सब वेद पढ़ाये, पुनः धनुर्वेद विशेष रीति से पढ़ाया और सब अस्त्र शस्त्र दिये तथा उनके चलाने के सब मंत्र सिखाये :—

जात कर्महि आदि दै सब किये वेद बखानि ॥
वेद पढ़ायो प्रथमहि धनुर्वेद सविशेष ।
अस्त्र शस्त्र दीन्हें घने दीन्हें मन्त्र अशेष ॥[3]

विश्वामित्र के तपोवन में जाकर राम और लक्ष्मण ने देखा द्विजगण मिलकर वेद का अध्ययन कर रहे हैं :

कहुँ द्विजगण मिलि सुरव श्रुति पढहीं ।[4]

२-२३२२ गृहस्थाश्रम :

चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। आज भी इस आश्रम की महत्ता स्वीकार की जाती है। वाल्मीकि ने भी इसी बात का समर्थन किया है।[5] रामायण और महाभारत में गृहस्थाश्रम की बड़ी प्रशस्ति की गयी है। वैयक्तिक तथा सामाजिक सभी प्रकार के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में गृहस्थाश्रम ही सबसे अधिक

१—रामायण कालीन समाज, शान्ति कुमार नानूराम व्यास, पृ० ९१

२—वाल्मीकि रामायण- २।१०७।६२

३—रा० चं० ३४।५६,५७

४—वही, ३।२

५—चतुर्णामाश्रमाणांहि गार्हस्थ्यंश्रेष्ठमुत्तमम् । —रामायण, २।१०६।२२

सहायक है। केशवदास ने राजा दशरथ के परिवार के आदर्श पिता, आदर्श-माता, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्शमित्र आदि कितने ही आदर्शों को अपने काव्य में स्थान दिया है। गृहस्थाश्रम विवाह से प्रारम्भ होता है। केशव ने सीता और राम के विवाह के वर्णन के द्वारा इस आश्रम का सूत्रपात किया है। पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न होना गृहस्थाश्रम की अन्तिम परिणति हैं। रामराज्य का वर्णन करते समय केशव ने उल्लेख किया है कि अयोध्या के सभी निवासी पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न हैं और सभी पुत्र पौत्र माता-पिता के परम भक्त हैं।[१] राजा जनक भी गृहस्थाश्रम के धर्मों के निर्वहण में रत दीख पड़ते हैं। उन्होंने सीता और राम के विवाह के समय अतिथियों की जो सेवा की है वह उल्लेखनीय है।

२-२३२३ वानप्रस्थाश्रम :

भारतीय दृष्टि से गृहस्थाश्रम सांसारिक सम्बन्धों की स्थापना और उनके निर्वहण का आश्रम है। इसके पश्चात् मनुष्य धीरे-धीरे संसार से विरक्त होना चाहता है। इस विरक्ति का प्रथम सोपान त्याग है। वह अपनी गृहस्थी का भार पुत्र या उत्तराधिकारी को सौंपकर संसार से विरक्त होना चाहता है।

केशव साहित्य में इस आश्रम का भी उल्लेख किया गया है। राजा दशरथ ने राम को राज्य भार सौंपकर शान्त जीवन व्यतीत करना चाहा। उन्होंने विशिष्ठ से मंत्रणा करके राज्य सिंहासन राम को देने का निश्चय किया।[२]

उपनिषदों और आरण्यकों में वानप्रस्थाश्रम का गौरव गान प्राप्त होता है। इस आश्रम में पत्नी या तो पुत्रों के संरक्षण में घर पर ही रहती है अथवा पति के साथ बन गमन करती है। रामचन्द्रिका में अत्रि और अगस्त्य के अपनी पत्नियों के साथ ही बन में वानप्रस्थाश्रम के निर्वहण करने का उल्लेख केशव ने किया है। जब श्री रामचन्द्र बन में मुनियों से मिलते हैं तब वे अगस्त्य और अत्रि मुनियों से भी मिलते हैं। अगस्त्य श्रीरामचन्द्र के आगमन से बहुत प्रसन्न हुए और अपनी पत्नी के साथ उनका बड़ा स्वागत किया और आतिथ्य से उन्हें संतुष्ट किया।[३] इसी प्रकार श्रीराम ने अत्रि के आश्रम में प्रवेश किया और अत्रि तथा अनुसूया से आतिथ्य पाया। अनुसूया ने सीता को अपने अमूल्य उपदेश दिये और सम्मान के साथ उन्हें बिदा किया।[४]

१—रा० चं० २८।५

२—रा० चं० २।५

३—वही, १२।१०

४—वही, २२।३,४

२-२३२४ सन्यासाश्रम :

आश्रम व्यवस्था में अंतिम आश्रम सन्यास आश्रम है। केशव ने इस आश्रम का उल्लेख अपने साहित्य में किया है। सीता को अपहरण करने के लिए रावण सन्यासी का वेश धारण कर आया था।[1] केशव ने रावण को 'भिक्षु' के रूप में चित्रण किया है। रामायण काल में भी सन्यासी शब्द का प्रयोग न होकर भिक्षु और परिव्राजक नाम आये हैं। डा० शान्तिकुमार नानूराम व्याम के अनुसार रामायण कालीन परिव्राजक या सन्यासी का परिचय पाने के यिए हमें रावण का उस समय का वर्णन देखना चाहिए जब वह इस रूप में सीता के सम्मुख उपस्थित होता है :

'श्लक्ष्ण काषाय संवीतः शिखी छत्री उपानही ।
वामेचांशेऽव सज्याथ शुभे यष्टि कमण्डलम् ॥'

अर्थात् वह शरीर पर साफ सुथरा गेरुए रंग का वस्त्र लपेटे हुए थे, उसके मस्तक पर शिखा, हाथ में छाता और पैरों में जूते थे तथा उसके बांये कंधे पर डंडा था और उसमें कमंडलु लटका रखा था।[2]

आर्य विषयों के द्वारा आयोजित यह आश्रम व्यवस्था उनकी वर्ण-व्यवस्था की ही पूरक है। वर्णव्यवस्था समाज में रहने वाले मनुष्य से संबद्ध है तो आश्रम व्यवस्था आदमी को एक इकाई के रूप में देखती है। इसी वर्णाश्रम के आधार पर हमारा प्राचीन भारत, संस्कृति के उन्नत शिखर पर था। किन्तु अनेक राजनैतिक परिस्थितियों के कारण यह व्यवस्था शिथिल होने लगी और केशव के युग तक उसका स्वरूप ही बदल गया। वर्ण व्यवस्था तो केशव के समय शिथिल अवस्था में जीवित रही। किन्तु आश्रम व्यवस्था अपने अस्तित्व को खो चुकी थी। केवल रूढि का निर्वाह मात्र साहित्य में अवशिष्ट था।

२-३ शिक्षा : शिक्षा संस्थाएं और स्वरूप :

२-३० शिक्षा का उद्देश्य :

कर्तव्य और अकर्तव्य, उचित और अनुचित, पाप और पुण्य आदि के ज्ञान के द्वारा मानव जीवन को पवित्र तथा आदर्श बनाना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है : 'असतो मा सद्गमय' उपनिषद वाक्य को सार्थक बनाना ही शिक्षा का चरम आदर्श है। सच्चा

१—वही, १२।२६
२—रामायणकालीन समाज, पृ० ६४

मनुष्य वही कहा जाता है जो न केवल युद्ध क्षेत्र में अपनी वीरता दिखाकर शस्त्रों द्वारा विजय प्राप्त करता है, अपितु जीवन संग्राम में भी शास्त्र ज्ञान के सहारे विजयी सिद्ध होता है। संसार में पशु जगत से मानव को पृथकता का प्रदान करने वाला साधन ज्ञान ही है और उस ज्ञान से विहीन मानव पशु तुल्य माना जाता है।[1] इस ज्ञान की प्राप्ति शिक्षा के द्वारा ही संपन्न होती है। प्राचीन काल में शिक्षा का उद्देश्य केवल पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करना नहीं था अपितु व्यक्ति का पूर्ण विकास करना तथा मस्तिष्क की शक्ति को विकसित करना था। डा० ए० यस० अल्टेकर के शब्दों में शिक्षा का उद्देश्य इस प्रकार है। 'चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, प्राचीन संस्कृति की रक्षा, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में उदीयमान संतति का परिस्थिति के अनुसार शैक्षण शिक्षा के प्रधान उद्देश्य थे :'[2] केशव साहित्य में जिन आदर्श पात्रों का चित्रण किया है, उनके द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि वे अवश्य शिक्षक थे। केशव के साहित्य में राजा दशरथ, जनक, राम, वीरसिंहदेव तथा जहांगीर का चित्रण आदर्श तथा शिक्षित राजाओं के रूप में किया गया है।

रामचन्द्रिका में अयोध्या पुरी का वर्णन करते हुए कवि केशव ने लिखा है कि वहां विद्वान, कविगण, सब कलाओं के जानकार, निपुण शिल्पकार, और वीर क्षत्रिय हैं।[3] राजा जनक की प्रशंसा करते हुए विश्वामित्र ने राम से कहा कि उन्होंने वेद के छः, राज्य के सात और योग के आठ अंगों से उत्पन्न बुद्धि द्वारा तीनों लोकों का सुख प्राप्त कर लिया है। इनमें वेदत्रयी तथा राज्यश्री का परिपूर्ण योग हो गया है :

अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरन ता सुभ योग भई है॥[4]

राम तो साक्षात् परब्रह्म थे। वे सर्वज्ञ तथा सर्व व्यापी थे। ब्रह्मा ने उनकी प्रशंसा करते

१—आहार निद्रा सुखमैथुनंच सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणम्।
ज्ञानंहि तेषा मधिको बिशेषः ज्ञानेन हीनाः पशुभिस्समानाः॥

२—Formation of character, building up of personality preservation of ancient culture and training of the rising generation in the performance of social and religious duties were the main aims of education,
Dr. A. S, Altekar : Education in Ancient India.

३—कविकुल विद्याधर सकलकलाधर राजराजवर वेश बने। रा० चं० १।४२

४—रा० चं० ५।१६

हुए कहा कि हे राम, तुम अनादि, अनंत, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ हो।[१] उनके शास्त्र तथा शस्त्र के गुरु विश्वामित्र थे। उनके द्वारा राम और लक्ष्मण को वेद की शिक्षा, अनेक दिव्यास्त्र तथा उन्हें चलाने का ज्ञान प्राप्त हो गया था। उन्होंने उन दोनों को बला और अतिबला विद्याएं पढ़ायीं जिनके प्रभाव से लोभ, मोह, नींद, भूख प्यास आदि नष्ट हो गये।[२] वीरसिंह देव को तुलना केशव ने नल, हरिश्चंद्र, भगीरथ, दशरथ, पृथु, अर्जुन आदि पौराणिक राजाओं के साथ करके उनके विद्या संपन्न होने का उल्लेख किया है।[3] जहांगीर विद्वान, कवि-पंडितों को आश्रय देने वाला तथा षट्दर्शनों का सम्मान करने वाला था।[४]

२-३१ शिक्षा संस्थाएं :

नगर के कोलाहल से शून्य तथा प्रशान्त वातावरण से सम्पन्न ऋषियों के आश्रम ही शिक्षा के केन्द्र थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसकी महत्ता बतलाते हुए कहते हैं कि भारतवर्ष में सबसे आश्चर्यजनक बात ध्यान देने की यह है कि यहां शहर नहीं बन सर्वोत्कृष्ट संस्कृति का जन्मदाता है।[५] वाल्मीकि, कण्व, वशिष्ट, च्यवन आदि ऐसे ही ऋषि थे जो उदासीन होते हुए भी शिक्षा दान में रत रहते थे।

केशव साहित्य में नगरों के वर्णन में कहीं भी शिक्षा की संस्थाओं का उल्लेख नहीं हुआ है। आश्रमों के वर्णन के सन्दर्भ में विश्वामित्र, भरद्वाज व वाल्मीकि के आश्रमों को हम मुख्य मान सकते हैं जिनमें विद्यार्थियों के अध्ययन का उल्लेख मिलता है।

२-३२ विश्वामित्र का आश्रम तथा शिक्षा :

पहले ही कहा गया है कि राम और लक्ष्मण को वेद-विद्या तथा धनुर्विद्या की शिक्षा विश्वामित्र के द्वारा आश्रम में दी गयी है। राम और लक्ष्मण ने देखा कि विश्वामित्र के तपोवन में कहीं द्विजगण मिलकर वेद का अध्ययन कर रहा है :

कहुँ द्विजगण मिलि सुख श्रुति पठहीं।[६]

१—रा० चं० २७।१
२—वही, २।२८
३—वी० च० २८।२७,२९
४—के० ग्रं० ३२१।६४
५—A most wonderful thing we notice in India is that here the forest, not the town, is foundation, head of all its civilization.
Glimpse of Education in Ancient India. Page No. 62-63
६—रा० चं० ३।२

उस आश्रम में रहनेवालों के लिए विचारने योग्य केवल ब्रह्म ही है और पूजने योग्य देवता ही हैं :

विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिये ।[१]

यहां प्रतिदिन साधुकथा ही कही जाती है और कोई वार्ता नहीं।

"साधुकथा कहिए दिन केसनदास जहां ।"[२]

२-३३ भरद्वाज मुनि का आश्रम तथा शिक्षा :

भरद्वाज मुनि के आश्रम के वर्णन में केशव ने वैदिक, यौगिक, पौराणिक आदि शिक्षाओं का उल्लेख किया है।

कहुँ योग शिक्षा, कहूं वेद चर्चा ।[3]

कहीं साधु लोग पुराण पठन कर रहे हैं, कहीं यज्ञ की शाला बनायी जा रही है, कहीं होम मन्त्रों का उच्चारण किया जा रहा है और कहीं मुनि लोग बैठ कर ब्रह्म-विद्या पर विचार कर रहे हैं।[४]

२-३४ वाल्मीकि का आश्रम तथा शिक्षा :

लव और कुश का जन्म वाल्मीकि मुनि के आश्रम में ही हुआ। उनके जन्म के बाद वाल्मीकि ने वेद के अनुसार जातकर्मादि सब संस्कार किये। उसके पश्चात् उन्होंने सब वेद पढ़ाये। पुन: धनुर्वेद, विशेष रीति से पढ़ाया। तब सब अस्त्र शस्त्र दिये और उन्हें चलाने के सब मन्त्र पढ़ाये :

वेद पढ़ायो प्रथमहि धनुर्वेद सविशेष ।
अस्त्र शस्त्र दीन्हें घने दीन्हें मन्त्र अशेष ।।

२-३५ मन्दिर और शिक्षा :

प्राचीन काल में धार्मिक मठों और मन्दिरों में शिक्षा दी जाती थी। बौद्धों के मठ और विहार शिक्षा के केन्द्र थे। इनके अनुसरण पर हिन्दुओं के देवालयों में भी शिक्षा

१—रा० चं० ३।३ २—रा० चं० ३।४
३—वही, २०।३६ ४—वही, २०।३७

दी जाने लगी। केशव ने वीरसिंहदेव चरित में चतुर्भुजदास के मन्दिर में विद्याध्ययन का उल्लेख किया है। अनेक ब्राह्मणों के बालक वेदों का पाठ कर रहे थे। वे सभी सनत्-कुमार की भांति लग रहे थे।[१] पंडित लोग छः दर्शनों पर विचार करते हैं। कुछ लोग गाते बजाते हैं मानो गंधर्व और किन्नर लोग नृत्य कर रहे हैं।[२]

२-३६ राजाओं के प्रासाद और शिक्षा :

केशव ने अयोध्या, मिथिला, लंका, जहांगीरपुर, ओडछा इत्यादि नगरों के वर्णन के संदर्भ में राजप्रसादों में शिक्षा केन्द्रों का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु शिक्षा संबन्धी शब्दों की सूचना के द्वारा इनकी ओर संकेत मात्र दिया है। अयोध्या नगर के संदर्भ में श्लेषालंकार के आधार पर केशव ने उसकी तुलना देवपुरी से की है। इस प्रसंग में कविकुल विद्याधर, सकलकलाधर, बुधजन, गुरुजन आदि शब्दों का प्रयोग किया है।[३] राजा दशरथ तथा राम सर्वशास्त्र वेत्ता थे। उनकी सभा में वशिष्ट[४], भरद्वाज, अत्रि, विश्वामित्र, वामदेव[५], कश्यप[६] आदि विद्वान तथा दिव्यज्ञान संपन्न महर्षि रहते थे। मिथिला के राजा जनक स्वयं ब्रह्म ज्ञान संपन्न थे। उनकी सभा में अनेक मुनि, महर्षि और पंडित आध्यात्मिक चिन्तन करते रहते थे। शतानन्द महान पंडित थे। वे राजा जनक के गुरु तथा पुरोहित थे। उनकी सभा से भी भरद्वाज, जाबालि आदि महर्षियों का संपर्क होता था।[७] रावण भी स्वयं शास्त्र ज्ञान संपन्न था। उसने अपने मत्रियों के सामने पुराणों के नीति वचनों का उल्लेख किया था।[८] उसका मत्री महोदर भी शुक्र नीति का पारंगत था।[९] वीरसिंह देव चरित में जहांगीरपुर की सभा के वर्णन में केशव ने कवियों की उपस्थिति का उल्लेख किया है। इस बात का निर्णय करने के लिए कि दान और लोभ इन दोनों में कौन बड़ा है, वीरसिंह देव ने मित्र, मंत्री तथा कवियों की सम्मति मांगी थी।[१०] ओडछा नगर की राज सभा के वर्णन में केशव ने लिखा है कि स्वयं इन्द्रजीतसिंह रसज्ञ थे तथा उसकी सभा में रहने वाली प्रवीणराय कविता करती थी :

सविताजू कविता दई ता कहं परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया कीन्हीं केशवदास॥

१—वी० च० १६।२८
२—वही,
३—रा० चं० १।४२
४—वही, २।२३
५—वही, २३।४,५
६—वही, ३५।३
७—वही, ६।१६
८—वही, १५:१
९—वही, १७।१७।२०
१०—वही, २८।१८

२-३७ नारी तथा शिक्षा :

केशव के साहित्य में स्त्री शिक्षा की ओर संकेत मिलता है। सीता मंदोदरी, शिखिध्वज की पत्नी चूडाला तथा प्रवीनराय के शिक्षित होने की बात का केशव ने उल्लेख किया है। केशव की सीता राम नामांकित मुद्रिका को पहचानती है और उस पर लिखे नाम को भी पढ़ लेती है। इससे सीता की साक्षरता सिद्ध होती है।[१] केशव ने मंदोदरी को एक नीति कुशल नारी के रूप में चित्रित किया है। इससे यह प्रकट होता है कि वह व्यावहारिक नीति का ही कथन करती है। उससे उसकी उच्च शिक्षा सिद्ध नहीं होती। मालव देश के राजा शिखिध्वज की पत्नी का नाम चूडाला था। उसने अपने बाल्यकाल में मुनि कन्यकाओं के साथ रहकर प्राणायाम की विधि सीखी थी।[२] विवाह के अनंतर उसने अपने पति को आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया था। जिसके कारण शिखिध्वज ने सांसारिक बंधनों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। प्रवीणराय पातुर केशव की शिष्या थी। वह शिक्षिता तथा कवियित्री थी। केशव ने उसकी प्रशंसा में लिखा है कि वह नाचने गाने और पढ़ने में बहुत निपुण थी। उसने नृत्य, संगीत तथा काव्य शास्त्र की विधिवत शिक्षा ली थी :

नाचति गावति पठति सब सबै बजावति बीन।
तिन में करति कवित्त इक रायप्रवीन प्रवीन ॥[३]

'पठति' शब्द से उसकी अध्ययन रुचि का भी परिचय मिलता है।

२-३८ शिक्षा का विषय :

केशव-साहित्य में शिक्षा के जिस विषय का उल्लेख किया गया है वह केवल वेद, वेदांग, वेदान्त, योग, षट् दर्शन, पुराण, राजनीति, अर्थशास्त्र, अस्त्र शस्त्र विद्या आदि से संबन्ध रखता है। उस समय जो व्यक्ति जिस शिक्षा के योग्य माना जाता था उसी को उसे पढ़ाया जाता था। ब्राह्मणों के लिए वेद विद्या तथा क्षत्रियों के लिए वेद विद्या के साथ साथ राजनीति, दण्डनीति, धनुर्विद्या आदि की शिक्षा दी जाती थी। अयोध्या पुरी में

१—रा० चं० १३।७८

२—वि० गी० १६।६

३—क० प्रि० १।५६

जहां तहां ब्राह्मण वेद पाठ कर रहे थे।[1] विश्वामित्र के आश्रम में पठनीय विषय वेद ही था।

पाठ्यमान वेद वै।[2]

भरद्वाज के आश्रम में कहीं योग की शिक्षा दी जाती थी और कहीं वेदों की चर्चा चल रही थी।[3] क्षत्रियों को ब्रह्मविद्या तथा शस्त्र विद्या दोनों की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। राजा जनक ने वेद विद्या तथा राजनीति आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। वे वेद, वेदांग, राज्यांग, योगांग आदि के बड़े विद्वान थे।[4] राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र ने शस्त्र तथा शास्त्र विद्या दी थी।[5] वशिष्ठ ने राम को प्रबोध अर्थात् जीवोद्धार की शिक्षा प्रदान की थी।[6] कश्यप ने राम को यज्ञ का विधि-विधान बताया था।[7] वाल्मीकि ने लव और कुश को वेद विद्या तथा धनुर्विद्या की शिक्षा दी थी।[8] राम ने अपने पुत्रों तथा भतीजों को राजनीति का उपदेश दिया था।[9] दान ने वीरसिंह देव को राजनीति तथा राजधर्म का उपदेश दिया था।[10] चूडाला ने अपने पति को आत्मदर्शन का उपदेश दिया था।[11] युद्ध के समय महोदर ने रावण को राजनीति की शिक्षा दी थी। उसने शुक्र नीति को आधार मानकर राजाओं तथा मन्त्रियों का विभाजन किया था।[12] इससे प्रकट होता है कि रावण की सभा में राजनीतिज्ञ रहते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे राजनीति का उपदेश देते थे। इनमें महोदर का नाम उल्लेखनीय है।

केशव ने व्याकरण शास्त्र का उल्लेख भी किया है। रामराज्य में सारी प्रजा सुखी है। कोई भी किसी की वृत्ति का हरण नहीं करता। केवल व्याकरण पढ़ते समय विद्यार्थीगण सूत्र के अर्थ को लेते हैं।[13] इसी प्रकार वीरसिंहदेव चरित में भी केशव ने व्याकरण शास्त्र की विशेषता का उल्लेख किया है। वीरसिंहदेव की सभा में उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकार के सभासद हैं। इन उत्तम, मध्यम तथा अधमों का संयोग इस प्रकार दिखायी देता है कि मानों व्याकरण के प्रयोग हो—

१—रा० चं० १।४१
२—वही, ३।३
३—वही, २०।३६
४—वही, २।२८
५—वही, २१।२
६—वही, २५।३०
७—वही, ३५।३
८—वही, ३६।५७
९—वही, ३६।२९ से ३६ तक
१०—वी० च० २६।८ से ३१।१०३ तक
११—वी० गो० १६।११ से ११७ तक
१२—रा० चं० १७।२०
१३—व्याकरणै द्विज वृत्तिन हरै। —रा० चं० २८।१६

उत्तम मध्यम अधम संयोग मनो विविध व्याकरण प्रयोग ।[1]

केशव साहित्य से प्राप्त शिक्षा सम्बन्धी संकेतों के विश्लेषण से तत्कालीन शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। केवल भारत की प्राचीन पद्धति, पाठ्यक्रम एवं आश्रम शिक्षा का परिचय मिलता है। इन सूचनाओं का आधार पुराण है। शिक्षा सम्बन्धी विवरण रूढ़ और परम्परागत है। कुछ अप्रस्तुत रूप में व्याकरण आदि की भी सूचना मिलती है। केशव की शिक्षा सम्भवतः पुराण शिक्षा प्रणाली से ही हुई होगी। उनको जिस पाठ्यक्रम का अध्ययन करना होगा वह वैविध्य-पूर्ण रहा। उसी क्रम के उल्लेख यत्र-तत्र केशव साहित्य में मिल जाते हैं :

२-४ शासन व्यवस्था :

भारत में राज्य व्यवस्था का विकास छोटे राज्यों से गणराज्य और गणराज्य से महान राष्ट्र के रूप में क्रमशः हुआ है। उनमें अन्तिम व्यवस्था चक्रवर्ती राजा होती थी। अश्वमेध, राजसूय आदि चक्रवर्ती राज्य व्यवस्था के वैदिक प्रतीक हैं। पौराणिक रूप से यह प्रतीक केशव की रामचन्द्रिका में उपलब्ध है। केशव के काल में इस व्यवस्था का होना सम्भव ही नहीं था। फिर भी एक केन्द्रीय राज्य व्यवस्था मुगल शाहंशाह को केन्द्र मानकर स्थापित हुई थी। उसके अधीन छोटे-छोटे राज्य थे। प्रजा को इस प्रकार के दुहरे शासन में रहना पड़ता था। इसको रीतिकालीन कुछ कवियों ने "दुराज" शब्द से प्रकट किया है।[2]

केशव के तत्कालीन शासन प्रणाली का बड़ा व्यापक विवरण प्रस्तुत किया है। सुविधा की दृष्टि से हम उसे निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त कर सकते हैं : राजनीति, राजधर्म, आदर्श राजा, दूत राजदरबार, राजा प्रजा, मन्त्री आदि प्रधानाधिकारी, तथा दण्ड व्यवस्था और न्याय।

केशव साहित्य में चित्रित शासन प्रणाली को हम दो विभागों में बांट सकते हैं : परम्परागत आदर्श शासन प्रणाली जिसका उल्लेख रामचन्द्रिका में किया गया है और केशव के समकालीन शासन प्रणाली जो उनके अन्य ग्रन्थों में उल्लिखित है। यद्यपि दोनों

१—वी० च० २१।११

२—दुसह दुराज प्रजानि को क्यों न बढ़ै दुःख द्वन्द ।
अधिक अँधेरो, जग करै, मिलि मावस रविचन्द ।। —बिहारी
एक राज मह प्रगट जहं, द्वै प्रभु केशवदास ।
तहां बसत हैं रैन दिन मूरतिवंत विनास ।। रा० चं० १०।२३

प्रणालियों में बहुत कुछ समानता परिलक्षित होती है, तो भी यत्र-तत्र विभिन्नता भी मिलती है। इस विषय को दृष्टि में रखकर ही केशव साहित्य में उल्लिखित शासन-प्रणाली पर नीचे विचार किया गया है।

२-४१ राजनीति :

प्राचीनकाल में राजा का पद पैतृक अधिकार समझा जाता था। रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में इसके उदाहरण मिलते हैं। इक्ष्वाकु वंश की वंशावली से ज्ञात होता है कि राम से कई पीढ़ियों पहले और बाद भी राज पद आनुवंशिक था। नये राजा की नियुक्ति के लिए सभा की अनुमति आवश्यक होती थी। जब राजा वृद्ध हो जाता था तब वह अपने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज के पद पर नियुक्त करके वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार कर लेता था। किन्तु राजा अपने पुत्र को युवराज के पद पर नियुक्त करने के पहले उसके गुण और शील की परीक्षा कर लेता था। राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम को युवराज बनाने के पहले अपने पुरोहित और मंत्री वशिष्ठ से मन्त्रणा की थी। वही राजा उत्तम कहलाता था जो शस्त्र और शास्त्र विषयों में निपुण होता था और अपने सौशील्य के कारण प्रजा के आदर का पात्र होता था। जनता के गुणों का विकास करना और आपदाओं से उसकी रक्षा करना और धर्म से किसी को विमुख न होने देना राजा का प्रथम कर्तव्य माना जाता था। राज्य के इन्हीं कर्तव्यों को राजनीति नाम से शास्त्रकारों ने अभिहित किया था।

केशव साहित्य में उल्लिखित राजनीति को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) प्रसंग संबद्ध की गयी (२) स्वयं स्वीकृत तथा (३) व्यवहार से व्यंजित।

जहां राजा अपने मन्त्री, पुरोहित, परिवार के अन्य लोग तथा मित्र आदि सभासदों से मन्त्रणा करके किसी प्रधान राजनैतिक समस्या का परिष्कार खोज निकालता है, वहां प्रसंग संबद्ध राजनीति मानी जाती है। केशव साहित्य में इस प्रकार के प्रसंग प्रधान रूप से चार स्थलों पर आये हैं। पहला प्रसंग तब आता है जब विभीषण राम की शरण में आता है। शरणागत विभीषण पर राम को सन्देह होता है। उस समय वे सुग्रीव,हनुमान, नल, नील आदि अपने हितैषियों से परामर्श कर लेते हैं। इस बात पर सभा में गम्भीर आलोचना की गयी। जाम्बवन्त ने कहा कि विभीषण पर विश्वास करना ठीक नहीं। क्योंकि यदि यह सच्चा है तो उसी समय हम से क्यों नहीं मिला जब रावण सीता को लंका ले गया था। नल ने गूढ़ चारियों को भेजकर उसका सही पता लगाने का परामर्श किया। नील ने अपनी सम्मति दी कि शरणागत कुलघातक ही क्यों न हो उसे

शरण देनी चाहिए। हनुमान ने उसे रामचन्द्र के भक्त के रूप में प्रकट किया।[१] इस प्रकार सभी सभासदों के परामर्शों के बाद ही विभीषण को राम ने शरण दी थी।

केशव ने अपनी रामचन्द्रिका में राजाओं के चार भेदों पर विचार किया है। महोदर उसे राजनीति की शिक्षा देता है। इस सन्दर्भ में महोदर द्वारा दी गयी शिक्षा पर शुक्रनीति का प्रभाव लक्षित होता है। स्वयं केशव ने भी स्वीकार कर कहा है—

कह्यौ शुक्राचार्य सु हौं कहौं जू।[२]

शुक्रनीति में शुक्राचार्य ने राजा के सात्विक, राजस और तामस तीन भेद किये हैं। परन्तु केशवदेव ने इस सूत्र का आधार लेकर चौदह प्रकार के राजाओं की कल्पना की है। केशव के अनुसार राजा चार प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के राजा केवल ऐहिक सुख को ही सर्वस्व समझकर उसकी साधना करना जानते हैं जैसे—बलि, वेणु। दूसरे प्रकार के राजा केवल आमुष्मिक को ही सब कुछ मानकर साधना करते हैं जैसे हरिश्चन्द्र। तीसरे प्रकार के राजा वे हैं जो दोनों लोकों को समप्राधान्य देते हैं जैसे विदेह राजा जनक। चौथे प्रकार के राजा वे हैं जो हठी होकर दोनों लोकों को नष्ट करते हैं जैसे राजा त्रिशंकु।[३] यहां राजाओं के वर्गीकरण में पहले तीनों की गणना शुक्राचार्य के सात्विक, राजस और तामस के अन्तर्गत होती है। किन्तु हठी त्रिशंकु की गणना चौथे वर्ग में करके केशव ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। यद्यपि यह भी तामस वर्ग के अन्तर्गत आ सकता है। राजाओं के वर्गीकरण में केशव ने शुक्रनीति से केवल भाव को ग्रहण किया है। उदाहरण तो उनके मौलिक हैं। केशव ने लिखा है कि—

चहुं राज को मैं कह्यौ तुम सो राज चरित्र।
रचै सुकीजै चित्तमें चितहु मित्र अमित्र ॥[४]

इस में चतुर्विध राजाओं के उल्लेख के साथ साथ एक महत्वपूर्ण नीति कथन भी है कि राजा को एक प्रकार से मित्र और अमित्र का विवेक होना चाहिए। अन्यथा वह और उसका राज्य संकट में पड़ सकते हैं। इसी प्रकार केशव ने चार प्रकार

१—रा० चं० १५।१७ से २२ तक

२—वही, १७।२०

३—रा० चं० १७।२१।२२

४—वही, १७।२३

के मन्त्रियों का भी उल्लेख किया है। इस वर्गीकरण में भी वे शुक्राचार्य से ही प्रभावित है, यद्यपि उदाहरण उनके निजी हैं। उन्होंने लिखा है—

चारि भांति मंत्री कहै चारि भांति के मंत्र ।
मोहि सुनायो, सुक्रजू सोधि साधि सवुतन्त्र ॥[1]

इस प्रकार का उपदेश देने के बाद महोदर ने रावण से कहा था कि देश और काल का सम्यक विचार करके युद्ध का आरम्भ कीजिए। मन्त्री, मित्र अथवा शत्रु की अच्छी सम्मति को ग्रहण करना कुशल राजनीतिज्ञ का लक्षण है।

किसी भी परिस्थिति में राजा को दुराग्रह करना उचित नहीं है। दुराग्रही का विवेक नष्ट हो जाता है और उसकी उन्नति में बाधा पड़ जाती है। केशव ने स्वयं राव भूपाल को समझाया था कि हठ करने वालों का धैर्य नष्ट हो जाता है। हठ के कारण ही रावण का नाश, कंस की मृत्यु तथा दुर्योधन का सर्वनाश हो गया था। यदि मन्त्री दुष्ट हो और राजा हठी हो तो निश्चित ही उस राज्य का विनाश होगा।[2] शत्रु के हाथ में पराजित होना तथा उसे दुर्बल समझकर छोड़ देना कुशल राजा का काम नहीं है। शत्रु और अग्नि को तुच्छ समझने पर अत्यधिक दुख होता है। इस नीति का वर्णन वेद पुराण और सभी धर्म शास्त्रों में किया गया है।[3]

२-४१ कूटनीति सम्बन्धी व्यवहार से व्यंजित :

युद्ध आरम्भ होने के पहले राजा अपने दूतों को शत्रुओं के पास संधि प्रस्ताव के लिये भेजते थे। इस सन्धि प्रस्ताव का मुख्य कारण अनावश्यक युद्धों से प्रजा की रक्षा करना ही होता था। किन्तु विपक्षी राजा कभी कभी दूत को

१—रा० चं० १७।२४

२—वि०गी० ११।४७,४८

३—शत्रु को अरु अग्नि को रन बंच अवशेष ।
होइ दीरग दुदादायक तुच्छ कै जानि लेषु ॥
नीति भाषृत वेद है, नृप धर्म शास्त्र पुराण ।
हौ निवेदन ताहि के हिय विश्व जानि सुजान ॥ —वि० गी० १२।२०

अपनी कूटनीति द्वारा अपने पक्ष में मिलाने की चेष्टा करते थे। राम-रावण युद्ध के पहले अंगद राम का दूत बनकर लंका गया और रावण से कहा तुम सीता को राम के हाथों समर्पित करो और उनसे क्षमा मांगो। नहीं तो तुम्हारी सारी लंका नष्ट हो जायेगी।[1] किन्तु रावण ने अंगद को प्रलोभन दिया कि राम उसके पितृ घातक है। अतः उसे मारकर उसे पितृ ऋण से मुक्त होना चाहिए।[2] जो पुत्र प्रकट रूप से पिता के विरोधी से बदला नहीं लेता उसे लोग जीवन-मृत समझते है।[3] यदि वह उसके पक्ष में आ जाता है तो उसे किष्किन्धा का राजा भी बनायेगा। किन्तु अंगद राम भक्त होने के कारण उसके प्रलोभन में नहीं आया।

वास्तव में केशव ने राम रावण युद्ध में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। उन्होंने इस युद्ध का वर्णन परब्रह्म राम तथा दानव राजा रावण के मध्य युद्ध की दृष्टि से नहीं किया है, बल्कि यह वीरों का युद्ध है जो शूर-वीर होने के साथ कूटनीतिज्ञ राजा भी हैं। रावण अपनी विशाल वाहिनी के नाश के बाद राम के पास सन्धि का संदेश देकर एक दूत को भेजता है।[4] परन्तु यह सन्धि सन्धि के लिए न होकर रावण की कूट नीति की परिचायक है। रावण मन्दोदरी से स्वयं स्वीकार करता है उसने राम के पास सन्धि का सन्देश भेज कर उसके साथ छल किया था। उसने कहा कि मैंने दूत भेजकर छल से राम से परशुराम का आयुध परशु लेना चाहा था। यदि मुझे वह मिल जाता तो मैं राम को ही नहीं विष्णु को भी मार डालता और लक्ष्मी को पकड़कर तेरी दासी बना डालता।[5]

वीरसिंह देव चरित में भी केशव ने राजनीति पर प्रकाश डाला है। ओडछा नरेश वीरसिंहदेव तथा अकबर में निरन्तर युद्ध होते रहे। उधर अकबर और उसके पुत्र सलीम में कलह हो गया था। वीरसिंह देव ने इस गृह कलह से लाभ उठाना चाहा। उसने सलीम से मैत्री करली और उसके शत्रु अबुलफजल

१—३—रा० चं० १७।६

२—वही, १६।१५

३—जो सुत अपने बाप को वैर न लेइ प्रकाश।
तासौं जीवतहि मरयो लोग कहैं तजि आस। —रा० चं० १६।१७

४—१—रा० चं० १६।१४

५—छलकरि पठयो तो पावतो जो कुठारे।
रघुपति बपुरा को धाव तो सिन्धु पारै॥
हति सुर हरि पति भर्ता विष्णु माया बिलासी।
सुनहि सुमुखि तोको ल्यावतो लक्ष्मी दासी॥ रा० चं० १६।२३

को मार कर उसे प्रसन्न किया। अकबर की मृत्यु के बाद जब सलीम जहांगीर के नाम से सिंहासन पर बैंठा तब वीरसिंह को सारे बुन्देलखण्ड का राजा बनाया।[१] इस प्रकार वीरसिंह देव के व्यवहार से व्यंजित होता है कि वे एक कुशल राजनीतिज्ञ थे।

इन मुख्य भेदों के अतिरिक्त और एक भेद का उल्लेख केशव ने किया है और वह है उपदेशात्मक। पुत्रों तथा भातृ पुत्रों में राज्य का विभाजन करने के पश्चात राम उनको राजनीति की शिक्षा देते है। उस शिक्षा में भी केशव शुक्र-नीति से प्रभावित है। राम ने कहा था असत्य न बोलना, मूर्खों से मित्रता न करना और दत्त वस्तु को फिर वापस नहीं लेना चाहिए। बिना कारण के प्रजा को नहीं सताना चाहिए। उसका पुत्रवत् पालन करना अपना धर्म समझना चाहिए। परधन को विष के समान समझना और पर स्त्री को माता के समान देखना राजनीति का लक्षण है। संसार में वही राजा सफल शासक बन सकता है जो क्रमश: अपने राज्य सहित तेरह राज्यों की सुव्यवस्था कर लेता है। समीपस्थ राजा से शत्रुता रखने वाला और उस राज्य से आगे वाले राज्य के राजा से मैत्री करने वाला और उससे भी आगे वाले राजा से उदासीन भाव रखने वाला एक उत्तम शासक बन सकता हैं।[२]

२-४३ राजधर्म

प्राचीन भारत में नृपतन्त्र का प्रचार था। राजा वन्शानुगत होता था तथा पूर्व परम्परा को मानता रहा। समय के अनुसार राजा की प्रतिष्ठा, शक्ति तथा अधिकार में अन्तर होता रहा। परन्तु उन परिस्थितियों में राजा का सबसे बड़ा कर्तव्य यह था कि वह अपनी प्रजा को आन्तरिक अशान्ति और बाहरी शत्रु के आक्रमण से रक्षा करे। प्रो० वासदेव उपाध्याय के अनुसार राजा के ऊपर सारी प्रजा की सुरक्षा का भार था। इतना नहीं राजा को वर्णाश्रम धर्म पालक भी कहा

१—सकल बुन्देलखण्ड है जितो तुमको में दीनो हैं तितौ। वी० च० ६।३४

२—रा० चं० ३६।२६ से ३५ तक

गया है। उसका यह भी कर्तव्य था कि प्रजाजन को अपनी विभिन्न जाति में रहकर कार्य करने में नियोजित करें। पालवन्शी राजा धर्मपाल लेखों में वर्णाश्रम धर्म-पालक तथा धर्म में प्रजा का नियोजक बतलाया गया है । शासक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्रों में प्रजा के कल्याण का निरीक्षक था।[१] शिक्षा दीक्षा, मन्त्रियों पुरोहितों तथा गुरुजनों का नियन्त्रण, धर्मनिष्ठा, परलोक में यातना पाने का भय राजाओं को मर्यादा में रहने को प्रेरित करते थे। जो राजा अपने धर्म का पालन करता था, वह भगवान का अंश माना जाता था।

केशव के साहित्य में अनेक स्थलों पर राजधर्म का उल्लेख किया गया है। राजा दशरथ का उल्लेख करते हुए केशव ने उनकी तुलना निर्मल सूर्य से की है। सूर्य के समान वे भी प्रजा को सुख देते थे :

छनदानप्रिय किधौ सूरज अमल है।[२]

शत्रुरूपी अग्नि के शान्त हो जाने पर भी उनका प्रकाश प्रतिक्षण बढ़ जाता था।[३]

प्रजाकृत पाप राजा को भी लगता है। अतः सदैव उसकी ओर जागरूक रहना राजा का धर्म है। जो राजा प्रजा को अच्छे रास्ते पर नहीं ले जा सकता उसे नरक भोगना पड़ेगा।[४] राजा को चाहिए कि वह चारों पदार्थों का क्रम से साधन करें। सबसे पहले वह धर्म का साधन करे। उसके पश्चात् अर्थोपार्जन करे। फिर सन्तान के लिए स्त्री सुख का भोग करे और सन्तान हो जाने पर वह दिन रात तन-मन से मुक्ति साधना में लीन हो जाय।[५] युद्ध करना राजा के लिए अवश्यंभावी रहता है। क्योंकि वह युद्ध उसके लिए स्वर्ग का द्वार बना रहता है। अतः राजा का धर्म है कि वह युद्ध से विमुख

१—पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ० १०२

२—रा० चं० २।१०

३—यद्यपि ईंधन जरि गए अरि गन केशवदास ।
तदापि प्रतापानल के पल पल बढ़त प्रकास ॥ रा० २।११

४—वी० च० पृ० १७३

५—धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत संतनि हित रति कोविद गावत ।
सतति उपजत ही निसि वासर साधन तन मन मुक्ति महीचर ॥ के० ग्रं० पृ०३२५, छं ७

न हो जाये। युद्ध भूमि में मारे जाने पर उसे स्वर्ग का भोग मिलता है।[१] केशव ने राज धर्म का वर्णन रामचन्द्रिका की अपेक्षा वीरसिंह देव चरित में अधिक विस्तृत रूप से किया है। बीसवां तथा इक्कीसवां दोनों प्रकाश राज धर्म वर्णन को समर्पित हैं। केशव के अनुसार राजा को सत्यवादी, वीर तथा धर्मात्मा होना चाहिए। शूर वीर होने से सब उसका भय मानेंगे। सत्यवादी होने के कारण सब उसका विश्वास करेंगे और दानी होने के कारण सारा संसार उसकी कीर्ति गायेगा।[२] राजा का धर्म है कि वह सदैव अपनी प्रजा का पालन करे और अपराधी को दण्ड की भी व्यवस्था करे।[३] राजा का यह कर्तव्य है कि वह धन तथा धर्म का संग्रह और उसकी रक्षा करे। धन का व्यय धर्मार्थ ही करना चाहिए। धन से राज्य की वृद्धि होती है और सब काम सफल हो जाते हैं।[४] राजा को चाहिए कि वह उचित स्थानों पर अधिकारियों की नियुक्ति करे। अधिकारी को शूर, पवित्रात्मा और राज भक्त होना अनिवार्य है।[५] राजा का धर्म है कि वह मन्त्री और मित्रों के दोषों की ओर ध्यान न दे। उसे मूर्ख को मन्त्री, मित्र समासद, पुरोहित, वैद्य, ज्योतिषी, लेखक, दूत, प्रतीहार और धर्माधिकारी न बनाना चाहिये। अपनी मन्त्रणा को गुप्त रखना और मद्यपान का निषेध करना चाहिए।[६] धन और धर्म का संग्रह करना और उसकी रक्षा करना उसका कर्तव्य है। धन का व्यय धार्मिक कार्यों में ही करना चाहिए। धन से राज्य की समृद्धि होती है और सब काम सफल हो जाते हैं।[७] दूसरे राज्यों की विजय से प्राप्त हाथी, घोड़े, धन आदि को ब्राह्मण, भाई, पुत्र तथा मित्रों में बांट देना राजा के लिए अनिवार्य है।[८] अपनी प्रजा के सुख समृद्धि का ध्यान रखते हुए राज्य में

१—राजा सनमुख तनु तजै करै स्वर्ग में भोग।
दुनिया में यश विस्तरै हसै न जग के लोग ॥ —र० बा० ५२

२—राज चाहयै सांचौ सोर। सत्य सुसक्ल धर्म कौ मोर ॥
जो सूरौ तौ सर्व डराइ। सांचेकौ सबु जग पतयाइ ॥
सांची सूरौ दाता होइ। जग में सुजन जपै सब कोइ ॥ —वी० च० पृ० १६४

३— —वही, पृ० १६४ ४—वही, पृ० १६६

५—वही, पृ० १६७ ६—वही, पृ० १६३

७—उपजावै धन धर्म प्रकार ताकौ रक्षा करै अपार।
धनु बहु भांति बढावै राज, धन बाढै सबही कौ काज ॥
ताकौ खरचै धर्म निमित्त प्रतिदिन दीजै विप्रनि मित्त ॥ —वी० च० पृ० १६६

८—देस देस राजनि को जीति हय, गज, धन लै आनहि कीर्ति।
कीरति पठवै सागर पार धन संतोष विप्र अपार ॥
विप्र न दै ऊबरे जो नित्त सोदर सुत पावै अरु मित्त। —वही, पृ० १६७

उद्यानवन, जलाशय आदि का निर्माण करना, तथा फल, फूल औषधि एवं प्रजा के लिए अस्त्र शस्त्र, अन्न–वस्त्र आदि का समुचित प्रबन्ध करना राजा का धर्म है। राज्य का समाचार जानने के लिए चारों दिशाओं में दूतों को भेजना और उनसे रात्रि में अकेले में समाचार पूछना चाहिए। एक समय में एक ही दूत को बुलाना चाहिए और वह शस्त्रहीन तथा स्वयं राजा सशस्त्र हो।[1] राजा को चाहिए कि वह सज्जन अधिकारी को उन्नत पदवी और दुर्जन अधिकारी को दण्ड दे।[2] दुस्साहसी, चोर, भटमार और ठग आदि से प्रजा की रक्षा करना और प्रजा में पाप वृद्धि को रोकने के लिए धर्म दण्ड की व्यवस्था करना राजा का धर्म है।[3] प्रत्येक कुमार्गगामी राजा द्वारा दण्डनीय है। दण्ड देते समय राजा को किसी प्रकार के सम्बन्ध तथा गोत्र का विचार नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण, माता, पिता और गुरु को दण्ड देना अनुचित है। रोगी, दीन, अनाथ तथा अतिथि के अपराध करने पर उन्हें मृत्यु दण्ड न देकर, उन्हें देश से निर्वासित कर देना राजनीति के अनुकूल है। मचला, कपटी, दास, भिक्षुक ऋणी, धरोहर रखने वाला, भाई, शिष्य और परस्त्रीगामी आदि के अपराध करने पर उन्हें समझाना-बुझाना और यदि वे अपने अपराध से लज्जित हो जाएं तो उन्हें मृत्यु दण्ड नहीं देना चाहिए।[4] राजा को निम्नलिखित दोषों से बचना परम आवश्यक है। कामी, वाममार्गी, मिथ्यावादी, क्रोधी, कोढ़ी, कुलद्रोही, दुष्ट, भीरु, कृतघ्नी, मित्र द्रोही, द्विज द्रोही, पुरुषार्थहीन, अयोग्य, क्लेश प्रिय, क्रूर, कुटिल, कुमन्त्री, कुलहीन, पापी, लोभी, अन्ध विक्षिप्त, बधिर, मूक, बौना, अविवेकी हठी, कपटी, निर्मोही, सूम, सर्वभक्षी, देववादी, कटुभाषी और मूर्ख होना राजा के लिए शोभा जनक नहीं हैं। विज्ञान गीता में भी केशव ने राजधर्म द्वारा 'विवेक' को उपदेश दिलाते हुए राजा के मुख्य गुण-धर्मों का संक्षेप में उल्लेख किया है। वे इस प्रकार हैं—दान, बुद्धि, शक्ति और सत्य से प्रजा का पालन करना राजधर्म है। दण्डनीति सभी कालों में राजा को जन्म सिद्ध अधिकार है। विद्वान को दान

१—चारि दूत पठवै दस दिसा आयौ दूतनि पूछै निसा।
राजा तिनकी बात सब सुनै अकेलौ जाय।
आपु हथ्यारी निहथौ एकै दूत बुलाय ॥ —वी च० पृ० १६६

२—वी० च० १७०

३—साहसीन ते रच्छा करै चोर चार भटमारनि हरै।
अन्यायी ठग निकट निवारि सबतें राजहि प्रजा विचारि ॥ —वही, पृ० १०६

४—मचला ठगबाज बहुमान्ति चेरे चेरी सेवक जाति।
भिक्षुक ऋणिया भातीदार अपराधो अधिकारी ज्वार ॥
जे सुख सोदर शिष्य अपार प्रजा चोर अरु रत परदार।
ये सिख देत मरै जो लाज हत्या तिनकी नाहिं न राज॥ वी० च० १६३

देना, अज्ञानी को अपने भय से वश में करना, अज्ञानी और दानी व्यक्ति के प्रति दया दिखाना, धरनी, धन, धर्म, सत्य, शील और सन्तान के प्रति सदैव जानकारी रखना, युद्ध में वीरता दिखाना सभी के अपराधों को समान मानकर उन्हें समुचित दण्ड देना राजा का धर्म है।[१]

२-४४ आदर्शराजा :

सामाजिक विकास की किसी भी आरम्भिक स्थिति में राजा की मान्यता हुई उसके साथ विशेष अधिकार और कर्तव्य संलग्न हुए। उसके पथ प्रदर्शन के लिये नैतिक साहित्य भी लिखा गया और मंत्रणा देने के लिए मन्त्री की भी स्वीकृति हुई। एक शब्द में यदि कहा जाय तो राजा का कर्तव्य प्रजा का हित और उसकी रक्षा ही कहा जायगा। राजा की संस्था में विभिन्न विकास और संशोधन समय समय पर होते रहे। आदर्श राजाओंके विवरण परम्परा में भी प्राप्त है और उद्धत राजाओं के भी। राजा को प्रबन्ध काव्यों में नायक का स्थान प्राप्त हुआ।

केशव के युग तक राज संस्था पर्याप्त विकृत हो चुकी थी। फिर भी यह संस्था चल रही थी। उसकाल में केन्द्रीय शक्ति का संचालक बादशाह था। उससे संघर्ष करते हुए कुछ राजा भी थे। इनको केशव साहित्य में स्थान मिला है। वीरसिंहदेव चरित में एक स्वतन्त्र चेता राजा का चरित्र मिलता है। इसके अतिरिक्त दशरथ, राम और जनक का भी वर्णन हुआ है जो परम्परा से आदर्श राजा के रूप में पुराण प्रसिद्ध हैं। इनके विवरण में तत्कालीन छायाएं भी समाविष्ट हो गयी हैं। इन रूपों पर आगे कुछ विचार किया गया है।

२-४५ राजा दशरथ :

अयोध्या के राजा दशरथ आदर्श राजा के रूप में चित्रित हैं। रामचन्द्रिका के आरम्भ में विश्वामित्र द्वारा अयोध्या की समृद्धि का जो चित्र देखा गया है उससे स्पष्ट होता है कि उनके शासन काल में सभी सुख सम्पन्न थे। दशरथ में क्षात्र तेज मूर्तिमान था। वे तपस्वी तथा ज्ञानी लोगों का बड़ा आदर करते थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि विश्वामित्र आये हैं तो वे तुरन्त सिंहासन से उठकर दौड़े और उनके चरणों का स्पर्श किया था। वे विश्वामित्र को बड़े आदर के साथ उसी प्रकार अपने भवन के अन्दर ले

१—वि० गी० ६।२३-२७

गये जैसे इन्द्र ब्रहस्पति को ले जाते हैं।[1] इससे प्रकट होता है क्षत्रिय राजा के कर्तव्यों में गिन लिया था। दशरथ महान दाता हैं। जब विश्वमित्र ने उनसे कहा कि एक वस्तु मांगने मैं तुम्हारे पास आया हूं।[2] तब उन्होंने कहा कि मेरा सब कुछ आपका ही है। आप जो कुछ चाहें उसे मांग लीजिये।[3] सीता राम के विवाह के समय राजा जनक ने दशरथ की बड़ी प्रशंसा की थी। उन्होंने कहा था कि दशरथ के वन्श में भगीरथ, हरिश्चन्द्र आदि महान राजा हुये थे और स्वयं दशरथ ने भी अनेक राक्षसों को मारकर इन्द्र की मदद की थी। देवलोक तक उनकी कीर्ति पहुंच गयी थी।[4] दशरथ सत्यवादी थे। अपनी सत्यवादिता की रक्षा के लिए उन्होंने कैंकेयी की बात मानकर अपने प्यारे पुत्र राम को वन भेजा था। राम के वनवास की बात सुनकर अपने प्राणों का त्याग किया। किन्तु अपने वचन दान का निराकरण नहीं किया। दशरथ के चरित्र के द्वारा केशव ने आदर्श राजा के तीन गुणों पर बल दिया हैं : ब्राह्मण पूजा, दनवीरता और सत्यवादिता।

२-४६ राजा राम :

राम के व्यक्तित्व की दो स्थितियां हैं : एक राजा बनने से पूर्व की और दूसरे उसके पश्चात् की। राजा बनने के पूर्व की स्थिति में वे राजकुमार हैं और इस रूप में उनका शील, उनका चरित्र, उनकी गुरु भक्ति, पितृ भक्ति, वीरता, वैदिक संस्कृति की रक्षा की भावना आदि सभी गुणों का वर्णन है। राज्याभिषेक के पश्चात उनका चरित्र आदर्श राजा का रूप ही उपस्थिति करता है। रामचन्द्रिका के राम बाल्यकाल से ही वीर और सत्यवादी हैं। स्त्री, ब्राह्मण, गाय और शिशु को मारना भारतीय राजधर्म के विरूद्ध है। इसी कारण उन्होंने ताडका को मारने में संकोच किया था।[5] किन्तु विश्वामित्र के द्वारा जब उन्हें पता लगा कि वह ताडका ब्राह्मणों को सताती है तब उन्होंने उसे मार डाला।[6] राम ने विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा में जो वीरता दिखायी, वह बहुत प्रशंसनीय है। राम ब्राह्मणों तथा गुरूजनों का बड़ा आदर करते थे। जनकपुरी में जब सतानन्द, राजा जनक और ब्राह्मणों के साथ विश्वामित्र के पास आये तब राम और लक्ष्मण दोनों ने उनको साष्टांग प्रणाम किया था और उनसे आशीर्वाद प्राप्तकर लिया था। राम

१—उठि दौरे नृपसुनत ही जाय गहे तब पाइ।
लै आये भीतर भवन ज्यों सुरगुरु सुर राइ॥ —रा० चं० २।८

२—रा० चं० २।१३ ३—वही, २।१४

४—वही, ६।११।२०

५—रा० चं० ३।५ ६—वही, ३।६—१०

अलौकिक शक्ति सम्पन्न हैं। जिस शिव-धनु को बड़े बड़े वीर तोड़ने में असफल रहे उसे राम ने क्षण भर में तोड़ डाला। राम को अभिमानी राजा के रूप में केशव ने उल्लेख किया है। जब परशुराम ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा तब उन्होंने अपने क्षात्र तेज का परिचय दिया था। राम बड़े पितृभक्त हैं। वे अपने पिता की आज्ञा मानकर बन गये थे। वे बड़े धर्मवेत्ता थे। बनगमन के समय उन्होंने अपनी माता को विधवा धर्म का उपदेश दिया था।[१] राम ने रावण को मारकर अपनी अखण्ड शक्ति का परिचय दियाथा और तीनों लोकों को सुख पहुंचाया था।

राज्य सिंहासन पर बैठते ही राजा का अभिमान बढ़ जाता है। इस बात से राम अच्छी तरह परिचित थे। इसी कारण उन्होंने राज्य सिंहासन पर बैठने से इन्कार कर दिया। उन्होंने अगस्त्य से कहा था कि राज्यश्री बड़ी चंचल होती है। वह धर्म, वीरता, नम्रता, सत्य, शील, आचार, वेद और पुराणों के सुन्दर विचारों को कुछ भी नहीं समझती।[२] इससे स्पष्ट होता है कि राम राज्याधिकार में आसक्त नहीं थे।

केशव ने रामराज्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि उस राज्य में सभी जन चिरंजीवी हैं, संयोगी हैं, नीरोग हैं और सभी एकपत्नी व्रती हैं। वे सभी भोगों का अनुभव करते हैं और सभी धर्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी तथा धार्मिक हैं।[३] केशव ने राम के चौगान खेल का वर्णन करके तत्कालीन राज रुचि का परिचय दिया है।[४] ललित कलाओं में राम की अभिरुचि है। राम नृत्य, संगीत, आदि कलाओं के रसज्ञ के रूप में वर्णित हैं। राम जनमत का भी आदर करते हैं। इसी कारण उन्होंने दूत के मुख से जब सीता का अपवाद सुना तब उन्होंने सती सीता का परित्याग कर दिया।[५] सीता निर्वासन के पश्चात् अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया गया। इससे राजा की चक्रवर्ती होने की सम्भावना और महत्वाकांक्षा ध्वनित हैं। साथ ही एक सांस्कृतिक परम्परा का संरक्षण भी इससे प्रकट होता है। राम ने प्रधान रूप से सीता निर्वासन से उत्पन्न पाप भीति से अश्वमेध यज्ञ किया था।[६] रामने अपने पुत्रों और भतीजों को राज्य भार सौंपते समय जो उपदेश दिया है उससे प्रकट होता है कि बड़े कुशल राजनीतिज्ञ तथा अच्छे शासक हैं। इसी

१—रा० चं० ९।१८,१९,२०,२१

२—धर्म वीरता विनयता सत्यशील आचार।
राजश्री न गनै कछु वेद पुरान विचार॥ —रा० चं० २३।२२

३—वही, २८।४

४—वही, २९।१—११

५—वही, ३३।४५

६—३५।२ (वही)

कारण उनके राज्य में प्रजा बड़ी सुखी थी। रामराज्य आज भी हमारा आदर्श बन गया है।

२-४७ राजा जनक :

प्राचीन आदर्श राजाओं में जनक का स्थान भी अन्यतम है। एक ओर तो वे एक कुशल शासक के रूप में चित्रित किये गये हैं तो दूसरी ओर आध्यात्मिक दृष्टि से विदेह के रूप में। यदि राजासीय शक्ति तथा आध्यात्मिक शक्ति का मिश्रण हो जाय तो आदर्श राजा बन ही जाएगा। भारतीय साहित्य में जनक की उसी रूप मेंस्थापना है। केशव ने उनकी उन दोनों शक्तियों का परिचय राम को दिया।[१]

२-४८ राजा वीरसिंह देव :

वीरसिंह देव चरित में केशव की दृष्टि राजा के रूप में उनका चित्रण करने की उतनी नहीं है जितनी कि एक राष्ट्रीय नेता और स्वतन्त्रता प्रेमी के रूप में करने की। फिर भी राजा के रूप में उनकी अस्फुट झांकियां मिल जाती हैं। वीरसिंह देव ओडछा के राजा थे। वे बड़े वीर थे। उन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट उठाकर अपने राज्य को स्वतन्त्र रखा। अकबर की विशाल सैनिक शक्ति के सामने लड़ना आसान नहीं था। इसलिए उन्होंने सलीम से मैत्री कर ली। वीरसिंह देव खूब सोच समझकर काम करने वाले थे। सलीम ने जब उन्हें अबुलफजल का वध करने का आदेश दिया तब उन्होंने उनसे कहा कि अबुल फजल आपका सेवक हैं। उसे मारना उचित नहीं हैं। बिना सोचे विचारे काम करना ठीक नहीं। काम करने के पहले अच्छे प्रकार से विचार कर लेना चाहिए।[२] इसी प्रकार की राजनीति का उल्लेख संस्कृत में भारवी ने किया है।[3] एक प्रकार से यह राजा की कुशल कूटनीति ही इस प्रकरण में प्रकट हुई। वीरसिंहदेव इस कथन के द्वारा सम्भवतः यह निश्चय कर लेना चाहते थे कि सलीम के निश्चय में कितनी दृढ़ता है। अन्ततः उन्होंने अबुलफजल का वध कर डाला और उसका सिर सलीम को सोंप दिया। सिहासन पर बैठते ही सलीम ने वीरसिंह देव को सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का राजा बनाया। इस प्रकार वीरसिंह देव की कूटनीति सफल हुई। वीरसिंह देव एक आदर्श

१—रा० चं० ५।२६

२—सहसा कछु न कीजई। कीजै सब विचार।
सहसा करै ते घटि परै। अरु आवै जग गारि॥ —वी० च० ५।८

३—सहसा विददीत न क्रियाम अविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुतेहि विमृश्य कारिणं गुणलब्धाः स्वयमेव संपदः॥ —किरातार्जुनीय

राजा था। उन्होंने रामचन्द्र के समान ही राज्यलक्ष्मी की निन्दा की थी।[1] और प्रजा का कल्याण मन में रख कर शासन किया था। उनकी धार्मिक बुद्धि पर दान और लोभ बहुत प्रसन्न हुए और उनका आशीर्वाद किया। इस कारण वीरसिंह का नाम भी आदर्श राजाओं में गिना जाता है। इस सबके द्वारा केशव यह प्रकट करना चाहते हैं कि धर्म-निरपेक्ष वीरता विशृंखल हो जाती है और धर्म से नियन्त्रित वीरता राजा की एक विशेष उपलब्धि है।

केशव ने राजाओं के चित्रण के द्वारा अपने राजनीति सम्बन्धी ज्ञान और कूट-नीतिज्ञता का ही परिचय विशेष दिया है। पौराणिक आदर्श राजाओं का रूढ चित्रण केशव ने किया है। किन्तु उसके साथ तत्कालीन राज रुचियों और राजकीय कला-विलासों का परिचय भी दिया हैं। जहां तक केशव के समकालीन राजाओं का प्रश्न है उनके सम्बन्ध में भी केशव ने प्रधान राजनैतिक आदर्शों का कथन किया है। फिर भी कुछ कालोचित यथार्थ वर्णन भी मिल गये हैं।

२-४१ राजदरबार :

शासन सम्बन्धी विषयों पर मन्त्रणा करने तथा साहित्य, संगीत आदि कला-विलास के लिए राज दरबार लगता था। सभा के सदस्य सरकारी और गैर सरकारी दोनों होते थे। राज सभा या राज दरबार की यह प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। केशव साहित्य में दशरथ, राम, जनक, रावण, वीरसिंहदेव और जहांगीर के दरबारों का सुरुचिपूर्ण वर्णन मिलता है। इन वर्णनों से यह भी प्रतीत होता है कि वर्णनों की रूढ़ियों में इस रूढ़ि की लोकप्रियता अधिक थी।

सभा के अधिवेशन में बाहर से विशिष्ट व्यक्तियों को आमन्त्रित करने की प्रथा का वर्णन केशव ने अपने साहित्य में किया है। अयोध्या नगर के वर्णन सन्दर्भ में केशव ने लिखा हैं कि राजा दशरथ की सभा में देश-देश के राजा सुन्दर राजसी आडम्बर से बैठे शोभित होते थे। यह बात नहीं जान पड़ती थी कि उस सभा का आदि कौन था और अन्त कौन।[2] उस सभा में सातों द्वीपों के राजा बैठे विराजमान थे। उनके मध्य राजा दशरथ देवेन्द्र के समान शोभा दे रहे थे।[3] राजा दशरथ की सभा देख कर योगी

१—वी० च० २१।१७-४२

२—देश देश के नरेश शोभि जै सबै सुवेस ॥
जानिये न आदि अन्त । कौन दास कौन सन्त ॥ —रा० चं० २।५

३—सोभित बैठे तेहि सभा । सात द्वीप के भूप ॥
तहं राजा दशरथ लसै । देव देव अनुरूप ॥ —रा० चं० ५।८

भी मोहित होते थे। वह सभा देव सभा से भी बढ़कर थी।[१] यह एक चक्रवर्ती राजा के दरबार का चित्र है जिसमें अधीनस्थ राजाओं की स्थिति बतायी गयी है। सब की बराबरी का भाव भी व्यंजित है और प्रस्तुत विधान से यह स्पष्ट होता है कि राज-दरबार का सांस्कृतिक स्रोत देवलोक की पौराणिक कल्पना के साथ संबद्ध है।

राजा जनक की राजसभा का उल्लेख सीता के स्वयंवर के सन्दर्भ में किया गया है। स्वयंवर के समय अनेक देशों से राजकुमार आकर उस सभा में बैठे थे। वह सभा देव सभा के समान प्रकाशमान थी।[२] जनक की राज सभा में सीता राम के विवाह के समय नाच गान होने का वर्णन भी किया गया है।[३] जनक की राज्य सभा इन्हीं सबसे व्यंजित कही जा सकती है। दशरथ की सभा का जो अप्रस्तुत विधान है वही इस सभा का भी है और इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि राज्य सभा की कल्पना का आधार देव सभा ही थी। लंका के राजा रावण की सभा भी उल्लेखनीय है। जब रावण को पता चला कि राम ने समुद्र पर सेतु बन्धन कर लिया है और लंका पर आक्रमण करने वाले हैं तब उसने अपने मंत्रियों की एक सभा बुलाई। वह अच्छी तरह जानता था कि सफलता का मूल सत्परामर्श है। उसकी सभा में उसके सैन्याधिकारियों, मंत्रियों और बन्धु बांधवों का बाहुल्य था। वह स्वयं उसका अध्यक्ष था उसके अनुसार उसके मंत्री सब प्रकार के राजनैतिक रहस्यों को जानते थे।[४] रावण ने अपने सभा सदों से पूछा कि अब मैं तुम्हारा परामर्श चाहता हूं। जब तक रामचन्द्र सेना समेत यहां नहीं पहुँचते तब तक ही समय है। उनके आ पहुंचने पर मंत्रणा करने का समय न मिलेगा।[५] रावण की सभा के अधिकांश सदस्यों को न नीति का ज्ञान था और न वे शत्रु की शक्ति से ही अवगत थे। उनमें चाटुकारिता और युद्ध के प्रति मोह था। प्रहस्त ने रावण के पराक्रम की प्रशंसा करते हुए उसे परामर्श दिया कि शंकरने आपको वरदान दिया है, जिसके बल से आपने सब लोगों को अपने वश में कर लिया है। जब आपके इन्द्रजीत जैसा पुत्र है तो राम और बानर आपको हानि नहीं पहुँचा सकते।[६] इन्द्रजीत ने कहा कि यदि आप मुझ आज्ञा दें तो मैं वानरों का नाश कर डालूंगा।[७] केवल मन्दोदरी और विभीषण

१—देखिकै सभा विप्र मोहियो प्रभा ॥
राजमंडली लसै। देव लोक को हसै ॥ —रा० २।४

२—रा० चं० ३।१३

३—वही, ६।१२,१३।१४

४—वही, १५।१

५—वही, १५।२

६—रा चं० १५।३

७—वही, १५।८

ने विपरीत परामर्श दिया था। मन्दोदरी ने कहा कि सीता मृत्यु की भांति लंका में आयी है।[१] विभीषण ने कहा कि अतिकाय में राम की ओर देखने का साहस नहीं। कुंभ और निकुम्भ व्यर्थ भाषी हैं। मेघनाथ और कुम्भकर्ण की बातों में कोई सार नहीं है। ये लोग राम से लड़ नहीं सकते।[२] विभीषण का परामर्श रावण को अच्छा नहीं लगा। अतः रावण ने उसकी निन्दा की। उसके पश्चात् सभा का कार्यक्रम बन्द हो गया।

रावण की सभा दशरथ और जनक की सभा की भांति स्थिर नहीं थी। उसको कवि ने गतिशील रूप में चित्रित किया है। एक प्रश्न सभा के सामने रखा जाता है और उस पर विभिन्न मत आते हैं और अन्त में निर्णय लिया जाता है। तत्कालीन राज सभाओं पर अयोग्य मन्त्रियों की स्थिति दिखाकर केशव ने प्रच्छन्न व्यंग्य भी किया है। साथ ही सभासदों का यह कर्तव्य भी दिखाया गया है कि यथार्थ स्थिति को समझकर ही अपनी मन्त्रणा दें।

प्राचीन काल की राजसभा न केवल राजनीतिक विषयों का केन्द्र थी, अपितु दार्शनिक तथा सांस्कृतिक विषयों का भी संगम स्थान था। लंका विजय के पश्चात राम अयोध्या के सिंहासन पर बैठना नहीं चाहते थे। जब एक दिन वे अपने सभासदों के साथ सभा में विराजमान थे तब असति, अत्रि, भृगु, गौतम, व्यास, विश्वामित्र, वाल्मीकी, वामदेव, भरद्वाज, वशिष्ट आदि महर्षि वहां आये। राम ने उनका आदर सत्कार के साथ स्वागत किया और उचित आसनों पर आसीन होने की प्रार्थना की। उन्होंने उनसे कहा कि मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूं।[३] साधुओं का सत्संग गंगासागर तीर्थ से भी बड़ा तीर्थ होता है क्योंकि साधुओं के उपदेश,अति- अद्भुत और पावन होते हैं। उनके उपदेशों से पापी भी जीवन मुक्त होते हैं।[४] उनके वचन सुनकर सब ऋषि प्रसन्न हुए। अगस्त्य ने राम को राज सिंहासन ग्रहण करने का परामर्श दिया। उसके पश्चात राम ने राज्यश्री की निन्दा करके राज्य सिंहासन के प्रति विरक्ति प्रकट की थी। किन्तु वशिष्ठ जी के उपदेश सुनकर अन्त में उन्होंने राज सिंहासन ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।

केशवदास ने वीरसिंह देव चरित में अपने आश्रयदाता वीरसिंह देव की राज सभा का वर्णन बड़ी रुचि से किया है। दान और लोभ दोनों जहांगीरपुर की शोभा देखने के बाद वीरसिंह देव का राज दरबार देखने गये। वहां जाकर उन दोनों ने देखा कि

१—रा० चं० १५।६ २—वही, १५।६
३—वही, २३।१—८
४—गंगा सागर सों बड़ो। साधुन को संत संग॥
पावन कर उपदेस अति। अदभुत करत अभंग॥ —रा० चं० २३।६

वह राज दरबार आठों रसों का आगार था। अनेक राजा उस दरबार में आते जाते थे और वहां द्विपद और चतुष्पद की भीड़ थी। दरबार में द्वारपाल शोभित वे। वहां अधिकारियों की पंक्ति बैठती थी। अनेक लेखक बैठे हुये लिख रहे थे। मोक्ष प्राप्त करने के लिए सभासद उचित व्यवहार कर रहे थे। ज्योतिष द्वारा काल का विचार किया जा रहा था। सभी रत्नों से जगमगाती हुई सभा को दान और लोभ ने देखा। उस सभा में राजा सुरमण्डल के अवतार के समान विराजमान थे। पाप के लिए वे गंगा की धारा थे। शरणागत के लिए समुद्र के समान और दुष्टों के लिए रुद्र के समान थे।[१] कभी वीरसिंह उस में सूर्यप्रभा के समान शोभित होते थे।[२]

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केशव के युग में राज दरबारों की क्या दशा थी। उस समय के दरबारों में कई प्रकार के अधिकारी होते थे तथा दार्शनिक विषयों पर भी विचार किया जाता था और एक बात ध्यान देने योग्य है कि तत्कालीन दरबारों में ही लेखन का सारा काम चलता था।

इसके अतिरिक्त यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि केशव ने पौराणिक राजाओं के दरबारों का वर्णन आदर्श रूप में किया है जहां राजनीति और आध्यात्म साथ साथ चल रहे थे। रावण के दरबार के साथ समकालीन राज दरबार की झलक भी आ जाती है। वीरसिंह देव और जहांगीर के दरबारों में राजनीति और ललित कलाओं का संकलन ही प्रमुख है। योग्य सभादों को चुने जाने और नवरत्नों की परम्परा की चेतना भी केशव को है। इसी लिए सभा सदों का नामोल्लेख और उनके गुणों की सूचना विशेष रूप से दी गयी है।

२-४-१० दूत :

पूर्व युग में ही राजनीनिक संघटन के साथ साथ दूतों और गुप्तचरों की आवश्यकता पड़ी थी। सन्धि और विग्रह आदि राजनैतिक विषयों में दूत का एक महत्वपूर्ण स्थान था। धर्मग्रन्थकारों ने लिखा है कि राजनीतिक सफलता के लिए निपुण दूत की आवश्यकता है। पूर्व युग में दूत का काम ब्राह्मण को ही सौंप दिया जाता था। चरित्र बल और ज्ञान के साथ साथ स्वभाव से त्यागी होने के कारण ब्राह्मण विशेष विश्वास पात्र माना जाता था। दूत का उत्तर दायित्व बहुत ही गम्भीर और महत्वपूर्ण था।

केशव साहित्य में पांच दूतों का उल्लेख किया गया है हनुमान, अंगद, सुक और

१—वी० च० २७।२,४,५,६,६,१३
२—वी० च० २७।२१

सारण, केशव तथा भ्रम और भेद। केशव के अनुसार स्वार्थ रहित हितैषी सुबुद्धि काम, क्रोध, लोभ, मोह और क्षोभ से विमुक्ति मित्र और शत्रु को पहचान ने वाला, और देश काल का ज्ञान रखनेवाला, अपनेहृदय की बात दूसरों पर प्रकट नहीं करके उनका भेद जाननेवाला व्यक्ति ही दूत बनने योग्य है।[१] एक अन्य स्थल पर केशव ने तीन प्रकार के दूतों को स्वीकार किया है——स्वनिष्ठा, परनिष्ठा तथा सदिष्ठार्थ।[२] दूतों को चारों दिशाओं में भेजना और उनके वापस आने पर उनका कुशल पूछना राजा का धर्म है। दूतों की अवस्था बहुत गूढ़ है।[३] जो दूत राजाओं के पास आते रहते हैं उनसे राज्य की गूढ बातें कहनी चाहिये। जो दूत हाथ में पत्र ले जाने में निपुण होते हैं, उनसे राजनीति की बातें कहना राजनीति के अनुकूल है।[४] मनु के अनुसार सब शास्त्रों में पारंगत इंगित आकार तथा चेष्टाओं को जानने वाला सुचि, समर्थ और कुलीन ही दूत हो सकता है।[५]

केशव के अनुसार दूतों को चारों ओर भेजना और उनके वापस आने पर उनका कुशल पूछना राजा का धर्म है। राम ने हनुमान को सीता के पास भेजा था। सीता का अन्वेषण करने के लिते हनुमान लंका में गये और उन्हें अशोक वाटिका में दुःखी अवस्था में देखा। उन्होंने प्रेम गाथा के रूप में राम का सन्देश सीता को दिया। एक कुशल दूत की भांति उन्होंने सीता को राम के प्रेम के सम्बन्ध में विश्वास दिलाया और उनके बल में भी उनका विश्वास दृढ़ किया।[६] इस प्रकार सीता की उखड़ी हुई आशा और धारणा को नवजीवन दिया।

रावण के दरबार में हनुमान एक राजनैतिक दूत के रूप में उपस्थित है। एक कुशल दूत की भांति उन्होंने रावण के उत्साह को भंग किया और राम के उत्कर्ष का कथन भी किया।[७] इस प्रसंग में एक बात ध्यान देने योग्य है कि दूत अवध्य माना जाता था। जब रावण ने राक्षसों को आज्ञा दी कि हनुमान मारा जाय तब विभीषण ने उससे कहा था कि दूत अवध्य है। अतः हनुमान को मारना उचित नहीं है।[८]

युद्ध प्रारम्भ करने के पहले राम ने अंगद को अपना दूत बनाकर रावण के पास

१—क० प्रि० : १६
२—वी० च० ३२।२५
३—वही०, ३१।२४
४—वही०, ३१।२६
५—दूतंचैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्र विशारदम्।
इंगिताकार चेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्॥ —मनुस्मृति, ७।६३
६—रा० चं० १३।८८
७—रा०चं० १४।१
८—वही, १४।३

भेजा था। अंगद लंका में गया और रावण से कहा कि तुम युद्ध का विचार छोड़कर राम से सन्धि कर लो।[१] रावण ने राम को बालि के हंतक के रूप में प्रस्तुत करके उसे अपनी ओर मिलाना चाहा।[२] किन्तु उन्होंने रावण की बात नहीं मानी। उन्होंने रावण को चेतावनी दी कि जब राम के बाणों से तुम्हारे सिर नीचे गिरेंगे तब सियारिणी तथा कुत्ते तुम्हारी चोटी पकड़कर चारों ओर घसीटते फिरेंगे।[३] अनेक प्रकार की चेतावनी देने पर भी रावण ने अंगद की बात नहीं मानी तो वे अन्त में उसका किरीट लेकर राम के पास चले गये।[४] इस प्रकार अंगद के दूत कार्य का प्रशस्त रूप से उल्लेख किया है।

दूत का तीसरा उल्लेख रावण के शुक और सारण नामक राक्षसों को राम की सेना को देखने के लिए भेजने के संदर्भ में हुआ है। वे दोनों सुग्रीव के पास गये और उनसे कहा कि हमारे राजा रावण की आज्ञा है कि तुम अपनी सेना लेकर वापस चले जाओ।[५]

दूत का चौथा उल्लेख उस प्रसंग में आया है जब रावण ने अपने एक दूत को राम के पास भेजा था।[६] राम के पूछने पर दूत ने कहा था कि रावण ने शुक्राचार्य के आदेश के अनुसार यज्ञ करने का निश्चय कर लिया है। उसने आपके पास यह संदेश भेजा है कि तुमने शूर्पनखा को विरूप करके हमें दुःख दिया है। समुद्र पर सेतु बनाया है और मेरे पुत्र को मारा है। जो होना था वह हो गया। तुम मुझे परशुराम का परशु देकर सीता को ले जाओ।[७]

इस प्रसंग से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रावण के दूतों में दौत्यकर्म के लिए अपेक्षित गुणों का अभाव था। वे यह नहीं समझ पाते थे कि कहां कौनसी बात प्रकट करनी चाहिए कौन सी नहीं। इस अभाव के कारण ही दूत ने राम से रावण के यज्ञ करने के सम्बन्ध में बताया था।

दूत का पांचवां उल्लेख उस प्रसंग में किया गया है जब स्वयं केशव रामशाही के दूत बनकर वीरसिंह देव के पास गये थे। रामशाही और वीरसिंह देव में वैर भाव

१—वही, १६।६
२—वही, १६।१६
३—वही, १६।२१
४—वही, १६।३४
५—वही, १५।३६
६—वही, १६।१४
७—रा० चं० १६।१७

बढ़ता ही जा रहा था। केशव ने उन दोनों के बीच में सन्धि करने का भरसक प्रयत्न किया। एक राजवंश के हितैषी दूत का यही सर्वोपरि कर्तव्य था। केशव के दौत्य की सफलता उस बात से प्रकट होती है कि वीरसिंह देव रामशाही से संधि कर लेने तैयार होते हैं।[१]

दौत्य का छठा प्रसंग प्रतीकात्मक है। महामोह ने विवेक के पास भ्रम और भेद नामक दूतों को भेजा था। वे दोनों विवेक की सभा में पहुंचे जहां वह उद्यम और सत्संग के साथ बैठा था। भ्रम ने विवेक को मोह का सन्देश सुनाया कि वह सत्वर काशी छोड़कर चला जाय।[२] विवेक ने महामोह का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। परिणाम स्वरूप इन दोनों में युद्ध हुआ और महामोह पराजित हो गया।

२-४-११ गुप्तचर :

राजा चारचक्षु होते हैं। अपने राज्य का शासन सुचारु रूप से चलाने के लिए राजा को गुप्तचरों के द्वारा अपने राज्य की सभी बातों को जानना अनिवार्य है।

गुप्तचर दो प्रकार के होते थे : नागरिक गुप्तचर और सैनिक गुप्तचर। रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में जिन गुप्तचरों से राम को सीता विषयक लोकापवाद की सूचना मिली थी वे नागरिक गुप्तचर थे। गुप्तचर प्रायः राजा से रात के समय में ही मिलते थे। केशव की रामचन्द्रिका में राम को गुप्तचर ने आधी रात को ही सीता के अपवाद की सूचना दी थी।[३] सैनिक गुप्तचरों का दायित्व अधिक कठिन था। उन्हें सदा राजभक्त, वीर और निर्भय बने रहना पड़ता था। शत्रु की शक्ति और दुर्बलता जानने के लिए राजा और सेनापति उन्हीं पर निर्भर रहते थे। अबुलफजल के 'नरवर' पहुँचने पर वीरसिंह के गुप्तचरों ने उन्हें उसके नरवर पहुंचने का समाचार दिया था।[४]

२-४-१२ मंत्री आदि पदाधिकारी :

१—वी० च० १०।३६-३०

२—वि० गी० ११।१३

३—भोजनै कै तब श्री रघुनन्दन।
पौढि रहे बहु दुष्ट निकंदन॥
बाजन जो अधरात भई जब।
दूतन आइ प्रणाम करी तब॥ —रा० चं० ३३।२६

४—वी० च० ५।७०

प्राचीन भारतीय शासन तन्त्र का मन्त्रिमंडल एक अविच्छेद्य अंग था। राजा के अतिरिक्त युवराज तथा प्रांतों के शासक अपना मन्त्रिमण्डल रखते थे। शुक्रनीति में दस मंत्रियों की संख्या मानी गयी है जिनमें— (१) पुरोहित (२) प्रधान (३) सचिव (४) मंत्री (५) प्राडविवाक (६) पंडित (७) सुमन्त्र (८) अमात्य (९) प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। मंत्रियों का कार्य क्षेत्र शासन तक ही सीमित न था। किन्तु उनका कार्य नयी नीति का निर्धारण तथा उसे कार्यान्वित करना भी होता था। राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विषयों का चिन्तन और रक्षण उनका परम धर्म था।[1] कौटिल्य ने मंत्री के नियुक्त करने के सम्बन्ध में लिखा है कि वह पुरुष मन्त्री बनाया जाय जो उच्च तथा उदात्त वन्श का हो, युद्ध में निपुण हो, आयुधों को चलाने व पहचानने में दक्ष हो, अर्थशास्त्र का अच्छा जानकर हो, प्राज्ञ हो, कष्ट सहिष्णु हो तथा सौम्य प्रकृति का हो। इन गुणों से युक्त मन्त्री उत्तम कहलाता है। यदि राजा किसी राज्य का बाहुबल है तो मन्त्री मस्तिष्क है। विपत्ति के समय राजा को अच्छा परामर्श देना मन्त्रियों का प्रधान कर्तव्य है। मन्त्री के परामर्श के बिना राजा कोई भी प्रमुख कार्य नहीं करता था। मनु ने भी लिखा है कि धर्मज्ञ, प्राज्ञ, कुलीन तथा जितेन्द्रिय व्यक्ति को मन्त्री बनाना चाहिए।[2] केशव के अनुसार वह व्यक्ति मंत्री बनाने योग्य है जो राजनीति के पांच अंग षटगुण तथा चतुर्दश विद्या सम्पन्न हो।[3] यदि मन्त्री सदाचारी नहीं होता तो वह राजा का सच्चा मार्गदर्शक नहीं बन सकता। इसलिए केशव ने मन्त्री के सदाचारों पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार जो मन्त्री मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करता, जो क्रोध कपट आदि बुरे मनोविकारों को छोड़ देता और जो भेद, विग्रह, सन्धि आदि राजनीतिक तंत्रों से परिचित होता है उस मन्त्री की बुद्धि के दिव्य विचारों से राजा सुरक्षित हो कर शासन कर सकता है।

१—पूर्व मध्यकालीन भारत, प्रो० वासुदेव उपाध्याय, पृ० १०२

२—अमात्यं मुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्त कुलोद्गतम्।
स्थापयेदांसने तस्मिन् खिन्नकार्यें क्षणे नृणाम्॥ —मनुस्मृति, ७।१४१

३—क० प्रि० ८।२०
राजनीति के पाँच अंग साहाय्य, साधन उपाय, देशज्ञान तथा काल ज्ञान
,, ,, षड् गुण : सन्धि, विग्रह यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय।
चतुर्दश विद्यायें. ब्रह्मज्ञान, रसायन, स्वरसाधन, वेदपाठ, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, जलतरण, वैद्यक, कृषि विद्या, कोक विद्या, अश्वारोह, नृत्या तथा समाधानकरण चातुर्थ।
लाला भगवानदीन, प्रिया प्रकाश टीका

केशव के साहित्य में मन्त्रियों का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गयाहै। राजा दशरथ के अमात्य वशिष्ठ जितेन्द्रिय तथा दिव्य ज्ञान सम्पन्न थे। वे इक्ष्वाकु वन्श के परम्परागत गुरु थे। जब राजा दशरथ ने राम को विश्वामित्र के साथ भेजने में संकोच किया तो वशिष्ठ ने कहा था कि हे राजन्, विश्वामित्र आप के अनन्य मित्र हैं। इनका हर एक काम राम के कल्याण के लिए ही होगा।[१] वशिष्ठ राजा दशरथ के न केवल मन्त्री ही थे किन्तु पुरोहित भी थे। राम के विवाह के समय उन्होंने सब वैवाहिक कार्यों का संपादन किया था। लंका विजय के पश्चात जब राम ने राज्य सिंहासन पर बैठना नहीं चाहा तब वशिष्ठ ने ही उन्हें अच्छी सम्मति देकर राजा बनाया था।[२]

वशिष्ठ के अतिरिक्त कश्यप, विश्वामित्र, भरद्वाज आदि महर्षि भी राम के परामर्श दाता थे। राम हर एक महत्वपूर्ण कार्य में इन लोगों की सम्मति लेते थे। जब राम ने अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया तब वशिष्ठ, विश्वामित्र कश्यप आदि महर्षियों से मन्त्रणा की थी।[३] कश्यप के परामर्श के अनुसार राम ने सीता की सुवर्ण प्रतिमा बनायी और अश्वमेध यज्ञ किया।[४]

शतानन्द राजा जनक के मन्त्री थे। राम और सीता के विवाह के समय पर वर पक्ष वालों का स्वागत करना तथा वैवाहिक कृत्यों में सहर्ष भाग लेना, पाणिग्रहण के समय वशिष्ठ के साथ पुरोहित का काम करना[५] आदि से विदित होता है कि शतानन्द राजा जनक के न केवल मन्त्री ही थे अपितु उनके पुरोहित भी थे।

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में रावण के मन्त्रियों का उल्लेखभी किया है। यद्यपि रावण के अनेक मन्त्री थे तो भी महोदर का उल्लेख प्रधान रूप से किया गया है। युद्ध में जब अकंप, धूम्राक्ष आदि राक्षस मारे गये तब रावण ने उससे मन्त्रणा की थी। उसने आदर्श मन्त्री की भांति निर्भय रावण से कह दिया कि तुम राजनीतिक दांव-पेंच नहीं जानते।[६] इसी प्रसंग में अपने मन्त्रियों के शुक्राचार्योक्त चार प्रकार भी बतलाये।[७]

शुक्राचार्य के अनुसार मन्त्रियों के चार प्रकार होते हैं पहिले प्रकार के वे मन्त्री होते है जो अपने कल्याण के लिए राज्य का कल्याण नष्ट कर डालते हैं, जैसे राजा सुरथ को निकालकर मन्त्री ने अपना अधिकार स्थापति किया था। दूसरे प्रकार के मन्त्री वे होते हैं जो राजा की भलाई केलिए स्वयं कष्ट उठाते हैं, जैसे राजा बलि को निवारण करते हुए

१—रा० चं० ३।८५
२—वही, २५।३९, ४०, ४१
३—वही, ३५।१
४—रा० चं ३५।३, ४
५—वही, ६।१, ८, १९
६—रा० चं० १७।१९
७—वही, १७।२४

शुक्राचार्य ने अपना एक नेत्र तक खो दिया।[1] तीसरे प्रकार के मन्त्री वे होते हैं जो अपना तथा अपने मालिक दोनों का कल्याण करते हैं, जैसे हनुमान। चौथे प्रकार के मन्त्री वे होते हैं जो अपना तथा अपने राजा दोनों ही का बुरा करते हैं जैसे मेघनाद।

मन्त्रियों के मन्त्र भी चार प्रकार के होते हैं। उनमें पहला विष के समान होता है जो खाने में कटु और मृत्यु देने वाला होता है। दूसरा दाडिम के बीज के समान होता है जो खाने में मधुर और पुष्टदायक होता है। तीसरा गुड के समान होता है जो सुनने में मधुर और प्रभाव में गरम अर्थात दुःखद होता है। चौथा नीबू के समान होता है जो सुनने में कटु और गुण में सुख प्रद होता है।[2] मन्त्री, मित्र अथवा शत्रु की कही हुई अच्छी बात ग्रहण करना राजा का कर्तव्य है।[3]

आध्यात्मिक विषयों का परिचय भी मन्त्री करता है। राजा बलि को शुक्राचार्य ने आध्यात्मिक मन्त्रणा दी थी। राजा बलि भौतिक सम्पत्ति के भोग से ऊबकर अपने गुरु शुक्र के पास गया और उनसे आध्यात्मिक तत्त्व समझाने की प्रार्थना की।[4] शुक्र ने उसे समझाया कि जिसकी सत्ता के कारण सारा संसार सच्चा लगता है उसी देव का अपने चित में विचार करो।[5] ब्राह्मण भक्ति के द्वारा हरि भक्ति उत्पन्न होती है। अतः तुम ब्राह्मण भक्ति के सहारे विष्णु पद को प्राप्त कर सकते हो।[6]

२-४-१३ अन्य पदाधिकारी :

मन्त्रियों के अतिरिक्त और भी कई पदाधिकारी राज दरबार से सम्बन्ध रखते थे तथा शासन के कार्य में राजा की सहायता करते थे। सुशासित राज्य में मन्त्री के बाद राज पुरोहित का स्थान होता था।[7] यद्यपि उसकी गणना राजकीय कर्मचारियों में करना युक्ति संगत नहीं है। पुरोहित का उल्लेख केशव ने वीरसिंह देव चरित में किया है। यहां पुरोहित का उल्लेख अन्य राजकीय कर्मचारियों के साथ किया है।[8] अन्य राजकीय कर्मचारियों में आयुष, धन रक्षक, वजीर,[9] फौजदार, सिकदार आदि का उल्लेख किया गया है। केशव ने अफतालो[10] नाम के एक ऐसे आफसर का उल्लेख किया है जो राजा

१—रा० चं० १७।२५
२—वही, १७।२६
३—वही, १७।२७
४—वि० गी० १६।६,१०
५—वि० गी० १६।१६
६—वि० गी० १६।२२,२३,२४
७—कौटिल्य ने राजमन्त्री के बाद राज पुरोहित, फिर सेनापति और तब युवराज का स्थान बताया है। —इन्डिया एज़ नोन टु पाणिनि, पृ० ४०२—४०४
८—वी० च० ३०।२
९—वही, २२।११
१०—निज दूत बभूत जरा के किधौं।
अफताली जुराजन लायक के॥ —क० प्रि० पृ० ५३

के किसी स्थान पर जाने से पूर्व उसके ठहरने और आराम का पूरा प्रबन्ध करता था। इस प्रकार के अन्य गौण पदाधिकारियों का नामोल्लेख हुआ है। पर उनका विशेष विवरण प्राप्त नहीं है।

२-४-१४ राजा और प्रजा :

राजा और प्रजा के समर्थन से शासक बनता है, किन्तु होता ऐसा है कि राजा अपने अधिकारी वर्ग के साथ एक वर्ग में चला जाता है और प्रजा का एक अलग वर्ग बन जाता है। राजा अपनी शक्ति के द्वारा जनता को सिर उठाने नहीं देता। उत्तम राजा वही माना जाता है जो अपने को जनता का अंग ही नहीं, सेवक समझे। आर्य शासन पद्धति पर दृष्टि डालने से यह पताचलता है कि समान व्यक्तियों में से ही अग्रगण्यता प्राप्त करके कुछ व्यक्ति शासन व्यवस्था का संचलन करते थे और एक निश्चित अवधि के बाद फिर जन साधारण में लौट आते थे। किन्तु जब तक वे शासक रहते हैं तब तक प्रजा का हित करना ही उनका लक्ष्य रहता था। मनु ने भी प्रजा की रक्षा करना ही राजा का प्रधान धर्म माना है।[1] केशव साहित्य में राजा प्रजा का सम्बन्ध बहुत स्वाभाविक रूप से उल्लिखित है। इस साहित्य में उल्लिखित सम्बन्ध को हम छः विभागों में विभाजित कर सकते हैं : राजा दशरथ और प्रजा, राजा राम और प्रजा, राजा जनक तथा प्रजा, राजा रावण तथा प्रजा, राजा वीरसिंह देव तथा प्रजा और राजा जहांगीर तथा प्रजा। इन छः शासकों के काल में प्रजा के सुख के विषय में किस प्रकार का प्राधान्य दिया जाता था, प्रजा किस मात्रा तक सुखी रही आदि विषयों पर नीचे विचार किया जाता हैं।

आदर्श राजा के शासन के अन्तर्गत देश की सम्मृद्धि होना स्वाभाविक है। राजा दशरथ के शासन काल में सब अयोध्या वासी प्रसन्न, धर्मात्मा, धन धान्य सम्पन्न तथा लोभ रहित थे। केशव ने अपनी रामचन्द्रिका में अनेक स्थलों पर अयोध्यापुरी की प्रजा के जीवन का उल्लेख किया है। अयोध्यापुरी का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि उस नगर के सब घर उन्नत बनाये गए थे। वे इतने सुन्दर थे कि मुनियों का मन भी उन्हें देखकर मोहित होता था।[2] वह नगर देवपुरी के समान था। वहां विद्वान, कविगण, कलाकार, पण्डित, मंगलपाठी विप्र, बुद्धि सम्पन्न न्यायाधीश, प्रशस्त दाता आदि विराजमान थे।[3] उस नगर के ऊंचे मकानों पर चार दीवारी बनी थी। उनके घरों में निरन्तर हवन

१—प्रजांना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ —मनुस्मृति, १।८९

२—रा० चं १।४१ ३—वही, १।४२

कर्म किया जाता था। वहां के घर अनेक प्रकार के चित्रों से अलंकृत थे।[1] वहां किसी की अधोगति नहीं होती थी।[2] इस प्रकार राजा दशरथ के शासन में प्रजा सब प्रकार के सुखों का अनुभव करती थी।

राम के विवाह के पश्चात् जब राजा दशरथ अपने पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं के साथ अयोध्या लौटे थे, उस सन्दर्भ में भी केशव ने अयोध्या के प्रजा जीवन का उल्लेख किया है। वहां की सभी वीथियां स्वच्छ और चन्दन लिप्त थीं। नगर के प्रति मन्दिर पर सुन्दर स्त्रियां अट्टालिकाओं पर चढ़कर देवांगनाओं के समान शोभित होती थीं। वे विभिन्न सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत थीं।[3]

लंका विजय के बाद राम सिंहासन पर बैठे। वे गुणवान, धर्मज्ञ, पराक्रमी और कुशल शासक थे। उनके शासन में सारी पृथ्वी सस्यश्यामला थी। सब नदियां दूध की धारा से परिपूर्ण थीं। सब गायें कामधेनु को तिरस्कृत करती थीं।[4] रामराज्य में सभी जन चिरंजीवी, स्वस्थ, एकपत्नीव्रती, अष्ठ सुख भोगी, शीलवान, सुन्दर ब्रह्मज्ञानी, गुणवान तथा धार्मिक थे।[5] रामराज्य की सभी स्त्रियाँ पतिव्रता थीं। वे इन्द्राणी और सती देवी के समान थीं। उस राज्य में कोई भिक्षुक नहीं था। कोई भी किसी की वृत्ति का अपहरण नहीं करता था।[6] रामराज्य के लोग सदाचारी, धनी और त्यागी थे। उस राज्य में सब लोगों के घरों में कल्पवृक्ष थे। सबके दरवाजों पर श्रेष्ठ हाथी बंधे हुए थे। नवों निधियों और आठों सिद्धियों से सब लोग सम्पन्न थे। वहाँ न कोई वंचक था और न कोई कुटिल। उस राज्य में सातों लोकों की सम्पत्ति निवास करती थी।[7] रामचन्द्रिका में अयोध्या नगर के बागों, जलाशयों भवनों आदि का जो वर्णन किया है, उसके द्वारा यह स्पष्ट होता है कि रामराज्य एक आदर्श शासक का राज्य था, जिसकी कल्पना संसार के सभी लोग कर सकते हैं।

विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण ने जब मिथिला नगर की ओर प्रस्थान किया तब उनके द्वारा उस नगर की सुख समृद्धि का केशव ने उल्लेख कराया है। लक्ष्मण ने राम से कहा कि जनकनगर के चारों ओर बाग और जलाशय बहुत से हैं। सब बाग

१—रा० चं० २।४५ २—वही, १।४८

३—वही, ८।४,५,६,८,१२

४—सदै निम्नगा छीर के पूरपूरी भई कामगो सी सबै धेनु रोरी। —रा० चं० २६।२

५—वही, २८।४ ६—२८।६

७—वही, २८।१६

फूलों और फलों से परिपूर्ण हैं।[१] राम ने कहा कि राजा जनक के देश में ऐसी नगरी नहीं है जो पग-पग पर हंसों, जल और कमल समूह से परिपूर्ण सरोवरों से हीन हो। इस नगर में ऐसी कोई नारी नहीं है जिसका प्रति पग नूपुरों से हीन हो तथा पीन पयोधरों पर मोतियों की माला शोभित नहीं हो।[२] विश्वामित्र और राम ने राजा जनक की जो प्रशंसा की है उससे स्पष्ट होता है कि वे आदर्श राजा थे तथा उनकी प्रजा सब प्रकार के सुखों का अनुभव करती थी।

रावण के राज्य लंका में सुख समृद्धि की कोई कमी नहीं थी। राजा और प्रजा दोनों वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। हनुमान सीता का अन्वेषण करने जब लंका में गये तब उन्होंने देखा कि रावण मणि मण्डित सुवर्ण के पलंग पर सो रहा था। वहां बहुत सी स्त्रियाँ गाती थीं तथा ताशा और वीणा बजाती थीं।[३] विलासिता सुख समृद्धि का सूचक है। हनुमान ने लंका में जो विलासमय जीवन देखा उससे तत्कालीन लंका प्रजा की समृद्धि का परिचय मिलता है। हनुमान ने देखा कि कहीं किन्नर कन्याएं बांसुरी से गीत गा रही हैं, कहीं कोई स्त्री मदिरा पी रही है और कोई स्त्री नाच रही है।[४] यद्यपि रावण के अत्याचारों से विभीषण आदि सज्जन पीड़ित थे, तो भी इतना तो कहा जा सकता है कि रावण के शासन काल में लंका की प्रजा सुखी थी।

वीरसिंह देव जहांगीर के कृपापात्र होने के कारण सारे बुन्देलखण्ड के राजा बने। उन्होंने जहांगीरपुर को अपनी राजधानी बनाया। उनके शासन में प्रजा बड़ी सुखी थी। जहांगीरपुर का वर्णन करते हुए केशव ने लिखा है कि उस नगर के भवन ऊंचे थे। उनमें सुन्दर-सुनहला-मणियुक्त लाल, पीला और श्वेत विद्रुमों का परदा डाला गया है जो मन को मोहित करता था।[५] घरों की दीवारों पर सुन्दर चित्र बने हुए थे। सिंहासन, पलंग आदि सुख सामग्री घर-घर में विराजमान थी।[६] उनके शासन काल में ग्रामवासियों की दशा भी अच्छी थी गांवों में अनेक बड़ी-बड़ी अट्टारियां थीं। उन पर अनेक रंगों की

१—रा० चं० ५।१५

२—तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन।
जलजहार शोभित न जह, प्रगट पयोधर पीन॥ रा० चं० ५।०६

३—तब हरि रावण सोवत देख्यो। मनिमय पलिका की छवि लेख्यो।
तहं तरुनी बहु भांतिन गावैं। बिच बिच आवज वीन बजावैं॥ —रा० चं० २३।४८

४—वही, २३।५०,५२

५—वी० च० २०।७

६—वही, २०।६

छतरियों की छटा थी। दसों दिशाओं में बड़े-बड़े दीपक थे और नित्य ही नये बन्दनवार रहते थे। हर घर में मुरज और दुन्दुभि को बजाकर मंगलाचार किया जाता था।[१] इस प्रकार उनके शासन काल में प्रजा अत्यन्त सुखी थी।

राजा जहांगीर की राजधानी आगरे में थी। उनके सिंहासन पर बैठते ही लोगों के सारे दुःख दूर हो गये।[२] उसकी छत्रछाया में पृथ्वी के सभी मंडल फल रहे थे।[३] जहांगीर गरीब लोगों को दान में कभी तो हाथी, घोड़ा, हथियार आदि देता था तो और कभी खग, मृग, वसन आदि देता था।[४] जहांगीर जसचन्द्रिका में कवियों के द्वारा केशव ने जहाँगीर की प्रशंसा करायी है कि वह सिंहासनासीन होकर गायों और ब्राह्मणों की रक्षा करते थे।[५] केशव ने भारत के आदर्श राजाओं में जहांगीर की गणना की है। जहांगीर जस-चन्द्रिका में उदय ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि वह राजा नल के समान दानी हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी, पुरु के समान पुरुषार्थ का साधक, बलि के समान विवेकी, दधीचि के समान धैर्यवान, अम्बरीष के समान साधु, परशुराम के समान शूर और हनुमान के समान यशस्वी हैं। शाहंशाह जहांगीर पृथ्वी पर ब्रह्मा के समान हैं।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केशव की दृष्टि में राजा और प्रजा का आदर्श सम्बन्ध ही था। दशरथ, जनक और राम तो आदर्श राजा के रूप में पुराण प्रसिद्ध थे। फिर भी केशव ने स्पष्ट रूप से प्रजा की अवस्था का उल्लेख नहीं किया जो कुछ परिचय मिलता है वह व्यंजित ही है। शेष राजाओं के वे प्रशस्ति गायक थे। इसी कारण से राजा प्रजा के सम्बन्ध का यथार्थ रूप प्रशस्तियों में खो गया है। उनके उपर्युक्त वर्णनों से राजा और प्रजा की तत्कालीन स्थिति प्रकट नहीं होती। केवल आदर्श कथन मात्र मिलता है।

२-४-१५ न्याय :

प्राचीन भारत के राजा परम्परित राजधर्म के अनुसार न्याय की व्यवस्था करते थे। प्रायः न्यायालय का अध्यक्ष स्वयं राजा हुआ करता था। उसके अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश भी होते थे, जैसे—पुरोहित, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, परम्परा और लोकाचार के

१—दिसि दिसि देखिए दीप विलास। प्रति दिन नूतन बन्दन माल।
घर घर हुविधि मंगलचार। बाजत दुन्दुभि मुरज अपार॥ वी० च० १६।२३

२—वी० च० १।२३ ३—वही, ६।२५

४—वही, ६।३२

५—सिंहासन पर बैठे राजा रखत है गाय द्विज देखत हौ गजराज देखियत आती है।
ज० ज० च० २६२

ज्ञाता, अनुभवी-ऋषि-मुनि, अमात्य, अर्थशास्त्र के पारंगत सदस्य आदि। राजा का यह कर्तव्य था कि वह ऐसा प्रबन्ध करे जिससे प्रत्येक न्यायार्थी न्यायालय में अविलम्ब प्रवेश पा सके।

केशव साहित्य में उल्लिखित सभी राजा प्रायः आदर्श को लेकर चलने वाले ही हैं। अतः केशव ने उनकी न्याय प्रियता का वर्णन अनेक स्थानों पर किया है। प्रजा अपने राजा से न्याय और सुरक्षा की सदा कामना करती है। प्रजा को उस पर विश्वास रहता है कि आवश्यकता पड़ने पर वह उसकी रक्षा अवश्य करेगा। राम के शासन काल में अयोध्यावासी एक ब्राह्मण पुत्र की अकाल मृत्यु हुई। ब्राह्मण अपने मृतक पुत्र को लेकर विलाप करते हुए राम की सभा में पहुंचा। राम राज्य में पिता के जीवित रहते हुए पुत्र मरना राजा का शासन दोषग्रस्त होने का प्रतीक माना जाता था। यमधर्मराज ने जो ब्रह्मा के साथ राम की सभा में आये थे, कहा कि शूद्र की तपस्या से राज्य में बालक की अकाल मृत्यु होती है और अधिकतर ब्राह्मणों के ही पुत्र मर जाते हैं। यह बात सुनकर राम शूद्र तपस्वी शम्बूक का बध करने के लिये पुष्पक विमान पर चढ़कर चले गये। गुणी शत्रु को अपनाना तथा दोषी मित्र को त्याग देना उत्तम राजा का लक्षण है। कालिदास ने भी रघुवंश में इसका समर्थन किया है।[1] इसी प्रकार सीता निर्वासन प्रसंग में भी राम की न्याय प्रियता प्रकट होती है। एक दिन एक कुत्ते ने राजा की सभा में आकर एक ब्राह्मण के विरुद्ध अभियोग लगाया कि उसने उसे अकारण ही पीटा है। यह सुनकर राम ने उस ब्राह्मण को सभा में बुलाया और जब उसने अपराध स्वीकार कर लिया तब कुत्ते की इच्छा के अनुसार उसे मठाधीश बनाया।[2] राम का विश्वास था कि चाहे पुत्र हो, चाहे दास हो, चाहे शिष्य हो, यदि वह राजा का शासन नहीं मानता तो उसे कोटि जन्मों तक नरक में जाना पड़ेगा।[3] सीता निर्वासन के समय राम ने शत्रुघ्न और भरत से कहा था कि मैं राजा हूँ। अतः मेरी आज्ञा का पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है।[4] इससे सिद्ध होता है कि राजाज्ञा का उल्लंघन दण्डनीय माना जाता था।

भारत की प्राचीन शासन प्रणाली में पंचायत को प्रधान स्थान दिया गया है। गांवों में छोटे मोटे अभियोगों का निर्णय पंचायत के द्वारा हो जाता था। केशव ने इस

१—द्वेष्योपि सम्मतः शिष्टः तस्यार्थस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोयासीत अंगुलीवोरगक्षता॥ —रघुवंश, १।२८

२—रा० चं० ३४।२६

३—वही ६।६

४—रा० चं० ३३।४३

पंचायत का उल्लेख भी किया है। बीरसिंह देव केचौगान खेल में गेंद की दशा का वर्णन करते हुए केशव ने लिखा है कि गेंद जिधर जाती है उधर ही सब लोग उसे मारते हैं जैसे पंच विरोधी मनुष्य जहां जाता है वहीं उसका विरोध होता है।[१] पंच लोग जो कहते हैं उसे करना चाहिए। पंच को जो अच्छा लगता है, वही सब को अच्छा लगता है। पंच व परमेश्वर एक है।[२]

२-४-१६ दण्ड व्यवस्था ?

सदाचार की स्थापना और दुराचार का अन्त करना ही दण्ड का मूल उद्देश्य होता है। पूर्वकृत अपराधों के लिए दण्ड देना और भावी अपराधों को रोकना ही दण्ड का लक्ष्य है। अपराधी को दण्ड देने से राष्ट्र की शुद्धि होती है। राजनीति सम्बन्धी जितने भी ग्रन्थ मिलते हैं, उनके दण्ड का विधान किया गया है। मनु ने लिखा है कि दण्ड ही प्रजा का शासन करता है, वही प्रजा की रक्षा करता है। प्रमत्त शासकों को दण्ड ही जगाता है। इसलिए पंडित दण्ड को ही धर्म मानते हैं।[३] महाभारत में दण्ड को भगवान विष्णु का रूप माना गया है।[४] हिन्दू, बौद्ध[५] आदि सभी परम्पराओं में दण्ड पर विचार किया गया है। केशव ने अपराधियों की श्रेणी में इन लोगों की गणना की है और इनके लिए योग्य दण्ड का भी उल्लेख किया है, मछला, दगाबाज, चोर, दासी, सेवक, भिक्षुक ऋणी, अपराधी, जुआरी, और परस्त्रीनिरत,[६] कलही, कृतघ्न, पाखण्ड[७] उन्हें मृत्यु दण्ड देने से राजा को पाप नहीं लगता। अपने सौशील्य की रक्षा की उपेक्षा करके पर पुरुष पर आसक्ति दिखाने वाली के नाक और कान काटे जाते थे। राम और लक्ष्मण पर अनैतिक सम्बन्ध रखने की इच्छा प्रकट करने वाली शूर्पनखा के नाक और कान लक्ष्मण ने काट डाले थे। इससे स्पष्ट होता है कि अवैध प्रेम सम्बन्ध की आकांक्षिणी को अंग भंग का दण्ड दिया जाता था। जिस अपराध से देश की प्रतिष्ठा में बाधा आ जाती थी, ऐसा अपराध करने वालों को देश निर्वासन का दण्ड दिया जाता था। देवगण ने राम को उपदेश देते

१—जहां तहां मारे सब कोय ज्यों नर पंच विरोधी होय। —वी० च० २६।१६

२—र० बा० १६

३—दण्डः शास्ति प्रजासर्वा दण्ड एवाभि रक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्मं विदुर्बुधाः॥ —मनुस्मृति, ७।१८

४—दण्डोहि भगवान विष्णुर्दण्डो नारायणः प्रभुः।

५—बौद्ध युगों में बारह प्रकार के दण्डों का विधान मिलता है।— मोहनलाल मेहतो वियोगी, जातक कालीन भारत।

६—वी०च० ३१।६५, ६६

७—ज्ञा० ज० चं० २८६

हुए कहा कि मित्र दोषी, मन्त्री का निन्दक, ब्रह्मदोषी, देवदोषी और राजदोषी देश से निकाल दीजिए। वंचक और कठोर हृदयी को बारह रास्तों से नष्ट कर दीजिये।[१] आठ प्रकार के झूठ बोलनेवालों को[२] काष्ठ यंत्र में कैद कर दीजिये। इस सन्दर्भ में केशव ने काठमारिये[३] का प्रयोग किया है। लाला भगवानदीन जी के अनुसार अपराधी को काष्ठ यंत्र में पांव फंसाकर कैद कर देने को काठमारना कहते हैं। बुन्देलखण्ड में इस प्रकार का यंत्र प्रचलित है।[४] यद्यपि दूत को मारना पाप समझा जाता था तो भी उसका अपमान करना प्रचार में था। रावण ने विभीषण की बात मान कर हनुमान को मारने का विचार छोड़ दिया तथा उसकी पूंछ में आग लगाने का आदेश अपने सेवकों को दिया था।

आततायियों को मृत्यु दण्ड दिया जाता था।[५] हनुमान लंका में आग लगाने के कारण रावण के अनुसार आततायी थे। इसलिए उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी थी कि इसे करोड़ यातनाएं देना और इस की खाल खींच कर धड़ को लंका के द्वार पर फेंक आना।[६]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि केशव साहित्य में प्राप्त न्याय दण्ड की व्यवस्था पौराणिक युग की है। पंचायत का उल्लेख करके उन्होंने तत्कालीन न्याय व्यवस्था की ओर संकेत किया है। दूसरी बात यह स्पष्ट होती है कि केशव की न्याय व्यवस्था का आधार वर्ण व्यवस्था थी। इसीलिए ब्राह्मणों के अपराधी के लिए कठोर दण्ड विधान दिया गया है। तपस्वी, शूद्र के प्रति भी न्याय वर्ण व्यवस्था का अनुगमन करता है। अंग-भंग जैसे अप्रचलित दण्डों का वर्णन परम्परा पालन ही दिखलायी पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्मृतियों की आत्मा केशव के संस्कारों में बसी और वही केशव साहित्य में प्राप्त न्याय और दण्ड का विधान करती है। साथ ही दण्ड विधान मानव मात्र के लिए समान नहीं है। वर्ण भेद से दण्ड भेद होता है।

१—बारह रास्ते : मोहं दैन्यं भयं ह्रासं हानिर्ग्लानिर्हि: क्षुदा तृषा मृत्यु क्षोभ व्यथा कीर्ति बाधश्चैति: द्वादश।

२—आठ प्रकार के झूठे वचन : मनोरंजन में, खुशामदी में, शिष्टाचार में, अपनी स्त्री से भेद छुपाने के लिए, विवाह में, धन रक्षार्थ, प्राण रक्षार्थ और दाय तथा ब्राह्मण को हत्या से बचाने के लिए।

३—रा० चं० २७।१

४—केशव कौमुदी, उत्तरार्द्ध, ९८

५—अग्नि दोगरदश्चैव शस्त्र पाणिधनापहः।
क्षेत्र दारापहश्चैव षडतेहयातृचायिनः॥ मनुस्मृति, ८।२५

६—रा०चं० ४।२

२-५ केशव साहित्य में युद्ध :

युद्ध मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियों में से एक है। मानव के जन्म के साथ साथ युद्ध का भी जन्म माना जाता हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य नामक ये षड विकार मानव के आन्तरिक शत्रु कहे जाते हैं। इन आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए हमारे भारतीय मनीषियों ने विविध प्रकार के सदगुणों की आवश्यकताओं का अनुभव किया है। इसी प्रकार अपनी भौतिक उन्नति में बाधा पहुँचानेवालों का दमन करने या अपनी सत्ता को बढ़ाने के निमित्त दूसरों का अकारण विनाश करने के उद्देश्य से ही युद्ध नियोजित होते रहे हैं। यह युद्ध देश-काल की सीमाओं को लांघकर सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक हो गया है। इस प्रकार दूसरों पर आक्रमण करना अथवा दूसरों से देश की रक्षा करना ही युद्ध का मुख्य उद्देश्य रहा। युद्ध केवल मानव समाज में ही नहीं, पशु-पक्षियों में भी पाया जाता है। पशु-पक्षियों में जहां इस युद्ध का लक्ष्य आत्म रक्षा होता है वहां मानव में महत्वाकांक्षा की प्रवल पिपासा भी उसका एक प्रबल कारण हो सकता है। देश की रक्षा, आत्म सम्मान की वृद्धि, भौतिक सम्पत्ति का विस्तार, महत्वाकांक्षा की प्रबल पिपासा, बंश की प्रतिष्ठा आदि युद्ध के मुख्य कारण होते हैं। मानव समाज में चिरन्तन और निरन्तर रूप से चलने वाले इस युद्ध को साहित्य में प्रमुख स्थान मिलना स्याभाविक ही है। इसी कारण संसार के साहित्य में सर्व प्राचीन समझे जाने वाले वैदिक साहित्य से लेकर आज तक साहित्य के जितने अंगों की रचना हुई हैं उन सब में युद्ध को प्रमुख स्थान दिया गया है। केशव का युग राजनैतिक दृष्टि से कुछ उथल पुथल का युग था। संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों में महाकाव्य के विविध अंगों का विस्तार पूर्वक विवेचन मिलता है। इन लक्षणों में युद्ध को भी स्थान दिया गया है। दण्डी ने महाकाव्य के लक्षणों की विवेचना अपने काव्यादर्श में की है।[१] यद्यपि बहुत कुछ शान्ति स्थापित हो चुकी थी, फिर भी स्वतन्त्रता और धार्मिक राष्ट्रीयता के छुट-पुट आवेग युद्ध का रूप धारण कर लेते थे। साथ ही छोटे-मोटे राजा परस्पर भी सामान्य युद्धों में संलग्न होते रहते थे। इन्हीं के आधार पर कुछ वीर प्रशस्तियां भी लिखी जाती रहीं जिससे पूर्व कालीन वीर काव्य की परम्परा समाप्त नहीं हुई। किसी कवि के युद्ध वर्णन के दो भाग हो सकते हैं, युद्ध के कारणों, प्रभावों और रूपों को जातिगत रक्षण प्रदान करना अथवा युद्ध वर्णन में आयी हुई सामग्री और युग आदि की रचना का विवरण। केशव का साहित्य भी युद्ध गत अभिप्रायों से मुक्त नहीं है। रतनसेन के युद्ध को

१—सर्गं बन्दो महाकाव्य मुच्यते तस्य लक्षणम्।
मन्त्रदूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदयैरपि॥ —काव्यादर्श, १७

राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में उदात्त रूप में चित्रित किया गया है। वीरसिंह देव के युद्ध राष्ट्रीयता से भी रन्जित है और गृह कलह इस रूप में युद्ध का रूप धारण कर लेता है।

केशव के समय अधिकांश राजपूत स्वतन्त्रता सम्बन्धी युद्धों से एक प्रकार विरत हो बैठे थे। परन्तु केशव के मुख्य आश्रयदाता वीरसिंह देव स्वाभिमानी थे। उन्होंने अकबर के विरुद्ध युद्ध किया था। अतः केशव के लिए यह स्वाभाविक ही था कि उनके युद्धों का प्रभावपूर्ण और स्वाभाविक वर्णन करे। केशव ने युद्ध के लिए बहुत से पर्यायों का प्रयोग किया है : जुद्ध,[१] रन,[२] संगर,[३] रारी,[४] मोरचा,[५] समर,[६] संग्रम,[७] चढ़ाई[८]। युद्ध से उत्पन्न जुज्झहि[९] शब्द युद्ध से भी अधिक ध्वन्यात्मक हैं। युद्ध के डराह[१०] का वातावरण भी केशव ने प्रयुक्त किया है। युद्ध के कारण संसार में जितने प्रकार के हो सकते हैं उनको डा० शान्तिकुमार नानुराम व्यास ने आठ शीर्षकों में विभाजित किया है—(१) अपहृत नारियों को मुक्त करने तथा अत्याचारी का नाश करने के लिए–उदाहरणार्थ राम रावण युद्ध। (२) प्रतिशोध के लिए जैसे परशुराम ने प्रतिशोध के कारण ही समस्त क्षत्रिय राजाओं का नाश किया था। (३) मित्रों की सहायता के लिए, उदाहरणार्थ राम और वालि का युद्ध। (४) नारी के लिए, वाली और मायावी के बीच में। (५) भूमि व सम्पत्ति के लिए जैसा कि वालि ने मरते समय राम को बताया था कि भूमि व स्वर्ण युद्ध के कारण होते हैं। (६) सार्वभौम सत्ता स्थापित करने के लिए जैसे—रावण ने दिग्विजय की इच्छा से तत्कालीन राजाओं को चुनौती दी। इसी वर्ग मे वे युद्ध भी आते हैं जो राजसूय अथवा अश्वमेघ की योजना के बाद होते हैं। (७) राज्य विस्तार के लिए, राम ने गांधार और चन्द्रकांत के राजाओं को परास्त कर उनके प्रदेश अपने राज्य में मिला लिए थे। (८) कुशासक पड़ौसी राजाओं को दण्ड देने के लिए, जैसे राम के आदेशानुसार शत्रुघ्न ने लवणासुर को मारकर उसके राज्य को कौशल साम्राज्य में मिला लिया था।[११] यद्यपि रामायणकाल के सभी युद्ध इन आठ कारणों से ही हुए हैं किन्तु केशव के साहित्य में इनके अतिरिक्त एक और प्रयत्न कारण दिखायी

१—के० ग्रं० पृ० १४२।१६
२—वही, ६।२
३—वही, ४६६।१
४—वही ५०६।४०
५—वही, ४६१।३१
६—वही, ४६५।२
७—वही, ४७४।४६
८—वही, ५।६
९—वही, ४७१।३४
१०—के० ग्रं० ४६१।५२
११—रामायणकालीन समाज, पृ० २८८

पड़ता है और वह है धर्म की रक्षा। उस युग में एक ओर आक्रमणकारी मुसलमान धर्मावलम्बी और दूसरी ओर भारत की हिन्दू जनता थी। दोनों समुदायों में एक दूसरे के प्रति घृणा, अविश्वास एवं भयंकर शत्रुता थी। मुसलमान न केवल अपने साम्राज्य का ही विस्तार चाहते थे, किन्तु अपने धर्म का भी विस्तार उनका मुख्य ध्येय था। यह बात तत्कालीन कुछ राजपूत मधुकरशाह, वीरसिंह देव, रतनसेन आदि सहन नहीं कर सके। फलतः इन वीरों ने तत्कालीन मुसलमान बादशाह अकबर के विरुद्ध युद्ध किया। केशव के समय में युद्ध का और एक प्रधान कारण भूमि को भी समझा जा सकता है। क्योंकि राजपूत लोग भूमि को अधिक चाहते थे। केशव ने इसका उल्लेख वीरसिंह देव चरित्र में एक जगह पर किया है। राजा रामशाही ने कर्ण से कहा कि मेरे सामने उठ-उठ कर लोग युद्ध कर रहे थे। यह यह गांव मुझे दान में दे दोगे तो मैं युद्ध करूंगा।[१] इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि केशव के समय युद्ध का मूल कारण भू सम्पति ही था।

२-५१ गढ़ों का वर्णन :

वाह्य आक्रमणकारियों से देश की सुरक्षा के लिए 'दुर्ग' या 'गढ़' बनाये जाते थे, जिनकी रक्षा सेना करती थी। इस दुर्ग का पतन हो जाने पर राज्य पराजित समझा जाता था। दुर्ग या गढ़ को अधिक से सुरक्षित और दृढ़ बनाने का प्रयत्न मध्ययुग में किया जाता था। केशव के समय में नगर गढ़ों के रूप में बनाये जाते थे। ये दुर्ग सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों, आक्रमण-प्रत्याक्रमण के साधनों तथा सुरंगों से युक्त थे। ये गढ़ मुख्यतः नादेय, पार्वत, वन्य और कृत्रिम रूप में थे। किष्किधा नगर पहाड़ों से घिरा हुआ गढ़ था। उसे हम पार्वत गढ़ कह सकते हैं। हनुमान ने भी रामचन्द्र से कहते समय सुग्रीव के बारे में इस बात का उल्लेख किया है कि इस पर्वत पर राजा सुग्रीव रहते हैं। उनके साथ उनके चार मंत्री भी हैं।[२]

रामचन्द्रिका में अध्योध्या के राजमहल का वर्णन करते समय केशव ने गढ़ का वर्णन किया है—राज भवन के आस पास कोट है। उसके चारों ओर द्वार हैं। वह द्वार जहां द्वार के दोनों ओर सिंह की मूर्ति स्थापित रहती है और बड़े बलवान रक्षक रहते हैं, पूर्व द्वार कहलाता है। इसी प्रकार हस्तिद्वार दक्षिण की तरफ, अश्व द्वार पश्चिम की ओर तथा नन्दी द्वार उत्तर की ओर है। नन्दी द्वार की ओर ही स्त्रियां आती जाती रहती हैं।[3] उस राज महल के चार चौके हैं और ये सब मकान सतखण्डे हैं, जिनमें से एक

१—वी० च० ३।३५

२—रा० चं० १२।५६

३—वही, १६।२६

खण्ड तो जमीन के नीचे बना है और उसके ऊपर के छः खण्ड जमीन के ऊपर हैं। वहां भित्तियों पर अनेक प्रकार की चित्रकारी की हुई है—

पांच चौक मध्यहि रचे, सात लोक तर हारि ।
पट ऊपर तिनके तहां चित्रे चित्र विचारि ।।[१]

केशव ने लंकापुरी के गढ़ों का भी उल्लेख किया है। जब राम की वानर सेना लंका में पहुंची तब रावण क्रुद्ध हो गया और अपने गढ़ की रक्षा के लिए प्रहस्त को पूरब के द्वार पर, महोदर को दक्षिण के द्वार पर और इन्द्रजीत को पश्चिम द्वार पर नियुक्त किया और स्वयं उत्तर द्वारकी रक्षा करने लगा।[२] "लंका में चारों दरवाजों पर भयंकर युद्ध हुआ। बहुत से रीछ कंगूरों पर चढ़ गये। उस समय सोने की लंका में ऐसी शोभा हुई मानो अग्नि की ज्वालाओं पर धूम्र छा रहा है। मनोहर स्वर्ण के कंगूरों पर नील वर्ण रीछ लिपट गये। वे ऐसे जान पड़ने लगे मानो रावण को विनष्ट करने के लिए पापों का समूह ही एकत्र हो गया है।[३]

केशव के समय में भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था। इन राज्यों के शासक सामन्त थे। ये हमेशा दूसरे राज्यों को जीतकर अपने राज्य का विस्तार करना चाहते थे। इस कारण प्रायः एक दूसरे पर आक्रमण किया करता था। अतः ये अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए हमेशा सतर्क रहते थे। राज्य का केन्द्र स्थान गढ़ या दुर्ग होता था। अतः ये अपने गढ़ों को सुदृढ़ तथा दुर्भेद्य बनाते थे। प्रायः ये गढ़ वास्तुकला के अनुसार बनाये जाते थे। विघातक शक्तियों से बचाने के लिए इन कोटों पर मन्त्रपूर्वक यन्त्रों की स्थापना करते थे। इन कोटों में अस्त्र-शस्त्र रखने के लिए कोठरियां तथा गोला बारूद रखने के लिए ओखलियां बनायी जाती थीं। कोटों पर हाथी के बच्चों को लेकर अनेक शिशु क्रीड़ा करते हैं—

रचे कोट पर जहं तहं जंत्र। सोधि सोधि दिन पढ़ि पढ़ि मन्त्र।
विविध हथ्यारन की कोठरी। दारू गोलन की ओषरी ।।
कल भनिलीनैं कोट पर। षेलत शिशु चहुँ ओर ।।[४]

युद्ध करने के लिए दुर्ग की अच्छी स्थिति अधिक आवश्यक मानी जाती थी। केशवदास वीरसिंह देव से कहते हैं—युद्ध करने के लिए जितनी सामग्री की आवश्यकता

१—वही, २६।२७
२—रा० चं० १७,४।५
३—वही, १७।६,७
४—वी० च० १६।१६,१७

है उसमें से आज एक भी दिखायी नहीं पड़ती है। "न तो सैनिक शक्ति है और न दुर्ग ही ठीक अवस्था में हैं।"—

दल बल नहीं दुर्ग बल आजु। देखत नहीं दान बल साजु ॥[1]

इससे प्रकट होता है कि प्रकोट की भित्तियां बहुत चौड़ी होती थीं।

२-५२ सेनापति :

सेना को चलाने वाले के लिए सेनापति, सेनानायक, चमूपति, सेनानी आदि पर्यायों का प्रयोग केशव ने किया है। रामचन्द्रिका में राम की सेना का अधिपति सुग्रीव था। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के साथ जो सेना भेजी गयी उसका सेनापति शत्रुघ्न था।[2] सेना को सेनापति की आज्ञा का पालन करना अनिवार्य होता है। शत्रुघ्न के मूर्छित होने के बाद लक्ष्मण सेनानायक बने। जब लक्ष्मण युद्ध क्षेत्र में बेहोश हो गये तो सेना का नेतृत्व भरत ने किया।

२-५३ सेना :

सेना का वर्णन प्रत्येक महाकाव्य में किया जाता है। संस्कृत साहित्य के प्रमुख काव्य रामायण, महाभारत, रघुवंश, कादम्बरी आदि काव्यों में सेना का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है। प्राचीन काव्यों में रथ, गज, तुरंग पदाति नामक चार अंग सेना के मुख्य अंग समझे जाते थे। केशव ने प्राचीन परम्परा के अनुसार रामचन्द्रिका में चतुरंगिनी सेना—-अर्थात रथों, हाथियों, घोड़ों और पदातियों का वर्णन किया है। किन्तु समकालीन युद्धों के वर्णन में अर्थात वीरसिंह देव चरित, रतन बावनी और विज्ञान गीता में रथों का उल्लेख नहीं किया है। इस का यह कारण है कि केशव के समय तक युद्ध में रथों का प्रचार समाप्त हो चुका था। केशव के युग में सुल्तान और सामन्तों का पारस्परिक सम्बन्ध लगभग स्वेच्छाचारी सम्बन्ध था। यदि सुल्तान के पास निजी सेना थी तो अमीरों को भी विशाल सेनाएं रखने का अधिकार था और वह सेना आवश्यकता पड़ने पर सुल्तान के सहायार्थ भेजी जाती थी। दिल्ली सुल्तानों के सैनिक संगठन के बारे में केशव ने वीरसिंह देव चरित में बड़ा विशद वर्णन किया है।

केशव के साहित्य में दो प्रकार के युद्धों का वर्णन मिलता है—परम्परागत तथा समकालीन। परम्परागत युद्ध का वर्णन रामचन्द्रिका में मिलता है। इसमें चतुरंगिणी

१—वीरसिंह देव चरित्र, ११।४३
२—रा० चं० ३५।६

सेना का तात्पर्य रथ, गज, तुरंग और पदाति से है। इसमें दिव्य अस्त्रों के प्रयोग का वर्णन है। इस काल के युद्ध में नागपाश, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र आदि अस्त्रों तथा मुद्गर, गदा, शूल आदि शस्त्रों का प्रयोग हुआ है और साथ साथ उस समय मल्लयुद्ध का भी वहुत प्रचार था। इतना ही नहीं, राक्षसों के मारे जाने पर देवताओं का प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि करना, विमानों पर चढ़कर देवताओं का युद्ध का निरीक्षण करना, पेड़ों पत्थरों से एक दूसरे को मारना आदि अति मानवीय घटनाओं का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की घटनाओं का वर्णन रामचन्द्रिका में मिलता है। केशव के समकालीन युद्ध के वर्णन में तलवार, तीर, वाण, भाला आदि सामान्य शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करना, घोड़ों और हाथियों पर चढ़ कर युद्ध करना आदि वातों का उल्लेख किया गया है। उन्होंने रतन वावनी और रामचन्द्रिका को छोड़कर और किसी ग्रन्थ में रथ का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु चतुरंगिनी शब्द का प्रयोग किया है। अतः यहां चतुरंगिनी का अर्थ हाथी, घोड़े, ऊंट और पैदल लगाना युक्ति संगत प्रतीत होता है।[१] पर यहाँ इस शब्द का अर्थ रूढ़ ही मानना चाहिए। कालिदास ने सेना का वर्णन करते हुए छः प्रकार की सेना का उल्लेख किया है।[२] परन्तु ये प्रकार रथ, पैदल आदि की तरह नहीं थे। सेना कितनी स्थायी थी, कितनी अस्थायी, सेना की वृद्धि किस प्रकार होती थी आदि बातें ही इससे स्पष्ट होती हैं।

केशव साहित्य में सेना का वर्णन विविध प्रकार से मिलता है। सेना के पर्यायों का उल्लेख उन्होंने किया है—सेन[३], सेना[४], दल[५], चमू[६], कटकु[७], वाहिनी[८], जूथ।[९] सेना के लिए चतुरंग[१०] जैसा पौराणिक शब्द भी प्रयुक्त मिलता है।

२·५३१ सेना का अभियान :

युद्ध के लिए जब चतुरंगिनी सेना अभियान करती थी तब आसपास के प्रदेशों

१—वी० दे० च० १६।२०

२—षडविधं बलमादाय प्रथस्ते दिग्जिगीषया।——रघुवन्श, ४।२६

३—के० ग्रं० ४७४।५०

४—वही, ४५५।५५

५—वही, ४६६।८

६—वही, ४६०।३

७—वही, ४९०। ५

८—के० ग्रं० १६६।३७

९—वही, ३१८।१०

१०—वही, ४६५।६

में भयानक स्थिति उत्पन्न हो जाती थी। इस भयानक वातावरण का चित्रण केशव ने अपने ग्रन्थों में किया है। रामचन्द्रिका में तीन स्थलों पर चतुरंगिनो सेना के प्रयाण का वर्णन मिलता है। पहला भरत चित्रकूट में रामचन्द्र से मिलने अपनी सेना समेत जाते हैं। उस सेना को देखकर लक्ष्मण सोचते हैं कि भरत राम पर आक्रमण करने आ रहे हैं। उन्होंने भरत की सेना का वर्णन किया है। भरत के साथ युद्ध करने वे सन्नद्ध हो जाते हैं। यहां कवि ने कुछ लक्ष्मण के मुख मे वर्णन कराया है और कुछ स्वयं वर्णन कर-के उस वर्णन को विशद बनाया है। सेना के अभियान के वर्णन का दूसरा प्रसंग तब आया है जब राम की वानर सेना लंका पर आक्रमण करती है। उसका वर्णन सुग्रीव के मुंह से कराया गया है। तीसरा अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े के पीछे जाने वाली राम की सेना का वर्णन कवि ने किया है।

२-१३२ भरत की सेना का अभियान :

जब भरत चित्रकूट के निकट वाले वन में अपनी सेना सहित पहुँचे तब सेना के नगाड़ों के बजने तथा हाथियों के गरजने के शब्द से भयभीत होकर बन के नर, वानर, किन्नर आदि अपने अपने बालकों को लेकर भागे। उस वन के तपस्वी भी अपनी तपस्या में विघ्न आया हुआ जानकर भाग गये और पर्वत गुफाओं के भीतर जाकर आसन लगाया। अचानक पृथ्वी और पर्वत हिल उठे।[१]

उस सेना को देखकर लक्ष्मण ने सोचा कि भरत हमें निर्बल समझकर सेना समेत युद्ध के लिए आये हैं। हाथी चिंघाड़ते हैं, घोड़े हिनहिनाते हैं, और भंयकर समर वाद्य बज रहे हैं। भरत आज युद्ध करने आये हैं। नगाड़ों की ध्वनि दशों दिशाओं में भर गयी है। प्रातः काल भरत की चतुरंगिनी सेना चली आ रही है। घोड़ों की टापों से पिसकर पृथ्वी से धूल उड़ रही है और आकाश को जा रही है। उस उड़ती हुई धूल में अनेक पताकाएं फहराती है।[२]

२-१३३ वानर सेना का अभियान :

विजय दशमी को रामजी ने किष्किंधा के ऋष्यमूक पर्वत से लंका की ओर प्रयाण किया। साथ में बन्दरों की सेना और सेनापति हैं। वे सब आकाश में उड़ते चलते

१—रा० चं० १०।१४

२—रा० चं० १०।१६, १८, १६, २३

हैं। वे असंख्यक हैं। राम के साथ लाखों रीछ भी चलते हैं।[1] उन वानरों और रीछों की सेना का वर्णन करते हुए सुग्रीव ने राम से कहा —हे राजा रामचन्द्र, जब अपनी सेना उछलकर चलती है, तब पृथ्वी और आकाश धूल से पूर्ण हो जाते हैं। चारों ओर ऐसा जान पड़ता है, मानो घन समूह से भारी वर्षा हो रही है। आपकी सेना सर्पों, पक्षियों, वृक्षों, छोटे-बड़े पहाड़ों, बड़े हाथियों पशुओं और सिंहों के समूह को पीस डालती है। पाताल का पानी जहां तहां पृथ्वी के ऊपर आ जाता है और पृथ्वी पद्मपत्र की भांति हिलने लगती है।[2]

२-५.३४ अश्वमेध की सेना का अभियान :

अश्वमेध यज्ञ के पीछे राम की चतुरंगिनी सेना जाने लगी। जिस ओर वह घोड़ा जाता है, उसी ओर सेना भी जाती है और जहां वह घोड़ा ठहरता है वहां ब्राह्मणों को भोजन और दान दिये जाते हैं। वेणु, वीणा, मृदंग और नगारे अनेक प्रकार के रणवाद्य बजते हैं। उस सेना में असंख्याक राजा सम्मिलित हैं। श्री राम की चतुरंगिनी सेना के पैरों से कुचली जाने से भूमि से इतनी धूल उड़ी कि जल, थल पर छा गयी मानो ब्रह्मा ने पंच तत्त्वों को मिटाकर रेणुमय एक नवीन सृष्टि रची है या भूमि अपने भार का दुःख सुनाने के लिए स्वयं सुरलोक जा रही है। समस्त पृथ्वी को शोर और धूल से भरते, वनों को तोड़ते, पर्वतों को चूर्ण करते अनेक स्थलों का जल शोषित करते उस सेना ने बड़ी कीर्ति फैलाई। सेना ने उद्दण्ड राजाओं को दण्ड दिया और विनम्र राजाओं को उन्नत बना दिया। इस प्रकार सातों समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी पर अपनी धाक बैठाकर राम जी की सेना सब दिशाओं को जीत आयी।[3]

रतन बावनी में भी चतुरंग सेना के अभियान का वर्णन केशव ने किया है। रतन सेन की सेना के प्रयाण करते समय भू भार को वहन करने वाले की पीठ हिलने लगी। शेष नाग के फन झुकने लगे। सप्त समुद्र तथा कुल पर्वत हिलने लगे।[4]

वीरसिंह देव चरित्र में भी चतुरंगिनी सेना के अभियान का वर्णन केशव ने किया है।—वीरसिंह ने सेना का विभाजन कर दिया। अपने हितू और स्नेहियों से विचार कर

१—रा० चं० १४।३५,३६

२—वही, १४।३७

३—रा० चं० ३५।७,८,९,१०

४—रतन बावनी, ३७

के सेना के चार भाग कर दिये ।[१] जब सेना युद्ध क्षेत्र की ओर चलने लगी तब वृक्ष टूट रहे हैं, पत्थर फूट रहे हैं और तलवारें चमक रहीं हैं । सब दिशाओं में दुन्दुभी बजने लगी और सेना नगर के सामने चलने लगी ।[२] विज्ञानगीता में भी चतुरंगिनी सेना के अभियान का उल्लेख मिलता है । मत्त हाथी पंक्ति बद्ध होकर घोड़े और राजा साथ साथ और कुछ योद्धा तेजी से चलने वाले रथों पर बैठकर चले । पैदल सैनियों ने अपने हाथों में धनुष और बाण लेकर प्रस्थान किया ।[३]

२-५४ रथ :

युद्ध में रथों का उपयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है । उस समय राजाओं के पास रथ रहते थे । युद्ध के समय उनका उपयोग होता था । केशव के साहित्य में रथों का उल्लेख बहुत मिलता है । रथों के साथ साथ पताकाओं का भी उल्लेख मिलता हैं । ये पताकाएं विभिन्न वीरों के रथों पर विभिन्न चिह्नों से शोभित होती थीं । वीरों के रथों की पहचान इन्हीं पताकाओं के चिह्नों से होती थी । रथ के लिए केशव ने स्यंदन[४] शब्द का प्रयोग किया है ।

राम-रावण के युद्ध के समय राक्षस रथों पर बैठकर युद्ध करने निकले । विभीषण ने रावण के महाबली योद्धाओं का परिचय देते हुए श्रीराम जी से कहा जो बड़ा धनुष लिये हुए और रथ पर सवार है, जिसकी ध्वजा पर सिंह का चिह्न है और जिसे देखकर योद्धा डरते हैं वह इन्द्रजित मेघनाद है ।[५] जो व्याघ्र मुख रथ पर बैठा है और जिसकी ध्वजा में भी व्याघ्र का ही चिह्न है और जिसे देखकर देवता भयभीत होते हैं वह अतिकाय हैं ।[६] जो सुवर्ण रथ पर आरूढ़ और जिसकी ध्वजा पर मयूर चिह्न है और जिसने स्वर्ग को लूट लिया है, वह महोदर नामक वीर है ।[७] जिसके रथाग्र पर सर्पध्वजा विराजमान है और जिनकी कान्ति सूर्य मण्डल को तिरस्कृत करती है, वह देवान्तक नामक वीर है ।[८] जिसके रथ में घोड़ों की पंक्ति जुती हुई है, जिन्हें देखकर पवन का वेग भी लज्जित होता है, जिनकी पताका में श्वेत शार्दूल शोभित होता है वही वीर रावण है । जब शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी पर आक्रमण किया तब भी केशव ने रथों का उल्लेख किया है । शत्रुघ्न के साथ युद्धानुरागी हाथी और रथ भी चले ।[९] रतन बावनी में भी केशव ने

१—वी० च० ११।५६
२—वही, १७।३०
३—वि० गी० ११।२
४—रा० च० १५।३७
५—वही, १७।३२
६—वही, १७।३३
७—वही, १७।३४
८—वही, १७।३५
९—वही, ३४।४६

रथों का उल्लेख किया है—आगे गज सेना, तदनन्तर पदाति, बाद को रथ और सब के पीछे अश्व सेना चलने लगी।[१] ऊपर के उल्लेखों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि केशव के समय रथों का प्रचार बन्द हो गया था तो भी परम्परा के आधार पर केशव ने रथों का वर्णन किया।

२-५५ हाथी :

भारतीय संस्कृति में हाथी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य में हाथी को स्थान मिल गया है। इस का महत्व धार्मिक भी है और राजवर्गीय भी। इनसे राज भवन की शोभा बढ़ती है और युद्ध के समय इन से बड़ी सहायता मिलती हैं। इसका उपयोग समाज के मंगलकारी-कामों में भी होता है। बाण-भट्ट ने कादम्बरी में वेत्रवती का वर्णन करते हुए लिखा है कि युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात हाथियों के कुम्भस्थल पर सिंदूर लगाया जाता था और उन्हें वेत्रवती नामक नदी में छोड़ दिया जाता था। उन के मस्तक के कुंकुम के मिल जाने के कारण उस नदी का जल लाल हो जाता था।[२] परन्तु मुख्यत: हाथी का उपयोग समर क्षेत्र में ही परिलक्षित होता है। केशव ने हाथी के कई पर्यायों का प्रयोग किया है।—हथियान[३], करी[४], करिनी[५], गज[६], या इससे विकसित गय[७], गयन्द[८], करेनुका[९], कुंजकर[१०], मातंग[११], मतंग[१२], आदि। नाग[१३], पील[१४], दुरद[१५], बारन[१६], कलप[१७], सिंदुर[१८] जैसे कम प्रचलित पर्यायों का प्रयोग करके केशव ने अपने शब्द ज्ञान का विस्तृत परिचय दिया है। साथ ही इतने पर्यायों का प्रयोग हाथी के विविध सास्कृतिक संदर्भों का ही परिचायक है। राजा के दान, युद्ध, महानता को प्रकट करने के लिए और रमणीयता की गति के उपमान के रूप में हाथी का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है। केशव ने युद्ध के संदर्भ में हाथी, गज, करेनुका, मातंग, मतंग, दन्ती आदि पर्यायों का प्रयोग अधिक किया है।

१—र० बा ३८
२—कादम्बरी पृ० २
३—के० ग्रं० ४६६।७
४—वही, ३२।१६
५—वही, ६।१३
६—वही, ४६५।१
७—वही, १३१।१
८—वही, २१६।५३
९—वही, १३७।३२
१०—वही, २२३।४७
११—वही, १८०।२५
१२—वही, ४७६।८
१३—क० प्रि० ६।४४
१४—र० प्रि० ८.१७
१५—क० प्रि० ७।३०
१६—वही, १८।३७
१७—राम० चं० ६।२४
१८—नखशिख, १

चित्रकूट पर राम से मिलने जानेवाले भरत की सेना के वर्णन के सन्दर्भ में केशव ने हाथियों का सुन्दर वर्णन किया है–"बड़े-बड़े हाथियों पर झूलें सोहती हैं। उनके मस्तक की शोभा अति सुन्दर है। मणि जड़ित घुंघुरूवाले घण्टों की आवाज मन को आकर्षित करती है।"[१] यदि युद्ध में हाथी, क्रुद्ध हो जाता तो वह वीर विहार कर लेता है और अनेक वीरों को रौंद देता है। केशव ने वीरसिंह देव चरित में मदमत्त हाथियों का वर्णन किया है।" वीरसिंह की गज सेना ने बेनवा नदी में सभी को रौंद दिया। हाथी गरजने लगा। वह ऐसा है मानो वह हजारों लोगों को चुनौती दे रहा है।"[२] वीरसिंह देव चरित में केशव ने अकबर की सेना और वीरसिंहदेव के मध्य संगठित युद्ध के वर्णन में हाथियों का उल्लेख किया है। युद्ध स्थल में हाथी गर्जना कर रहा है और घोड़ों पर चढ़कर वीर युद्ध कर रहे हैं। तोपों से गोले छूट रहे हैं।[३] युद्ध क्षेत्र में रथों और हाथियों पर बैठे हुए वीरों की शोभा अत्यन्त आकर्षक होती है। युद्ध क्षेत्र के भयानक और भीभत्स वातावरण का चित्रण करते हुए केशव ने लिखा है–'अनेक योद्धा रणभूमि में मरे पड़े हैं। असंख्यक हाथियों और रथों पर वीर योद्धा शोभित है। खून की धारा में वह जाने वाले घोड़े मगर-मच्छों के समान तथा चंवर-कछुओं के समान दीख पड़ते हैं। रथ के चक्र चक्रवाक पक्षियों के समान दिखायी पड़ते हैं।[४] इस उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि युद्ध क्षेत्र में सेना के इतर अंगों का विनाश होने पर भी हाथी और रथ सुरक्षित रह सकते हैं। युद्ध में वीर कभी-कभी हाथियों के दांत काट डालते हैं जिससे वे क्रुद्ध हो कर स्वपक्षीय सेना को ही नष्ट कर डालते हैं। इस बात का उल्लेख केशव ने रतन बावनी में किया है।" रतनसेन ने अपने सैनिकों से कहा कि युद्ध में शत्रुओं के शरीरों का खण्ड खण्ड कर डालो और हाथियों के दान्त काट डालो। इस प्रकार केशव ने सेना के अंगों में महत्वपूर्ण स्थान हाथी को दिया है।

२–५६ घोड़ा :

हाथी के समान घोड़े का भी राजनैतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। इसका पौराणिक महत्व भी है। घोड़े का महत्व आर्थिक तथा युद्ध सम्बन्धी दृष्टिकोण से प्रकट होता है। केशव साहित्य में इन दोनों दृष्टियों से इसका वर्णन मिलता है। आर्थिक दृष्टिकोण से इसकी प्रधानता का वर्णन 'आर्थिक दशा' के प्रसंग में हो चुका है। यहाँ केवल युद्ध सम्बन्धी दृष्टिकोण से ही इस पर विचार किया जाता है।

१—रा० चं० १०।१७
२—वी० च० ६।४७
३—वही, ३।३३
४—वि० गी० १३।१२

केशव ने घोड़े के अनेक पर्यायों का प्रयोग किया है। घोटक,[१] घोर,[२] तुरंग,[3] या तुरग,[४] या तुरंगम,[५] हय,[६] बाजि,[७] तुरी,[८] वडवा,[९] घोड़ी आदि। घोड़ा 'नारी' की चंचल चितवन का उपमान भी बना है।[१०]

ऐसा प्रतीत होता है कि विदेशी आक्रमणों के साथ घोड़े का महत्व भी बढ़ा और घोड़े की अनेक जातियां भी भारत में धीरे धीरे प्रविष्ट हुई। घोड़े के लक्षण, गुण और जातियों के सम्बन्ध में एक शास्त्र ही विकसित हुआ, यद्यपि इस प्रकार का साहित्य पहले भी था। केशव ने शालिहोत्र नामक ऋषि को इस ज्ञान का प्रवर्तक माना है। शालिहोत्र या अश्व-विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक ज्ञान का प्रदर्शन केशव ने घोड़ों के वर्णन के संदर्भ में किया है। गुण, रंग, वंश, देश आदि के आधार पर केशव ने घोड़ों के अनेक भेदों का उल्लेख किया है। केशव ने गुणों के आधार पर घोड़ों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

कल्लू घोड़ा	....	कूद कूद कर अपनी कुशलता प्रकट करने वाला।[११]
बिगड़ैल घोड़ा	....	अपने सुमों से जमीन पर कुछ लिखकर दुष्टों का दिल दहलानेवाला।[१२]
कंधारी और पलकाई घोड़े	....	सुख देने वाले।[१३]
गुरगी और गिरद जाति के घोड़े	....	घूंघट निकालकर चलते हैं और युद्ध में चोटों को सहन करते हैं।[१४]
अनवारू	....	चंचल होता है और चौ घर चाल चलता है। चाबुक लगते ही इसका क्रोध बढ़ता है और इसके चंचल नेत्र आकर्षक होते हैं।[१५]

१—के० ग्रं० ४६६।८ २—वही, ३०२।८८
३—वही, २४।२१ ४— ,, ५५६।७
५— ,, ५२२।१८ ६— ,, ४७३।४१
७— ,, ४६६।२४ ८—र० प्रि० १।१५
९—क० प्रि० ११।८३ १०—के० ग्रं० ४८।१७ तुरल तुरंग, अवलोकन अनत गति
११—बी० च० १७।२६ १२—वही, १७।२७
१३—वही, १७।२७ १४—वही, १७।२८
१५—वही, १७।२६

हीरा, हिरनागर, हरसिंह, हौस और हांसवास घोड़े	....	ये बहुत मूल्यवान होते हैं।[१]
शुभ लक्षणवाला	....	तरवा लाल तथा खाल कोमल होता है।[२]
शक्तिशाली घोड़ा	....	दांत चिकने और सुदृढ़ होते हैं।[३]
सर्वश्रेष्ठ घोड़ा	....	नेत्र बड़े, आभायुक्त, पुतली काली और चंचल होते हैं।[४]
प्रवीण	....	इसका वक्षस्थल चौड़ा तथा गर्दन पतली होती है।[५]
अशुभ	....	जिसके चारों पैर काले होते हैं और सारा शरीर सफेद है तो वह साक्षात् यमराज है।[६]
श्रेनी	....	मस्तक पर तीन भोंरी होती हैं। यह घर में धन-धान्य बढ़ाता है।[७]
विवेकी	....	जिसकी नाक पर भोंरी रहती है।[८]

रंग के आधार पर केशव ने प्रधान रूप से जिन घोड़ों का वर्णन किया है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

खररिया घोड़ा	....	इसका रंग काला होता है।[९]
मटमैल रंग का घोड़ा	....	इसका रंग मटमैल होता है और यह दूर से देखने में बहुत सुन्दर लगता है।[१०]
पंचकल्याणी	....	इसके चारों पाँव और माथे का रंग सफेद और शेष भाग अन्य किसी रंग का होता है।[११]
बादामी रंग का घोड़ा	....	वह बड़ा शक्तिशाली होता है।[१२]

१—वी० च० १७।४०
२—वही, १७।४८
३—वही, १७।४८
४— ,, १९।४६
५— ,, १७।५१
६— ,, १७।६१
७— ,, १७।६२
८— ,, १७।६५
९— ,, १७।२६
१०— ,, १७।३४
११— ,, १७।३५
१२— ,, १७।३६

वंश के आधार पर केशव के साहित्य में मुख्य रूप से ये घोड़े पाये जाते हैं :

कसानवंशी घोड़ा	....	काबुल के नरेश ने इसे वीरसिंह देव को उपहार के रूप में दिया था।[1]
तुरकी घोड़ा	....	तीर के समान चलता है और कभी
	....	नहीं थकता।[2]
ब्राह्मण जाति का घोड़ा	....	इसका रंग सफेद होता है।
क्षत्रिय वंश का घोड़ा	....	इसका रंग लाल होता है।
वैश्य वंश का घोड़ा	....	इसका शरीर पीला होता है।
शूद्र वंश का घोड़ा	....	इसका रंग काला होता है।
मिश्र वंश का घोड़ा	....	इसका रंग मिश्रित होता है।[3]

देश के आधार पर भी केशव साहित्य में कुछ घोड़ों का उल्लेख किया गया है। मुलतान, मागध, मत्स्य और राठ देश के घोड़े।[4]

सिन्धु तट के घोड़े	....	ये बहुत आकर्षक होते हैं।[5]

केशव ने कद के आधार पर भी घोड़ों के प्रकारों का उल्लेख किया है। जैसे, "अधिकांशतः घोड़े का मुख बत्तीस, तीस और सत्ताईस अंगुल का होता है और इसी क्रम से वे उत्तम, मध्यम, तथा अधम कोटि में आते हैं।"[6] इसी प्रकार घोड़ों के बुरे लक्षण तथा ऐसे घोड़ों को पास रखने से होने वाली हानियां[7] तथा उनके दांतों की संख्या के आधार पर उनकी आयु का भी उल्लेख केशव ने किया है।[8]

२-५७ पैदल :

जो बिना किसी वाहन के युद्ध करते हैं उन्हें पैदल या पदाति कहते हैं। डा० शांतिकुमार नानूराम व्यास के अनुसार पैदल सेना दो भागों में बंटी थी। तलवार और भाले से लड़ने वाले सैनिक और धनुषबाण से लड़ने वाले सैनिक।[9] केशव के समय में

१—वी० च० १७।३७
२—वही, १७।३३
३—वही, १७।४५
४— ,, १७।३८
५— ,, १७।३९
६— ,, १७,६४
७— ,, १७।६८
८— ,, १७।७२
९—रामायण कालीन समाज, पृ० २८४

धनुष बाणों का प्रचार कम हो गया था अतः पौराणिक युद्ध प्रसंगों में ही उन्होंने धनुष बाण का उल्लेख किया है। रामचन्द्रिका में राम-रावण युद्ध के सन्दर्भ में राम की सेना में केवल पैदल सेना का ही उल्लेख केशव ने किया है। राम के पक्ष से लड़ने वाले सभी वानर और रीछ पैदल सेना के ही अन्तर्गत आते हैं। मन्दोदरी की उक्ति से यह बात प्रमाणित होती हैं। उसने रावण से कहा कि तुम यह सोचकर राम को असमर्थ मत समझो कि उनके पास चतुरंगिनी सेना नहीं है। जिसने तुम्हारे पूज्य देव शंकर का धनुष तोड़ डाला वह तुम्हारी लंकापुरी क्यों न जीत लेगा—

श्रीरघुनाथ गनौ असमर्थ न देखि विना रथ हाथिन घोरहि ।
तोरयो सरासन संकर को जोहि सोऽवे तुव कहा लंक न तोरहि ॥[1]

जब लव ने राम के अश्वमेध के घोड़े को पकड़ा तब उनकी सेना ने आकर उसे घेर लिया। लव ने सब भटों को मारकर इस प्रकार भगा दिया जैसे काम बाण सब प्रकार के ज्ञानों को भगा देते हैं।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव के समय में पैदल का युद्ध में मुख्य स्थान था।

२-५८ युद्ध क्षेत्र :

जो स्थान युद्ध के लिए अनुकूल होता है और जहाँ युद्ध होता है, उसे युद्धक्षेत्र कहते हैं। इसके लिए खेत, समर भूमि, रण-रंग आदि पर्याय से केशव में अधिक मिलते हैं। यह युद्धभूमि बहुत भयानक तथा वीभत्स दृश्यों से भरी रही थी। केशव ने युद्धक्षेत्र का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। जामवन्त और हनुमान ने देखा कि वह रण क्षेत्र बड़ा ही भंयकर हो रहा है। रक्त की ऐसी बड़ी नदी बही है जिसका कहीं आर पार नहीं है। यत्रतत्र ध्वजा पताका और बड़े शरीर वाले राजा कटे पड़े हैं। वे ऐसे दीख पड़ते हैं मानो आंधी से टूटे बड़े वृक्ष हों।[3] युद्ध क्षेत्र में कुछ वीरों के कंधे टूट रहे हैं और कुछ के सिर धड़ से अलग हो रहे हैं। अनेक योद्धा गिरकर युद्ध कर रहे हैं। सभी योद्धा तलवार लेकर लड़ रहे हैं। इन्द्रजीत के मारे गए योद्धा अपने घोड़ों पर से गिर रहे हैं और अनेक योद्धा वार होने पर नटों की तरह कलाबाजी कर रहे हैं।[4] रण रंग में कहीं पर तो नगाड़ा पड़ा हुआ था और कहीं पर तरकस और कहीं पर तीर पड़े हुए थे।

१—रा० चं० १५।७ २—वही, १५।१५
३—वही, ३७।१
४—वी० च० १२।३४,३५

रेजा और तलवार कहीं पर पड़ी हुई थी। कहीं रुण्ड मुण्ड लुढ़क रहे थे। कहीं पर चंवरों के ढेर पड़े हुए थे और कहीं योद्धा हिल रहे थे तथा कहीं लुढक रहे थे।[1] इस प्रकार केशव के साहित्य में जितने युद्धों का वर्णन हुआ है, उन सभी में युद्ध क्षेत्र का प्रभावोत्पादक, रूढ और आलंकारिक वर्णन किया गया है।

२-५६ व्यूह रचना :

केवल सेना के बल पर ही नहीं अपितु सेनापति के कौशल पर भी विजय आधारित रहती है। एक चतुर सेनापति अपनी सेना की व्यवस्था के कारण शत्रु के धैर्य को हर लेता हैं। इसी व्यवस्था को व्यूह रचना कहते हैं। महाभारत के सेनापतियों में आचार्य द्रोण व्यूह रचना करने में बड़े निपुण थे। उन्होंने पद्म, मकर, चक्र आदि व्यूहों की रचना करके पांडव सेना को भयभीत कर दिया था। उनके पद्म व्यूह से बाहर निकलने में असमर्थ होकर ही अभिमन्यु मारा गया था। डा० शान्ति कुमार नानूराम व्यास के अनुसार सेना के विभिन्न प्रकार के व्यूहों में रचना की जाती थी, यथा श्येन, सूची, वज्र, शकट, मकर, दण्ड, पद्म आदि। राम को गरुड व्यूह विशेष प्रिय था। बिखरे हुए दुर्ग में से जो जो राक्षस सैनिक बाहर निकलने की चेष्टा करते, उनसे वानर योद्धा जूझ जाते। इस प्रकार जब शत्रु के अधिकांश सेनाध्यक्ष और सैनिक मारे गये तब सुग्रीव ने रावण की अनुमति से लंका में आग लगा दी। परिणाम यह हुआ कि दुर्ग में छिपी हुई फौजों को बाहर निकल आने के लिए बाध्य होना पड़ा। रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद तथा अन्य प्रमुख राक्षस वीर राम और उनके साथियों द्वारा मारे गये।[2] केशव ने अपने साहित्य में व्यूहों का वर्णन कहीं नहीं किया है। किन्तु सैनिक व्यवस्था का उल्लेख किया है जो लगभग व्यूह के समान ही दुर्भेद्य थी। लंका पर आक्रमण करते समय राम की सेना की व्यवस्था इसप्रकार थी—सेना की दक्षिण दिशा में अंगद, पूर्व दिशा में नल, पश्चिम की ओर हनुमान और उत्तर की तरफ राम और लक्ष्मण थे। सुग्रीव उस सेना के केन्द्र स्थान में अवस्थित थे। इसके साथ यूथपति और उनकी सेना थी। विभीषण उस सेना के आसपास थे। जहां जिस चीज की आवश्यकता पड़ती थी, उसे वहां पहुँचाने का प्रबन्ध भी किया गया था। इस प्रकार राम की सेना ने लंका को चारों ओर से घेर लिया।[3] रावण की सैनिक व्यवस्था भी न्यूनाधिकतया इसीप्रकार उल्लिखित है। जब रावण ने सुना कि श्रीराम ने लंका को घेर लिया है तब उसने प्रहस्त को पूरब के द्वार पर, दक्षिण द्वार पर महोदर को और पश्चिम द्वार पर इन्द्रजीत को नियुक्त किया तथा उत्तर द्वार

१—वही, ५।६०,६१

२—रामायण कालीन समाज, पृ० २१५

३—रा०म० चं० १७।२,३

पर स्वयं खड़ा हो गया। विरूपाक्ष को सेना के केन्द्र में रखा गया।[1] केशव के समय युद्ध में तोप, बन्दूक, गोला बारूद आदि का उपयोग किया जाता था। इसलिए तोपखाना को युद्ध में प्रधान स्थान दिया जाता था। इस के फल स्वरूप सेना की व्यवस्था में तोपखाने को सबसे अग्र स्थान दिया जाता था। केशव ने इसका उल्लेख किया है। सब से आगे तोपखाना रखा और उसके पीछे हाथी थे और उनके पश्चात वीर समाज था। इस प्रकार से चारों ओर सेना थी और उनके बीच में प्रतापराय था।[2]

कुछ पौराणिक युद्धों में राक्षस अपनी शांबरी विद्या के प्रभाव से अलौकिक युद्ध किया करते थे। वे लोग सारे युद्ध क्षेत्र को अन्धकारमय बनाते थे तथा शत्रु पक्षवालों को भ्रम में डालते थे। महाभारत में भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने इसीप्रकार के युद्ध से कौरव सेना को भयभीत कर दिया था। रामचन्द्रिका में केशव ने इन्द्रजीत के इसीप्रकार के माया युद्ध का वर्णन किया है। इन्द्रजीत ने तपोबल से माया का अन्धकार पैदा कर दिया जिससे वानरों को बड़ा धोखा हुआ।[3]

२-५-१० अस्त्र-शस्त्र :

युद्ध के लिए जाते समय सभी सैनिक शरीर की रक्षा के लिए कवच, तनत्राण[4], बख्तर[5] आदि पहनते थे। सिर की रक्षा के लिए पगडी[6] या पग सिरस्त्राण पहनते थे। विविध प्रकार के आयुध[7] वीरों के द्वारा प्रयुक्त होते थे। इनके लिए हथियार[8] या हथ्यार[9], शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। धनु[10], सायक[11], सरासन[12], कोदण्ड[13], कमन[14], वाणु[15], सर[16], पत्री[17], अस्त्र[18], की कोटि में आते हैं। तूणीर[19], या छषुधी[20] भी इसी अस्त्र से सम्बन्धित हैं। धनुष बाण का युद्ध सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन है।

१—रा० चं० १७।४,५
२—वी० च० १२।१२,१३
३—रा० चं० १७।८
४—वी० च० ८।२५
५—वही, ५।६६
६—वही, ५।६६
७—के०ग्र०, पृ० २०३।१०
८—वही, २६७।३७
९—वही, १७१।११
१०—वही, ४७३।४४
११—वही, ११३।१४
१२—वही, २०८।६०
१३—वही, २४५।१४
१४—वही, १२।३४
१५—वही, १५२।१८
१६—वही, १८।७१
१७—रा० चं०
१८—के० ग्रं० ४।५।४
१९—वही, २०६।५०
२०—वही, ४०६।१२

इनका वर्णन विशेषतः रामचन्द्रिका में हुआ है। शस्त्र[१] की कोटि में इन हथियारों का वर्णन मिलता है। कुठार[२], गदा[३], सौल[४], सैल[५], सांगी[६], कृपाण[७], छुरी[८], खरबैंर[९], तरवार[१०], असि[११], खड्ग[१२], सैहन्थी[१३], सकती[१४], पहिस[१५], तोमर[१६], कुन्ता[१७], बिन्दपाल[१८], मोगर[१९], (मुद्गर) कटरा[२०], जमघट[२१], खजुआ[२२] शत्रु के प्रहार से बचने के लिए ढाल[२३], का प्रयोग होता था। मुसल(मूसल)[२४], पट्टिश (खांडा जो दो धार और चार हाथ लम्बा होता है)[२५], परिग[२६], (गन्डासा), बर्छी।[२७] इनके अलावा पावक शर (अग्नि बाण)[२८], नागपाश[२९], आदि अति मानवीय शस्त्रों का वर्णन केशव में मिलता है। वानरों के पहाड़ लेकर रावण को मारने का उल्लेख भी रामचन्द्रिका में मिलता है।[३०]

मुख्यतः मुसलमानों के आगमन के पश्चात गोला बारूद का युद्ध आरम्भ हुआ। इससे सम्बन्धितकुछ शब्द भी केशव में मिलते हैं। जैसे— दारू (बारूद)[३१], कुणाल (तोप)[३२], बटा (गोला)[३३], इत्यादि।

१—वही, १४४।२९
३—वही, २७६।१८
५—वही, ४७०।२७
७—वही, २४७।४७
९—वी च० १०.१७
११—वही, ४६६।१०
१३—वही, ८।४१
१५—वही, ६।१२
१७—वही, २६।४६
१९—वही, १६।४६
२१—वही, ८।३१
२३—रा० चं० ३६।२२
२५—वही, १९।४६
२७—वही, ८।२९
२८—रा० चं० १७।३६
२९—रा० चं० १७।१३
३०—वही, १७।३६
३१—वी० च० १६।१४
३२—के० ग्रं० २५४।१२
३३—रा० चं० ३८।२३

२—वही, २२१।२३
४—वही, ३५४।१२
६—वही, ४१८।५४
८—वही, ५६।८
१०—के० ग्रं० ४७२।४०
१२—रा० चं० ३६।६
१४—वही, ८।४७
१६—वही, २९।४६
१८—वही, १९।४६
२०—वही, १९।४६
२२—वी० च० १२।३३
२४—रा० चं० १९।४६
६—वही, १९।४६

२-४-११ युद्ध के वाद्य :

शत्रु पर आक्रमण करने के पहले तथा विजय के बाद अपने विजयोल्लास प्रकट करने के लिए कई प्रकार के बाजे बजाये जाते थे। उनके द्वारा योद्धाओं में युद्ध के प्रति उत्साह बढ़ जाता था। महाभारत के युद्ध में (देवदत्त) की बड़ी प्रशंसा की गयी है। अर्जुन के शंख की ध्वनि सुनकर शत्रु दल भयभीत होता था। इसी प्रकार प्रायः सभी पौराणिक युद्धों में वाद्यों का बड़ा उल्लेख किया गया है। केशव के साहित्य में भी इन बाजों का उल्लेख मिलता है। ये बाजे दो प्रकार के होते थे। नगारा, भेरी आदि वाद्य तथा शंख आदि बाजे। इन दोनों प्रकार क वाद्यों का उल्लेख केशव में मिलता है। रावण के युद्ध के लिए प्रयाण होते ही बड़े बड़े नगाड़े बजने लगते तथा मत्त हाथी युद्ध भूमि में चिंघाड़ने लगे—

दीह दुंदुभी अपार भांति भांति बाजहि।
युद्ध भूमि मध्य कुद्ध मत्त दन्ति गार्जहि॥[१]

प्रहस्त के मारे जाने के कारण रावण को बड़ा दुःख हुआ। वह स्वयं युद्ध के लिए चला। उसके चलते ही अनेक ढोल और नगाडे बजने लगे।[२] मारू बाजों को बजवाकर सरदार के सिर पर पैर रखकर वीरसिंह देव ने पार किया।[३] केशव ने कुछ स्थलों पर युद्ध वाद्यों के बजाने का वर्णन नहीं करके केवल सूचना मात्र दी है। दोनों दिशाओं से भयानक शब्द हुआ जिसे सुनकर आकाश और पृथ्वी दोनों कांप उठे।

तुमुल शब्द दुहुँ दिशि भयौ भूतल हल्यौ आकाश।[४]

शत्रु के मारे जाने पर भी योद्धा वाद्य बजाकर अपना आनन्द प्रकट करते थे। लक्ष्मण ने युद्ध में मेघनाद को मारकर विजय शंख बजाया था।

रण मारि लक्ष्मण मेघनाद स्वच्छ शंख बजाइये।[५]

युद्ध में जीतने के बाद वीरसिंह की विजयश्री का ढंका बजने लगा।[६]

१—रा० चं० १६।३६
२—रा० चं० ११।३०
३—वी० च० ६।४८
४—वि० गी० १२।१६
५—रा० चं० १८।३५
६—वी० च० १२।४०

२-५-१२ वीरगति :

हिन्दू धर्मावलंबियों का विश्वास है कि जो रण क्षेत्र में मर जाते हैं उनकी कीर्ति अमर हो जाती है और उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होती है। केशव ने इस विश्वास का भी उल्लेख किया है। महाराज मलखान, प्रतापरुद्र, परशुराम आदि अनेक वीरों ने क्षत्रियों को मारकर अमर कीर्ति पायी है।[१] रतनसेन ने अपने सैनिकों से कहा कि तुम लोग मुगलों के साथ युद्ध में वीर गति को प्राप्त करके अप्सराओं का वरण कर लो। सब मिल कर युद्ध करके सूर्य मंडल को भेद कर लो।[२] रण क्षेत्र क्षत्रिय के लिए पावन तीर्थ माना जाता था।[3]

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि युद्ध में मरे हुए वीरों को अप्सराओं की प्राप्ति होना तथा सूर्य मण्डल को भेद कर ऊपर जाना एक पौराणिक विश्वास की परम्परा में आते है और केशव ने उसका अनुगमन किया है। युद्ध भूमि को छोड़कर भागने से अधिक लज्जा की बात वीरों के लिए कोई नहीं होती। इसलिए वीर भागकर प्राण बचाने की अपेक्षा रण रंग में प्राण छोड़ देना उचित मानता है। अबुल फजल शेख पठान से कहता है कि योद्धा युद्ध में मरना अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए अब इस स्थान को छोड़कर मैं नहीं भागता। यदि इस अवसर पर भागता हूं तो मुझे लज्जा से मरना होगा। लज्जा के मारे मरने की अपेक्षा मैं युद्ध क्षेत्र में मरना अधिक पसन्द करता हूं। युद्ध में प्राण छोड़ने वाले देवरूप को प्राप्त करते हैं और उनके साथ विराजमान होते हैं। वे वीर अप्सराओं के साथ कल्पद्रुम के नीचे क्रीड़ा करते हैं।

क्षत्रिय युद्ध क्षेत्र को एक पुण्यक्षेत्र के समान मानते हैं। क्योंकि उनका विश्वास है कि तीर्थस्थान से जो पुण्य मिलता है वही पुण्य युद्ध मेंप्राणोत्सर्ग करने से मिलता है।

२-६ आर्थिक व्यवस्था :

२-६१ आर्थिक मूल्य :

अर्थ या धन का तात्पर्य सिक्कों से ही नहीं है। धान्य, गवादि पशु, घरबार, खेत-खलिहान, हाथी, घोड़े ऊनी वस्त्र आदि सभी वस्तुएं उसके अन्तर्गत आती हैं। राष्ट्र या व्यक्ति के जीवन में अर्थ का महत्व भली भान्ति प्रकट है। समाज के जीवन मूल्यों

१—र० बा० १६।२०
२—वही, ७
३—रा० चं० ३६।३२

को दो भागों में बांटा जा सकता है—आर्थिक मूल्य और अर्थेतर मूल्य । इन दोनों के सामंजस्य और संतुलन पर ही स्वस्थ समाज व्यवस्था संभव है । संतुलन बिगड़ जाने पर समाज की व्यवस्था भी बिगड़ने लगती है । बहुधा इतिसास में यह देखा जाता है कि आर्थिक जीवन मूल्य प्रबल होते हैं, अर्थात अर्थेतर या आध्यात्मिक मूल्य इन से अभिभूत हो जाते हैं । यह समाज के अस्वास्थ्य के ही लक्षण हैं । वस्तुतः मानवीय जीवन मूल्यों से आर्थिक मूल्य अनुशासित होना चाहिए । केशवदास ने वीरसिंह देव चरित में आर्थिक मूल्यों के प्राधान्यका उल्लेख किया है—लोभ दान से कहता है कि संसार में कोई किसी का मित्र नहीं है । यहां केवल धन ही सब का मित्र है । वही पण्डित और साधु है, जिस के घर में अगाध धन सम्पति है । जब घर पर धन सम्पत्ति है तो मित्र और याचक सभी घर पर आते हैं । पुत्र व कलत्र अपने चरित्रों द्वारा चित्त को प्रसन्न करते हैं ।

काहू कौ नहीं कोउ मित्त । मित्त अकेला ही जग मित्त ।।
सोई पण्डित सोई साधु । जाके घर में वित्त अगाधु ।।
नीच ऊंच सब जातै होइ । ऊंचहि नीच बखानत लोइ ।।
ना वित्तहि तू तृनवत् गनै । बहुत त्रिवूचै तो से घनै ।।[1]

किन्तु अर्थगत जीवन मूल्यों का समर्थन और एकान्त आर्थिक मूल्यों की निन्दा उसी प्रसंग में दान करता है । दान वस्तुतः हृदय के औदार्य आदि गुणों का प्रतीक है । उसकी दृष्टि में मनुष्य का मूल्यांकन केवल अर्थ के संदर्भ में नहीं किया जाना चाहिए । अन्य सद्गुणों का संदर्भ इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । दान लोभ से कहता है कि जिस वित्त को तू प्रधानता देता है उसके ज्ञान को तू नहीं जानता । वित्त तेरे पास कभी नहीं रह सकता । इसे सारा संसार जानता है । जिस धन को धनी संसार में धन मानते हैं उसे मेरे अभाव में नहीं प्राप्त किया जा सकता । सब से अधिक दुर्लभ और नीच वस्तु धन ही है । धन के महत्व को केशवदास ने स्वीकार कर लिया है । अर्थ के प्रबल होने पर आर्थिक संघर्ष इतना दुर्द्धर्ष हो जाता है कि धन छीना झपटी रक्त पात से अपना मूल्य चुकाता है । धन की सुरक्षा भी संकट में पड़ जाती हैं । इसलिए केशव ने कहा कि अनेक कष्टों को सहकर धन प्राप्त करना ही प्रर्याप्त नहीं । किन्तु सावधानी से उसकी रक्षा का ज्ञान रखना भी आवश्यक है । इन्द्र ने अपने धन की रक्षा के लिए सुमेरु पर्वत को अपना मन्दिर बना रखा है और कुबेर नवोंनिधियों की रक्षा बड़ी सावधानी से करता है ।[2]

१—वी० च० १।४१,४२

२—वही, १।२४

२-६२ आर्थिक व्यवस्था :

एक सुशासित राज्य का मूलाधार अर्थ होता है। एक प्रकार से राज्य व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था अन्योन्याश्रित है। राज हीन देश में कृषि की उन्नति नहीं हो सकती। व्यापार की व्यवस्था अस्त-व्यस्त होती है और देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक प्रगति रुक जाती है। वित्तशास्त्र को प्राचीन भारत में वार्ता की संज्ञा दी जाती थी। वार्ता शब्द का प्रयोग वैश्यों के तीन प्रमुख धन्धों कृषि, गोचारण, और व्यापार के लिए किया जाता था। प्राचीन काल से ही राजनैतिक परिस्थिति के साथ लोगों के आर्थिक जीवन में भी परिवर्तन होता आ रहा है। इस विषय में प्रो० वासुदेव उपाध्याय लिखते हैं कि अत्यन्त प्राचीन समय में साम्राज्य की स्थापना के साथ साथ शासकों ने विकेन्द्रीकरण की नीति को इसलिए अपनाया कि समाज की अवस्था सुधरी रहे और जनता सुख का अनुभव करें। साम्राज्य के अन्तर्गत गावों में पंचायतें स्थापित की गयीं और नगर प्रबन्ध की व्यवस्था की गयी। उससे ग्राम और शहर के निवासी अपनी भलाई के लिए स्वयं प्रयत्नशील हो गये। गांव के मुखिया को कृषि सम्बन्धी बातों की चिन्ता रहती तो नगर का श्रेष्ठी व्यापार की उन्नति में संघ वालों के साथ संलग्न रहता था। इस प्रकार शासन में विकेन्द्रीकरण के कारण समाज में लोग शान्ति का अनुभव करने लगे तथा वैभवपूर्ण हो गये।

धन के महत्व को केशवदास ने स्वीकार कर लिया है। उनके अनुसार अनेक सिद्ध भी अर्थ की ही साधना करने लगते हैं। उसकी प्राप्ति के लिए बहुत से मनुष्य आत्मोत्सर्ग कर देते हैं। अनेक विधाएं उसके स्वरूप को जानने कीचेष्टा करती हैं। किन्तु उसे प्राप्त करने तथा उसके स्वरूप को जानने में असफल हो जाते हैं।[1] अर्थ युग में कोई किसी का मित्र नही इस संसार में केवल धन ही सब का मित्र होता है। वही पण्डित और साधु है जिसके पास अपार धन है।[2]

२-६३ राज व्यय :

इतिहास मे पता चलता है कि प्राचीन भारत देश अत्यन्त वैभव संपन्न था। यहाँ की प्रजा सुख से जीवन व्यतीत करती थी। यहां का नागरिक जीवन उल्लासमय था।

१—वी० च० १।४६

२—वही, १।४१

यात्रियों के वर्णन तथा लेखों के उल्लेख द्वारा पता लगता है कि नगर, तीर्थ तथा व्यापारी केन्द्र में बसाये गये थे—यहां के लोग चमकते हुए रेशमी कपड़े पहनते थे। नगर ऊंचे भवनों तथा उद्यानों से सुशोभित था।[१] केशवदास ने अपने ग्रन्थों में मुगलकालीन वैभव का समग्र चित्रण किया है। अयोध्या के भवनों का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि वहाँ के लोगों के भवन बहुत ऊंचे थे। वे सब प्रकार विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।[२] राम राज्य का तो उन्होंने अत्यन्त विलासमय वर्णन किया है। वहां के लोग अष्ठ सुखों का अनुभव करते थे।[३] वहां सब जनों के यहां कल्पवृक्ष के बाग थे। उनके दरवाजों पर हाथी बंधे रहते थे। सब के घरों में नव-निधियां विराजमान थीं और अष्ठ सिद्धियों का अनुभव करते थे।[४] राज महलों में सफेद और पीली मणियों के झंझरीदार चमकीले परदे तने थे जिन्हें देखकर लोगों के नेत्र प्रसन्न होते थे। सफेद हीरों का आंगन था जहाँ लाल रंग का हिन्डोला पड़ा हुआ था, अनेक स्त्रियां झूलती थीं।[५] अयोध्या के बगीचे का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं कि वहां कई प्रकार के वृक्ष तथा लताएं फूलों फलों से सुशोभित थे। वहां फव्वारों की पंक्तियां थी जिनकी जलधाराएं ऊपर उठती थीं।[६]

लंका का वर्णन करते हुए केशवदास ने तत्कालीन सामन्तीय वैभव का उल्लेख किया है। वहां कहीं कोई स्त्री मदिरा पीती थी, कोई माला गूंथती थी, कोई कहीं नाच रही थी, कहीं कोई गा रही थी और कहीं कोई सुग्गी को पढ़ाती थी।[७] वीरसिंह देव चरित में जहांगीरपुर के वर्णन के संदर्भ में वहां के उपवन नदियां, क्रीड़ा पर्वत, स्त्रियों की विलासमय चेष्टाएं आदि के चित्रण के द्वारा केशव दास ने एक प्रकार का मुगलकालीन विलासमय जीवन ही अंकित किया है। उस नगर के बाजार मणियों के जाल से शोभित थे। बीच बीच में मुक्ताओं की मालाएं थी। वहां के राजा वीरसिंह देव और उसकी प्रजा सुखमय जीवन बिताती थी।[८] अबुल फजल की मृत्यु की वार्ता सुनकर विलाप करते

१—प्रो॰ वासुदेव उपाध्याय, पूर्वमध्यकालीन भारत, पृ० १२४

२—रा॰ च० १।३७ ३—वही, २८।४

४—वही, २८।१४—नवनिधियां : पदम, महापदम, शंख, मकर, कच्छप, कुन्दा, मुकुन्दा, नील और वर्चस। अष्ठ सिद्धियां : अणिमा, महिमा, गरिमा, लगिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईषत्व, वशित्व।

५—रा० च० २९।४१

६—जलयन्त्र विराजत पान्ति भली है।
घरते जलधार आकाश चली हैं॥ —रा० च० ३२.१४

७—रा० च० १३।५१

८—वी० च० २७।३

हुए अकबर ने कहा था कि हाथी, घोड़े, बाजार, मणि गायक, राग, बाग, फल, फूल, विलासिता, आसन, भूषण, भाजन, भवन, बितान, पूरी सम्पत्ति, विद्या विनोद के साधन तथा विलास सामग्री सब शेख के बिना व्यर्थ हो गये।[1] केशव ने विलासिता को बढ़ाने वाले घनसार, गुलाबजल, फुलेल, आदि सुगंध द्रव्यों का भी चित्रण किया है।[2]

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि केशव के समय उत्तर भारत के सामन्तीय वर्ग की आर्थिक दशा सन्तोष जनक थी। किन्तु उस धन का उपयोग प्रजा की सुविधा के लिए न होकर राजवर्ग के विलासमय जीवन में व्यय होता था। यही कारण है कि जहाँ सामन्तीय वर्ग विलासमय जीवन व्यतीत करते थे- वहां सामान्य जनता भूखों मरती थी। इस प्रकार राजकीय आय का दुरुपयोग होता था।

२-६४ राजकीय आय :

२-६४१ कर :

इस समय के शासक करों के द्वारा अपने कोश की वृद्धि करते थे। राजकीय आमदनी का मुख्य स्रोत कर ही था। व्यापारिक संस्थाओं तथा किसानों से कर वसूल किया जाता था। केशव ने कर वसूल करनेवाले के लिए 'जगाती' शब्द का प्रयोग किया है :

बधिक जगाती बनिक सुनार।
इन्हें आदि हौ मीत अपार॥[3]

कर वसूल करने वाले अधिकारी किसानों को नाना प्रकार के कष्ट देते थे। वे कभी कभी नियमित कर से अधिक वसूल करते थे और हड़प लेते थे। उसका समर्थन इस बात से होता है कि केशव ने वधिक, सुनार, बनिक आदि के साथ जगाती का भी समावेश किया है। इतिहास से विदित होता है कि अकबर के पहले हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अवैध कर लगाये जाते थे। व्यापारियों से जो कर लिया जाता था उसे दान कहते थे। इस विषय के सम्बन्ध में डा० मायाराणी टण्डन लिखती हैं कि व्यापारी लोग जब घाट विशेष या नदी पार करते थे तो इनको दान अर्थात् कर या चुंगी देनी पड़ती थी जिसे

१—वही, १८।१६
२—क० प्रि० ६।१७
३—वी० च० १।२०

लेकर अष्टछापी कवियों ने दानलीला का वर्णन किया है। दान लेने का अधिकार शासन की ओर से मिलता था। अर्थात् दानी की नियुक्ति शासन की ओर से होती थी।[१] केशव दास ने रसिक प्रिया में एक स्थल पर उसका उल्लेख किया है। श्रीकृष्ण नायिका की दासी से पूछते हैं कि तुम्हारी स्वामिनी कल दधि दान देने को कह गयी थी, वह आज नहीं आयी, तुम ही दधि दान दे दो।[२] प्राचीन काल में राजा की आय का प्रमुख स्रोत "बलि षड भाग" अर्थात् प्रजा की आय का छठा भाग होता था। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में इस प्रथा की ओर संकेत किया है। जब राजा दुष्यन्त कण्व के आश्रम में प्रवेश पाने का उपाय सोचने लगते हैं तब विदूषक नीवार धान्य का छठा भाग मांगने के उद्देश से आश्रम में प्रवेश पाने का उपाय बताता है।[३] राजा दुष्यन्त भी मानते हैं कि दूसरे वर्णों से प्राप्त होने वाला धन विनाशशील है। परन्तु तपस्वियों के तपोधन से जो छठा भाग मिलता है वह अनश्वर है।[४] इससे स्पष्ट होता है कि शासकों को प्रजा से धन का ही छठा भाग नहीं अपितु तपोधन का भी छटा भाग मिलता था। शासकों को सामन्तों से भी कर और उपहार के रूप में धन मिलता था।

२-६४२ कृषि :

भारत बर्ष का मुख्य व्यवसाय कृषि है। प्राचीन काल में प्रायः सभी प्रकार के अनाज और फल यहां होते थे। कृषकों की प्रत्येक प्रकार की सुविधा का ध्यान रखा जाता था। गुप्तकाल में भूमि के लिए एक माप का उल्लेख मिलता है जिसे कुल्यावाप कहते थे। कुल्या अनाज मापने का एक साधन था उसी के आधार पर उस भू भाग को एक कुल्यावाप कहते थे जिसमें एक कुल्य अनाज बोया जा सके।[५] अकबर के समय में भी टोडरमल ने भूमि को नाप कर उसका कर बढ़ाया था। उसका उल्लेख केशव ने किया है—

टोडरमल तब मित्त मरे सबही सुख सोयौ।[६]

१—अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पृ० ४२२

२—देहिरी, कालिह गयी कहि दैन पसारहु ओलि भरो पुनि फेटी। —र० प्रि० ५।३५

३—नीवार षष्ठ भाग मस्माकमुपहरन्त्विति। —अभिज्ञानशाकुंतल, द्वितीय अंक

४—यदुत्तिष्टति वर्णेभ्यो नृपणांम् क्षयि तत्फलम्।
तपःषड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यकाहिनः—अभिज्ञानशाकुंतल, २।१३

५—प्रो० वासुदेव उपाध्याय पूर्वमध्यकालीन भारत, पृ० १२३

६—वी० च० ३।६४

इससे अनुमान किया जा सकता है कि मुगलकाल में खेती का बहुत प्रचार था। किन्तु इस समय के किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। इस युग में अन्न की समस्या ही मुख्य समस्या थी। इस अन्न की समस्या ने समाज में विषमता ला दी थी। केशव के समकालीन तुलसीदास ने भी इस ओर संकेत किया है—

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि
बनिक को न बनिक, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीध्यमान सोचबस ॥[१]

यह स्थिति समाज में तभी उत्पन्न होती है जब राजा की ओर से किसानों की कोई रक्षा नहीं होती या दुर्भिक्षा के निवारण की उपेक्षा की जाती। केशव ने खेती के छः शत्रुओं की ओर संकेत किया है जिसके द्वारा खेती का विनाश हो जाता है। तत्कालीन किसानों की दयनीय दशा को देखकर शायद केशव का मन विक्षुब्द हुआ होगा। इसी कारण रामराज्य की याद करके उस समय के कृषि कार्य का चित्रण केशव ने किया है— रामचन्द्र के राज्य में ईतियों[२] का तो कोई भय नहीं। भय तो केवल इस बात का है कि कोई निर्धन न रहे और दरिद्रता से अधीर होकर कोई कुकर्म न कर बैठे।[३] केशव खेती को धन प्राप्ति का साधन मानते हैं। धन प्राप्ति के साधनों में उन्होंने खेती को भी स्वीकार किया है।[४]

केशव का सम्पर्क नगरों से अधिक होने के कारण खेती के बारे में जानने अथवा उसके बारे में उल्लेख करने का अवकाश उन्हें बहुत कम मिला है तो भी एक दो स्थलों पर उन्होंने उल्लेख किया है कि उनके समय खेती की दशा अच्छी थी। विरहिणी नायिका किसी सखी के साथ घूमते हुए कहती है कि हरे भरे खेतों को देखकर तेरा हृदय मुग्ध हो जाता है पर मैं दुःखी हूं।[५] राम राज्य का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वहां समस्त पृथ्वी खेती से ही परिपूर्ण थी और सब वृक्ष सदा ही फूले फले थे, जिनकी शोभा देखकर कल्पवृक्ष भी लज्जित होता था।[६]

१—गोस्वामी तुलसीदास
२—अतिवृष्टिः अनावृष्टिः मूषिकाः शलभाः शुकाः।
स्वचक्रं च परचक्रं च सप्तैताः ईतयः स्मृताः ॥—
३—कवि० प्रि० ८।५
४—लेवा देई विविध प्रकार। खेती कीजै बहु व्यापार॥ —वी० च० १।४८
५—र० प्रि० ११।४
६—रा० चं० २८।१

खेतों की सिंचाई मुख्यतः वर्षा पर आधारित रहती है। यदि ठीक समय पर वर्षा नहीं होती तो सिंचाई के कृत्रिम साधनों का प्रयोग किया जाता है। बड़ी बड़ी नदियां, जलाशय, तालाब, कूप आदि सिंचाई के कृत्रिम साधन हैं। केशव ने अपने साहित्य में शिवपुत्री[1], बेतवा[2], गंगा[3], सरयू[4], आदि नदियों का वर्णन किया है।

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि केशव के साहित्य में प्रत्यक्ष रूप से खेती का वर्णन नहीं किया गया है, तो भी यत्र-तत्र बिखरे हुए खेती तथा उससे सम्बद्ध बातों के द्वारा अनुमान लगाया जा सकता है कि केशव ने परम्परा पालन करने के लिए ही अपने साहित्य में खेती का उल्लेख किया है।

२-६४३ बाग, बगीचे और तडाग :

कृषि के सहकारी धन्धे के रूप में फलों और फूलों के बाग, बगीचे लगाने की प्रथा आज भी बहुत प्रचलित है। इन बाग बगीचों में पैदा होनेवाले फलों के द्वारा देश की आर्थिक दशा उन्नत होने की सम्भावना है। केशव ने वीरसिंह देव चरित तथा रामचन्द्रिका में बाग बगीचों का सुन्दर वर्णन किया है। इस प्रसंग में उन्होंने अनेक प्रकार के वनस्पतियों, पुष्प वृक्षों, लताओं आदि का वर्णन किया है। केशव ने इतने पेड़ पौधों तथा लता-गुल्मों के नाम गिनाये हैं, जिनकी एक लम्बी सूची बन सकती है। इसके संबंध में अन्यत्र विचार किया गया है।[5] रामचन्द्रिका में केशव ने तड़ागों और नदियों को जल-पूर्ण दिखाकर अप्रत्यक्ष रूप से दशरथ और राम के राज्य काल में प्रजा की सुख समृद्धि का संकेत किया है।

२-६४४ पशु-धन :

कृषि और पशुपालन दोनों अन्योन्याश्रित धन्धे माने जाते हैं। पशुपालन में सर्वाधिक महत्व गोपालन का था। भारत धार्मिक तथा कृषि प्रधान देश होने के कारण गाय को यहां महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्राचीन काल से भारत में गाय को मुख्य संपत्ति माना जा रहा है। केशव ने एक जगह पर संकेत किया है कि गायों की संख्या के द्वारा किसी की संपत्ति का अनुमान लगाया जा सकता था।[6] गायों के समान बैलों का

१—वी० च० १।१० २—वि० गी० १।३
३—वि० गी० ८।३ ४—रा० चं० १।२७
५—इस सम्बन्ध में द्रष्टव्यः प्रस्तुत अध्ययन में अध्याय ४।
६—क० प्रि० ११।१८

भी महत्व केशव ने माना है। वीरसिंह देव चरित में जहांगीरपुर के वर्णन के संदर्भ में केशव ने लिखा है कि यहां नन्दी के समान बड़े बड़े बैल थे।[१] देश की आर्थिक स्थिति बढ़ाने में हाथी, घोड़ों का भी कम महत्व नहीं है। केशव साहिय में उनका उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गया है। इनके विषय में अन्यत्र विचार किया गया है।[२]

२-६४५ व्यापार-वाणिज्य :

प्राचीन भारत में कृषि के बाद व्यापार की मुख्यता थी। भारत के बड़े बड़े शहर व्यापार के केन्द्र थे। भारत में केवल ग्राम ही नहीं थे, विशाल नगर भी बहुत प्राचीन काल से विद्यमान थे। उस समय मथुरा, ताम्रलिप्त, कन्नौज, उज्जैनी, पाटलीपुत्र आदि व्यापार के मुख्य केन्द्र थें। व्यापार जल और स्थल मार्ग से होता था। बड़े बड़े जहाज बड़े व्यापार के लिए बनाये गये ये। अरब, फिनीषिया, फारस, मिश्र, ग्रीस चम्पा, जावा, सुमात्रा आदि के साथ भारत का व्यापार होता था।[३]

केशव साहित्य में व्यापारी के लिए वनिक[४], शब्द का प्रयोग हुआ है। पाणिनि के काल में व्यापारियों के लिए वणिक[५] और वणिज[६] ये दोनों शब्द प्रयुक्त होते थे। उन दिनों व्यापारी किसी भी जाति का हो वह वणिज कहलाता था।[७] पद्मावत में व्यापारी के लिए बनिजारा शब्द प्रयुक्त हुआ है।[८] केशव के युग में व्यापार उन्नत दशा में था। व्यापारी अपनी चीजों को बाजार में रखकर बेचते थे। कभी कभी व्यापारी अपना माल लेकर सेना के साथ भी चलते थे।[९] अयोध्या नगर के वर्णन के सन्दर्भ में केशव ने वहां के वैश्यों को सत्य सहित तथा पाप रहित बता कर उनकी सचाई की ओर संकेत किया है—

वैश्य सहित सत्य, रहित पाप प्रगट मानिये।[१०]

१—एक बृषभ नदी आकार।—वी० च० १७।६
२—एक विषय में द्रष्टव्य प्रस्तुत अध्ययन का चौथा अध्याय।
३—वी० च० १७।२६, २७, ८, २९, ३०, ४०, ४१
४—वही, ४।१७
५—पाणिणी कृत अष्टाध्यायी, ३।३।५०
६—वही, ६।२।१३
७—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिणि कालीन भारत, पृ० २२०
८—आ० रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, बनिजारा खण्ड, पृ० ३०
९—वी० च० ४।१७
१०—रा० चं० १।४३

उस युग में माल तोलने के लिए आज कल के सामान तराजू का उपयोग किया जाता था। कवि ने लिखा है कि जिस प्रकार सोना तोलने का काँटा केवल आधे तिल के भार भेद से बराबर नहीं रह सकता, वैसे ही कविता सुनने में सधे हुए कान छन्दोभंग को सहन नहीं कर सकते।[१]

प्राचीन काल से ही विदेशियों के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया है। 'देश की अतुल सम्पत्ति का आंशिक कारण विदेशियों के साथ उसका व्यापार भी था। यह व्यापार स्थल तथा जल मार्ग से होता था। उत्तर पश्चिम से होकर अरब पार कर यूरोप तक भारतीय माल जाया करता था। काश्मीर से मध्य एशिया और वहां से चीन को व्यापारी जाते रहे।'[२] केशव ने जल मार्ग से भी व्यापार होने का उल्लेख रामचन्द्रिका में किया है। कृत्रिम पर्वत से निकली हुई तीन नदियों के बर्णन के प्रसंग में उन्होंने लिखा है कि उन नदियों में लवंग पुष्प की पंखुड़ियों का सेउटा पड़ता है, लाची पुष्पों की पंखुड़ियां मोथा है, केले के पुष्प के बड़े बड़े दलों की नावों में सुगन्ध की वाणिज्य वस्तुएं लदी हुई हैं। उन नदियों में यही नावें हैं और मधुपान से मत्त भ्रमर ही उन नावों को केवट के रूप में खेते हैं।[३] केशव ने अपने साहित्य में नारियों के द्वारा सुगन्ध द्रव्यों का उपयोग करने की बात लिखी है।[४] इससे अनुमान किया जा सकता है कि उस युग में भारत में सुगन्ध द्रव्य बनाये जाते थे। इसका समर्थन प्रो० वासुदेव उपाध्याय जी के इस कथन से होता है— 'नवीं सदी का यात्री खुर्दा जबाने ने भारत से बाहर जाने वाली इन चीजों की सूची दी है जो अरब तथा ईराक भेजी जाती थी। उनमें चन्दन, कपूर, लवंग, जायफल, नारियल, कवाबचीनी, कपड़े तथा मखमल, हाथी दान्त, मोती, मूल्यवान पत्थर आदि चीजों के नाम मिलते हैं।[५]

इस युग में लेन देन की प्रथा भी खूब प्रचलित थी, जिसके द्वारा तत्कालीन आर्थिक दशा का परिचय मिलता है। केशव के अनुसार केवल पत्र लिख देने से ही ऋण मिल जाता है।[६] किन्तु ऋण से पीड़ित व्यक्ति के मन में दुःख होता है इसी बात को केशव ने

१—क० प्रि० ३।११

२—प्रो० वासुदेव उपाध्याय. पूर्व मध्य कालीन भारत, पृ० १३१

३—रा० चं० २८।३०, ३१

४—क० प्रि० ६।१७

५—पूर्वमध्यकालीन भारत, पृ० १३३

६—लिखि देत रिन काढ़ि। वि० च० १।५८

एक जगह पर स्पष्ट किया है। उनके अनुसार ऐसे पत्र का फटना भला है जिससे ऋण से छुटकारा मिले।[1] कालिदास ने भी इसी विषय का उल्लेख अपने नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम् में अप्रस्तुत रूप से प्रकट किया है। शकुन्तला को पति गृह भेजने के बाद कण्व महर्षि सोचते हैं कि कन्या दूसरे का धन है। आज उसे उसके पति गृह भेजकर मेरा मन उसी प्रकार प्रसन्न हुआ जिस प्रकार दूसरे का न्यास धन लौटाने पर मानव को होता है।[2] उस समय लेन देन अनेक प्रकार चल रहा था। केशव ने एक स्थान पर इस ओर संकेत किया है —

लेवा-देई विविध प्रकार [3]

२-६४६ विविध व्यवसायी :

देश की आर्थिक स्थिति बढ़ाने के लिए विविध व्यवसायी सहायक होते हैं। सामान्यत: इनके अन्तर्गत वे व्यवसायी आते हैं जो वस्तु विशेष का स्वयं उत्पादन और निर्माण करके समाज में उनका विक्रय करते हैं। केशव साहित्य में वर्णित कुछ मुख्य व्यवसायी इस प्रकार हैं।

२-६४६१ अहीर :

केशव की रसिक प्रिया के नायिका-नायक जिन परिवारों में पले थे, वे अहीर के थे। केशवदास ने अहीर के लिए गोप, ग्वाल, ग्वार तथा उसकी स्त्री के लिए गोपी, ग्वाली आदि शब्दों का प्रयोग किया है। गायों को पालना और उनका दूध दुह कर उस से दही, माखन, घी आदि चीजें बनाकर बेचना इस वर्ग का व्यवसाय रहा। कुछ विद्वानों का मत है कि 'अहीर' शब्द की व्यत्पत्ति संस्कृत के 'आमीर' शब्द से हुई जिसका अर्थ है दूधवाला। कृष्ण के पिता नन्द और राधा के वृषभानु दोनों अहीरों के राजा थे। अधिकांशत: लोग दूध और दही बेचकर ही अपनी जीविका चलाते थे। मटके में दूध दही आदि चीजें लेकर मथुरा की ओर जाती हुई गोपिकाओं का उल्लेख केशव ने एक स्थान पर किया है।[4] अहीरों के व्यवसाय का यह क्रम आज भी चल रहा है, यद्यपि उनकी स्त्रियों का

१—क० प्रि० ११।७३
२—कन्याहि अर्थो परकीय एव, तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो मयायंविषदः प्रकामं प्रत्यर्पित न्यास इवांतरात्मा।—शाकुन्तल, ४।२२
३—वी० च० १।४८
४—र० प्रि० ५।३५

दूध, दही आदि बेचना अब प्रायः बन्द हो गया है।

२-६४६२ स्वर्णकार :

स्वर्ण के आभूषण बनाने वालों को स्वर्णकार कहते हैं। लोक की भाषा में इसे सुनार और इसकी स्त्री को सुनारिनी कहा जाता है। इनमें अनेक लोग यज्ञोपवीत धारण करते हैं। अन्धविश्वासी लोग सुनार को मार्ग में मिलना अपशकुन मानते हैं। केशवदास ने अंगूठियां, हार, कठुले बेसर आदि आभरणों का उल्लेख किया है, जिससे तत्कालीन स्त्रियों की आभूषण प्रियता का प्ररिचय मिलता है। उन्होंने अपने एक स्वर्णकार मित्र का उल्लेख किया है जिसका नाम था मतिराम और वह राजकीय स्वर्णकार था। वह बड़ा चतुर चोर था। अनेक कायस्थों के निगरानी करते रहने पर भी उसकी स्त्री सोना राख भरते समय चुरा लेती थी। उसके विषय में केशव ने उल्लेख किया है।[1]

२-६४६३ कुलाल :

मिट्टी के वर्तन बनाने और बेचनेवाले को कुलाल कहते हैं। प्रचलित भाषा में इसे कुम्हार कहते हैं। कुम्हार समाज की बड़ी महत्वपूर्व सेवा करता है। क्योंकि वह गृहस्थी के उपयोग में लाये जाने वाले सब बर्तनों का निर्माता है। उसके व्यवसाय से सम्बन्धित एक प्रमुख शब्द केशव में मिलता है, वह है 'चक्र'।[2] चक्र एक गोल पत्थर होता है जिसको घुमाकर हाथ के कुशल स्पर्श से मिट्टी के तरह तरह के बर्तन बना डालता है।

२-६४६४ अन्य व्यवसायी :

अनेक व्यवसायों तथा व्यवसायियों का स्पष्ट उल्लेख न मिलने पर भी केशव साहित्य में उनकी ओर संकेत मिलता है। केशव साहित्य में अनेक स्थलों पर हीरे, मणि, माणिक्य, वज्र, स्फटिक आदि की चर्चा की गई है। इससे स्पष्ट होता है कि खान, समुद्र आदि से इनके निकालने, साफ करने, काटने आदि व्यवसाय भी निश्चित ही उस युग में प्रचलित रहे होंगे।

२-६५ सामान्य जन की आर्थिक स्थिति :

वाणिज्य व्यवसाय का सम्बन्ध अपने सीमित अर्थ में शुद्ध व्यापारी वर्ग से है जो

१—तुलातोल कसवा न बनि कायथ लिखत अपार।
राम भरत मतिराम पैं सोसो हरित सुनार॥ —क० प्रि० १२।१६
२—केसोदास कुशल कुलाल चक्र चक्रमान।

प्रधानतः वस्तु विशेष का उत्पादन अथवा क्रय विक्रय के द्वारा धनोपार्जन करते हैं । किन्तु इसके व्यापक अर्थ का सम्बन्ध समाज के उन सभी अन्य वर्गों से है जो जीविकोपार्जन में समर्थ हैं और किसी भी प्रकार का कार्य करके अपने परिवार का पालन पोषण करते हैं । इस प्रकार जीवन बिताने वालों में उक्त पेशेवरों के अतिरिक्त वैद्य, आचार्य आदि भी समाज का उपकार करते हुए अपनी जीविका चलाते थे ।

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि केशव के समय सामन्तीय वर्ग की आर्थिक दशा उन्नत थी । उनका मुख्य आर्थिक स्रोत कृषि और व्यापार था । इन व्यवसायियों के द्वारा उन्हें कर के रूप में धन प्राप्त होता था । सामान्य प्रजा की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय थी । वे विविध प्रकार के व्यवसायों से अपनी जीविका कमाते थे । अहीर, सुनार, कुलाल, धोबी, नाई, रंगरेज, ढाढी, नट आदि अपने वंश परम्परागत वृत्तियों के द्वारा अपनी जीविका कमाते थे । केशव के पूर्वज भी पुराण पाठक के रूप में प्रसिद्ध थे । स्वयं केशव ने भी राज दरबार से सम्बन्ध रखे थे । अत, उनके साहित्य में तत्कालीन आर्थिक दशा सम्बद्ध व्यवसायों का उल्लेख होना स्वाभाविक भी है । यद्यपि केशव ने उनका सविस्तार वर्णन नहीं किया तो भी उनका स्पर्श तो अवश्य किया है ।

२-७ निष्कर्ष :

केशव साहित्य के आधार पर तत्कालीन समाज का समग्र यथार्थ चित्र पा लेना कठिन ही है । केशव एक परम्परा भुक्त सामाजिक जीवन से सम्बद्ध थे । जहां कहीं उन्हें अवसर मिला है पुरातन समाज के आदर्शों का कथन ही उन्होंने किया है । केशव का समाज स्मृतियों के द्वारा स्थापति समाज से भिन्न नहीं है । वर्णाश्रम व्यवस्था का मोह केशव की कल्पना को यथार्थ चित्रण से रोकता है । इतना सब होते हुए भी तत्कालीन अस्फुट झांकियां कुछ न कुछ मिल ही जाती हैं । इन झाँकियों में भी अधिकांश का सम्बन्ध सामान्य जन के सामाजिक जीवन से नहीं है । विशिष्ट शासक वर्ग या उच्च वर्ग के सामाजिक जीवन का परिचय ही इस साहित्य में मिलता है । शासन, न्याय, नीति, युद्ध आदि के वर्णन में केशव ने जितनी रुचि ली है उतनी समाज की सामान्य संस्थाओं के वर्णन में नहीं ली । इसलिए केशव साहित्य के आधार पर समग्र सामाजिक जीवन को स्पष्ट नहीं किया जा सकता । कुछ खण्ड चित्र ही हाथ आते हैं । पर केशव की सामाजिक दृष्टि अत्यंत सीमित भी नहीं है । □

तृतीय अध्याय : केशव साहित्य में संस्कृति

३-० प्रस्तावना :

सामान्य रूप से कोई भी साहित्य सांस्कृतिक तत्वों से अछूता नहीं रह सकता। किसी देश का प्रबन्ध साहित्य तो उसकी समग्र संस्कृति का प्रतिनिधित्व ही करता है। गीति काव्य में सांस्कृतिक तत्वों का समावेश इतनी तीव्रता के साथ नहीं हो पाता। केशव की प्रवृत्ति यद्यपि आचार्य कर्म की ओर झुकी होने के कारण मुक्तक परक भी थी, किन्तु उनके समस्त संस्कारऔर जीवन क्रम समस्त सांस्कृतिक परम्परा के साथ घुलमिल गये थे और उनका कवि कर्म इन सबके आग्रह से प्रबन्ध की ओर झुक जाता था। इसी लिए केशव साहित्य में सांस्कृतिक तत्वों का निरूपण मनोरंजक होगा।

प्रकृति और संस्कृति में परस्पर वैसा दृश्य है। विकास कीकुछ स्थितियों में समन्वय और सामंजस्य रहता है और कुछ स्थितियों में परस्पर कट जाते हैं। रीतिकालीन मानस में प्रकृति की अपेक्षा संस्कृति का आग्रह ही अधिक प्रबल था। प्रकृति के कवि के जीवन का तादात्म्य नहीं था। प्रकृति का जो रूप शास्त्रीय अनुशासन में बन्धा हुआ काव्यरूढ़ हो गया था वही उस युग के काव्य में आ पाया। प्रकृति के सम्बन्ध में पौराणिक परम्परा भी कुछ कहती आयी है। प्राकृतिक उपादानों के साथ कुछ आधिदैविक और सांस्कृतिक तत्व इस परम्परा ने जोड़े। इस पौराणिक स्पर्श ने प्रकृति को एक विशिष्ट जीवन प्रदान किया। भक्तिकाल में जब पौराणिक पुनरुत्थान हुआ तो प्रकृति का यह रूप भी तत्कालीन साहित्य में परिणति पाने लगा। केशव साहित्य भी प्रकृति के इस पौराणिक रूप को अपना कर चला। प्रस्तुत अध्याय में प्रकृति के इस सांस्कृतिक रूप को भी स्पष्ट किया गया है।

केशव का व्यावहारिक सम्बन्ध अभिजात वर्ग से था। उनका वंश जाति गत और धार्मिक आभिजात्य से अनुप्राणित था। अत: यह स्वाभाविक है कि केशव साहित्य

में अभिजात संस्कृति के ही तत्व अधिक मिलें। किन्तु आभिजात्य के सघनतम वातावरण में भी आदिम मानस और लोक संस्कृति के तत्व आये बिना नहीं रह सकते। अवशिष्टरूप में ये अपनी सत्ता बनाये रखते हैं। इन अवशिष्टों का अध्ययन संसार के अनेक विद्वानों ने किया है। केशव साहित्य में अभिजात संस्कृति के साथ साथ लोक संस्कृतिक तत्व भी विद्यमान हैं। अतः प्रस्तुत अध्याय के तीन स्तर हो जाते हैं: (१) प्राकृतिक संस्कृति (२) शिष्ट संस्कृति इसमें कलाविलास भी सम्मिलित हो जाता है (३) लोक संस्कृति।

३-१ प्राकृतिक वर्णन :

सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रकृति मानव की सहचरी है। प्रकृति के विभिन्न नयनाभिराम रूपों ने मानव हृदय को सौन्दर्यानुभूति एवं मस्तिष्क को भावनापूर्ण चिन्तन का विस्तार दिया है। अतः हृदय और मस्तिष्क का समन्वित रूप काव्य प्रकृति से अस्पृष्ट नहीं रह सकता। संस्कृत साहित्य अगणित और अमूल्य काव्य-रूढ़ियों तथा प्राकृतिक वर्णनों से भरा हुआ है। हिन्दी साहित्य संस्कृत साहित्य से अपनी काव्योपयोगी सामग्री लेता आ रहा है। अतः संस्कृत के अन्य अमूल्य काव्य रूढ़ियों के साथ-साथ प्रकृति वर्णन की परम्परा भी हिन्दी में आ गयी। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण का बड़ा विकास हुआ है।

चराचरात्मक सृष्टि को हम स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित कर सकते हैं-- मानवीय सृष्टि और मानवेतर प्राणी तथा प्राकृतिक सृष्टि। कवि के काव्य में दोनों प्रकार की सृष्टियों का वर्णन किया जाता है। कवि प्राकृतिक वस्तु वर्णन में दो प्रकार के दृष्टिकोणों को अपनाकर चलता है। पहला वह अपने काव्य में कवि परम्परा गत वस्तु विशेष का केवल नामोल्लेख करता है और दूसरा नामोल्लेख के अतिरिक्त उन पर अपना रंग चढ़ाकर उन्हें आकर्षक बनाता है।

केशवदास ने अपने काव्य में प्रकृति वर्णन के विषय में दो परम्पराओं का अनुसरण किया। पहली में कथा वस्तु के अनुसार प्रकृति और प्राकृतिक स्थलों के चुनाव की परम्परा है जिसमें रामचन्द्रिका में वनगमन के अवसर पर मार्ग स्थित वन, पंचवटी, पम्पासर, तथा प्रवर्षण पर्वत तथा शरत् का वर्णन आता है। इसी प्रकार विज्ञान गीता के काशीपुर, गंगानदी, वर्षा और शरद् के वर्णनों को भी इसी वर्ग के अन्तर्गत मान सकते हैं दूसरी में कुछ प्राकृतिक स्थलों का वर्णन केशव ने महाकाव्यों की परम्परा के अनुसार किया है जिसमें रामचन्द्रिका के सूर्योदय, प्रभात, चन्द्र, उपवन और जलाशय तथा विज्ञानगीता केद्वीपों तथा सरिताओं का वर्णन और वीरसिंह देव चरित के उपवन, जलाशय

आदि का वर्णन आता है। उनके साहित्य में प्राकृतिक स्थानों के नाम चाहे वाल्मीक, कृष्णदत्त, सूर, तुलसी आदि के काव्यों के अनुरूप ही हों परन्तु उनका वर्णन केशव का अपना है। कवि परम्परा तथा अपने समय की कुछ विशेष ग्रन्थों में प्राकृतिक वर्णनों की विशेषताओं को स्वीकार करके केशव ने अपने ग्रन्थों में प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन किया है। केशव के प्राकृतिक वर्णनों पर संस्कृत कवियों का प्रभाव पड़ा है। इस सम्बन्ध में डा० रघुवंश का अभिप्राय उल्लेखनीय हैं—केशव ने कृत्रिम पर्वत और नदी का वर्णन किया है। जिनका उल्लेख संस्कृत काव्यों में क्रीड़ाशैल के नाम से हुआ है। यह राजसी वातावरण काप्रभाव माना जा सकता है। केशव संस्कृत के पण्डित थे और हिन्दी के आचार्य कवियों में हैं। ये अपनी प्रवृत्ति में अलंकार वादी हैं। इन कारणों से इनके वर्णनों में संस्कृत के कवियों का अनुकरण और अनुसरण दोनों ही मिलते हैं। इन्होंने प्रमुखतः कालिदास, बाण, माघ तथा श्रीहर्ष से प्रभाव ग्रहण किया है।[१] केशव साहित्य में प्रस्तुत प्राकृतिक वर्णन को निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है : (१) प्राकृतिक स्थान (२) वनस्पति वर्ग और (३) मानवेतर जीव जन्तु।

३-११ देश निरूपण :

इस शीर्षक के अन्तर्गत केशव साहित्य में वर्णित (क) वन (ख) पर्वत (ग) समुद्र (घ) नदी-तीर्थ और (ङ) जलाशय की चर्चा की जाती है।

३-१११ वन :

केशव ने वन के लिए कानन[२], विपिन[३], आदि शब्दों का प्रयोग किया है। केशव ने कामवन, विश्वामित्र के आश्रम का वन, दण्डकारण्य और पंचवटी इन चार वनों का वर्णन किया है। नीचे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

यज्ञरक्षार्थ विश्वामित्र के साथ जाते समय राम और लक्ष्मण कामवन मार्ग से गये थे। यह वन मुनियों के निवास स्थान तथा सुन्दर वृक्षों के कारण मन को प्रसन्न कर देता था। उक्त वन के नाम के सम्बन्ध में कवि ने बताया है कि वहां पर महादेव ने

१—प्रकृति और काव्य, पृ० २४८

२—रा० चं० ३।२

३—वही, ८।२६

मन्मथ को भस्म किया था।[१] डा० शान्तिकुमार नानूराम के अनुसार यह वन "बलिया" जिले में सरयू गंगा के संगम पर स्थित था।[२] अब सरय गंगा का संगम स्थल भिन्न है, क्योंकि सरयू पूरब में हट गयी है।[३]

विश्वामित्र के तपोवन प्रसंग में केशव ने उस वन के वृक्षों लताओं आदि का रूढ़ वर्णन सूची शैली में किया है।[४] वृक्षों के होने न होने के औचित्य पर केशव ने ध्यान नहीं दिया। इस विषय में लाला भगवानदीन जी लिखते हैं कि 'एला, लवंग, पुंगीफल और राजहंस का बिहार के जंगलों में होना असम्भव है। परन्तु कवि प्रणाली के अनुसार इन का वर्णन होना चाहिए। इसलिए केशव ने इनका वर्णन किया है।[५] इस मत के समर्थन में डा० विजयपाल सिंह लिखते हैं—यहां उल्लेखनात्मक रीति पर कवि ने देशकाल की सीमा का ध्यान न रखते हुए वृक्षों और पदार्थों के नाम गिना दिये हैं। इस तथ्य से कवि को कोई प्रयोजन नहीं कि दक्षिण में पाये जाने वाले एला, लवंग और पुंगीफल अयोध्या और मिथिला के मध्यवन में कैसे हो सकते हैं। सम्भवत: विचित्रवन कह कर कवि ने विश्वामित्र के तप: प्रभाव से प्रसूत माना हो, परन्तु ऐसा वर्णन करते समय कवि केवल कवि परम्परा का पालन मात्र कर रहा है।[६] इन वन के वर्णन पर कादम्बरी के जाबाल्याश्रम के वर्णन का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है।[७] डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास के अनुसार यह 'बक्सर' का चरित्र वन है।[८]

१—कामवन राम सब वास तरु देखियो।
नैन सुख दैन मन मैन मय लेखियो॥
ईश जहं काम तनु कै अतनु डारियो। —रा०चं० २।२६

२—रामायणकालीन समाज, पृ० ३०७

३—वही, परिशिष्ट, पृ० ३०७

४—रा० चं० ३।१

५—केशव कौमदी, पूर्वार्द्ध, पृ० ३५

६—केशव और उनका साहित्य, पृ० २८०

७—तालतिलक तमाल हिन्ताल वकुल बहुलैः, एलालताकुलित नारिकेल कलापैः, अलोल लोध्र लवली लवंग बल्लवै.......... उपशोभितं आश्रमं अपश्यम्।—बाणभट्ट, कादम्बरी, व्याख्याकार श्रीकृष्णमोहन शास्त्री, पृ० ११६

८—रामायथकालीन समाज, पृ० ३१२

दण्डकवन चित्रकूट से लेकर गोदावरी तक व्याप्त है।[१] डा० भण्डारकर के अनुसार यह महाराष्ट्र में है।[२] केशव ने इस वन के वर्णन में रमणीयता तथा भीषणता दोनों के संतुलन पर ध्यान रखा है। यह वर्णन सांस्कृतिक सामग्री से उतना सज्जित नहीं है जितना श्लेषादि अलंकारों के चमत्कार से चमत्कृत।[३] इस वन की रमणीयता तथा भीषणता के वर्णन में केशव पर भवभूति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।[४]

पंचवटी दण्डकारण्य का ही एक भाग है। डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास के अनुसार यह नासिका है।[५] लाला भगवानदीन के अनुसार यहां पंचवट-वट, पीपल, आमला अशोक और बेर हैं।[६] उन वृक्षों की अधिकता के कारण उक्त स्थान का नाम पड़ा था। अगस्त्य जी ने राम को गोदावरी के तटवर्ती विशाल पंचवटी के तट पर ही पर्णकुटी बनाने की सम्मति दी थी।[७] केशव के अनुसार सुन्दर वृक्ष फलों और फूलों से परिपूर्ण थे। कोयलों के कूजन तथा मयूरों के नृत्य से बड़ा ही रमणीय था और शुक तथा सारिका गुणी पण्डितों की भांति उस नाच गान का भावमय अर्थ बताते थे।[८] केशवदास ने उसके वर्णन में यहां तक बताया है कि यह शिव के समान है क्योंकि इसके दर्शन करने से पाप की बेड़ी कट जाती है और तुरन्त ही भारी ज्ञान की गठरी प्रकट हो जाती है। यहां तो मुक्ति चारों ओर नदी के समान नाच रही है। अतः यह शिव के गुणों से युक्त है।[९]

केशव के वर्णन के सांस्कृतिक पक्ष का जहां तक सम्बन्ध है उसमें इतना ही उल्लेखनीय है कि ऋषियों और मुनियों का सम्बन्ध बताया गया है। भारतीय संस्कृति के

१—रामायण कालीन समाज ३०५

२—वही, ३०५

३—पांडव की प्रतिमा सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो।
है सुभगा सम दीपति पूरो। सिंदूर और तिलकावलि रूरी॥ —रा० चं० ११।२१

४—भवभूति जैसे प्रकृति प्रेमी कवि भी इस दण्डकवन का वर्णन करते समय इसी भीषणता को नहीं भुला सके और उन्होंने भी यही कहकर उसका वर्णन किया है कि कहीं तो वह स्निग्ध और श्यामल है और कहीं भीषण और रूक्ष ...... स्निग्ध श्यामला क्वचिदपरो भीषणाभोग रूक्षः।—संक्षिप्त रामचन्द्रिका, जगन्नाथ तिवारी पृ० ८

५—रामायणकालीन समाज, परिशिष्ट, पृ० ३०६

६—केशव कौमदी, पूर्वार्द्ध, पृ० १७३

७—सुभ गोदावरी तट, विशद पंचवट पर्णकुटी तहां प्रभु कीजै।—

८—रा० चं० ११।१७

९—वही, ११।१८

विकास में आरण्यक परम्पराओं का महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरी बात पौराणिक कथाओं के उल्लेख की है। कुछ वनों के सम्बन्ध में अनुश्रुतियों व पुराणों में उल्लिखित है। उनका भी केशव ने संकेत किया है। तीसरी बात परम्परा पालन की है जो देश की साहित्यिक संस्कृति से संबद्ध है। अलंकार चमत्कार से प्रेरित वर्णन सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है।

३-११२ पर्वत :

केशव साहित्य में पर्वत के लिए भुवधर[१], अद्रि[२], अचल[३], गिरि[४], धरनिधर[५], पर्वत[६], शैल[७], आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

केशव साहित्य में उल्लिखित पर्वतों को निम्नलिखित तीन शीर्षकों में विभाजित करके उन पर विचार किया जाता है : (१) कथा से सम्बद्ध पर्वत (१) कृत्रिम पर्वत तथा (३) अप्रस्तुत योजना से अन्तर्गत उल्लिखित पर्वत।

कथा से सम्बद्ध पर्वतों के अन्तर्गत द्रोणगिरि, चित्रकूट, ऋष्यमूक, प्रवर्षणाद्रि, चित्रकूट और विन्ध्याचल आते हैं। द्रोणगिरि पर संजीवनी बूटी लाने के लिए हनुमान गये थे। यह औषधियों के लिए प्रसिद्ध था। इस पर विशल्यौषधि के होने की चर्चा केशव ने की है।[८] कवि ने अयोध्या नगर के पताकापट की तुलना द्रोणाचल पर चमकनेवाली जड़ी-बूटियों से की है।[९] वीरसिंह देव चरित में भी जहाँगीरपुर के वर्णन के प्रसंग में इसी बात का उल्लेख किया है।[१०]

१—वी० च० २१।२४
२—रा० चं० १४।६
३—वही, १।१०
४—वही, १६।८८
५—वही, १०।२५
६—वही, १७।५०
७—वही, १६।३६
८—वही, १७।५०
९—शुभ द्रोण गिरि मणि शिखर वर।
ऊपर उदित औषधि सो गनौ॥ —रा० चं० १।३६
१०—प्रति मन्दिरन पताका लसै।
द्रोनाचल औषधि सी मनौ॥ —वी० च० १६।३-४

चित्रकूट पर्वत का उल्लेख केशव साहित्य में तीन स्थलों पर किया गया है। पहले सीता लक्ष्मण समेत राम के इस पर्वत पर जाने के प्रसंग में[१] तथा दूसरे राम भरत मिलाप के प्रसंग में।[२] इस पर्वत पर नर, वानर, किन्नर, सिंह, मृग, तपस्वी आदि अनेक प्रकार के प्राणियों के निवास करने का उल्लेख केशव ने किया है।[३] चित्रकूट के निकट ही परम पावनी गंगा नदी के प्रवाहित होने की बात भी केशव ने कही है।[४] तीसरे अयोध्या लौटते समय राम के सीता लक्ष्मण तथा राक्षस वानरों से चित्रकूट के दर्शन करने की बात कही गयी है।[५]

ऋष्यमूक का उल्लेख केशव ने 'रामचन्द्रिका' तथा वीरसिंह देव चरित में किया है। रामचन्द्रिका में वनवास के समय राम के वहां जाने की बात उल्लिखित है। यह वानरों का निवास स्थान था और वहाँ सुग्रीव, हनुमान, नल, नील और सुखेन नामक पांच प्रतापी वानर अपने साथियों के साथ रहते थे।[६] डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास के अनुसार यह किष्किधा प्रदेश में है और किष्किधा "बिलारी" जिले में हंपी से चार मील की दूरी पर तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित वर्तमान 'आनगोंदी' है।[७] वीरसिंह देव चरित में क्रीड़ा पर्वत के वर्णन में अप्रस्तुत रूप में इसका उल्लेख मात्र किया गया है।[८]

प्रवर्षणाद्रि का उल्लेख केशव ने रामचन्द्रिका में एक ही स्थान पर किया है। वालि के वधानन्तर राम लक्ष्मण के साथ इस पर्वत पर गये थे।[९] इस पर्वत पर उन सभी वस्तुओं के होने की बात कही गयी है जिनसे किसी भी पहाड़ की शोभा बढ़ सकती

१—चित्रकूट पर्वत गये, सोदर सिय समेत।—रा० चं० ९।४६

२—तरि गंग गये गुह संग लिए।
चित्रकूट विलोकत छांड दिये। —वही, १०।२३

३—रा० चं० १०।१४

४—भरत जाय भागीरथी, तीर करयो संकल्प। —वही, १०।३८

५—चित्रकूट विलोकिकै तब ही प्रयाग विलोकियो।—वही, २०।२८

६ ऋष्यमूक पर्वत गये, केशव श्रीरघुनाथ।
देखे वानर पंचविभु मानो दक्षिण हाथ॥ —वही, १२।५२

७—रामायणकालीन समाज, परिशिष्ट, पृ० ३०८

८—रिष्यमूक पर्वत सो लगै। वी० च० २४।३

९—कियो नृपति सुग्रीव हति बालि बली रणधीर।
गये प्रवर्षण अद्रि को लक्ष्मण स्यों रघुवीर॥ —रा० चं० १३।३

है। इसके अनेक प्रकार के पुष्प, वन्य पशु, सर्प आदि से सम्पन्नहोने का उल्लेख किया गया है।[1]

चित्रकूट का उल्लेख रामचन्द्रिका में केवल एक बार हुआ है। डा० शान्ति कुमार नानूराम व्यास के अनुसार यह दक्षिणी पूर्वी लका का एक पर्वत है।[2] लाला भगवानदीन के अनुसार 'चित्रकूट' के तीन शिखर थे जिन पर लंकापुरी बसी थी।[3] अप्रत्यक्ष रूप में 'रामचन्द्रिका' में यही बात कही गयी है।[4]

विन्ध्याचल का वीरसिंह देव चरित में एक ही बार उल्लेख किया गया है। वहां पर विन्ध्यावासिनी देवी रहती थी। आकाशवाणी के सम्मति के अनुसार लोभ और दान दोनों उस पर्वत पर गये और विन्ध्यावासिनी से मिले। यह पर्वत फल-फूल, पशु-पक्षी आदि से शोभायमान था। वहां अर्कवृक्षों का समूह जगमगा रहा था।[5]

कृत्रिम पर्वत का बर्णन केशव साहित्य में दो स्थलों पर किया गया है। पहले राजाराम के राजमहल से सम्बद्ध बाग में स्थित कृत्रिम पर्वत है। केशव ने उस पर कृत्रिम पशु पक्षियों तथा अनेक प्रकार के सुगन्ध-द्रव्यों के रहने तथा उसके सुनहले रंग के होने का वर्णन किया है।[6] उस पर्वत के कैलास के समान शीतल, उदयाचल के समान स्वच्छ और मैनाक के समान कान्तिमय होने की बात कही गयी है।[7] उस पर्वत से तीन कृत्रिम नदियों के निकलने का भी उल्लेख किया गया हैं :

सरिता तिहिं ते शुभ तीन चलीं।[8]

वीरसिंह देव चरित में जहांगीरपुर के वर्णन के सन्दर्भ में भी वहां की वाटिका में स्थित

१—रा० चं० १३।७

२—रामायणकालीन समाज, परिशिष्ट, पृ० ३१२

३—केशव कौमुदी, लाला भगवानदीन, पूर्वार्ध, पृ० २८४

४—अति उच्छल छिछि चित्रकूट छयो। पुर रावण के जल जोर भयो।—रा० चं० १५।३१

५—देखी तिन विन्ध्याचल बनी। फल दल खग मृग सोभा घनी।
प्रलय काल वेला सी लसै। अर्क समूह जहां जगमगै।—वी० च० २।१

६—तिन में इक कृत्रिम पर्वत राजै। मृग पच्छिन की सब शोभहिं साजै।
बहु भांति सुगंध मलै गिरि मानो। कल धौत सुमेरु बखानो॥ —रा० चं० ३२।२१

७—अति शीतल शंकर को गिरि जैसो। सुभ सेत लसै उदयाचल ऐसो।
दुति सागर में मयनाक मनो है। अज लोक मनो अज लोक बनो है।—वही, ३२।२२

८—वही, ३२।२३

क्रीडा पर्वत का वर्णन किया गया है। उस पर पशु-पक्षियों के रहने, कृत्रिम शिखर के शोभित होने तथा लता वृक्षों से सुन्दर होने का उल्लेख किया गया है।[1] उस पर बैल, सिंह, मोर, सर्प आदि की क्रीड़ा करने की बात कही गयी है।[2]

अप्रस्तुत के रूप में केशव साहित्य में निम्नलिखित पर्वतों का वर्णन है: उदयाचल[3], कलिन्द पर्वत[4], मलयाचल[5], मेरुपर्वत[6], मैनाक पर्वत[7], हिमालय[8], सिंदूर-पर्वत[9] तथा हरगिरि[10], 'कैलास'। परम्परा का पालन करते हुए केशव ने उदयाचल के स्वच्छ होने[11], मलय पर्वत के सुगन्ध का स्थान होने[12], सुमेरु पर्वत के सुवर्णमय[13], तथा देवताओं के स्थान होने[14] और मोहनगिरि पर मनमोहिनी देवियों के होने[15] का उल्लेख किया है।

ऊपर के विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि केशव पर्वत वर्णन में सांस्कृतिक तत्व वन वर्णन की अपेक्षा अधिक ही है। इनमें सब से पहली बात पुराण प्रसिद्ध पर्वतों के नाम की है। उन नामों को प्रस्तुत या अप्रस्तुत के रूप में केशव ने गिना है। दूसरी बात पर्वत प्रदेशों में अनेक जातियों के निवास की है। किन्नर, गन्धर्व और मुख्य रूप से वानर जाति के पर्वतों में निवास की बात भारत के जातीय इतिहास में विशेष महत्व रखती है। वानरादि जातियों को आर्य संस्कृति में दीक्षित किया

१—तिन में क्रीडा पर्वत रच्यौ। मृगपच्छिन की सोभा सच्यो।—वी० च० २४।१
२—वृषभ सिंह क्रीडहि अहि मोर। सिवगिरि सौ सोहत चहुं ओर। वही, २४।४
३—रघुनाथ जू हनुमन्त ऊपर शोभिजैं तेहि कालजू।
उदयाद्रि शोभन शृंगमानहु शुभ्र सूर विलास जू॥—रा० चं० १४।३६
४—मानहु दस शृंग युत कालिन्दगिरि विमोहियो।—रा० च० १५।४७
५—मलै अद्रि मनो लगी दावज्वाला।—वही, १४।६
६—विविध विबुध युत मेरु सो अचल है।—वही, २।१०
७—वर मैनाक सैल सो लसै।—वी० च० २४।३
८—सीतल हिमगिरि सों परिसियो।—वही, २४।२
९—कि सिन्दूर शैलाग्र में सिद्ध कन्या।—रा० च० ८०।७
१०—संकर सैल चढ़ा मन मोहति।—वही, ८।६
११—उदयादि शोभन शृंग मानहु शुभ्र सूर विलासजू।—वही, १४।३६
१२—बहु भांति सुगन्ध मलै गिरि मानो।—वही, ३२।२२
१३—कल धौत स्वरूप सुमेरु सब खनौ।—वही, ३२।२१
१४—विधि के समान हैं विमानीकृत राजहंस।—रा० चं० ।१०
१५—मोहनगिरि शृंग मरमानहु महि मोहनी॥—वही, ८।८

गया था। पर्वतों पर विविध प्रकार की जड़ी-बूटियों के मिलने का विश्वास भी सांस्कृतिक है। इन्हीं जड़ी बूटियों के आधार पर आयुर्वेदशास्त्र का भी विकास हुआ। विविध पर्वतों की कवि प्रसिद्धियों का भी केशव ने उल्लेख किया है।

३-१२ वनस्पतियां :

इस शीर्षक के अन्तर्गत केशव साहित्य में वर्णित वृक्ष, फूल, फल, लता, झाड, पत्ते आदि की चर्चा की जाती है।

केशव साहित्य में जिन वृक्षों का उल्लेख हुआ है उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि मोटे रूप से वे दो प्रकार के हैं : (१) पुष्पों के वृक्ष तथा (२) अन्य वृक्ष।

३-१२१ पुष्पों के वृक्ष और अन्य वृक्ष :

केशव साहित्य में अशोक, करुणा, केतकी (केवड़ा), गुलाब तथा पलाश आदि पुष्पों के वृक्षों की चर्चा की गयी है। विश्वामित्र के आश्रम में वंजुल[१] (अशोक) वृक्षों के होने की बात कही गयी है। राम विरह के प्रसंग में अशोक के विषय में कहा गया है कि वह अपना शोक दूर करके ही अशोक बन गया है।[२] श्री राम ने करुणा नामक पुष्प वृक्ष को सब वृक्षों से करुणामय मानकर उससे सीता का पता बताने की याचना की थी।[3] राजा राम के उपवन के वर्णन में भी करुणा नामक वृक्ष का उल्लेख किया गया है जिसके कारण उसका नाम ही करुणामय पड़ गया।[४] केशव ने द्रोण गिरि के ऊपर पलास वृक्षों के होने की बात कही है।[५]

अन्य वृक्ष :

इस शीर्षक के अन्तर्गत केशव साहित्य में प्राप्त अन्य वृक्षों पर विचार किया जाता है।

१—मंजुल वंजुल लकुच केर नारियर।—रा० चं० ३।१

२—कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक भये हरिकै।—रा० चं० १२।४१

३—लखि के केतकि जाति गुलाब तेती चख जानि तजे हरिकै।—वही, १२।४१

४—सिय को कछु सोक कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करिकै।—वही,

५—पलासमाल विनपत्र विराजमान मनो वसंत दिय कामहिं अग्नि बान।—वही, ३०।३४

विश्वामित्र के आश्रम के वन के वर्णन में केरा, केला, लकुच, ताल, हिंताल, नारिकेर वृक्षों का उल्लेख किया गया है ।[१] दण्डक वन के वर्णन प्रसंग में अर्जुन तथा भीम वृक्षों की चर्चा की गयी है ।[२] ताल वृक्ष के उन्नत होने की बात सर्वमान्य है। केशव ने इसी मान्यता को मन में रखकर आकाश में शोभित होने वाली पताकाओं की तुलना करते समय अप्रस्तुत रूप में उसका उल्लेख किया है ।[३] केशव ने जामुन वृक्ष को श्याम वर्ण वाली वस्तुओं के अन्तर्गत माना है ।[४] अयोध्या वर्णन के सदर्भ में धव वृक्ष का उल्लेख करते हुए कवि ने बताया है कि अयोध्या में इस वृक्ष से रहित कोई वाटिका ही नहीं थी। इसी प्रसंग में चंचलता के लिए चल दल (पीपल) का उल्लेख करते हुए कवि ने बताया है कि अयोध्या में चलदल वृक्ष को छोड़कर और कोई व्यक्ति चंचल नहीं है ।[५] चन्दन वृक्ष के सम्बन्ध में कवि का कहना है कि इस वृक्ष पर नागिनियां सर्वदा लिपटी रहती है । 'चन्दनसार' के लिए कवि ने मलयज शब्द का प्रयोग किया है ।[६] करील एक कन्टीला पेड़ है जो व्रजभूमि में अधिक प्रसिद्ध है । सूरदास ने भी इसका उल्लेख किया है ।[७] केशव ने बताया है कि इसमें न छाया है, न सुख है न शोभा है । इस पर विश्वास रखकर इसके आश्रय में रहनेवाला पक्षी अंत में धोखा खाता है ।[८]

राम विरह प्रसंग में (जायाफल वृक्ष)[९] जाति का तथा लवणासुर वध के प्रसंग में साल वृक्ष[१०] का उल्लेख किया गया है । गूलर के पेड़ का प्रत्यक्ष उल्लेख तो नहीं हुआ है । परन्तु गूलर के काठ के बने हुए सिंहासन का उल्लेख राम के राज्याभिषेक के प्रसंग में किया गया है ।[११] कल्पवृक्ष का उल्लेख भी केशव में मिलता है जिसके लिए उन्होंने

१—तरु तालीस ताल तमाल हिंताल मनोहर ।—रा० चं० ३।१

२—पांडव की प्रतिमा सम लेखो । अर्जुन भीम महामति देखो ।—रा० चं० ११।२१

३—जनु अकास वन कलित कलात्र । तरलित तुंग ताल के पत्र ।—वीं० च० १२।२७

४—जंबू, जमुना, तैल तिला खलमन, सरसिज,चीर ।—क० प्रि० ५।२२

५—अति चंचल जहं चलदलै विधवा बनि न नारि ।—रा० चं० १।४६

६—अति सुभ वीथी ब्रज परिहारी मलयज लीपीं पुहुपन धारी ।—वही, ८।६

७—क्यों करीला खावै ।

८—कछु छांह नहीं सुख सोभ नहीं, रहि कीर करीर कहा करि है ।—क० प्रि० १२।७

९—रा० चं० १२।४२

१०—शाल समूह उखारि लिये लवणासुर पीछे ते आय सो टेयो ।—रा०चं० ३५।२७

११—तरु ऊमरि को आसन अनूप । बहु रचित हेममय विश्वरूप ।—वही, २६।२०

सुरतरुवर[1] तथा मंदार[2] शब्दों का प्रयोग किया है। अर्क वृक्ष साधारणतः उजड़े हुए प्रदेशों में पाया जाता है। केशव ने इसका इसी रूप में प्रयोग किया है।[3]

इनके अतिरिक्त केशव साहित्य में कदली, बदरी[4], तेन्दु वृक्ष[5], आदि का उल्लेख भी मिलता है।

अप्रस्तुत रूप में वृक्षों का उपयोग करते हुए केशव ने 'गगन तरु'[6], तप वृक्ष[7], तरुपुण्य[8] शब्दों का प्रयोग किया है।

वृक्षों के सम्बन्ध के विश्वासों और उनमें देवत्व की प्रतिष्ठा आदि पर केशव ने कम ही लिखा है। सांस्कृतिक दृष्टि से इन उल्लेखों में केवल काव्यशास्त्रीय वृक्ष गिनाने की परम्परा ही जीवित है।

३-१२२ फल :

केशव साहित्य में वर्णित फलों की चर्चा दो उपशीर्षकों के अन्तर्गत की जाती है : साधारण फल और सूखे फल या मेवे।

केशव साहित्य में वर्णित फलों में श्रीफल को ही प्रधान स्थान दिया जा सकता है। कवि परम्परा में कुचों के लिए श्रीफल की उपमा देना प्रचार में है। अयोध्या नगरी[9] तथा रामराज्य के वर्णन में[10] कवियों के मध्य इस परम्परा के प्रचलन की ओर संकेत किया गया है। स्वयं कवि केशव ने मन्दोदरी के कुचों के वर्णन में अप्रस्तुत के रूप में

१—सुरतरवर में रंभावनी। क० प्रि० १५।३२
२—क० प्रि० ५।५
३—जहां आक कनक कमल कुवलय, तहां गीधनि के थल हंस हंसिनी लसति है। वी० च० १।२३
४—र० प्रि० ३।१०
५—वही, १६।१७
६—चमोगगनतरु धाय, दिनकर वानर अरुन मुख।—रा०चं० ५।२३
७—रा चं० २२।२३
८—जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने।—वही, ५।१७
९—श्रीफल को अभिलाष प्रगट कवि कुल के जी में।—रा० चं० १।४८
१०—कविकुल ही के श्रीफल उर अभिलाष समाज।—वही, २८।१२

श्रीफल का प्रयोग किया है।[१] वन-गमन के प्रसंग में वनमार्ग में[२] तथा दण्डक वन में[३] तथा राजा राम के बगीचे के वर्णन के सन्दर्भ में[४] श्रीफलों का वर्णन किया गया है। केशव ने शरीफे के फल को भी श्रीफल के साथ कुचों के उपमान के रूप में दिया है।[५] कवि परम्परा का पालन करते हुए कवि ने दाडिम फल को दान्तों की उपमा के रूप में चित्रित किया है।[६] केशव ने नारियल के उल्लेख में नई विधा का परिचय दिया है। उनके अनुसार अत्यधिक तपस्या करने के लिए अपने मुख को नीचा करके मछली की तरह नेत्र मून्द लिए हों।[७]

दण्डकवन के प्रसंग में केशव ने सेव और बेर फलों का भी वर्णन किया है।[८] राजा राम के राजमहल की वाटिका के वर्णन सन्दर्भ में सदाफल (शरीफ) का[९] वसन्त वर्णन के प्रसंग में रसालका (आम)[१०] तथा विश्वामित्र के आश्रम के वर्णन प्रसंग में पुंगी-फल तथा केलों का उल्लेख किया गया है।[११] उपर्युक्त फलों का केशव ने उल्लेखमात्र किया है। उनकी विशेषताओं या सांस्कृतिक महत्व का कोई वर्णन नहीं किया है।

केशव साहित्य में 'मेवा' का उल्लेख केवल एक स्थान पर मिलता है। वीरसिंह देव चरित में राजमहल की वाटिका के वर्णन में खारि, कदार, दाख, खजूर, नारियल और सुपारी मेवों का उल्लेख है।[१२] किन्तु राजा राम तथा वीरसिंह देव के राज महलों

१—बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं।
किधौं साचहूं श्रीफलै सोभ साजैं॥—वही, १६।३२

२—बिविध श्रीफल सिद्ध मानो फलो। सकल साधन सिद्धिहि लै चलो।—वही, १।१६

३—सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भयो जहं बसै। रा० चं० १२।१६

४—गिरत सदाफल श्रीफल ओज! जनु धर परत देखि वक्षोज।—वही, ३२।१२

५—गिरत सदाफल श्रीफल ओज। जनु धसदेत देखि वोज।—वी० च० २३।१५

६—सुदितिन के जनु दसननि हारी। उदरे उरनि दाडिमी फारि।—वही, १३।१५

७—निरखैं नारिकेल फर फरे। कुच सोभा अभिलाखनि भरे।
अति तप करन अधोमुख होन। मनौ मीन ह्वै कै मूंदे नैन। वी च० २३।१६

८—रा० चं० ११।१६

९—वही, ३२।११

१०—बौरेरसाल कुल कोमल केलि काल।
मानो आनन्द ध्वज राजत अतिविशाल।—रा० चं० ३०।३२

११—रा० चं० ३।१

१२—खारिक दार्यौं दाख खजूरि। नारिकेल पुंगी फल भूरि॥—वी० च० २३।३०

में मेवा की 'मेवा सालाओं' के होने की बात कही गयी है।[1] वीरसिंह देव चरित में उल्लिखित 'मेवा की शाला' से यही प्रतीत होता है कि राजसी खान पान में उनका प्रमुख स्थान था।

३-१२३ अन्य वनस्पतियां :

वेली या लता वृक्ष के आश्रित होती है। केशव साहित्य में वृक्षों के साथ लता का भी वर्णन किया गया है। केशव ने एला[2], लवंग, लवली[3], तमाल[4], माधवी, चमेली, चम्पा, सेवती, केतकी, मालती[5], आदि लताओं का उल्लेख किया है। कवि ने एक स्थान पर फूली हुई चंचल लवंग और लवली लताओं पर मस्त मधुपों के झूमते रहने का उल्लेख किया है।[6] वीरसिंह देव के राज महल की वाटिका को अनेक प्रकार के वृक्ष लताओं से शोभित होने की बात कवि ने कही है।[7] राम के वनगमन के समय सीता की मुख गन्ध से गोदावरी नदी के समीप स्थित समस्त लताओं का सुगन्धित होने का उल्लेख केशव ने किया है।[8]

अप्रस्तुत रूप में लताओं का प्रयोग करते हुए केशव ने आनन्द लतिका[9] कामलता[10] कीरतिबेलि[11] तृष्णालता[12] मृदुमुसकानिलता[13] लाजलता[14] विषय बेलि[15]

१—निपट रंक ज्यों मोमिन भये। मेवा की शाला में गये।—रा० चं० २६।३५
निपट रंक ज्यों लालच भये मेवा की साला में गये।—वी० च० २१।१२
२—एला ललित लवंग संग पुंगिफल सोहै।—रा० चं० ३।१
३—फूली लवंग लवली लतिका विलोल।—वही, ३०।३३
४—तमाल बल्लरी समेत सूखि सूखिकै रहे।—वही, ६।३६
५—झेलिहै चमेली करि चंपक सो केलि सेइ।
सेवती समेत हेतु केतकी सो जानिये॥—क० प्रि० २४।८
६—वी० च० २२।२८
७—वही, २३।२१
८—मुख बासिन बासित कीन तबै। तृण गुल्म लता तरु सैल सबै।—रा० चं० २२।३०
९—आनन्द लतिका मनहु सफूल। सुंधित जत ससि सकस कुफूल।—रा० चं० ३१।२३
१०—बरषै कुसुमावलि एक धनी सुभसोभन कामलता सी बनी॥—वही, ८।१२
११—किधौं रति कीरति बेलि निकुंज।—वही, ३०।३६
१२—तृष्णालता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य से।—वही, २।५०
१३—मृदुमुसकानि लता मनहरैं। बोलतबोल फूल से झरैं।—वही, ३१।१७
१४—लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालन तोरै।—रा० चं० २४।१२
१५—विषय बेलि को वारिद रीति। वही, १३।३१

आदि का उल्लेख किया है।

झाड़ एवं गुल्मों का उल्लेख केशव साहित्य में बहुत कम मिलता है। केशव कवि परम्परा के पालन करने के लिए ही कवि ने इनका वर्णन किया है।

'जवासा' एक ऐसा छोटा सा जंगली पौधा है जो वर्षा में सूख जाता है तथा गर्मी में फूलता फलता है। 'रामचन्द्रिका' में राम के विरह प्रसंग में घोर बादलों के गर्जन को सुनकर जवासे के जलने की बात कही गयी है।[1] केशव ने 'जलकेश' नामक एक छोटे पौधे का भी उल्लेख किया है। 'जवासा के समान इसके पत्ते भी सजल बादलों को देखकर मुरझा जाते हैं।[2] दण्डकवन के प्रसंग में कवि ने बताया हैं कि सीता और राम के मुख की सुगन्धि से वहां के लता और गुल्म सुवासित हो गये।[3] गुल्म के अतिरिक्त कुंज[4] का भी उल्लेख केशव ने किया है। दण्डकवन के प्रसंग में कवि ने 'धनई' नामक झाड की चर्चा की है जिसके लिए 'धाई' शब्द का प्रयोग हुआ है।

रामचन्द्रिका के प्रारम्भ में ही 'पद्मिनी के पात्र[5]' का उल्लेख मिलता है। पत्ते कोमलता के प्रतीक होते हैं। इसी कोमलता को सूचित करने के लिए इन पत्रों का उल्लेख कवि ने अनेक बार किया है। मरकत मणि के थाल में स्थित गजमुक्ताओं के लिए अप्रस्तुत रूप में कवि ने पद्म पत्र स्थित जल कणों का ही प्रयोग किया है।[6] नवीन और कोमल पत्तों को प्रवाल या पल्लव कहते हैं। इसी कोमलता को दृष्टि में रखते हुए केशव ने रामचन्द्रिका में 'कर पल्लव[7]' का प्रयोग किया है। सीता की दासियों के नख-शिख वर्णन प्रसंग में हाथों के लिए अप्रस्तुत के रूप में "नवीन पत्र"[8] को ही स्वीकार किया गया है।

१—घनन की घोरन जवासो ज्यों तपत है।—रा० चं० २३।८८

२—सजल जलद दूरिते विलोकियत।
परदल दिल बलदल के से पात है।—वि० गी० १।२६

३—मुखवासिन वासित कीन तबै तृण गुल्म लता तरु सैल सबै।—रा० चं० १२।३०

४—सोहत वंजुल कुंजल कंज।—वी० चं० २३।२७

५—विपति हरत हठि पद्मनी के पात सम।—रा० च० १।१

६—गजमोतिन सोभिजै मरकत मणि के तार।
उदक बुन्द स्यौं जनु लसत पुरइन पत्र अपार॥

७—नेकु ताहिं कर पल्लव सो छ्वै।—वही, ५।४१

८—देखहु देव दीन के नाथ। हरत कुसुम के हारत हाथ।
नवरंग बहु अशोक पत्र। तिन मह राखत राज कलत्र॥—रा० चं० ३१।२६

तृण एक अल्पवस्तु माना जाता है। इसी अल्पता के आधार पर यह कहा गया है कि तृण के समान पातकी के प्राण भी मरने के विषय में हलके ही होते हैं। सीता ने दुराचारी रावण को तृण के समान तुच्छ समझा था। इसी कारण उसने उससे बात करते समय एक तिनका बीच में रखा था।[१] दंभी रावण ने सीता के स्वयंवर में आये हुए राजा लोगों को तिनके के समान समझा था।[२]

कुश एक विशेष प्रकार का तृण है जो पवित्र माना जाता है और वैदिक कर्मों में इसका उपयोग किया जाता है। तपस्वियों के बैठने के लिए इससे आसन भी बनाये जाते हैं। परशुराम के स्वरूप का वर्णन करते हुए केशव ने उनके हाथ में 'कुशमुद्रिका' के की बात कही है।[३] वन मध्य में सीता और राम के कुशास्तरण पर बैठने का उल्लेख भी कवि ने किया है।[४]

तृण सम्बन्धी विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से केवल कुश का महत्वपूर्ण स्थान है। शेष स्थान पर तृण का अलंकरण के रूप में ही प्रयोग हुआ है। पर पुरुष से सती को आमने सामने होकर बातें नहीं करनी चाहिए, यह लोक मर्यादा है। इस लोक मर्यादा की रक्षा के लिए स्त्रियाँ अन्यों से बात करते समय तृण ही बीच में रख लेती हैं। इसी लोक विश्वास का प्रयोग केशव ने अशोक वाटिका प्रसंग में किया है।

३-१२४ फूल :

भारतीय संस्कृति में पुष्पों का महत्वपूर्ण स्थान है। केशव ने अपने साहित्य में कमल, कर्णिकार, बन्धुजीव, तमाल, बन्धूक, आदि पुष्पों का उल्लेख किया है।

भारतीय संस्कृति का सबसे प्रमुख प्रतीक कमल है। भारतीय आध्यात्मिक जीवन का आदर्श संसार में रखते हुए भी उसकी विषय वासनाओं से असंपृक्त रहने का भाव इसमें है, जैसे—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगन्त्यक्त्वा करोतियः।
लिप्यते न सपापेन पद्म पत्र मिवांभसा ॥[५]

१—तृन बिच दइ बोली सीय गम्भीर बानी।
दसमुख सठ को तू कौन की राजधानी ॥—रा० चं० १३।६१

२—राज सभा तिनुका करि लेखों। देखि के राज सुता धनु देखौं।—वही, ४।२०

३—रा० चं० ७।२५

४—घटिका यह बैठत है सुख पाय बिछायत हां कुसकांस थली।—वही,—६।४४

५—के० ग्रं० पृ० २६६।२४

भारतीय संस्कृत में कमल अपनी कमनीयता और कोमलता के कारण बहुत मान पाता आ रहा है और भारतीय ललित कलाओं में भी उसे स्थान मिला है। भारतीय काव्य क्षेत्र में कमल उपमान के रूप में सर्वाधिक रूढ़ बन गया है। केशव साहित्य में कमल का उल्लेख सब से अधिक मिलता है। केशव ने कमल के लिए राजीव[१], कन्ज[२], अरविन्द[३], कमल[४], सरोज[५], पंकज[६], जलज[७], सरसीरुह[८], सरोरुह[९], नीरज[१०], पद्म[११] नलिन[१२] जलरूह[१३], जहजहार[१४], सारस[१५], कल्हार[१६], आदि शब्दों का प्रयोग किया है। नलिनी[१७] शब्द भी केशव में मिलता है। इन पर्यायों से यह ज्ञात होता है कि कमल के विविध रंगों और प्रकृतियों से कवि का बड़ा परिचय था। अयोध्या पुरी के जलाशय के वर्णन-प्रसंग में कवि ने जलाशय में खिले कमलों से भौरों के उड़ जाने का उल्लेख किया है।[१८] सीता की दासियों के मुख वर्णन के प्रसंग में व्यतिरेकालंकार के द्वारा कवि ने दासियों के मुखों को कमल से बढ़कर प्रकाशमान कहा है।[१९] नायिका की रोमराजि को कमल नाल तथा दोनों कुचों को कोरक युग्म के रूप में कवि ने बताया है।[२०]

कमल को विष्णु के हाथ का अलंकार कहा गया है।[२१] चरण के नखों की उपमा

१—के० ग्रं० २८२।३६

२—वही, २५०।११६

३—वही, ३६२।४६

४—वही, १३।३४

५—वही, ८।१२

६—वही, २८।२६

७—वही, ५३।४

८—वही, ३७।४६

९—वही, १०७।५५

१०—वही, ५७६।६

११—वही, २६२।८६

१२—क० प्रि० ३।३७

१३—वही, ७।३४

१४—वही, ८।६०

१५—वी० च० १५।१४

१६—के० ग्रं० ६२।२२

१७—बीच बीच सो है जलजात।
जितते अतिकुल उडि उडि जात॥—रा० चं० ३२।३६

१८—नोट : इसमें एक इस प्रकार है : श्री विष्णु प्रभाकर, कविसमय मे सांसा, पृ०, ४४ बाकी के साथ १ जोड़कर गिनिये।

१९—रा० चं० ३२।२२

२०—शिख नख, २०

२१—क० प्रि० ६।५

कमल के ऊपर स्थित हिमकण से दी गयी है।[१] नील, श्वेत, लाल और पीत कमलों के होने का भी उल्लेख कवि ने किया है।[२] कमल के पुष्प का ही नहीं उसके कुछ भागों की चर्चा भी कवि ने की है, जैसे मृनाल[३] (कमल नाल का तन्तु), करहर[४], (कमल बीज का कोश) अथवा करहाटक[५], सिफाकंद[६] (कमलकन्द) दण्ड (कमलदण्ड)[७] इत्यादि। वर्षा ऋतु में कमल के नष्ट होने तथा उस पर आसीन लक्ष्मी के डूब जाने का उल्लेख भी केशव ने किया है।[८]

कर्णिकार काव्य प्रसिद्ध पुष्प है। यह पुष्प सन के पुष्पों के समान पीले रंग का होता है। केशव ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि कन्नेर के बाहर और भीतर भिन्न भिन्न रूप होते हैं।[९] यह प्रसिद्ध है कि कन्नेर की कली ऊपर लाल और भीतर सफेद होती है। यह अपने रूप के कारण बहुत प्रसिद्ध है किन्तु सुगन्धि का इसमें सर्वथा अभाव है। कालिदास ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की पराङ्-मुखी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करने को इसे आधार बनाया है।[१०]

कन्नेर के समान बन्धुजीब भी सुन्दर गन्धहीन पुष्प के रूप में प्रसिद्ध है। केशव ने इसी तथ्य की ओर एक छन्द में संकेत किया है।[११] इसे दुपहरिया भी कहते हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य फलों का भी उल्लेख केशव साहित्य में मिलता है। प्राय: सौन्दर्य वर्णन के सन्दर्भ में इनका उल्लेख किया गया है, जैसे—तमाल[१२], (वेणी)

१—कंज के दलनिपर हिमकर विन्दु किधौं।—छं मा० २८
२—वी० च० २५।१३, १४ ३—र० प्रि० ५।१४
४—क० प्रि० ५।१७
५—सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति को है।—रा० चं० १२।४६
६—किधौं पद्म ही में सिफकन्द सो है।—वही, २०।६
७—रा० चं० ३१।२२
८—कमला तजि पद्मिनी बूडि मरी।—वि० गी० २।१७
९—आनरंग आनभांति ज्यों कन्नेर की कला।—र० प्रि० ६।११
१०—वर्णं प्रकर्षे सति कर्णिकारं। धुनोति निर्गन्धतयास्मचैत:।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां। पराङ् मुखी विश्व सृज: प्रवृत्ति:।—कुमारसंभव ३।२८
११—निपट निगन्ध यह हारबन्धु जीव कोसु।
चाहत सुगन्ध भयो नेक ग्रीव नाइयैं।—र० प्रि० २०।८
१२—शिखनख, ४

बन्धूक[1] (कपोल) तिलफूल[2] (नासिका) अमरबेलि[3] (अधर) इत्यादि। केशव ने कुछ फलों का केवल नामोल्लेख किया है—केतकी, माधवी, सेवती, गन्धफली, चमेली आदि ऐसे ही फूल हैं।[4]

केशव ने केवल रुढ़ उपमानों के रूप में पुष्पों का वर्णन किया है। प्रकृतितः केशव को पुष्पादि का सौन्दर्य अधिक आकर्षित नहीं कर सकता था। केवल कमल का प्रसिद्ध सांस्कृतिक पक्ष आया है। विष्णु और लक्ष्मी दोनों का ही कमल से सम्बन्ध जोड़ा जाता रहा है। उसी का उल्लेख सामान्य रूप से केशव साहित्य में भी मिलता है अन्य पुष्प अलंकरण की प्रक्रिया में ही स्थान पा सके।

३-१३ पशु :

केशव साहित्य में वर्णित पशुओं को दो भागों में बांटा जा सकता है—वन्य पशु और पालतू पशु।

वन्य पशुओं में केशव साहित्य में सिंह, बाघ, वानर, रीछ, सरभ, आदि का उल्लेख हुआ है।

सिंह के लिए केशरि[5], केसरि[6], मृगपति[7], मृगराज[8], आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। रामचन्द्रिका के ग्रन्थारंभ में विश्वामित्र के द्वारा सिंह के बच्चों की वीरता की प्रशंसा कराई गयी है।[9] राम विरह प्रसंग में सिंहों के गुफाओं में रहने की बात कही गयी है।[10] वीरसिंह देव चरित के एक छन्द में कवि ने सिंह के वन में संचार करने का उल्लेख किया है।[11]

१—शिखनख ११ २—वही, १०
३—वही, १२ ४—र० प्रि० १०।२२
५—संग सरभ ऋक्षजन केशरि के गन, मनहु चरन सुग्रीव परे।—रा० चं० १३।७
६—दीरघ दरीन बसै केशोदास केसरी ज्यों।—वही, १३।८८
७—कहुं मृगपति मृगशिशु पयपियहि।—वही, ३।२
८—मृगराज मृग मृगराज राजनि दलति है।—वही, १४।३७
९—जिन हाथन हठि हरषि हनत हरनी रिपु नन्दन।
तिनन करत संहार कहा मदमत्त गयदन?
मृगराज राजकुल कमल कहा बालक वृद्ध न जानिये।—वही, २।२८
१०—रा० चं० १३।८८
११—वी० च० १५।५१

बाघ का प्रत्यक्ष वर्णन केशव साहित्य में नहीं हुआ है। किन्तु रामविरक्ति वर्णन में अप्रस्तुत रूप में 'अघवाघ' का उल्लेख प्राप्त होता है।[1]

केशव साहित्य में सियार का प्रधान कार्य युद्ध क्षेत्र में मृत व्यक्तियों के शवों का भक्षण करना बताया गया है। युद्ध में रावण के मरने पर मन्दोदरी ने विलाप करते हुए कहा था कि देवस्त्रियों सेवित रावण आज कुत्तों और सियारों से सेवित भूमि पर सो रहा था।[2] वनों में सियारों के रहने का उल्लेख भी केशव ने किया है।[3] रावण ने अंगद से कहा था कि राम के द्वारा तुम्हारे सिरों के काटे जाने पर उन्हें स्यारनी और कुत्ते ही खायेंगे।[4]

सूकर या वराह वनैले सूकर को कहते हैं। यद्यपि यह गन्दा तथा घातक पशु है, तो भी पुराणों में वर्णित विष्णु के अवतारों में 'वराह' अवतार मान्य है। एक ओर केशव साहित्य में इस पशु का अवतार के रूप में उल्लेख है[5], तो दूसरी ओर इसके जीवन को अधम बताया गया है। केशव के अनुसार सरयू नदी में स्नान करने से सूकर जैसा अधम प्राणी भी सदेह स्वर्ग प्राप्त कर लेता है।[6]

रामकथा के अनुसार ही रामचन्द्रिका में वानरों का वर्णन किया गया है। पशुओं की अपेक्षा उनके चतुर राजनीतिज्ञ तथा दिव्यशक्ति से युक्त मानवों के रूप में इनका वर्णन किया गया है। सुग्रीव का सैन्य संगठन, हनुमान तथा अंगद का दौत्य निर्वहण तथा राजनैतिक चातुर्य इन की कुशलता के प्रमाण हैं। वानरों के कामरूपी होने का भी उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है। प्रथम परिचय के समय हनुमान श्रीराम के सामने एक ब्राह्मण के रूप में आये थे।[7] वहाँ से सुग्रीव के पास जाते समय उन्होंने असली वानर

१—बारबड़े अघबाघ बन्धै उर मन्दिर बालगोविन्द न पावै।—रा० चं० २४।२८

२—तीनहुलोकन की तरूनीन की, बारी बन्धी हुती दण्डहि दूकी।
सेवित स्वान सियार सो रावण, सोवत सेत परे अब भू की॥—वही, १६।५४

३—वन में सिंह स्यार बरूहयौं।—वी० च० १४।५१

४—नाराच श्रीराम जहीं धरेंगे। अशेष माथे कटि भू परेंगे।
शिखा शिवा स्वान गहेति हारी। फिरैं चहूं ओर निरैबिहारी।—रा० चं० १३।२१

५—तुम ही जग यज्ञ बराह भयेजू। छिति छीन लई हिरनाच्छ हयेजू।—रा० चं० २०.२०

६—बहुन्हायन्हाय जेहि सनेह।
सबजात स्वर्ग सूकर जल सदेह॥—रा० चं० १।२७

७—जब कपिराजा रघुपति देखे। मन नरनारायण सम लेखे।
द्विज वपु कै श्री हनुमत आये। बहु विधि दै आशिष मन भाये।—वही, १२।५२

रूप धारण किया था।[१] कामरूपी होने के अतिरिक्त वानर लोग आकाश गमन आदि दिव्य शक्तियों सेभी संपन्न थे। हनुमान लंका को आकाश मार्ग से ही समुद्र को लांघकर गये थे।[२] अयोध्या लोटने के पश्चात आकाश में उड़ते वानरों और ऋक्षों के बारे में भी कहा गया है।[३] घरेलू कामकाज में भी ये मानवों के समान समर्थ थे।[४] इस प्रकार पशु नहीं, वे वन्य मनुष्य ही सिद्ध होते हैं।

कवि परम्परा का पालन करते हुए रीछों को भी वानरों के समान चतुर तथा आकाशगामी बताया गया है। युद्ध के समय लंका में कोट के कंगूरों पर अनेक रीछों के चढ़ने[५] की बात केशव ने कही है। वानरों के समान आकाश में उड़ते हुए रीछों का वर्णन भी केशव साहित्य में मिलता है।[६]

अनादि काल से मनुष्य ओर पशुओं का निकटतम सम्बन्ध रहा है। मानवीय सभ्यता और सस्कृति के निर्माण में उनका भी बड़ा योगदान रहा है और उनकी सहायता से मानव को सुखी जीवन व्यतीत करने में बड़ी सुविधा मिल रही है। पालतू जानवरों के अन्तर्गत गाय, हाथी, घोड़ा आदि आते हैं। स्पष्टता की दृष्टि से उपर्युक्त पालतू जानवरों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं : उपयोगी पशु तथा क्रीड़ा पशु।

जिस प्रकार अग्नि का गुण उष्णता, जल का शीतलता, पृथ्वी का गुरुता है उसी प्रकार गोरक्षा हिन्दू धर्म का स्वाभाविक अंग है। संस्कृति तथा साहित्य का आधार आधेय सम्बन्ध होने के कारण हमारे प्राचीन ग्रन्थ गो महिमा से भरे पड़े हैं। ब्राह्मण तथा गौ दोनों को बड़ा महत्व दिया गया है। राजा दिलीप गो रक्षा के लिए अपने शरीर तक देने को तैयार हो गये। हिन्दू जाति के लिए आध्यात्मिक दृष्टि से गाय का महत्व अवर्णनीय है। महाभारत में महर्षि च्यवन ने राजा नहुष से इसके महत्व को वर्णन करते हुए कहा है कि मैं इस संसार में गौओं के समान दूसरा कोई धन नसीं समझता। गौओं के नाम

१--वानर हनुमान सिधार्यो। सूरज के सुत पर्यानि पार्यो।। वही, १२।५९
२—हवाई सी छूटी केशोदास आसमान में।
कमान कैसो गोल। हनुमत चल्यो लंका को॥—वही, १३।६८
३—यत्र तत्र ऋक्षईश व्योमत्यों विलोक ही।
बानरालि रीछ्र राजि दृष्टि सृष्टि रोकही।—वही, २१।२९
४—दौरि दौरि कपि रावर आवैं। बार बार प्रति धामन धावैं।
देखि देदि तिनको दैतारी। भांति भांति विहंसै पुरनारी॥—रा० च० २२।२१
५—अति द्वार द्वार मह युद्ध भये। बहु ऋच्छ कंगूरनि लागि गये।—रा० च० १७।६
६—वही, २१।२९

और गुणों का कीर्तन, श्रवण, गौओं का दान तथा उनका दर्शन—इनकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। ये समस्त कार्य सम्पूर्ण पापों को दूर करके परम कल्याण को प्रदान करने वाले।[१]

केशव ने गाय के लिए गौ[२], सुरभि[३], सुरभी[४], आदि शब्दों का प्रयोग किया है। लुरी[५] (थोड़े दिन की ब्याही गाय), और कलोर[६] (जवान गाय जो ब्याही नहीं हो) का उल्लेख केशव साहित्य में प्राप्त होता है। केशवदास ने अपने साहित्य में गौ महिमा सम्बद्ध कुछ उल्लेख किये हैं। राजा रामचन्द्र गौ-ब्राह्मणों को परम पवित्र मानते थे। उनके शासन काल में गौ-ब्राह्मणों के विरोधी ग्रन्थों में ही सुनायी पड़ते हैं।[७] वीरसिंह देव ने अपना यह अभिप्राय प्रकट किया है कि सत्य गाय, ब्राह्मण और मित्र की रक्षा करना सन्तों का धर्म है।[८] गाय, ब्राह्मण, राजा और स्त्री को विपत्ति में देखकर जो बचाने का प्रयत्न नहीं करता तथा जो चोर को दण्ड नहीं देता वह घोर नरक भोगता है।[९] जहांगीर सिंहासन पर बैठकर गाय और ब्राह्मणों की रक्षा करता था।[१०] राजा दशरथ गाय और ब्राह्मणों के दास थे—

केशोदास दास द्विज गायन के।[११]

केशव के रामचन्द्र गौ-ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले थे। यह परम धर्म रावण की दृष्टि में भीरुता का प्रतीक बन गया है। उसने सीता से कहा कि जो राम गाय और ब्राह्मण से डरता है वह मुझसे क्या लड़ सकता है।[१२] सुलतान खुसरो की प्रसंशा करते हुए भाग्य

१—गौ स्तुल्यं न पश्यामि धनं किंचिदिहाच्युत ॥
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव।
सर्वैः प्रशस्य ते वीर सर्वपाप हरम् शिवम्।—महा० भा० अनुशासन पर्व

२—के० ग्र० ४६७।१४

३—वही, ३६२।८

४—वही, ५७४।१६

५—र० वि० ७।२३

६—वही, ७।२३

७—बैरी गाय ब्राह्मण को ग्रंथन में सुनियत।—रा० चं० २७।३

८—सत्य, गाय, द्विज मीत कौ संतन रच्छा कर्म।—वी० च० १३।१४

९—गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै।
भोग वै नरक घोर चोर को अभयदानो॥—रा० चं० १३।३६

१०—सिंघासन बैठे राजा राखत हौ गाय द्विज।—ज० ज० च० १६१

११—रा० चं० ५।३१

१२—डरै गाय विप्रै अनाथै ज्यों भाजै।—रा० चं० १६।२७

ने कहा था कि वह गाय और ब्राह्मणों का रक्षक था।[1] गाय और ब्राह्मणों से द्वेष रखने वालों के लिए वीरसिंह देव सदा यम के समान था।[2]

हाथी का महत्व धार्मिक भी है और राजवर्गीय भी। राज दरबारों में हाथी का महत्वपूर्ण स्थान है। केशव के साहित्य में हाथी का उल्लेख राजाओं के वाहन के रूप ही अधिक स्थलों पर हुआ है। युद्ध में हाथियों को उपयोग में लाने की बात केशव ने लिखी है।[3] कवि परम्परा के अनुसार केशव ने गमन की रमणीयता को दृष्टि में रखकर स्त्री को गजगामिनी[4] कहा है। हाथी के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक विवरण अन्यत्र किया गया

हाथी के समान घोड़े को भी भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। उपयोगिता तथा वैभव की दृष्टि से इसका महत्व स्वीकृत किया गया है। केशव ने घोड़ों की विविध जातियों तथा लक्षणों के बारे में वीरसिंह देव चरित में वर्णन किया है।[6] घोड़े के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन अन्यत्र हो चुका है।[7]

हिरण के लिए मृग[8], कुरंग[9], हरिनी[10], आदि शब्दों का प्रयोग केशव साहित्य में मिलता है। कस्तूरी मृग को डाणि[11], कहा गया है। सिंह की उपस्थिति से ही हिरण को सबसे अधिक भय होता है।[12] बधिक के द्वारा मृग को मोहित किये जाने का उल्लेख भी एक स्थान पर किया गया है। मन रूपी मृग को मोहित करने के लिए राज्य लक्ष्मी

१—ज० ज० च० ५५

२—बैरी गाय-ब्राह्मण को काल सबु काल जहां।—वी० च० ३३।४७

३—वी० च० ३।३३

४—सुनि चन्द्रबदनि गजगामिनी एनि।—रा० चं० ६।२३

५—द्रष्टव्य : प्रस्तुत अध्ययन का तृतीय परिच्छेद।

६—वी० च० सत्रहवां प्रकाश।

७—द्रष्टव्य प्रस्तुत अध्ययन का तृतीय परिच्छेद।

८—मन मृग को सुबधिक की गति। विषय बेलि को वारिद रीति।—रा० चं० ८।३१

९—आश्यो कुरंग एक चारु हेम हीर को।—वही, ११।१३

१०—हरिनी ज्यों हेरित केशरि के काननहि।—वही, १४।२६

११—एणनं के मद के जल दूजी।—वही, ३२।२६

१२—वही, १४।२६

वधिक की रागिणी के समान कहा गया है।[1] चंचलता के आधार पर स्त्री को मृगनैनी[2] भी कहा है जो कवि परम्परा के अनुकूल है।

केशव ने परम्परा के अनुसार पशुओं का परिगणन ही किया है। सुरगज और दिग्गज की पौराणिक कल्पना को भी केशव साहित्य में स्थान मिला है। सांस्कृतिक दृष्टि से गाय का महत्व प्रतिपादित किया है। और उसकी रक्षा राजधर्म का एक प्रधान अंग माना गया है। यह मान्यता भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक परम्परा रखती है। शेष पशुओं का या तो अलंकरण के रूप में प्रयोग है या सामान्य उल्लेख मात्र।

जलचर :

केशव साहित्य में जलचरों का विस्तृत वर्णन नहीं है, किन्तु सर्वथा उसकी उपेक्षा नहीं की गयी है। अयोध्या तथा जहाँगीरपुर की वाटिकाओं के वर्णन के सन्दर्भ में वहां के सरोवरों में अनेक जलचरों के होने की बात केशव ने कही है।[3] जलचरों में प्रधानतः मीन या मछली का ही केशव ने उल्लेख किया है। मीन या मछली को चंचलता, आकृति आदि के आधार पर स्त्री के नेत्रों के लिए अप्रस्तुत रूप में प्रयुक्त करना कवि परम्परागत रूढ़ि है। एक स्थान पर कवि ने सीता जी के नेत्रों की तुलना मीन से की है।[4] एक अन्य स्थल पर कवि ने अप्रस्तुत के रूप में मछली को पकड़ने का ढंग भी बताया है।[5] कुंडलों को मकर की आकृति का बतलाया गया है।[6] तिमिंगल[7], मन्डूक[8], कच्छप[9], आदि का उल्लेख भी केशव ने किया है।

३-१४ पक्षी :

१—रा० चं० २३।३१
२—बासों मृग अंग कहै तो मृग नैनी सब ।—वही,, ६।४०
३—(अ) जलचर डोलै बहु खग बोलें । बरणि न जाही डर उर भाहीं । रा० चं० १।३३
(आ) मगर मच्छ बहु कच्छप बसैं । सारस हंस सरोवर लसैं ।—वी० च० १५।२०
४—रा० चं० ६।४५
५—बंक हियेन प्रभा सरसी सी । कर्दम काम कछू परसी सी ।
कामिनी काम की डोरि ग्रसीसीं । मीन मनुष्यन की बरसी सी ।— रा० चं० २४।७
६—श्रवण मकर कुंडल लसत, मुख सुखमा एकत्र । वही, ३।४६
७—जल जाल काल कराल मल तिमिंगलादिक सों बसैं ।—रा० चं० १४।४२
८—मानहु मंडूक मोर, चातक चय करत शोर ।—रा० चं० ३०।२२
९—वी० च० १५।२०

पक्षियों के साथ मानव जीवन का निकट सम्बन्ध है। जिस प्रकार फूल सौन्दर्य के वर्धक हैं उसी प्रकार पक्षी संगीत को दोहद देने वाले हैं। फूल और पक्षी से यदि पृथ्वी हीन होती है तो संसार में शायद साहित्य और संगीत का जन्म ही नहीं होता। कलाकारों को प्रोत्साहन देने में इन दोनों का स्थान महत्वपूर्ण है। श्री राजेश्वर प्रसाद नारायणसिंह के अनुसार 'पक्षियों का मधुर संगीत तथा रूप सौन्दर्य सांसारिक जीवन से ऊबे हुए मन के लिए 'टानिक' का काम करते है, पर इसके सिवा भी हमारे लिए इन की बड़ी उपयोगिताएं हैं जिनके लिए मानव समाज को पक्षी के प्रति आभारी होना चाहिए।[1] इसलिए संसार में ऐसा कोई महाकाव्य नहीं कि जिसमें पक्षियों की गतिविधियों का वर्णन नहीं किया गया हो।

केशव साहित्य में वर्णित पक्षियों की चर्चा निम्नलिखित दो उप-शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है : (१) लोकप्रिय अथवा प्रसिद्ध पक्षी तथा (२) लोक तिरस्कृत अथवा अमंगलकारी पक्षी।

लोकप्रिय पक्षियों के अन्तर्गत वे पक्षी आते हैं जिनमें कोई सुन्दर रूप के कारण और कोई विशेष गुण के कारण मानव समाज को प्रिय रहा है। इस वर्ग के अनेक पक्षियों को पालने की भी प्रथा समाज में दिखायी पड़ती है। इस वर्ग के पक्षियों में हंस, कोयल खंजन, चक्रवाक, चकोर, चातक, मयूर, शुक, आदि पक्षी आते हैं।

हंस एक प्रसिद्ध पक्षी है जो सरस्वती के वाहन होने के कारण भारत देश में सदा सम्मान का पात्र रहा है। केशव साहित्य में दो प्रकार के हंसों का उल्लेख किया गया है : नृप हंस और कलहंस[2], लाला भगवानदीन के अनुसार नृप हंस बहुत बड़ा होता है और कलहंस मधुर स्वर से बोलने वाले तथा मंझोले 'डील के होते है।[3] नृपहंस या राज हंस को ब्रह्मा का वाहन बताया गया है।[4] उसे हेम हंस की संज्ञा दी गयी है।[5] वेत्रवती नदी के वर्णन के प्रसंग में उसमें सारस तथा हंसों के रहने का उल्लेख किया गया है।[6] हंस वर्षा के समय सरोवरों में नहीं रहता। वर्षा के शुरू होते ही मानस सरोवर में चला जाता है। कवि ने इस बात की ओर संकेत किया है कि बादल और हंसों में शत्रुता है।

१—भारत के पक्षी पृ० ४

२—नृपहंसनि नूपर सोभरी। कलहंसनि कंठनि कंठसिरी।—रा० चं० ११।२६

३—केशव कौमुदी, पूर्वार्धं, पृ० २८०

४—विधि के समान है विमानी कृत राज हंस।—रा० चं० २।१०

५—हरि कैसो वाहिनकि विधि कैसो हेम हंस।—वही, १३।६८

६—सारस हंस सरोवर लसैं।—वी० च० १५।२०

इसलिए बादल हंसों को नहीं देखते[1] पर बसन्त काल के आगमन के साथ ही वे आ जाते हैं। अतएव इन को वसन्त के भट[2] भी कहा गया है। कवि ने मानस सरोवर के साथ हंसों के स्वाभाविक सम्बन्ध का उल्लेख किया है—ज्ञान-मानस हंस[3] दानमानस हंस[4] जिनको यशहंस भी कहते है। 'जगत प्रशंसा मुनि जन मानस रंता[5], आदि उक्तियों से स्पष्ट किया गया हैं। हंसिनी के साथ हंस का शोभित होने का उल्लेख भी कवि ने किया है।[6] कालिदास ने वर्षाकाल में हंसों के मानस सरोवर प्रस्थान का वर्णन किया है।[7] मृनाल हंसों का मुख्य आहार माना जाता है। कवि ने इसका उल्लेख किया है। नारियां अपने हाथ में कमलिनी को लेकर हंसों को चुगाने में लीन है।[8] अंगद मन्दोदरी की बांह पकड़ कर इस प्रकार खींचता है मानो हंस मृणाली लता को खींच रहा है।[9]

केशव साहित्य में कोकिल के लिए पिक[10], परभृत[11], कोकिला[12] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। कोकिल अपनी मधुर कंठ ध्वनि के लिए बहुत प्रसिद्ध है। लाख प्रयत्न करने पर भी कोकिल के समान मधुर कन्ठ कौअे को नहीं आ सकता। यद्यपि कौआ और कोकिल वर्ण के काले होते हैं, परन्तु कन्ठध्वनि में महान अन्तर हैं। इसी बात को लक्ष्य करके संस्कृत में एक श्लोक प्रसिद्ध हो गया है :

काक कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिक काकयोः।
बसन्त काले संप्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥

१—मेघनि ज्यों हंसि हंसन हेरत हंसनि ज्यों घन रूपन पीवै।—रा० चं० ८।३३
२—बोल सुहंसु शुककोकिल केकि राज।
मानो वसन्त भट बोलत युद्ध काज।—रा० चं० ३०।२३
३—सुनि ज्ञान मानस हंस। जप जोग जग प्रशंस।—वही, १३।१२
४—सुनि दान मानस हंस। रघुवंश के अवतंस॥—वही, २।१३
५—रा० चं० १।२०
६—हंसिनी संग सोहत हंस।—वी० च० १५।८
७—कर्तुं यच्चप्रभवति महीं मुच्छलीध्रामवन्ध्याम्।
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभग गर्जितत मानसोत्काः—
आकलासाद्बिस किसयच्छेद पाथेयवन्तः।
संपत्स्यन्ते नभसि भवतोराजहंसा सहायाः।—मेघदूत, १।११
८—वी० च० २१।४३
९—गहें बांह ऐंचै चहूं ओर ताको। मनो हंस लीन्हे मृणाली लता को। रा० चं० २६।२६
१०—के० ग्रं० ७।१२
११—रा०चं० १३।१२
१२—के० ग्रं० १२५।४६

इसी तथ्य का उल्लेख केशव ने किया है। यदि स्वयं सरस्वती भी बोलने का ढ़ंग सिखावे तो भी कौआ कोकिल के समान सुन्दर वाणी नही बोल सकता।[1] वसन्त के आरम्भ में जब आम के वृक्ष बौरों से लद जाते हैं तो वह मन्जरी, कोंपलों, फल आदि का रसास्वादन करती हुई पंचम स्वर में ऐसी तान छेड़ती है कि एक समाँ बान्ध देती है।[2] केशवदास ने कोकिल के वसन्त ऋतु में बोलने[3] और स्वर मधुर होने का उल्लेख किया है।[4] कोकिल के स्वर के मधुर होने के विषय में कालिदास ने उत्प्रेक्षा की है कि वसन्त में आम्राँकुरों के आस्वादन से कषाय होने के कारण ही कोकिल का स्वर इतना मधुर हो जाता है।[5] इनके वन में[6] और उपवनों में[7] अधिक रहने का उल्लेख भी है।

खंजन, या खिडलिच एक बहुत चंचल पक्षी होता है जिसे कवि गण ने नेत्रों की उपमा के लिए लिया है। यह एक छोटी सी चिड़िया है। यह शरद ऋतु के साथ साथ आती हैं ओर वसन्त ऋतु के समाप्त होते होते पहाड़ों की ओर चल देती है।

केशवदास ने खंजन को आंखों की उपमा के रूप में स्वीकृत किया है। संदेहालंकार के आधार पर यह कहा गया है कि खंजन पक्षी मन को रंजित करते हैं अथवा प्रिय के नेत्र।[8]

चक्रवाक भारत का प्राचीन पक्षी है। ऋग्वेद में जिन पक्षियों से रक्षा करने की याचना की गयी है उनमें चक्रवाक का भी उल्लेख है।[9] इससे विदित होता है कि उन दिनों यह पक्षी हानिप्रद माना जाता था। चन्द्रमा और रात्रि से चक्रवाक का विरोध कवि समय में प्रसिद्ध है। केशवदास ने नायिका के सौन्दर्य को देखकर सौतों की दूतियों

१—आपगिरा गुन जौ सिखावैं तउ काक न कोकिल ज्यों कल कूजै। र० प्रि० १२।२६
२—भारत के पक्षी, राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह, पृ० ३८
३—रा० च० ३०।३३
४—बोलत कल ध्वनि कोकिल साजिय। रा० च० १।३०
५—चूताकुरास्वाद कषायकंठः पुस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज।
मनस्विनी मान विघातदक्ष तदेव जात वचन स्मरस्य॥ कुमारसंभव, ३।३२
६—रा० च० ३।१
७—अति उज्वलता सब कालहु बसै।
शुक केकि पिकादिक शब्द हुलसै॥ रा० च० ३२।२८
८—खंजन है मन रंजन केशव रंजन नैन किधौ मति जी की।—र० प्रि० ८।२२
९—चक्रवाक मेव प्रतिवस्त्रोरउस्तावच्चिय। यातं रम्येव शक्रा।—ऋग्वेद, २।३९।३

के भागने की तुलना चन्द्रमा को देखकर चक्रवाक के भागने से की है।[१] चन्द्रमा को देख कर चकवा चकई के वियोग होने की बात कवि ने लिखी है।[२] एक स्थान पर केशव ने बताया है कि जहांगीर के मुखचन्द्र को देखकर चक्रवर्ती रूपी चक्रवाक दुःखी होते हैं।[३] कवि परंपरा के अनुसार केशव ने चक्रवाक को स्तनों के उपमान के रूप में प्रस्तुत किया है।[४]

आकार प्रकार में चकोर बहुत कुछ तीतर से मिलता है। यह नेत्रों का प्रसिद्ध उपमान है। अंगार चुगकर[५] बेसुध पड़े रहने वाला चकोर चन्द्रमा के दर्शन करते ही पुनः प्रफुल्ल चित्त होने की बात परंपरा में प्रसिद्ध है।[६] केशवदास ने इस विश्वास के आधार पर भरत की उस स्थिति की व्यंजना की है जब उन्होंने हनुमान द्वारा राम के वन से लौट आने की सूचना पायी।[७]

चातक को पपीहा भी कहते हैं। जन सामान्य में पपीहा अपनी बोली के लिए प्रसिद्ध है। वसन्त के बाद से बरसात तक इसकी बोली सुनी जाती है। जाड़ों में तो यह प्रायः मौन रहता है। श्री राजेश्वर प्रसाद नारायणसिंह के अनुसार भारतवर्ष में विभिन्न लोक गीतों में जो स्थान पपीहा ने पाया है वह और किसी पक्षी को शायद ही नसीब हुआ है।[८] प्रेम की अनन्यता और एकनिष्ठता के आदर्श पर चलने वाले चकोर चक्रवाक आदि पक्षियों के क्रम में चातक का भी स्थान है। कवि प्रसिद्धि के अनुसार यह पक्षी केवल स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले जल को पीकर ही अपनी प्यास बुझाता है। प्यास के कारण मरणासन्न होने पर भी दूसरा पानी नहीं पीता।[९] केशव ने पपीहे का हमेशा

१—चौंकि चौंकि चकई सी सौतिनी की दूति चली।—र० प्रि० ७।३०

२—बिछुरेई रहै चक्र चकई ज्यौं आठों जाम।—वी० च० ३३।४६

३—जाके मुख चद्र के प्रकास सब चक्रवर्ती चक्रवाक चंपेई मरत हैं।—ज० ज० चं० ३२

४—शिखनख, २०

५—लीलत है सबही के सिंगार अंगारनि ज्यों बिन चन्दु चकोरी।—र० प्रि० ८।७

६—जनु केशव पूरन चंद लसै चित चारू चकोरनि को हरिकै।—र० प्रि० ६।५६

७—जैसे चकोर लीलैं अंगार। तेहि भूलि जात सिगरी संभार।

जी उठत उवत ज्यों उदधि नंद त्यों भरत भये सुनि सामचंद।—रा० चं० २१।१५

८—भारत के पक्षी, पृ० ४३

९—चिच्याइ भरै चुप साधै कि चातक स्वाति समै ही स्रवैसु बिसेख्यो।—र० प्रि० १२।१२

प्यासा रहने का भी उल्लेख किया है।[१] केशव ने चातक को कोयल आदि प्रसिद्ध पक्षियों के अन्तर्गत माना है।[२]

मयूर हमारा राष्ट्रीय पक्षी है। यह अपनी सुन्दरता के कारण कवियों को अपनी ओर आकर्षित करता आ रहा है। केशव ने इसके लिए मोर[३] सिखी[४] केकी[५] नीलकंठ[६] आदि पर्यायों का प्रयोग किया है। वर्षाकाल में मोरों का नाचना देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। केशव ने वर्षा में मयूरों के प्रसन्न होने[७] और वर्षा काल में उनके प्रसन्न होकर नाचने का उल्लेख किया है।[८] मोर का नृत्य और स्वर वर्षा काल में तो होता ही हैं, अन्य ऋतुओं में भी विरल नहीं है। किन्तु उसका अत्यन्त आकर्षक रूप वर्षा काल तक ही परिमित रहता है। अयोध्या की वाटिका में मयूरों के नाचने का भी उल्लेख केशव ने किया है।[९]

कवि समय के अनुसार कोकिल और मयूर का एक ही समय में बोलना मान्य नहीं है। क्योंकि कोकिल का कलरव बसन्त तक सीमित रहता है और मयूर का वर्षा तक। किन्तु केशव ने इस कवि समय का उल्लंघन करके दोनों के एक ही समय में बोलने का वर्णन किया है। श्री विष्णु स्वरूप जी के अनुसार कवि समय का कठोर रूप से पालन न करने की वृत्ति द्वारा ही दोनों का साथ साथ वर्णन हो सकता है। केशवदास के निम्न-लिखित काव्यांश में इस प्रवृत्ति का उदाहरण है :

बोलत मोर तहां सुख संयुत। ज्यों बिरदावलि भाटन के सुत।
कोमल कोकिल के कुल बोलत। ज्ञान कपाट कुंची जनु खोलत ॥[१०]

शुक और शारिका कामशास्त्रीय पक्षी माने जाते हैं। ये दोनों पिंजड़ों में पाले पक्षी हैं। कवि परंपरा के अनुसार इन दोनों का साथ साथ उल्लेख मिलता है। इन दोनों

१—तावहि को ताडन जहां, तृष चातक के चित्त।—रा० चं० ३१।२०
२—गाजत बाज़ मनौ मृदंग। चातकि पिक गायक बहु रंग।—वी० च० ११।३
३—के० ग्रं० १५८।२८ ४—वही, ४६५।५
५—क० प्रि० ४।२२ ६—के० ग्रं० ६३।२४
७—अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की।
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है।—रा० चं० १३।१६
८—नाचत नील कंठ चहुं दिसा। बरखत बरसा बासर निसा।—वी० च० १५।७
९—रा० च० ३१।१५
१०—कवि समय मीमांसा, पृ० १३०

में प्रेमी-प्रेमिका का संबन्ध माना जाता है। श्री मैथिलीशरण गुप्तजी के 'साकेत' का 'कीर' तो लक्ष्मण द्वारा सिखाये जाने पर सलोनी सारिका की कामना भी करता है।[१] श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह के अनुसार शुक और सारिका उन भारतीय पक्षियों में हैं जिनकी इस देश के कथा साहित्य में बड़ी चर्चा है। ये दोनों वाचाल, अत्यन्त वाकपटु पक्षी हैं। एक समय था जब कि साधारण जनता से लेकर लोकपाल तक में इनकी कद्र थी।[२] ये दोनों ही बड़ी आसानी से दूसरों की बोली सीख लिया करते हैं। इन पक्षियों को पढ़ाने में नायिका नायक की चर्चा सम्मिलित है। लंका वर्णन के संदर्भ में केशव ने इस विषय में संकेत किया है :—

कहीं जक्षिनी पक्षिनी लै पढ़ावै।[३]

शुक और सारिका को कोक की कारिकाएं रटा दी जाती हैं और वे अवसर पर उनका पाठ करके प्रेम का विस्तार करते थे।[४] ब्रज की गोपिकाओं के द्वारा शुक और सारिका को कोक शास्त्र की कारिकाओं को पढ़ाने का उल्लेख एक दूसरे स्थान पर भी केशव ने किया है।[५] केशव ने शुकी और सारिका में सपत्नी भाव का भी उल्लेख किया है। किसी मैना से बातें करते हुए सुग्गे को देखकर सुग्गी के दुःखी होने की बात भी केशव ने कही है। नायिका के द्वारा शुक सारिकाओं का पालन किये जाने की चर्चा भी केशव ने की है।[६] शुक और सारिका का मधुर ध्वनि का होने[७] तथा गंगा के किनारे शुक और सारिका की ध्वनि के नहीं होने के कारण सीता के मन में इस आशंका का, कि यहां कोई आश्रम नहीं है, वर्णन कवि ने किया है।[८] राजनीतिक विषयों में मैना के द्वारा गूढ़चारी का काम कराने का भी उल्लेख एक स्थान पर मिलता है।[९]

१—तदपि यह कीर क्या कहने चला ?
कह अरे, क्या चाहिए तुझको भला ?
जनकपुर की राजकुंज विहारिका
एक सुकुमारी सलोनी सारिका।—साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २३–२४

२—भारत के पक्षी, पृ० १००

३—रा० चं० १३.५०

४—कहूं कोकिला कोक की कारिका को।
पढ़ावै सुवा लै सुकी सारिका को।—रा० चं० १३।५२

५—ब्रज की कुमारिका वै लीने सुख सारिका।
पढ़ावै कोक कारिकानि केसव सवै निबाहि।—र० प्रि० १४।३५

६—र० प्रि० ३।२३ ७—रा० चं० ३।१

८—सुनो न ज्ञानकारिका। शुकी पढ़ै न सारिका।

९—मैना एक गयो तब देखि राजसिंह सों कह्यो विसेष।—वी० चं० ४।८३

गरुड़ भगवान विष्णु के वाहन के रूप में प्रसिद्ध है। शिकारी पक्षियों में यह सबसे बड़ा और भयंकर है। श्री राजेश्वर प्रसाद नारायणसिंह के अनुसार 'दक्षिण भारत में एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है जिसे 'पक्षि तीर्थम्' के नाम से पुकारते हैं। वहां शताब्दियों से लगभग दोपहर के समय गरुड का एक जोड़ा सुदूर आकाश से उतर कर आता है और फिर मंदिर के पुजारी द्वारा दिये गये खाद्यान्न को ग्रहण करके अंतरिक्ष में लौट जाता है। सैकड़ों आदमी उस समय उसके दर्शन के लिए वहां पहले से उपस्थित रहते हैं तथा उन्हें पूजा चढ़ाकर अपनी गरुड़ भक्ति का परिचय देते हैं।[१]

गरुड़ पक्षियों में शक्तिशाली होने के कारण केशव ने इसे पक्षिराज भी कहा है।[२] राम के नागपाश से बंधे जाने पर गरुड़ ने आकर नागपाश के सब सर्पों को मार भगाया और रामचन्द्र की स्तुति करके वैंकुंठ में चला गया।[३] गरुड़ के सर्पों का शत्रु होने तथा उसके द्वारा उनको मारे जाने की भी चर्चा केशव में मिलती है।[४]

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य लोकप्रिय पक्षियों का भी उल्लेख केशव ने किया है। उनमें बक[५] (बगुला), कपोत[६] (कबूतर), चरणयुध[७] (मुर्गा), सकनी[८], तीतरी[९], कुरर[१०] (क्रौंच पक्षी), कुलंग[११], रांटी[१२] (टिटहरी) आदि पक्षी मुख्य हैं।

लोक तिरस्कृत या अमंगलकारी पक्षियों के अन्तर्गत वे पक्षी आते हैं जो अपनी गुण हीनता और दुष्ट-स्वभाव के कारण मानव समाज में प्रायः तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते हैं।

केशव साहित्य में वर्णित जो पक्षी इस वर्ग में आते हैं उनमें उलूक, गीध, बक, सारस आदि मुख्य हैं। यों तो प्रायः सभी पक्षी कीड़े मकोड़े खाते हैं, परन्तु इस लोक तिरस्कृत वर्ग के प्रायः सभी पक्षी मांसाहारी हैं। सम्भवतः उनके प्रति तिरस्कार की भावना

१—भारत के पक्षी, पृ० २५१
२—पच्छिराज जच्छराज प्रेतराज जातुधान l—रा० चं० ११।१७
३—रा० चं० १७।१४, १५, १६
४—सर्पनिमनो गरुड बसकर्यो ॥—वी० च० १४।८१
५—वी० च० १५।१२
६—शिखनख, १६
७—वी० च० २१।१५
८—के० ग्रं० ४६४।३
९—वही, २०६।६५
१०—वही, १४४।३४
११—वही, १४४।३४
१२—क० प्रि० ६।४४

का यह प्रथम कारण हो सकता है और लोकप्रिय पक्षियों जैसा रूप गुण आदि का न होना दूसरा कारण हो सकता है।

तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाने वाले पक्षियों में सर्व प्रथम है उल्लू या उलूक। यह मूर्खता का प्रतीक माना जाता है। एक परम्परागत लोक विश्वास है कि मकान में इसका रहना अथवा आना जाना किसी भावी दुर्घटना का सूचक है। केशव ने एक जगह पर उल्लेख किया है कि घूघू का घर में घुसने से सर्वनाश हो जायगा।[१] मकान के आस पास के पेड़ पर इसका बोलना बड़ा अशुभ माना जाता है क्योंकि सर्व साधारण में यह धारणा है कि उल्लू को आदमी की मृत्यु का पूर्वाभास मिल जाता है तभी यह घर के आस-पास आकर मनहूस आवाज करता है। कवि समय में यह प्रसिद्ध है कि उल्लू दिन में देख नहीं सकता। केशव ने भी इस बात को व्यक्त किया है। रामचन्द्रिका में राम विरह के प्रसंग में उल्लू के दिन में नहीं देख सकने की बात कही गयी है।[२] कवि रहीम ने भी इस बात का उल्लेख किया है।[३] एक संस्कृत कवि का भी कहना है कि दिन में न देख सकना उसका पूर्व जन्मकृत पाप है।[४]

गीध या गृद्ध आकाश में बहुत दूर तक उड़नेवाला पक्षी है। उसकी दृष्टि बड़ी पैनी होती है। ये आकाश ऊंचे ताड़ के वृक्ष पर बैठे रहते हैं, चूंकि इन्हें दूर-दूर तक देखने की सुविधा होती है। रामचन्द्रिका में रामकथा के अनुसार इसका उल्लेख आदर पूर्वक तथा लोक मंगलकारी के रूप में किया गया है। सीता के अपहरण के प्रसंग में रावण से युद्ध करके जटायु का मरजाने[५] और उसके भाई 'सम्पाति' के नाम से विख्यात हो जाने[६] का उल्लेख रामचन्द्रिका में किया गया है। आदर भाव के साथ सम्पाति को खगपति[७] भी कहा गया है।

१—घू घू क्यों घुसन प्रात मेरे गृह आये हौ।—र० प्रि० ७।१७

२—बासर की सम्पति उलूक ज्यों नचितवत।—रा० चं० १३।८८

३—शीत हरत, तम हरत, भुवन भरत, नहि चूक।
रहिमन तेहिरवि को कहा, जो घटि लखै उलूक॥—रहीम

४—यद्यपि तरणेः किरणैः सकलमिदं विश्वमुज्ज्वलं विदधे।
तदपि न पश्यति घूकः पुराकृतं भज्यते कर्म॥

५—रा० च० १२।२२, २३

६—वही, २३।३७

७—सीता लंका मांझ है। खगपति दई बताय।—वही, १३।३७

इन के अतिरिक्त केशव साहित्य में बक[1] सारस आदि लोक तिरस्कृत पक्षियों का उल्लेख भी किया गया है।

केशव ने लगभग उन्हीं पक्षियों को लिया है जो कवि परम्परा में रूढ़ रहे है। उनसे सम्बन्धित कवि समयों का भी केशव ने निर्वाह किया है। सांस्कृतिक दृष्टि से हंस और गरुड का स्थान महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति में कमल का प्रतीक अत्यन्त प्रसिद्ध है उसी प्रकार हंस का भी। गरुड का सम्बन्ध विष्णु से है और इस रूप में केशव साहित्य में भी उस की स्थिति है। जहाँ तक अशुभ सूचक पक्षियों का सम्बन्ध है उनके साथ लगा हुआ लोक विश्वास लोक संस्कृति के अन्तर्गत आ जाता है। उल्लू या घुग्घू के विषय में प्रचलित विश्वास का प्रयोग करके केशव ने लोक संस्कृति का संकेत किया है।

अन्य जीव :

केशव साहित्य में पशु पक्षियों के अतिरिक्त अन्य जीवों का भी उल्लेख किया गया है। उनमें सर्प, चन्द्रवधू, भ्रमर, मतंग, खद्योत और झिल्ली आदि मुख्य हैं।

सर्प के लिए केशव साहित्य में अहि[2], आशीविष[3], पन्नग[4], भुजंगम[5] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। केशव ने सर्प का उल्लेख कवि परम्परा के अनुसार किया है। सीता के मूर्छित हो जाने पर सर्प आया और उसने अपनी बड़ी फनों से उन की छाया की।[6] यों तो केशव ने पाटी की तुलना सर्प के फन से की है।[7] सर्प भयंकर होते हैं, परन्तु अजगर भीमकाय होने के कारण बड़ा भयंकर होता है। भारी होने के कारण वह चल नहीं सकता, एक स्थान पर ही पड़ा रहता है और अपनी सांस से शिकार को निकट खींचकर निगल जाता है। इस प्रकार बिना उद्यम के ही भाग्यवश अजगर को पेट भरने की बात केशवदास ने लिखी है।[8] इस का सम्बन्ध एक लोकोक्ति से है—अजगर करै न

१—क० प्रि० ५।५

२—रा० चं० ६।८५

३—वही, २३।३२

४—वही, ३।२६

५—वही, २०।५०

६—वही, ३३।५२

७—शिखनख, ३

८—अजगरादि अंगलोभच्छ कौं कब उठिधावत।—ज०ज०ज० १७

चाकरी, पक्षी करै न काम। साधारण सर्पो के अतिरिक्त अनन्त[1], तक्षक[2] वासुकि[3] की भी चर्चा केशव साहित्य में प्राप्त होती है। अप्रस्तुत के रूप में काल सर्प[4], क्रोध भुजंगम[5] वचनविसर्पी[6] आदि का उल्लेख भी केशव ने किया है।

केशव साहित्य में वर्णित कीट पतंगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान भ्रमर का है। इसके अनेक नाम कवि के द्वारा व्यवहृत हुए हैं--अलि[7], चंचरीक[8], भौंर[9] मधुप[10], षट्पद[11], आदि। कवि परम्परा के अनुसार भ्रमर का इधर उधर चक्कर काटते रहना[12] हाथी के मदजल का पान करना[13] कमल के प्रति विशेष आकर्षण रहना[14] आदि सामान्य उक्तियां कही गयी हैं। केशव ने रोमराजि के लिए अलिमाल[15] और कुचाग्र के लिए भ्रमर[16] की उपमा दी है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्राकृतिक वस्तु वर्णन में कवि की दृष्टि प्रधानतः परम्परा की ओर अधिक रही है। कविप्रिया के सातवें प्रकाश में प्रकृति के सम्बन्ध में कवि ने जो दृष्टिकोण व्यक्त किया है उसी को अपने काव्यों में स्थान दिया है। वन, नदी, पर्वत, सरोवर, पशु, कीट पतंग आदि के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि पर संस्कृत साहित्य का अधिक प्रभाव पड़ा है। केशव साहित्य के प्राकृतिक वर्णन के सम्बन्ध में प्रकट होने वाला दूसरा तथ्य यह है कि उसमें प्राकृतिक वस्तुओं का अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत अधिक प्रयोग किया गया है। डा० रघुवंश के अनुसार केशव की प्रवृत्ति प्रकृति के सहचरण रूप को प्रस्तुत करने के बिलकुल विपरीत है। इनमें स्वच्छन्द वातावरण की कल्पना नहीं की जा सकती। परंपरा

१—रा० चं० १।१५
२—वही, २०।८
३—वही, ४।२३
४—वही, १७।१३
५—वही, २०।५०
६—वही, १३।२६
७—वही, १५।१५
८—वही, ३।१६
९—वही, ४।२३
१०—वही, ३०।१६
११—वही, २१।३०
१२—भौंरनिज्यों भ्रमत रहित वन वीथिकानि।—रा० चं० १४।२६
१३—अमल कमल तजि अमोल मधुप लोल टोल डोल।
बैठत उड़ि क्ररि कपोल दान मान कारी।—वही, ३०।२६
१४—राम पद पद्म सुख सद्म वहं बन्धु युग।
दौरि सब षट्पद समान सुख पाइयो॥—वही, २१।३०
१५—शिखनख, २३
१६—वही, २१

के अनुसार उपालंभ आदि का प्रयोग कर दिया गया है।[१]

प्रेम के वशीभूत होकर मरनेवालों को दीपक-पतंग की उपमा देना कवि परम्परा में प्रसिद्ध है। केशव ने दीपक के प्रति पतंग के आकर्षण के होने की बात लिखी है।[२]

वीर बहूटी नाम से लोक में परिचित लाल रंग के अनुसार कीड़े को 'इन्द्र-वधू' अथवा इन्द्र बहूटी कहा जाता है। यह कीड़ा वर्षा के समय ही देखा जाता है। रामचन्द्रिका में वर्षा वर्णन के प्रसंग में इसका उल्लेख हुआ है। केशव ने इसके लिए चन्द्र-वधू[३] तथा इन्द्रवधू[४] दोनों शब्दों का प्रयोग किया है।

खद्योत और जुगुनू का भी उल्लेख केशव ने किया है। वर्षा काल के वर्णन के प्रसंग में खद्योत[५] की चर्चा की गयी है। झिल्ली एक छोटा सा कीड़ा है जो वर्षाकाल में घोष करता है। यह अकसर पेड़ों के आश्रित होकर रहता है। केशव ने भाद्रपद मास में इसके अधिक घोष करने की बात कही है।[६]

३-१५ समुद्र :

केशव साहित्य में समुद्र के लिए जलजाल[७], जलधि[८], रत्नाकर[९], सागर[१०], पयोनिधि[११], सिन्धु[१२] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। समुद्रों का वर्णन दो प्रकार से हुआ है : समुद्र का साक्षात् वर्णन तथा अप्रस्तुत योजना में समुद्र का उल्लेख।

केशव ने भारत की दक्षिण दिशा में स्थित सागर का वर्णन किया है। इस प्रसंग में कवि ने उसमें रत्न, अमृत, विष आदि के होने, श्री हरि का निवास स्थान होने तथा

१—प्रकृति और काव्य, पृ० २५१

२—कुश की टेर सुनी जही फूलि परे शत्रुघ्न।
दीपक विलोकि पतंग ज्यों, यदपि भयो बहु विघ्न॥—रा० च० ३६।२८

३—धरनी कहं चन्द्रवधू धरि दीन्ही।—रा० च० १३।१७

४—इन्द्र वधू धरधरनि हि दई।—वी० च० ११।६

५—खद्योत कौं विपदा भई।—वही, ११।६

६—झिल्लीगन झंकार पवन झुकि झुकि झक झोरत।—क० प्रि० १०।२६

७—जलजाल काल कराल माल उफल पार धराधरी।—रा० च० २१।४५

८—अनु जलधि मंग तरंग।—वही, १४।३६

९—पुनि वानर रत्नकार बन्यो अतिचित्त चंचल जानियो।—वही, ६।३१

१०—सागर जत गज को करिया केशवदास।—वही, १५।३५

११—पैरत पाप पयोनिधि में नरमूढ़ मनोज जहाज चढ़ोई।—वही, ४.२२

चन्दन वृक्षों से तरंगित होने का उल्लेख किया है। उसी प्रकार उसमें भयंकर तिमिंगलादि के रहने तथा उसके जल के निरूपयोगी होने की बात भी कवि ने कही है। केशव ने एक छन्द में पक्षल द्वीप में (१) क्षेम (२) शिव (३) जय (४) यशकर्णी (५) अमृत (६) अभय (७) इहिनाम के सात समुद्रों के होने की बात कही है।[1] इनके अतिरिक्त केशव साहित्य में सप्त सिन्धु[2] और उनमें मुख्यतः क्षीरसिन्धु[3] का उल्लेख है।

समुद्र के गाँभीर्य और विस्तार का प्रयोग केशव साहित्य में अप्रस्तुत रूप में अधिक हुआ है। अघमोघ समुद्र[4] काम समुद्र[5] चिन्ता समुद्र[6] लोभ समुद्र[7] शोक समुद्र[8] समर समुद्र[9] सुख समुद्र[10] विपदा समुद्र[11] जगत सागर[12] भवसागर[13] यश सागर[14] तप सिन्धु[15] ऐसे ही शब्द हैं। केशव ने एक स्थान पर कामक्रीडा करने के बाद नायिका की तुलना प्रभात समय के समुद्र से की है।[16] भव सागर का प्रतीक भारतीय चिंतन का अभिन्न अंग हो गया है। इसी प्रतीक का बहुल प्रयोग केशव साहित्य में मिलता है।

समुद्र वर्णन में केशव का भौगोलिक ज्ञान तो सामान्य रूप से ही प्रकट होता है। समुद्र की पौराणिक कल्पना और संख्या ही केशव के मस्तिष्क में प्रायः रही हैं। क्षीर समुद्र और विष्णु का संबन्ध पौराणिक कल्पना से ही प्रसूत हैं। साथ ही अनेक रत्नों का आगार भी विश्वास के आधार पर ही उसे कहा गया है।

१—सात क्षेम समुद्र शिव जय यशकर्णी प्रमान।
अमृत इहिनाम युत सातो खंड प्रमान।—वि० गी० ४।२५

२—रा० चं० ७।४२ ३—रा० चं० १५।७

४—रावण के अघमेघ समुद्र में बूड़त हौं वरही कर काढो।—रा० चं० १५।२४

५—काम समुद्र झकोरनि झूल्यो। यौवन चोर महामद भूल्यो।—वही, २४।५

६—बूड़त हौं महामोह समुद्र में राखत काहे न राखन हारे।—वही, १५।२५

७—लोभ समुद्र अगस्त्य से।—वही, १।५०

८—शोक समुद्र बुडाइ।—वही, १४।३२

९—समर समुद्र समान जानत सब अवगाहि है।—वही, ३।२५

१०—भये सुख समुद में मगन गात।—वही, २१।२४

११—हम बूडत है विपदा समुद।—वही, २१।३६

१२—सागर जगत जहाज को करिया केशवदास।—वही, १५।३५

१३—भव सागर को तरि पार सो होई।—वही, १५।३४

१४—यश सागर रघुनाथ जू। मेले सागर तीर।—वही, १४।४०

१५—सुर आपथा तपसिंधु में जस सेत श्रीदरसै अबै।—वही, २०।४७

१६—केलि के नागर नागरी प्रात उजागर सागर भेष भये हैं।—र० प्रि० ३।४४

३-१६ नदी : तीर्थ

३:१६१ नदियां :

हिन्दुओं की तीर्थों में विशेष आस्था है। 'भारत तीर्थों' का स्थान है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक बहुत से तीर्थ हैं। संसार सागर से तर जाने की कामना से ही हिन्दू लोग इन तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हैं। इन तीर्थों की धरती, हवा, जल सब कुछ पवित्र होता है। वहाँ रहकर मनुष्य पाप रहित हो जाता है।'[१] इन तीर्थों का सांस्कृतिक महत्व भी है। पुराने तीर्थों में पुराने समय की झांकी देखने को मिलती है। प्राय: यह देखा जाता है कि पवित्र तथा प्रसिद्ध तीर्थ स्थान नदियों के किनारे ही बसे हुए हैं। अध्ययन की सुविधा को दृष्टि में रखकर केशव साहित्य में वर्णित नदी-तीर्थों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते है : (१) नदियां और (२) तीर्थ स्थान।

केशव साहित्य में नदी के लिए आपगा[२], तरंगिनि[३], निम्नगा[४], सरिता[५], सरित[६] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। केशव साहित्य में गंगा, सरयू, यमुना, सरस्वती, त्रिवेणी, गोदावरी, बेतवा, अन्य नदियां तथा कृत्रिम सरिताएं दस नदियों का उल्लेख मिलता है।

भारतवर्ष की सभी नदियों में गंगा जल परम पावन माना जाता है। संस्कृत के महान् आचार्य वाग्भट के अनुसार हिमालय से निकलने के कारण गंगा जल पथ्य है।

हिमालयोद्भूताः पथ्यास्ताएवच स्थिराः ।।

केशव साहित्य में गंगा नदी के लिए जह्नुसुता[७], देवनदी[८], भागीरथी[९] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। गंगा जल का पान करने से प्यास ही नहीं बुझती, अपितु

१—भारत के तीर्थ, मिथिलेश 'प्रभाकर', पृ॰ ३
२—सुर अपगा तपसिन्धु में जस सेत श्रीदरसै अभी।—रा॰ चं॰ २०।४७
३—कहूं बाग तडाग तरंगिनि तीर तमाल की छांह विलोकि भली।—रा॰ चं॰ ६।४४
४—सदं निम्नगा छीर के पूर पूरी।—वही, २८।२
५-सरयू सरिता तट नागर बसै बर।—वही, १।२३
६-पुनि आये सरयू सरित तीर।—वही, १।२५
७—जग जह्नुसुता शुभ्रशील गहै।—रा॰ चं॰ ३१।१३
८—है कितने ऋषि देवनदी तट।—वही, ३३।२३
९—भागीरथी जहं ऐसि हैं केशव साधुन के जहं पुंज लसैं रे।—वि॰ गी॰ ३।७४

सकल संताप दूर हो जाते हैं।[1] गंगा जल से स्नान करके वीरसिंह देव ने अपने शरीर को पवित्र किया था।[2] गंगा स्नान से पापों का विनाश हो जाता है। उच्च से उच्च ब्रह्म स्थिति को प्राप्त करने वाले तथा निकृष्ट से निकृष्ट ब्रह्म हत्या करने वाले पातकी भी मुक्ति की कामना से गंगा में स्नान करते हैं।[3] तर्पणादि पवित्र कार्य भी इसमें किये जाते हैं।[4] इसकी पवित्रता को दृष्टि में रखकर ही भरत ने इसमें अपने शरीर के त्याग करने का संकल्प किया था।[5] केशव ने एक छन्द में अप्रस्तुत के रूप में गंगाजल के श्वेत होने, देवताओं के प्रिय होने, शिव से संपर्क रखने, मुक्तिप्रद होने तथा पूर्वपुण्य से ही उसकी प्राप्ति होने की बात तक कही है।[6] विशेष उत्सवों तथा पुण्य कार्यों के समय गंगा जल से पूर्ण घड़ों को रखना साँस्कृतिक महत्व से संबन्ध रखता है। मदन महोत्सव के समय वीरसिंहदेव के महल में सोने के कलशों में गंगाजल भरकर रखा गया था।[7] गंगाजल अत्यंत आदरणीय है।[8] विज्ञान गीता में केशव ने विवेक के द्वारा गंगा नदी की जो प्रार्थना करायी है, उससे उसके पाप विनाशक होना, उसका शिवजी के सिर पर शोभित होना, संसार के उद्धार के लिए वेदों के द्वारा उसका गान किया जाना, संसार की बाधाओं का विनाश करने की शक्ति होना, उसका महामोह का विनाश करके शाश्वत आनन्द प्रदान करना, पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्ग में उसका निवास होना, मानसिक तथा शारीरिक कर्मों का विनाश करना, उसके स्मरण मात्र से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पार्वती आदि की प्राप्ति होना आदि विशेष गुणों का परिचय मिलता है।[9] वाराणसी में लोग गंगा में स्नान करके ईश्वर की पूजा करते हैं।[10] गंगातट पर निवास करने वालों को निश्चित रूप से प्रबोध होता है।[11] केशव ने बृहन्नारदीय पुराण से एक श्लोक विज्ञान गीता में उद्धृत किया है जिसके अनुसार 'गंगा की महिमा अनन्त है, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी इसकी

१—जाते गंगादिकन को मिटत सकल संताप।—रा० च० २१।५८
२—लै गंगाजल करै पवित्र।—वी० च० २२।८
३—ब्रह्माण्ड भेदत ब्रह्मघातक पातकी इन न्हात।—वि० गी० ६।४४
४—धरि चित्त धीर। गये गंभीर।
शुचि ह्वै शरीर। पितु तर्पि नीर॥—रा० च० २०।३२
५—भरत जाय भागीरथी तट कर्यो संकल्प।—वही, १०।३८
६—क० प्रि० १४।१८
७—कनक कलस गंगाजल भरे।—वी० च० १६।४
८—जहां तहां आदरिये गंगाजू के नीर सो।—ज० च० ५
९—वि० गी० ११।४०–४७
१०—गंग अन्हइके ईशहि पूजत फूलनि सों तनफूलि गनो। वही, ११।५
११—वि० गी० ३।२४

महिमा का अन्त प्राप्त नहीं कर सकते[1] पुराणों में कहा गया है कि कलि युग में गंगाजल पवित्र तथा श्रेष्ठ है। इसलिए अनेक मनुष्य मुनि देवता और सिद्ध उसकी सेवा करते है।[2]

सरयू अयोध्या के निकट बहने वाली नदी है। केशव ने इसका बड़ी रुचि के साथ वर्णन किया है। इसको सुर-तरंगिनी भी कहा गया है।[3] केशव ने इसे सर्वपाप निवारिनी तथा सूकर जैसे अधम प्राणियों को भी सदेह स्वर्ग को भेजने वाली बताया है।[4] इस नदी के तट पर दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया की गयी थी।[5]

यमुना नदी के लिए केशव ने जमुना,[6] हंसजा,[7] कालिन्दी,[8] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। श्री कृष्णचन्द्र की लीला भूमि मथुरा इसी नदी के किनारे हैं। अतः कृष्ण भक्ति कवियों ने इसका बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। यहां के घाट हमेशा यात्रियों से परिपूरित रहते हैं। केशव ने यमुना का विशेष वर्णन नहीं किया है। विज्ञान गीता में एक स्थान पर प्रस्तुत रूप में इसका उल्लेख हुआ है:[9] वीरसिंहदेव चरित्र के एक छन्द में यमुना को साथ लेकर गंगा का सरस्वती से मिलने का उल्लेख किया गया है।[10] कृत्रिम सरिता के वर्णन के संदर्भ में वीरसिंहदेव चरित[11] तथा रामचन्द्रिका[12] में इसके जल को काला बताया गया है। इसके अतिरिक्त त्रिवेणी के वर्णन स्थलों पर भी यमुना का उल्लेख किया गया है।

१—तस्माच्छ्रृणुध्वं विप्रेन्द्रा गंगायामहिमोत्तमा।
ब्रह्माविष्णुशिवैश्चापि परंगन्तुं न शक्यते।

२—सुर नर मुनि गुनि गनत गन केसव सेवत सिद्ध।
कलि में गंगाजल सबै कहत पुरान प्रसिद्ध॥ वी० च० ११।३५

३—बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु सुरतरंगिनी शोभसनी। रा० चं० १।४२

४—बहुन्हायन्हाय जेहि सनेह। सब जात स्वर्ग सूकर जल सदेह। १।२७

५—लै गयो नृप नाथ को सब लोग श्री सरजू तटी। वही, १०।१०

६—निकसी जनु जमुना जल फोरि। रा० चं० ३१।८

७—भूरि भागीरथी भारती हंसजा। वही, १।३५

८—कालिन्दी सरिताहि को उतरत देख्यो दंभ। वि० गी० ३।५

९—कलह गये तब वेग ही, बासर के आरंभ।
कालिन्दी सरिताहि को उतरत देख्यो दंभ॥ वि० गी० ३।५

१०—जमुना संग लिये मतिथिरा। गंग मिलन कहं आयी गिरा। वी० च० २४।२०

११—ताडी मृगमद के जल बहै। ज्यौं जमुना त्यौं जग कहै। वी० च० ५।२४

१२—एणन के मद के जल दूजी। जमुना दुति की जनु पूंजी। रा० चं० ३२।२६

सरस्वती नदी के लिए केशव साहित्य में भारती,[१] गिरा[२], गिर[३] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस नदी का वर्णन केशव साहित्य में केवल अप्रस्तुत के रूप में ही किया गया है। लंकादाह के समय प्रचंड अग्नि ज्वालाओं का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि सोने की समस्त लंकापुरी के पिघल जाने के कारण सोने का द्रव असंख्य धाराओं से समुद्र में जा गिरता है। यह दृश्य ऐसा दीख पड़ा कि मानो गंगा को हजार धाराओं से मिलती हुई देख ईर्ष्या से सरस्वती नदी भी असंख्य धाराओं में सुखी होकर समुद्र से मिल रही है।[४] इसके अतिरिक्त त्रिवेणी के उल्लेख प्रसंग में भी इसका वर्णन केशव ने किया है।

गंगा, यमुना और सरस्वती नदियों के मिलने के प्रदेश को 'त्रिवेणी' कहते हैं। यह प्रदेश बड़ा पवित्र माना जाता है। केशव ने इस प्रदेश के लिए प्रयाग[५] और त्रिवेणी[६] शब्दों का प्रयोग किया है। रामचन्द्रिका के बीसवें प्रकाश में इसका वर्णन किया गया है। यहां त्रिवेणी के जल में प्रकाशित होने वाले दीपकों के प्रतिबिंबों की उत्प्रेक्षा कवि ने उसमें स्नान करने वाले देवताओं के रूप में की है। इसके सफेद, काले और लाल रंग की तुलना चंदन, कस्तूरी और केसर से की गयी है। त्रिवेणी का भवसागर के लिए सेतु होना, त्रिमूर्तियों की द्युति को धारण करना, त्रिरोगों को नाश करना, त्रिलोकों के लोगों के द्वारा तीनों कालों में पूजित होना, पृथ्वी तल की वेणी के रूप में शोभित होना, सुरपुर के मार्ग के रूप में बिराजमान होना आदि बातों का उल्लेख कवि ने किया है।[७] प्रयाग के दर्शन मात्र से ही लोग अपने जीवन को धन्य समझते है और उसके स्पर्श मात्र से ही उन्हें नया शरीर मिलता है।[८] केशव के अनुसार श्री गणेश जी के अनुकूल होते ही समस्त विघ्न उसी प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार प्रयाग स्थान में पैर रखते ही पापों के पहाड़ विलीन हो जाते हैं।[९]

१—भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंश के हैं, मनो भोग भारे मनो। वही, ६।३५

२—गंग गिरा तनमों तन जोरि। निकर्सी जनु जमुना जल फोरि। वही, ३२।८

३—केशोदास बीच बीच गिर की गोराई हैं। वही, ३०।३२

४—कंचन को पिघलो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी है।
गंग हजार मुखी गुनि केशो गिरा मिली मानो अपार मुखी है॥ वही, १४।११

५—जब प्रयाग को दरसन भयो। जीवन जनम सुफल करि लयौ। वी० च० ५।२१

६—तीनो सरिता मिलति जहं। तहां त्रिवेणी होति। रा० चं० ३२।३१

७—रा० चं० २०।२६-३३

८—वी० च० ५।२१

९—क० प्रि० १।१

गोदावरी दण्डकारण्य के अन्तर्गत है। अगस्त्य मुनि ने राम को इसी नदी के तट पर स्थित पंचवटी में पर्णशाला बनाकर रहने की सम्मति दी थी।[१] इस तीर्थ के आस पास बड़े बड़े सुन्दर तथा रमणीय स्थान हैं। इसमें स्नान करने से पापी भी बैकुण्ठ जाता है।[२] इस नदी के वर्णन में भी अलौकिकता दिखाना कवि का प्रधान लक्ष्य है।

केशव ने वीरसिंह देव चरित में नर्मदा का वर्णन किया है। 'मध्य भारत में नर्मदा बड़ी ही पुनीत मानी जाती है, उसमें किसी नगर की गंदगी नहीं मिली है। कलियुग में नर्मदा की तुलना गंगा से की जाती है। अनेक व्यक्ति भिक्षुक का वेष धारण कर इस महान नदी की परिक्रमा करते हैं और अपनी भक्ति के अनुसार सिद्धि लाभ करते हैं।[३] केशव के अनुसार यह नदी ओड़छा नगर के दक्षिण में है। इसके तट पर पग पग पर सफेद मंदिर शोभा देते हैं।[४] यह सुर और असुरों से वन्दित तथा दीन जन रक्षक है। यद्यपि यह स्वयं कुटिल गति की है तो भी लोगों के पापों का विनाश करके उन्हें शुद्ध गति देती है।[५]

वेतवा नदी का वर्णन केशव ने बड़े मनोयोग से किया है। श्याम सुन्दर द्विवेदी जी के अनुसार यह ओड़छा के समीप स्थित तुंगारण्य वेतवा का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां अब तक जंगल है और मेला लगता है।[६] इस नदी के निकट ही जहांगीरपुर है जो पण्डितों का निवास स्थान है।[७] यह यमुना के साथ जहां मिलती है वहां उसकी ऊंची लहरें गंगा के समान दिखाई देती हैं।[८] केशव के पूर्वज इसी नदी के तट पर स्थित ओड़छा नगर में रहते थे।[९] इस नदी में सभी ब्राह्मण स्नान करते हैं और सभी मनुष्य

१—सुभ गोदावरि तट, विशद पंचवट, पर्णकुटी तहां प्रभु कीजै। रा० च० ११।१५

२—रा० च० ११।१३-१६

३—श्री बैकुंठनाथ जी 'मेहरोत्रा', कल्याण, हिन्दूसंस्कृति अंक, पृ० ३६२

४—दच्छिन दिसि सरिता नर्मदा। थिरचर जीवनि कौ सर्मदा।
पद पद हरिवासा जग मगै। स्वच्छ पच्छ पच्छा सी लगै।—वी० च० १।७

५—अशेष शर्मदा विशेषजीति नर्मदा लेई।—वि० गी० ६।२१

६—विज्ञान गीता की टीका, पृ० २

७—केशव तुंगारण्य में नदी बेतवै तीर।
जहांगीरपुर बसै बहु बसै पण्डित मण्डित भीर॥—वि० गी० १।३

८—वि० गी० १।४

९—वही, १।५

पूर्णदान देते हैं।[1] केशव ने इसे एक स्थान पर कलियुग की गंगा भी कहा है।[2] केशव ने बेतवा नदी के प्रभात के विषय में यहां तक स्वीकार किया है कि यह विषतुल्य वस्तुओं को भी अमृत के समान बना देती है।[3] केशव ने एक छन्द में बेतवा के प्रवाह का सहस्रार्जुन के द्वारा बढ़ाये जाने की बात कह कर इसकी पौराणिकता को भी प्रकट किया है।[4] श्री वैकुण्ठनाथ जी 'मेहरोत्रा' के अनुसार हमीरपुर में डेढ़ ही मील के अन्दर दो नदियां यमुना तथा बेतवा दो तरफ पड़ती हैं। उनमें यमुना का जल वायुकारक तथा गरिष्ठ होता है और बेतवा का वातव्याधिरहित और पाचक। बेतवा में धुले हुए वस्त्र भी विशेष साफ होते हैं।[5]

उक्त नदियों के अतिरिक्त कुछ अन्य नदियों का भी उल्लेख केशव साहित्य में मिलता है। विज्ञानगीता में इस प्रकार का उल्लेख अधिक है।[6]

परम्परा पालन के लिए केशव ने रामचन्द्रिका तथा वीरसिंह देव चरित में कृत्रिम सरिताओं का वर्णन किया है। रामचन्द्रिका में तो उनका उद्भव कृत्रिम पर्वत से तथा वीरसिंह देव चरित में क्रीड़ा पर्वत से[7] बताया गया है। दोनों स्थलों पर उनके पानी का रंग सफेद, काला और पीला होने का वर्णन किया गया है। दोनों स्थलों पर इन की तुलना गंगा, यमुना और सरस्वती से की गयी है।[8] उन तीनों नदियों के संगम को दोनों ग्रन्थों में 'त्रिवेणी' के समान कहा गया है।[9] दोनों नदियों में एला, लवंग, कदली आदि लता वृक्षों के रहने तथा उनमें नौका के चलने की बात भी कही गयी है।[10] केशव ने इन नदियों में प्रशस्त नदियों के आवश्यक सभी गुणों का वर्णन किया है।

१—स्नान करत द्विज दर्पन देव। पूरति दान देत नर देव।—वी० च० १६।३३

२—कलि गंगा कीनी करतार।—वी० च० २५।२४

३—विषमय अमृत पान फल करै।—वी० च० २५।५८

४—कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ६६२

५—वि० गी० ४।२३, २६, ६।६, ६।१३-२०, वी० च० १।१०

६—रा० चं० ३२।२३

७—वी० च० २४।७

८—रा० चं० ३१।२६-३०   वी० च० २४।७-१४

९—,,   ,, ३१।३१   वी० च० २४।२०

१०—,,   ,, ३१।३१   वी० च० २४।२६

संसार भर में कुछ न कुछ नदियों के प्रति विशेष धार्मिक भावना मिलती है। नदियों में देवत्व की प्रतिष्ठा भी विशेष रूप से की गयी है। उनका स्नान आध्यात्मिक उपलब्धियों का एक साधन है। भारत में नदियों को आधिदैविक गुणों से युक्त किया गया है। सांस्कृतिक दृष्टि से मनुष्य का नदियों के प्रति कृतज्ञता का भाव धीरे धीरे धार्मिक भाव के रूप विकसित हुआ है। विविध देवताओं से उनका सम्बन्ध भी माना गया है। जहां कहीं केशव ने नदियों का वर्णन किया है वहां उनके प्रति सौन्दर्य दृष्टि की अपेक्षा आध्यात्मिक तथा आर्थिक दृष्टि ही अधिक मिलती है। नदियों का महत्व अधिकांशतः पौराणिक पृष्ठभूमि पर आंका गया है। इस सब से धर्म प्रेरित मानवीकरण ही सिद्ध होता है।

३-१६२ तीर्थ :

भारतीय तीर्थ अधिकांशतः देश की बड़ी बड़ी नदियों के तट पर तथा पहाड़ की ऊंची ऊंची चोटियों पर होते हैं। श्री मिथिलेश 'प्रभाकर' जी ने तीर्थों के तीन भेद माने हैं—(१) अचल तीर्थ (२) लीला तीर्थ और (३) सन्त तीर्थ। अचल तीर्थ वे स्थान है जो एक ही स्थान पर है ··· ··· लीला तीर्थ वे स्थान हैं जहां भगवान ने अवतार लेकर अपनी लीला दिखायी है। अयोध्या, मथुरा आदि ऐसे ही स्थान हैं। सन्त तीर्थ वे स्थान हैं जो कोई तीर्थ नहीं है। मनुष्य ही तीर्थ हैं। जो मनुष्य भगवान की आराधना में लीन है, जो सबकी भलाई की बात करता है और जो परोपकारी तथा सज्जन है वह स्वयं तीर्थ है।[1]

उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत केशव साहित्य में उल्लिखित तीर्थों पर विचार किया जाता है—

अचल तीर्थ :

संसार के आरम्भ से ही कुछ भू भागों में अलौकिक शक्ति समा गयी है। गंगा, यमुना, गोदावरी आदि पुण्य नदियां तथा मानसरोवर, मणिकर्णिका, रामेश्वर, चित्रकूट, विन्ध्याचल आदि मुख्य हैं। इनमें से नदियों के विषय में पहले ही चर्चा की गयी है। यहां अन्य तीर्थों पर विचार किया जाता है।

१—भारत के तीर्थ, पृ० ४

मणिकर्णिका, वाराणसी में मुख्य तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। केशव के अनुसार एक बार विष्णु ने वाराणसी में जा कर घोर तपस्या की। उनके तपोवल से शिव जी का सिर कांप उठा। फलतः उनके कान से मणिकर्णिका भूमि पर गिर पड़ी।[१] उसने चक्र के आकार की भूमि खोद ली। वह स्थल प्रस्वेद जल से भर गया जो सभी पापों का निवारण करने वाला है।[२] उस समय से मणिकर्णिका काशी में प्रधान पुण्य क्षेत्र बन गया है।

रामेश्वर दक्षिण का प्रधान पुण्य तीर्थ है। यहीं राम ने लंका जाने के लिए सेतु का निर्माण किया था और शिव लिंग की स्थापना की थी।[3] यह प्रसिद्ध शिव क्षेत्र है।

राम के पाद स्पर्श के कारण चित्रकूट एक पवित्र तीर्थ बन गया। वनवास जाते समय राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ यहां निवास किया था। भरत और राम का मिलाप भी यहीं हुआ था।[४] यहां गंगा नदी बहती है।[५]

विन्ध्यावासिनी एक पौराणिक तीर्थ है। पुराणों में लिखी दुर्गा की कथा से इस स्थान का सम्बन्ध है। यहाँ पर शुंभ निशुंभ राक्षसों को देवी ने मारा था। यहाँ के सप्तसागर देखने योग्य स्थान है। वीरसिंह देव चरित में केशव ने उस क्षेत्र का उल्लेख किया है। आकाशवाणी के कहने से दान और लोभ ने विन्ध्याचल में जाकर विन्ध्या-वासिनी को देखा था।[६]

लीला तीर्थ :

इन तीर्थों के अन्तर्गत केशव ने काशी और अयोध्या का वर्णन किया है।

१—तिन के तपोबल शुम्भु को शर कम्पियो भुवपाल।
भूमि गिरि प्रिय कर्णते मणिकर्णिका तिहिकाल॥ —वि० गी० ६।५७

२—खोदि लई मणिकर्णिका भूमि चक्र की घोर।
सो थल भर्यो प्रस्वेद जल भयो हरन अघघोर॥—वि० गी० ६।६०

३—सेतुमूल सिव सोभिजै केशव परम प्रकाश।
सागर जगत जहाज को करिया केशवदास॥—रा० चं० १५।३५

४—रा० चं० २०।१३

५—वही, २०।३८

६—वी० च० २१

गंगा के किनारे काशी एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान हैं। पुराणों में इसका उल्लेख है। विश्वनाथ जी का मन्दिर यहां सब से प्रसिद्ध मन्दिर है। केशव ने विज्ञान गीता में इसे सर्वतीर्थों से सेवित लिखा है।[१]

अयोध्या भगवान श्री रामचन्द्र की जन्मभूमि है। इस लिए यह सारे भारत का पुण्य तीर्थ है। आजकल भी यहाँ कनक भवन, हनुमान गढ़ी आदि मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं। केशव ने रामचन्द्रिका में अयोध्या को देव लोक के समान बताया है।[२]

सन्त तीर्थ :

जहां भक्ति परायण और परोपकारी महात्मा रहते हैं और वे सदा सदाचार का प्रचार करते हैं वे सन्त तीर्थ हैं। केशव साहित्य में उल्लिखित अत्र[३], अगस्त्य[४], भरद्वाज[५], वाल्मीकि[६] आदि ऐसे तीर्थ हैं। तुलसी ने भी सन्तों को 'जग जंगम तीर्थ राजु' कहा है।

३-१६३ सरोवर :

सरोवरों तथा जलाशयों के साथ भी हमारी संस्कृति सम्बद्ध रहती है। केशव साहित्य में सरोवर के लिए चन्द्रक[७], छीलर[८] (थोड़ा जल और अधिक कीचड़वाला जलाशय), जलाशय[९], तडाग[१०], नीरधि[११], सर[१२], सरवर[१३] आदि शब्दों का प्रयोग किया

१—सिगरे तीरथ सब पुरी जितने मुनिगण देव।
सब सेवत वारणासी अपने अपने भेव॥—वि० गी० ३।५४

२—सरयू सरिता तट नगर बसै बर।
अवध नाम यश धाम धर॥
अघ ओघ विनाशी सब पुरबासी।
अमर लोक मनहु नगर॥—रा० चं० १।२३

३—रा० चं० ११।२
४—वही, ११।२०
५—वही, २०।४२
६—वही, ३३।५५
७—सिससुभ चन्द्रकधर, परमदिगंबर मानो हर अहिराजधरे।—रा० चं० १३।७
८—छन छन छीन होत छीलर के जल सो।—रा० चं० ६।४२
९—द्रुम अवलोकन छोड़िकै चले जलाशय तीर।—रा० चं० ३२।३२
१०—तड़ाग नीर हीन ते सनीर होत केशोदास।—वही, ६।३६
११—नीरधि ते निकसी तिय जबै। सोहति हैं बिन भूषण तबै।—वही, ३२।३६
१२—सुभसर शोभै।मुनिमन लोभै।—वही, १।३२
१३—क्रीड़ा सरवर में नृपति, कीन्हीं बहुविधि केलि।—वही, ३२।३८

गया है। केशव ने अयोध्या के उपवन में स्थित सरोवर में अनेक कमलों के खिलने, उनके मकरन्द पर भौंरों के मस्त रहने, मछलियों के किलोल करने और जल पक्षियों के बोलने का उल्लेख किया है।[१] मिथिला नगर के वर्णन में केशव ने लिखा है कि जनक के देश में ऐसा कोई नगर नहीं है जो पग पग पर हंसों जल और कमल समूह से भरे हुए बड़े-बड़े सरोवरों से हीन हो।[२] केशव ने परम्परा का बड़ा मनोहर वर्णन किया है। इसे देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि केशव को इस सरोवर के वर्णन की प्रेरणा कादम्बरी से मिली है। केशव के अनुसार पम्पासर अत्यन्त सुन्दर तथा शीतल वातावरण से युक्त है। यहां अनेक प्रकार के पक्षी और कमल हैं। वहाँ सब ऋतुओं के फूल खिलते हैं। इस वर्णन में केशव ने पम्पासर के पवित्र तथा देवताओं के निलय होने की बात कही है।[३] राजा राम के राज महल स्थित जलाशय का वर्णन केशव ने किया है।[४]

जिस प्रकार कृत्रिम पर्वत और कृत्रिम नदियां राजकीय उपवनों की शोभा बढ़ाते थे उसी प्रकार सरोवर भी राज महलों की भूमिका का एक प्रधान अंग था। सरोवर के वर्णन में केशव की दृष्टि मुख्य रूप से सौन्दर्य प्रधान ही है। केशव ने केवल पम्पासर में सभी ऋतुओं के फूल खिलने का उल्लेख करके कुछ अलौकिकता की व्यंजना की है। यह सब राम के प्रभाव प्रदर्शन का ही एक भाग है।

३-२ अभिजात संस्कृति :

३-२१ वैदिक संस्कृति :

वैदिक साहित्य भारत देश का ही नहीं अपितु सारे संसार का प्राचीनतम साहित्य है। हमारी संस्कृति के प्रायः सभी सूत्र वैदिक साहित्य में ढूंढ़े जा सकते हैं। यजुर्वेद में 'संस्कृति' शब्द का एक स्थान पर उल्लेख मिलता है।[५] पर यहां इसकी व्याख्या नहीं की गयी है।

उपनिषदों में इसकी सविस्तार परिभाषा मिलती है। छान्दोग्योपनिषद् के अनु-

१—सुभ सर शोभै। मुनि मन लोभै। सरसिज फूले अलिरस भूले।
जलचर डोलैं। बहु खग बोलैं। बरणि न जाहीं उर उरझा हीं।—वही, १।३२, ३३

२—तिन नगरी तिन नागरी प्रतिपद हंसक हीन।—वही, ५।१६

३—वही, १२।४७, ४८, ४९

४—वही, ३२।३३–३६

५—अविच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम सा प्रथमा संस्कृति, विश्ववारा सप्रथमो वरुणोमित्रोऽग्निः॥—यजुर्वेद, ७।१४

सार संस्कृति उन समस्त आदर्शों की समष्टि है जो मनुष्य को मानवतावादी दृष्टि प्रदान करते हैं। यह मानवतावादी दृष्टि के आधार पर ही समस्त जीवन व्यापारों और सामाजिक सम्बन्धों में व्याप्त रहती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी देश या समाज के कार्यकलापों को प्रेरणा देने वाला तत्व संस्कृति शब्द से अभिहित होता है।[1] हमारे प्राचीन भारतीयों के कार्य कलापों का प्रतिबिम्ब वेदों में परिलक्षित होता है। प्राचीन मानव प्रकृति की अतिमानवीय शक्तियों से भयभीत था। उसने सजीव और निर्जीव में भेद न करने के कारण प्राकृतिक शक्तियों में भी जीवन की कल्पना कर ली। उसके मन में इस विश्वास के उत्पन्न होने के कारण कि ये शक्तियां प्रसन्न होकर उसके भाग्य को बदल सकती हैं, वह उनको प्रसन्न करने का अनुष्ठान भी करने लगा। जब मनुष्य ने प्रकृति में जीवन का आरोप किया तो धर्म का नवोन्मेष हुआ। एक ही पदार्थ के प्रति उसकी धारणाएं परिस्थितियों के अनुसार बनी और ये ही धारणाएं विश्वासों के आधार पर धर्म की रेखाएं बन गयी।[2] वैदिक ऋषियों ने अपने प्रार्थना गीतों का सम्बन्ध इन्द्र से जोड़ लिया।[3] इस प्रकार एक उच्चतम धर्म की स्थापना प्राचीन काल की प्रमुख सांस्कृतिक उपलब्धि ही कही जा सकती है।

प्राचीन काल में जो सांस्कृतिक चेतना रूप ले रही थी उसका केन्द्र बिन्दु धर्म संस्था अथवा पुरोहित था। सभ्यता के सभी प्राचीन केन्द्रों में मन्दिर सांस्कृतिक गति-विधियों को अनुशासित करता था। पुरोहित यज्ञ की जटिल प्रक्रिया से परिचित था और समस्त अनुष्ठान का वह नियामक था। धार्मिक क्षेत्र में कला का भी स्थान है। मन्दिर या वेदी की सजावट चित्रकला के विकास का अवसर देने लगा। प्रतीक कल्पना में मूर्तिकला पनपने लगी। विशाल मन्दिरों और प्रासादों का निर्माण होने लगा। काव्यात्मक स्तुतियाँ धार्मिक अनुष्ठान में आ गयीं। भाषा और लेखन कला की उन्नति ने सांस्कृतिक परम्पराओं को स्थायित्व प्रदान किया। इस प्रकार क्रमशः संस्कृति के अंगों का आमूल विकास हो गया। आगे निर्मित होने वाले सांस्कृतिक भवन के लिए वैदिक संस्कृति ने आधार शिला का प्रक्षेपण किया।

३-२११ यज्ञ :

वेद का प्रतिपाद्य यज्ञ है। 'यज' धातु का मुख्यार्थ देवपूजा ही है। सभी देवता

१—कस्यापि देशस्य समाजस्य वाविभिन्न जीवन व्यापारेषु सामाजिक व्यापोरेषु वा मानवीयत्व दृष्ट्या प्रेरणा प्रदानं तत्तदर्शानां समष्टिरेव संस्कृतिः।—छान्दोग्योपनिषद, ८।४।१

2—Cox mythology of Aryan Nations. Page No. 22

३—ऋग्वेद, १०–१४६–८

परमात्मा के ही अंग माने जाते हैं, अतः अंगों की पूजा के द्वारा अंगी की पूजा सम्पन्न होती है। इसके सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि—देवता परमात्मा का ही विस्तार है, वह परमात्मा सर्व देवमय है।[1] यही बात मनुस्मृति में भी कही गयी है—परमात्मा ही सभी देवताओं का स्वरूप है और सारा जगत परमात्मा में व्यवस्थित है[2] अतः वैदिक कर्मों में यज्ञ का महत्व स्वीकृत है।

भारतीय संस्कृति में यज्ञ, सृष्टि तथा उसके निर्वहण प्रणाली का प्रतीक है। प्राचीन काल में यज्ञ का अत्यन्त व्यापक अर्थ माना जाता था। यज्ञों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दी शब्द सागर में उद्धृत यह कथनीय द्रष्टव्य है—'प्राचीन भारतीय आर्यों में यह प्रथा भी थी कि जब उनके यहां जन्म, विवाह या उसी प्रकार का और कोई समारम्भ होता था अथवा जब वे किसी मृतक की अन्त्येष्टि क्रिया या पितरों का श्राद्ध आदि करते थे तब ऋग्वेद के कुछ सूक्तों और अथर्ववेद के मन्त्रों के द्वारा अनेक प्रकार की प्रार्थनाएं करते थे और आशीर्वाद आदि देते थे। इसी प्रकार पशुओं का पालन करने वाले अपने पशुओं की वृद्धि के लिए तथा किसान लोग अपनी उपज बढ़ाने के लिए तथा अनेक प्रकार के समारम्भ करके स्तुति आदि करते थे। उन अवसरों पर अनेक प्रकार के हवन आदि भी होते थे जिन्हें उन दिनों 'गृहकर्म' कहते थे। उन्होंने आगे चलकर विकसित होकर यज्ञों का रूप प्राप्त किया।[3]

यज्ञ या हवन के विषय में दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। पहली बात यह है कि यज्ञ के समय मन्त्रोच्चारण किया जाता है और दूसरी बात यह है कि 'हवन कुन्ड में आज्यादि डाला जाता है। यज्ञ के समय वेदमन्त्र इसलिए पढ़े जाते हैं कि यज्ञ वेद का विषय है और यह वेद पूजनार्थ होता है। अतः वहाँ वेद मन्त्रो की आवश्यकता होती है क्योंकि मन्त्रों के विषय देवता भी होते हैं। इसी कारण यज्ञ के समय देवता का मन से ध्यान करने की बात 'निरुक्त' में लिखी गयी है।[4] देवताओं की तृप्ति के लिए हवनकुंड में हवि डाला जाता है। इसके विषय में शतपथ ब्राह्मण में लिखा गया है कि

१—तद् यद्श्दमाहुः—अमुं जय, अमु जय—इतिएकैकः
देवम्, एतस्यैवसाविसृष्टिः एष उह्येवसर्वेदेवाः ॥——शतपथब्राह्मण, १४-४-२-१२

२—आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम ।—मनुस्मृति, १२।११६

३—हिन्दी शब्द सागर, चौथा भाग पृ० २८४२

४—यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तां मनसाध्यायेत् ।—निरुक्त, ८।२२।१२

आज्यादि हवि देवताओं के लिए प्रिय वस्तु है।[१] आज्य से यज्ञ किया जाता है।[२] इस घृत को देवताओं के पास पहुँचाने वाला अग्नि है। ऋग्वेद में कहा गया है कि अग्नि के बिना देवता तृप्त नहीं होते।[३] यहाँ पर अग्नि को देवताओं का मुखस्थानीय कहा गया है।[४] इसी वैदिक तथ्य को ध्यान में रखकर केशव ने जहाँ भी यज्ञ—यागों का उल्लेख किया है, वहां मन्त्रों तथा हवि का भी प्रत्यक्ष या अप्रक्ष रूप से उल्लेख किया गया है।

यज्ञ के द्वारा देवताओं को संतुष्ट करने के अतिरिक्त स्वर्ग की प्राप्ति की चर्चा वेदों में की गयी है। यज्ञानुष्ठान के द्वारा स्वर्ग में जाकर सोमपान किए हुए तथा शत्रुओं और जरावस्था पर विजय प्राप्त किये हुए एकयाज्ञिक की चर्चा वेदों में मिलती है।[५] यज्ञ ऐहिक दृष्टि से भी लाभकारी सिद्ध होते हैं। यज्ञ को हवि को अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि देवता किरणों द्वारा आकृष्ट करके मेघ बनाते हैं तथा वृष्टि प्रदान करते हैं। भगवद्गीता में कहा गया है कि प्राचीन काल में ब्रह्मा ने यज्ञों के साथ प्रजा की सृष्टि करके उनसे कहा था कि इन यज्ञों के द्वारा तुम्हारी उन्नति हो। ये तुम्हारी मनोकामनाओं को पूर्ण करेंगे। इन यज्ञों के द्वारा देवताओं को तृप्त करो। वे देवता भी वर्षादि से तुम्हें तृप्त करेंगे। इस प्रकार पारस्परिक सहायता से तुम लोग उत्तम श्रेय प्राप्त कर सकते हो।[६]

केशव ने निगम[७], वेद[८] और श्रुति[९] आदि शब्दों का प्रयोग करके भारतीय प्रारम्भिक सांस्कृतिक धारा की ओर संकेत किया है। केशव साहित्य में वैदिक संस्कृति

१—एतद् देवानां प्रियंधाम, यद्आज्यम्। शतपथब्राह्मण, १३।३।६।३

२—आज्येनजुहोति।—वही, १३।३।६।२

३—न ऋतेत्वामसृतामादयन्ते।—शा० सं० ७।११।१

४—अग्निर्हि देवानांमुखम्।—शतपथ, ३।७

५—अपामसोम ममृता अभूमागन्मज्योतिरविदामदेवान्।
किन्नूनमस्मान् कृणवद्रातिः किमुधूर्तिरमृतमर्त्यस्य। ऋग्वेद, ८-४८-३

६—सहयज्ञाः प्रजास्सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यमेषवो स्त्विष्टकामधुक्॥
देवान् भावयतानेन, तेदेवाभावयन्तुवः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमाप्स्यथ॥ —भगवद्गीता, ३।१०, ११

७—के०ग्र० १२९।७०

८—वही, ४७६१

९—वही, ३३०।५१

का अधिक विवरण तो प्राप्त नहीं होता। किन्तु वेदों में और वैदिक मार्ग में उनकी आस्था प्रकट होती है। मध्यकाल पौराणिक संक्रमण के लिए प्रसिद्ध है। अन्य कवियों की भांति केशव साहित्य में भी पौराणिक संस्कृति की अधिक छाया हैं। किन्तु अन्य भक्त कवियों की अपेक्षा यज्ञादि वैदिक अनुष्ठानों और प्रतीक चिह्नों का कुछ अधिक उल्लेख केशव साहित्य में मिलता है। वैसे पौराणिक संस्कृति वैदिक तत्वों को जनसुलभ और लोक प्रिय बनाने का ही उपक्रम है। वह आगम से पूर्णतः बचकर नहीं चलती। किन्तु आगम के तत्वों का सन्निवेश वैदिक संस्कृति के विस्तार और स्पष्टीकरण के लिए ही अधिक हुआ है। केशव ने इसी दृष्टि को अपनाया है।

केशव में सामान्यतः यज्ञ[1] या जग्य[2] आदि शब्द मिलते हैं। यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें प्रथम शब्द अश्वमेध यज्ञ की ओर संकेत करता है।[3] यज्ञ का एक अभिप्राय इन्द्र या देवताओं को शक्तिशाली, विजयी या निर्भय बनाना भी था। इसका संकेत भी केशव ने एक प्रसंग में दिया है।[4]

यज्ञ शब्द के साथ-साथ होम शब्द का भी प्रयोग केशव ने किया है। लोक जीवन में आज तक इस शब्द का प्रचलन प्राप्त होता है। व्रज में देवी का होमानुष्ठान आज भी होता है।। अयोध्या के वर्णन में केशव ने होमशब्द का प्रयोग किया है।[5] इसके द्वारा यह व्यक्त किया गया है कि वहां सभी लोग वैदिक आचार पालन करते थे।

यज्ञ के अनेक प्रकार होते थे—"सोम याग, अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, अग्निष्टोम, अतिरात्र, महाव्रत, दशरात्र, दर्शपूर्णमास, पवित्रेष्टि, पुत्रकामेष्टि, चातुर्मास्य, सौत्रामणि, दशपेय, पुरुषमेध आदि।"[6] निम्न लिखित पांच को महायज्ञ माना जाता है।—(१) ब्रह्म-यज्ञ (२) देवयज्ञ (३) पितृयज्ञ (४) भूतयज्ञ और (५) मनुष्य यज्ञ।

केशव साहित्य में निम्न लिखित यज्ञों का वर्णन किया गया है: अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, विश्वामित्र का यज्ञ, रावण और मेघनाथ का यज्ञ, तथा अन्य यज्ञ।

प्राचीन हिन्दुओं को अपने राजनैतिक जीवन से मातृभूमि के प्रति अपनी भावनाओं को पुष्ट करने में सहायता मिली। जब देश एक शासनसूत्र के अन्तर्गत होता है तो उसकी एकता सहज ही समझ में आती है। "प्राचीन हिन्दू बहुत पुराने समय से ही देश में

१—के० ग्र० १८३।११ २—वही, ५६४।१८
३—वही, २८३।११ नाथजू के यज्ञ को तुरंगहि राख्यो है।
४—वही, १६।२५ ५—रा०चं० १।४८
६—हिन्दी शब्द सागर, चौथा भाग, पृ० २८४३

सर्वोपरि राजनैतिक सत्ता के आदर्श और अस्तित्व को जानते थे। उसके द्योतक कुछ महत्वपूर्ण शब्द हैं: एकराट्, सम्राट्, राजाधिराज, सार्वभौम और कुछ वैदिक यज्ञ हैं: जैसे—राजसूय, वाजपेय और अश्वमेध। जो राजा दिग्विजय के द्वारा अपने आपको अन्य राजाओं का अधिपति बना सके उसी को इन यज्ञों का अधिकार था।"[1] इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि कोण से इस यज्ञ का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

रामचन्द्रिका में अश्वमेध यज्ञ का बड़ा विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। किन्तु राम के अश्वमेध यज्ञ करने का कारण राजाधिराज बनने की अपेक्षा सीता परित्याग से उत्पन्न पाप का निवारण ही बताया गया है। स्यात् यह केशव की मौलिक उद्भावना हो सकती है। रामने विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि महर्षियों के सामने अश्वमेध यज्ञ करने का प्रस्ताव रखते हुए कहा था कि मैंने जानकी समेत अनेक यज्ञों और दानों का विधिपूर्वक आचरण किया है। परन्तु अब में सीता के प्रत्याख्यान करने के पाप से डरता हूं। अत: आप लोगों की आज्ञा हो तो एक अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ। तदनन्तर कश्यप मुनि की सम्मति के अनुसार सीता की एक सुवर्ण प्रतिमा बनायी गयी और हयशाला से एक उत्तमाश्व लाया गया। उसकी विधिवत् पूजा करके उसके ललाट पर राजा की नामांकित पट्टी बांधी गयी और उसे छोड़ा गया।[2] अन्त में इसी यज्ञ के द्वारा सीता और राम का मिलन हो गया था।

राजसूय यज्ञ का केशव ने कहीं वर्णन नहीं किया है। एक स्थान पर राम के मुंह से इसका उल्लेख कराया है। रामचन्द्र विश्वामित्र और वसिष्ठ से कहते हैं कि मैंने सीता के साथ राजसूयादि अनेक यज्ञ किये हैं।[3] लाला भगवान दीन जी के अनुसार राजसूय यज्ञ केवल क्षत्रिय ही कर सकता है। यह एक प्रकार का शाही दरबार है जो छोटे राजाओं पर अपना आतंक जमाने के लिए किया जाता है।[4] महाभारत में युधिष्ठिर द्वारा किया गया राजसूय यज्ञ बहुत प्रसिद्ध है।

रामायण कथा में विश्वामित्र का यज्ञ एक प्रकार राक्षस संहार का नान्दी रूप माना जाता है। इसी परम्परा के अनुसार रामचन्द्रिका में कथा का प्रारम्भ ही विश्वामित्र

१—हिन्दू सभ्यता, डा० राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० ७६

२—रा० च० ३५।१–६

३—मैथिली समेत तो अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक यज्ञ मैं कियो॥—रा० च० ३५।२

४—केशव कौमुदी, उत्तरार्ध, पृ० २३६

के अयोध्यागमन से किया गया है। परशुराम के तपस्या के लिए वन में चले जाने के कारण राक्षस मुनियों के यज्ञ–यागादि वैदिक कर्मों में विघ्न डालते थे। अतः अपने यज्ञ की परि समाप्ति के लिए विश्वामित्र ने राम को अपने साथ भेजने की इच्छा प्रकट की थी।[1] जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के तपोवन में गये तब मुनि लोग यज्ञ करने लगे और राम तथा लक्ष्मण ने सजग होकर यज्ञ की रक्षा की।[2] इस प्रकार राम और लक्ष्मण की सहायता से विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की निर्विघ्न परिसमाप्ति कर ली।[3] यद्यपि इस यज्ञ का कोई उद्देश्य या फल नहीं बतलाया गया है। फिर भी परम्परा के अनुसार ऋषियों के यज्ञ लोक रक्षा के लिए ही होते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऋषियों को प्रत्येक प्रकार की राजसी सहायता भी मिलती थी।

शत्रु संहार को ही प्रधान मानकर मात्र रजोगुण और तमोगुण की दृष्टि से जो यज्ञ किया जाता है उसे आसुर यज्ञ कहते हैं। रामचन्द्रिका में रावण और मेघनाद द्वारा किये गये दो यज्ञों को इसी के अन्तर्गत माना जाता है। रावण का सन्धि प्रस्ताव लेकर आये हुए दूतों ने राम से कहा था कि शुक्राचार्य ने उसे यज्ञ की एक नवीन रीति सिखायी है।[4] शुक्राचार्य की सम्मति से जब रावण शुद्धोच्चारण से मंत्र पढ़कर यज्ञ करने के लिए उद्यत हुआ तब हनुमान, अंगद, जामवन्त आदि वानरों ने उसे भंग कर दिया था।[5]

मेघनाद के यज्ञ का भी केशव ने उल्लेख किया है। जब मेघनाद निकुंभिला नामक स्थान हर यज्ञ करने गये तब विभीषण ने राम से कहा कि यदि उसका यज्ञ सफल हो जायगा तो उसे कोई नहीं मार सकता। अतः उसके पूर्ण होने से पहले ही उसे मार डालना चाहिए।[6]

उपर्युक्त प्रधान यज्ञों के अतिरिक्त कुछ अन्य यज्ञों का भी केशव साहित्य में उल्लेख है।

राजा दशरथ की अयोध्या का वर्णन करते हुए केशव ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि उस नगर के महोन्नत भवनों के आंगनों में सैकड़ों यज्ञ सम्पन्न होते थे और उन

१—रा० च० २।१५ २—वही, ३।१५

३—पूरण जज्ञ भयो जहीं, जान्यो विश्वामित्र।—वही, ३।११

४—रा० च० १६।१६

५—रा० च० १६।२४ से ३३ तक ६—वही, १८।३०, २६

यज्ञ कुंडों से निकले हुए धूम्र से वे भवन विष्णु के समान श्याम वर्ण के हो गये थे—

बहुशत मख धूमनि धूपित अंगन हरि कीसी अनुहारि।[1]

राजा राम की अयोध्या के वर्णन प्रसंग में भी यही बात कही गयी हैं—

होम धूम मलिनाई जहां।[2]

अत्रि[3] और अगस्त्य[4] महर्षियों के यज्ञों का संकेत मात्र केशव ने किया है। भरद्वाज महर्षि के आश्रम के वर्णन में वहां यज्ञ की शुभ्र शालाओं के होने का उल्लेख किया गया है।[5] उसी प्रसंग में उत्प्रेक्षालंकार के आधार पर वर्णन किया गया है कि वहां प्रतिदिन जो यज्ञ किये जाते हैं उनसे धूम्र शिखाएं उठकर आसमान तक जाती हैं वे ऐसी हैं कि मानो खूब सोच विचार कर अग्नि के बहाने भरद्वाज ने स्वर्ग का मार्ग बना दिया है।[6] विवाह के अवसर पर हवन करना अनिवार्य माना जाता है। सीता और राम के विवाह के समय पर हवन किये जाने का उल्लेख केशव साहित्य में मिलता है।[7] शिवपुत्री नदी के किनारे बहुत लोगों का एकत्र होकर होम, स्नान आदि धार्मिक कृत्यों के निर्वहण करने की भी बात केशव ने लिखी है।[8] यज्ञों के द्वारा ब्रह्मा को भी अपने स्वाधीन में कर लेने की बात विज्ञान गीता में उल्लिखित है।[9]

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि केशव ने अनेक स्थलों पर यज्ञों का उल्लेख किया है तथापि वाल्मीकि की अपेक्षा ये उल्लेख सीमित हैं।। केशव ने यज्ञों की विधियों के सम्बन्ध में चाहे विस्तृत विवरण नहीं दिया हो पर उनके फल सम्बन्धी संकेत स्पष्ट हैं। आदिम मानस अपनी इच्छा पूर्ति के लिए आधिदैविक शक्तियों की ओर देखता था। यह भावना केशव के वर्णनों में भी मिलती है। आदिम मानस की

१—वही, १।४५ २—वही, २८।८

३—जोग जग्य हम जालग गहियो। रामचन्द्र सबको फल लहियो।—वही, ११।२

४—जाके निमित्त हम जज्ञ यज्यो सुपायो।—रा० चं० ११।११

५—कहूं यज्ञ की शुभ्रशाला बनावैं।—वही, २०।३७

६—धूमशिखन के व्याज मनो गुनि।
देवपुरी कहं पन्थ रच्यो मुनि॥—रा० चं० २०।४६

७—रा० चं० ६।६ ८—वी० च० १।१२

९—विधि वश्यकरे बहु यज्ञनि कोकरि।—वि० गी० १६।६

दूसरी प्रक्रिया दिव्य शक्तियों पर अधिकार करने की होती है। इसमें धर्म की अपेक्षा टोने के तत्व अधिक सक्रिय रहते हैं। केशव ने भी ब्रह्मादि देवताओं को वश में करने के लिए यज्ञों को साधन बतलाया है। अधिक जनवादी दृष्टि सामूहिक लोक हित की होती है। इस प्रकार यज्ञ संस्कृति के सभी पक्ष केशव साहित्य में किसी न किसी प्रकार मिल जाते हैं।

३-२१२ वेदपाठ :

प्राचीन काल में छात्र वाल्यावस्था में ही गुरु के पास जाकर वेदाध्ययन करता था। उस समय गुरु के पवित्र आश्रम में उसे शिक्षा दी जाती थी। उस समय शिक्षा व्यवस्था के मुख्यतः चार भाग थे : शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक और नैतिक। मानसिक शिक्षा के अन्तर्गत वेद, वेदांग, काव्य, साहित्य इतिहास, पुराण, ललित कलाएं, राजनीति जैसे विषय थे।

सांस्कृतिक अनुष्ठानों में वैदिक मन्त्रों को प्रधानता दी जाती है अतः वेदपाठ को उस समय भी मान्यता प्राप्त थी। केशव साहित्य में वैदिक तथा पौराणिक प्रसंगों में वेदपाठ का उल्लेख किया गया है।[१] किन्तु प्रसंगवश यहां कुछ विचार किया जाता है।

राम और लक्ष्मण जब विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने आश्रम में गये तब उन्होंने देखा कि कुछ ब्राह्मण वहां मिलकर वेदपाठ कर रहे थे।[२] जाबालि मुनि के आश्रम के वर्णन में भी वेदपाठ की चर्चा की है। वहां कहीं शुक और शारिकाओं का समुदाय बैठा हुआ वेदमन्त्रों का पाठ ठीक स्वरभेद से कर रहा था।[३] ज्ञानोपदेश की श्लोक वद्ध व्याख्या नहीं सुनाई पड़ने के कारण सीता ने लक्ष्मण से कहा था कि यह आश्रम प्रदेश नहीं है।[४] महामोह ने मिथ्यारानी से कहा कि वाराणसी में यद्यपि लोग वेद-शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, फिर भी वे सब विद्या के विरोधी हैं।[५] भारत वर्ष की

१—द्रष्टव्य : प्रस्तुत अध्ययन का द्वितीय परिच्छेद।
२—कहुं द्विजगण मिलि सुखश्रुति पढ़ही।—रा० चं० ३।२
३—शुकाली कहूं शारिकाली विराजैं।
पढ़ै वेदमन्त्रावली भेद साजैं।—रा० चं० २०।३५
४—सुनों न ज्ञान कारिका।—वही, ३३।४८
५—पढ़ैशास्त्र को वेद विद्या बिरोधी।
महाखण्ड पाषण्ड धर्मो विरोधी॥—वि- गी० ५।२६

पुण्य नदी भागीरथी के तटवर्तिनी वाराणसी में वेदपाठ का नियमित रूप से प्रचार होना स्वाभाविक ही था। वहां कोई केवल वेद विचार के द्वारा प्रजा का चित्त आकर्षित कर लेता था।[१] शिवपुत्री नदी के किनारे कोई वेद विधि के अनुसार पूजा कर रहा था।[२]

३-२१३ सन्ध्योपासना :

आर्यों के सर्वश्रेष्ठ मन्त्रात्मक कर्म का नाम संध्योपासना है। उपनयन संस्कार के अनन्तर द्विज मात्र का अत्यावश्यक संध्योपासना है। श्रुति के अनुसार यह संध्योपासना प्रतिदिन अवश्य करणीय है—"अहरहः संध्यामुपासीत।" यह वेद मूलक नित्य कर्म है। अह अन्तःकरण शुद्धि का मुख्य साधन है। स्नान, संध्या, होम-जप, देवपूजन, आतिथ्य तथा वैश्वदेव-विप्र के इन षट्कर्मों में संध्यावन्दन सबसे मुख्य है। प्रातःकाल से अहोरात्रपर्यन्त जीवन सूत्र को नियम बद्ध बनाने की भावना इसमें भरी है। धीरे-धीरे इस सन्ध्योपासना के प्रति श्रद्धा कम होने लगी। केशव के समय तक यह अनुष्ठान अपना प्राधान्य खो चुका था, तो भी केशव ने वैदिक तथा पौराणिक प्रसंगों में इसका उल्लेख किया है।

वनमार्ग में प्रयाण करते हुए राम, सीता और लक्ष्मण की स्थिति का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं कि यह ऐसा प्रतीत होता है मानो पूर्णमासी या अमावस्या की सन्धि की तीनों संध्याएं एकत्र हो गयी हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ही अत्यंत निर्मल देखकर मन मोहित होता है।[३]

जब लक्ष्मण ने युद्ध में मेघनाद का सिर शरीर से अलग किया तब रावण संध्या कर रहा था। वह सिर उसकी अंगुलि में जा गिरा।[४] जब राम स्नान और संध्या करके और सूर्यदेव को जलांजलि देकर बाहर आये तब ज्योतिषी और वैद्य ने आशीर्वाद दिया और भाइयों ने प्रणाम किया था।[५]

१—इक वेद विचारनि चित्त हरैं।—वि॰ गी॰ ५।२२
२—पूजा करत वेद विधि साधि।—वी॰ च॰ १।११
३—राम का रंग काला, सीता का श्वेत तथा लक्ष्मण का लाल है। सामवेदी संध्या में यह प्रमाण है कि प्रातः संध्या का रंग लाल, मध्याह्न संध्या का रंग श्वेत तथा सांय संध्या का रंग श्याम है। इस उक्ति से यह भी लक्षित होता है कि केशवदास जी सामवेद संध्या ही किया करते थे।—लाला भगवानदीन, केशव कौमुदी, पूर्वार्ध, पृ॰
४—तब कोपि राघव शत्रु को सिर बाण तीक्ष्ण उर्द्ध्यो।
दशकंध संध्या करत हो सिर जाय अंगुलि में पर्यो॥—रा॰ च॰ २८।३४
५—संध्याकरि रवि पांय परि बाहर आये राम।
गणक चिकित्सक आशिषा बन्धुन किये प्रणाम॥—वही, ३०।२५

४-२१४ यज्ञोपवीत :

हिन्दू संस्कृति में यज्ञोपवीत की बड़ी महत्ता है। यह संस्कृति का बाह्यचिन्ह है। यह द्विजातियों के लिए होता है। प्राचीन काल में यज्ञोपवीत लेने के उपरान्त ही विद्या का आरम्भ होता था। केशव के साहित्य में यज्ञोपवीत का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि मुनि ने लव और कुश के जातकर्मादि के उपरान्त ही उन्हें वेद तथा धनुर्विद्या की शिक्षा दी थी।[1] कुश के शरीर पर ब्रह्मचारी का चिन्ह यज्ञोपवीत देखकर लक्ष्मण ने उसे ब्राह्मण बालक समझा और युद्ध करने का विचार छोड़ दिया :

कहां कुश जो कहि आवत बात। विलोकत हों उपवीतहिं गात।[2]
इते पर बालक बहिक्रम जानि। हिये करुणा उपजै अतिआनि॥

भरद्वाज के शरीर पर सफेद जनेऊ शोभित होता था जो इस प्रकार था कि मानो तपःसिंधु में गंगा की संपूर्ण श्वेत कान्ति त्रिधार होकर दिखाई पड़ती हो।[3] यज्ञोपवीत में तीन गुण होते हैं जो मनुष्य के ऊपर तीन ऋणों ... देवऋण, पितृऋण और ऋषि ऋण का भार सूचित करते हैं। यज्ञोपवीत में जो नौगुण होते हैं वे शरीर के नव द्वारों के सूचक हैं। सम्पूर्ण यज्ञोपवीत का मध्यवर्गीय ग्रंथि में अन्त होता है। यह ग्रन्थि अनेकता में एकता की परिचायिका है। इसकी पवित्रता का ध्यान द्विजातियों के लिए अनिवार्य है।

तिलक धारण भी वैदिक संस्कृति का प्रतीक है। भरद्वाज के मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड लगा हुआ था जिसकी कान्ति इस प्रकार थी कि मानो गंगा की कान्ति त्रिधार होकर मस्तक पर लगी हुयी मुनि की सेवा करती है:—

भस्मत्रिपुंड्रक शोभिजै, बरण बुद्धि उदार।
मनो त्रिसोता सोत दुति बंदति लगी लिलार॥[4]

स्फटिक माला नाम जप के लिए अत्यन्त अनुकूल होती है और उसका

१—रा० च० ३३।५६,५७

२—वही, ३६।२८

३—उपवीत उज्ज्वल शोभिजै उर देखियो वरणै सबै।
सुरआपगा तपसिन्धु में जससेत श्री दरसै अबै॥—रा० च० २०।४७

४—रा० च० २०।४४

सांस्कृत महत्व भी है। भरद्वाज के वक्ष: स्थल पर स्पटिक माला इस प्रकार शोभित है कि मानो वेद के समस्त निर्मल अक्षरों का बना हुआ सरस्वती के पहनने का हार है।[१]

उपर्युक्त वैदिक उपकरणों के अतिरिक्त कुशमुद्रिका, समिध, सुवा, कुश, कमंडल आदि[२] का उल्लेख भी केशव साहित्य में किया गया है जिन का वैदिक कर्म काण्ड में स्थान है।

३-२२ कला विलास :

मुगलकाल में भारत में भारतीय तथा इस्लामी कलाओं के संयोग से एक नवीन कला की सर्वतोमुखी उन्नति हुई थी जिसने आज तक अपना महत्व बनाये रखा है। मुगल-कालीन शासकों के दरबारों में कलाकारों को स्थान दिया जा रहा था। इस कारण तत्काली शासकों के दरबारों में कलाकारों का जमघट रहता था। अपने सामयिक प्रभाव से प्रेरणा पाकर केशव ने अपने साहित्य में ललित कलाओं का समावेश किया है।

केशव साहित्य में प्राप्त कला को पाँच मुख्य शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है : (१) चित्रकला (२) मूर्तिकला (३) वास्तुकला (४) संगीतकला तथा (५) नाट्य कला।

३:२२१ चित्रकला :

केशवसाहित्य में अनेक स्थलों पर चित्रकला सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु चित्र शैली का नाम अथवा उसकी विशेषताएं आदि के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है। यत्र तत्र बिखरे हुए उल्लेखों के आधार पर इसका अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है।

राजा के महलों में चित्रशाला[३] होती थी। केशव ने लंका में सुन्दर चित्रशालाओं के होने की बात कही है। हनुमान लंका में जाकर चित्रशाला में नाचती हुई नारियों को

१—स्फटिकमाल शुभ शोभिजै उर ऋषिराज उदार।
अमल सकल श्रुति वरणमय, मनो गिरा का हार॥—वही, २०।४८

२—रा० चं०

३—रा० च० १३।५१

देखा था।[1] मन्दोदरी की चित्रशाला का वर्णन कवि ने बड़े ही मनोहर ढंग से किया है। उसकी चित्रशाला के चित्रों की पुतलियाँ इतनी सजीव थीं कि अंगद को उनके नारी होने का भ्रम हो गया था।[2] वह दौड़कर जब तक मंदोदरी के भ्रम से किसी पुतली को पकड़ते थे तब तक वह दूसरी ओर भाग जाती थी।[3] यदि वहां की देवकन्या मंदोदरी को नहीं दिखाती तो अंगद उसे पकड़ने में असफल हो जाते। रथों तथा पताकाओं पर भी अनेक प्रकार के चित्र चित्रित होते थे। अतिकाय का रथ बघमुहां था। महादर के रथ पर सर्प-ध्वज, मकराक्ष के रथ पर हंसध्वज, रावण के रथ पर शार्दूल ध्वज और मेघनाथ के रथ पर सिंहध्वज विराजमान होते थे।[4] महाभारत के अनुसार ध्वजरंजित होते थे। चित्रपटों में हाथी घोड़े रथ आदि का निर्माण किया जाता था।[5] राम के रंग महल में अनेक पूर्वजों के चरितों को स्पष्ट करने वाले असंख्यक चित्रों के होने की बात तक कही गयी है।[6]

वे इतने सुन्दर और सजीव थे कि कवि ने गाने वाली षोडषी को उस चित्रशाला के चित्रों से निकला हुआ बताया है।[7] राजाओं के मनोरंजन के लिए चित्रशालाओं का निर्माण होता था। साधारण लोग भी अपने घरों की दीवारों को चित्रों से अलंकृत करते थे।[8] भवभूति ने भी उत्तर रामचरित में लिखा है कि सीता के मनोरंजन के लिए राम की चित्रशाला में दीवार पर राम की कथा चित्रित की गयी थी।[9] केशव ने भित्तिचित्रों का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है। राम के शयनागार के वर्णन में कहा गया है कि राजमहल की मुक्तामय नवीन भित्तियों पर चंदन पंक के चित्र बनाये गये थे।[10] राजमहल के चौकों की दीवारों पर अनेक प्रकार की चित्रकारी की गयी थी।[11] अयोध्या के आवासों के सन्दर्भ में कहा गया है कि वे घर बहुत चित्रों से चित्रित थे।[12] वीरसिंह

१—बनी एक बाला नचै चित्रशाला। — रा० च० १३।५१
२—सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यौ। —वही, १६।२६
३—रा० च० १६।२७
४—वही, १७।३२ से ३८ तक।
५—भारतस्य सांस्कृतिक निधिः, डा० रामजी उपाध्याय, पृ० ३६८
६—रा० चं० ३०।१
७—शुभजाति चित्रिनी चित्र गेहते निकसि भई जनु ठाढी। —रा० च० ३०।२
८—भारतस्य सांस्कृतिक निधिः।—पृ० ३६८
९—आर्येतेन चित्रकारेण अस्मदुपदिष्टायां। वीथिकायामार्यस्य चरित मभिलिखितम्। तत्पश्यत्वार्यः।
—उत्तर रामचरित्र, प्रथमांक,पृ० ७३
१०-रा० चं० २९।२१
११-षट् ऊपर तिनके तहां चित्रै चित्रविचारि। —रा० चं० २९।२७
१२-चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रन केशवदास विचारि। —वही, १।४५

देव की नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वह नगरी विश्वरूप दर्पण की भाँति अनेक चित्र-विचित्र चित्रों से बनी हुई है।[१] रसिक प्रिया में लिखा गया है कि राधा ने चित्रशाला में जाकर चित्रों को देखा था।[२] वीरसिह देव चरित में भी भित्ति-चित्रों का उल्लेख मिलता है।[३] दीवारों के अतिरिक्त सिंहासन पर[४] हाथी के दांतों पर[५] भी चित्र बनाये जाते थे।

सीता स्वयंवर के सन्दर्भ में एक ऋषि पत्नी के द्वारा एक राजकुमार (राम) के चित्र के लाये जाने का उल्लेख किया गया है।[६] इसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीनकाल में चित्रकला का प्रसार मुनियों के आश्रमों तक हो गया था। जब विरक्त आश्रमवासियों तक इसका प्रचार हो गया तो नागरिकों के बारे में क्या कहना है ?

३-२२२ मूर्तिकला :

केशव साहित्य में मूर्तिकला का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं किया गया है। अश्वमेध यज्ञ के समय पर कश्यप मुनि की सम्मति के अनुसार राम के द्वारा सीता की एक सोने की प्रतिमा बनाये जाने की बात केशव ने लिखी है।[७] दंडकवन का वर्णन करते समय श्री हरि की मूर्ति[८] तथा पांडव की प्रतिमा[९] आदि शब्दों के द्वारा मूर्तिकला की ओर केशव ने संकेत किया है। रामचन्द्र के राजमहल के वर्णन के संदर्भ में उसके सिंहपौरि, दंतिपौरि वाजिपौरि तथा नंदिपौरि का उल्लेख किया गया है। इन द्वारों पर सिंहों, हाथियों, घोड़ों तथा नदियों की मूर्तियों को रखे जाने की ओर केशव ने संकेत किया है।[१०]

१—वी० च० २८।६
२—देखत ही चित्र सुनी चित्रसाला बाला आजु। —र० प्रि० ५।२६
३—वी० च० १८।२०
४—रा० च० २०।२०
५—वही, २६।४०
६—लिखि लायी सिय को बरु ऐसौ।
राजकुमारहि देखिय जैसो॥ —रा० चं० ५।२
७—करिये युत भूषण रूपरयी। मिथिलेश सुता इक स्वर्णमयी। —वही, ३५।४
८—नैनन को बहु रूप न ग्रसै। श्री हरि की जन मूरत लसै। —वही, ११।२१
९—पांडव की प्रतिमा सम लेखो। —वही, ११।२१
१०—वही, २६।२६

४-२२३ वास्तुकला :

साधारणत: गृहनिर्माण की विधि का लक्षण बताने वाले शास्त्र को वास्तु कर्म या वास्तु विद्या कहा जाता है। आजकल इसके साथ पुल आदि की निर्माण विधि को भी सम्मिलित किया गया है।[१] मुगल सम्राटों ने कलाप्रिय होने के कारण विविध कलाओं के साथ वास्तुकला को भी प्रोत्साहन दिया है। अनेक सुन्दर भवनों का निर्माण इसी युग में हुआ था। अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ आदि ने जिन सुन्दर तथा कलात्मक भवनों का निर्माण किया है, वे आज भी अपने वैभव को प्रकट करते हैं।

वास्तु संबन्धी विविध निर्माणों में दो प्रधान भेद किये जा सकते हैं, धार्मिक और लौकिक। धार्मिक भेद के अन्तर्गत भी शिल्प के अनेक प्रकार उपलब्ध हैं, जिनके विशेष उपभेद स्तूप, चैत्य, विहार, मंदिर और स्तम्भ हैं। लौकिक परम्परा में राज प्रासाद, दुर्ग, सार्वजनिक आवास आदि आते हैं।[२] केशव साहित्य में स्तूप, चैत्य, विहार आदि के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु राज प्रासाद, दुर्ग तथा साधारण जनता के आवासों के वर्णन में वास्तुकला सम्बन्धी कुछ तथ्यों का उल्लेख किया गया है। केशव साहित्य में प्रधान रूप से तीन नगरों का वर्णन किया गया है : अयोध्या, लंका और बीर सिंह देव का जहांगीरपुर।

अयोध्या के आठ कोठ थे। आठों कोठों में, आठों दिशाओं पर आठ फाटक थे।[३] केशव ने इन आठ कोठों का नामोल्लेख तो नहीं किया है, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों में शत्रु के आक्रमण से रक्षा करने के लिए प्रत्येक नगर के लिए आवश्यक बताये गये आठ कोठ निम्नलिखित हैं: (१) अतिदुर्गा (२) कालवर्म (३) चक्रावर्त (४) डिंबर (५) तटावर्त (६) पद्माख्य (७) वज्र भेद और (८) सार्वर।[४] प्राचीनकाल में शत्रुओं के आक्रमणों से नगर की रक्षा करने के लिए बड़ी-बड़ी खाइयाँ तथा चहरदीवारियां बनायी जाती थीं। प्राच्य और पाश्चात्य दोनों प्रकार की प्राचीन नगर शैलियों का यह एक सामान्य लक्षण था।[५] इन आठों की रक्षा के लिए समर्थ रक्षक नियुक्त किये थे।[६] रक्षक बारी बारी से फाटक

१—एन्सैक्लोपीडिया आफ आर्किटेक्चर, डा० प्रसन्नकुमार आचार्य, पृ० ४५८

२—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृ० ५६६, प्रथम भाग खंड ४, अध्याय १।

३—पुर आठ आठ दरबार बिराजे। रा० च० ८।४

४—लाला भगवानदीन, केशव कौमुदी, उत्तरार्द्ध, पृ० १३२

५—रामायणकालीन संस्कृति, डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, पृ० २१७

६—रा० च० ८।५

की रक्षा के लिए बदलते थे।[1] केशव का यह उल्लेख 'मयमत' के अनुसार ही है।[2] प्रायशः अधिकांश नगर नदी तट पर या द्वीप पर तथा दुर्ग और पर्वत पर स्थित थे।

केशव ने अयोध्या के सरयू तट पर[3] मिथिला के सुन्दर सरोवरों के बीच[4] लंका के द्वीप में[5] तथा ओडछा या जहांगीरपुर के बेतवा नदी के किनारे[6] होने का उल्लेख किया है। "भारत के प्रारम्भिक नगरों की स्थापना सिन्धु-गंगा की घाटियों में हुई है। शांतिकाल में नदी द्वारा सम्पर्क जितना सरल होता है, युद्ध काल में उसे पारकर आक्रमण करना भी उतना ही कठिन।" नदियों से कई स्थानीय लाभ होते हैं। इन्हीं सब कारणों से अनेक शिल्पशास्त्रों में भी नदी के दाहिने किनारे पर नगर बसाने का विधान पाया जाता है।[7] अयोध्या नगर के कोटों के ऊपर कंगूरे बनाये गये थे जिनपर हीरों और मणियों की प्रभा झलकती थी।[8] नगर के ऊंचे भवनों पर विविध वर्णों के झंडे फहराते थे।[9] उस नगर के सभी घर सम ऊंचाई पर बने हुए थे।[10] नगर की वीथियां सुन्दर, स्वच्छ और धूमिल रहती थीं। वे चन्दन से लिपी हुई थीं तथा उनके दोनों ओर रत्न जटित सुवर्ण कलश शोभित थे।[11]

वीतियों के दोनों ओर ऊंचे नागरिक भवन थे। विशेष उत्सवों के अवसर पर स्त्रियां अपने अपने घरों की अटारियों पर चढ़कर अपना हर्षोल्लास प्रकट करती थीं। विवाह के अनन्तर जब राम सीता के साथ अयोध्या में आये तब नगर की नारियों ने

१—वही, ७।४
२—परितः परिखा बाह्ये शिबिरायुतानेक रक्षा। —मयमत, १०।२१
संο टीο गणपति शास्त्री, प्रο तिरुवानकूर केमहाराजा के शासन की ओर से।
३—सरजू सरिता तट नगर बसै बर।
अवध नाम यशधाम घर॥—राο चंο १।१३
४—वही, ५।१५ ५—वही, १४।१
६—वीο चο १।३
७—टाउन प्लानिंग इन एन्शेंट इण्डिया, बीο बीο दत्त, पृο २७–२८
डाο शान्ति नानूराम व्यास कृते रामायण कालीन संस्कृति से उद्धृत
८—राο चंο २२।६
९—वही, १।३७
१०—सम सब घर शोभैं। मुनिमन लोभैं।—राο चंο १।४२
११—राο चंο ८।६

अपने घरों की अटारियों पर चढ़कर सीता और राम के ऊपर फूलों फलों और लावों की वर्षा की थी।[1]

नगर के मध्य राज प्रसाद निर्मित थे। राम के राजमहल के पांच चौके थे और वे सब सत खण्ड थे। उनमें से एक खण्ड जमीन के नीचे बना था और उसके ऊपर के छः खण्ड जमीन के ऊपर थे।[2] एक चौक में भोजनगार, दूसरे में राज सभा, तीसरे में मन्त्रणागृह, चौथे में नाट्यशाला तथा पाँचवें में सीता का निवास था।[3] सीतावाले खण्ड का विशद वर्णन किया गया है। वहां तीन मंडपबने हुए थे। उनमें से पहला सुवर्ण का था। जिस पर सफेद वितान था, दूसरा लाल मणियों का था जिस पर श्याम रंग का वितान था और तीसरा नीलमणियों का था जिस पर सफेद वितान था।[4] सीता जी के भवन के पास ही वस्त्रशालिका[5] जलशाला[6], गंधशाला, धनशाला[7] शृंगारशाला[8] आदि भवन निर्मित थे।

केशव ने अयोध्या के अन्तःपुर के वर्णन प्रसंग में पटौहाँ तथा छप्परदार मकानों का भी वर्णन किया है। अन्तःपुर में सफेद चन्दन की सीधी धरनें लगी हैं और वे धरनें माणिक की लाल शिलाओं पर सम्भालकर रखी गयी थी। धरनों पर जो पटुलियां रखी थीं वे लाल चन्दन की थीं। टोडों पर रखी हुई बर्तनी बड़ी सुन्दर और नवीन थीं और टोडों के बीच वाले भाग में सोने की चित्रकारी की गयी थी।[9] वहां कुछ तृण निर्मित छप्पर भी थे जिनके ऊपर माणिक के कलसे थे। उनके ओसरों में हाथी दांत के स्तम्भ भी थे।[10] उन भवनों के मध्यभाग में रत्न जटित स्वर्णमय झब्बे भी थे।[11] उनमें नीलम की देहरियां तथा स्फटिक के किवाड़ थे।[12] आँगन में स्त्रियों के झूलने के लिए हिंडोरे पड़े थे।[13]

१—रा० चं० ८।८

२—रा० चं० १६।२७

३—वही, २६।२८

४—वही, २६।२६, ३०, ३१

५—वही, २६।३४

६—वही, २६।३५

७—वही, २६।३६

८—वही,—२६।३७

६—वही, २६।३८–३६

१०—वही, २६।४०

११—वही, २६।४१

१२—वही, २६।४२

१३—वही, २६।४३

रावण की राजधानी लंकागढ अत्यन्त सुदृढ़ और दुर्भेद्य था। आक्रमण और प्रत्याक्रमण की दृष्टि से उसकी असाधारण किले बन्दी की गयी थी।

लंका के आसपास सोना का कोटा था। उसके पास तांबे और लोहे के कोट थे।[1] इन कोटों के ऊपर कंगूरे बनाये गये थे।[2] वे कंगूरे सुवर्ण के थे।[3] रावण के महल के पास ही यज्ञशाला बनायी गयी थी जिसका नाम 'निकुंभिला' था। इसी यज्ञशाला में मेघनाथ युद्ध में जाने के पहले यज्ञ करने गया था।[4] केशव साहित्य में लंका की वास्तु-कला सम्बन्धी कुछ तथ्यों का उद्‌घाटन लंका दहन के सन्दर्भ में किया गया है। लंका के भवनों में विशाल गवाक्ष थे। इसी कारण लंका दाह के समय उन गवाक्षों में अग्नि की ज्वालाएं बाहर निकली थीं।[5] वहां भवनों की बड़ी बड़ी अट्टालिकाएं थी, जिन पर अग्नि की ज्वालाएं प्रज्वलित हुई।[6] लंका दाह के समय रावण की शस्त्रशाला के जल जाने की चर्चा की गयी है।[7] इससे स्पष्ट होता है कि लंका में शस्त्रशाला, वस्त्रशाला आदि विभिन्न प्रकार की शालाएं थी। महलों पर स्वर्ण की बनी हुई बुर्जियां थीं।[8] यद्यपि केशव ने लंका का विस्तार से वर्णन नहीं किया है, तो भी उक्त उल्लेखों से अनुमान लगाया जा सकता है कि वह एक ओर समुद्र दूसरी ओर त्रिकूट पर्वत तथा तीसरी ओर भयानक जंगलों से परिवेष्टित था। इस प्रकार वह जल व दुर्ग, गिरिदुर्ग और वन दुर्ग तीनों का अद्‌भुत सम्मिश्रण था।

केशव ने ओडछा नगर (जहाँगीरपुर) का विस्तार से वर्णन किया है। उस नगर में अस्त्रों को रखने के लिए बहुत सी कोठरियां थीं। बारूद और गोलियां रखने के लिए अनेक ओखलियों का निर्माण किया गया था।[9] वे कोट इतने चौड़े थे कि अनेक बालक हाथियों के बच्चों को लिए उन पर खेलते थे।[10] उस नगर के आठ द्वार होने

रा० चं० १५।४३

२—वही, १७।६

८—वही, १७।७

४—वही, १७।३०

५—वही, १४।५

६—वही, १४।८

७—वही, १४।६

८—वही, १४।७

९—वी० च० १६।१६

१०—वही, १६।१७

की बात लिखी गयी है।[1] उस नगर के भवनों में लम्बी अटारियां निर्मित थीं।[2] राजा राम के महल के समान वीरसिंह देव के राजमहल के भी पाँच चौकों का होना बताया गया है। एक चौक में सभा बैठती थी और दूसरे में नृत्य गान होता था।[3] तीसरे चौके में संपूर्ण राज परिवार भोजन करता था तथा चौथे में राजनैतिक विषयों की मंत्रणा होती थी। पांचवां चौका मध्य भाग में था जिसमें लोगों का आवागमन होता था।[4] राजभवन के आस पास श्वेत महल[5], लाल महल[6], रंगमहल[7] बने हुए थे। राजा की बैठक बहुत लम्बी चौड़ी तथा सुन्दर थी।[8] वहां के भवनों में सुन्दर गवाक्ष निर्मित थे जिनमें से सूर्य और चन्द्रमा की किरणें महलों के अन्दर जाती थी। नगर की वीथियां स्वच्छ और समतल थीं। वीथि के दोनों और असंख्य तैलयुक्त दीपक रखे जाते थे जिनके कारण नगर की शोभा और भी बढ़ जाती थी।[9]

सारा राजभवन चन्दन की लकड़ियों से बनाया गया था।[10] बीच-बीच में हाथी के दान्तों की सींकें थीं। इनके सौन्दर्य से नये छप्परों की शोभा बढ़ जाती थी।[11] हाथी दान्त युक्त सुन्दर ऊंचे खम्भे बने थे जिन पर सुन्दर जड़ाऊ काम किया गया था।[12] राजभवन के समीप ही मेवा की शाला[13] मानशाला[14] मन्त्रशाला[15] हयशाला[16] का निर्माण किया गया था।

३-२२४ संगीत कला :

साधारणतया गीत और वाद्य को ही संगीत कहते हैं। इसलिए यहां प्रधानतः केशव साहित्य में उल्लिखित गान या गीत और वाद्य संबन्धी की बातों चर्चा की जाती है।

केशव साहित्य में गानविद्या का अनेक वार उल्लेख हुआ है। रामचन्द्रिका में अयोध्यावासियों की गान विद्या की आसक्ति का वर्णन किया गया है। रामवनगमन के

१—वी० च० १६।२०
२—वही, १६।०२
३—वही, १७।८
४—वही, १७।१०
५—वही, १७।१५
६—वही, १७।१६
७—वही, १७।१७
८—वही, १७।१
९—वही, १६।२४
१०—वही, २०।३
११—वही, २०।४
१२— ,, २०।५
१३— ,, २१।१२
१४— ,, २१।१३
१५— ,, २१।१४
१६— ,, १७।२४

पश्चात् अयोध्या के सभी नागरिकों का संगीत विधान छूट गया था।[1] रामराज्य में प्रति-दिन संगीत होने तथा उत्तम वाद्यों के बाजये जाने की बात केशव ने लिखी है।[2] सीता-राम के विवाह के प्रसंग में दुंदुभियों के बजने, किसी सुन्दरी के द्वारा बांसुरी बजाने और बेश्याओं के द्वारा गीत गाये जाने की चर्चा की गयी है।[3] राज परिवार की स्त्रियों को अच्छी तरह संगीत की शिक्षा दी जाती थी। इस बात की पुष्टि में केशव ने लिखा है कि सीता पंचवटी में वीणा लेकर नाना प्रकार के गीत गाकर जब राम को प्रसन्न करने लगती थी, तब बहुत से वन्य पशु आकर उन्हें घेर लेते थे।[4] एक विधवा को छोड़कर सभी स्त्रियों को गाने का अधिकार प्राप्त था।[5] विवाह के अनन्तर सीता राम के अवध प्रवेक के समय प्रति गेह में घट, शंख, पटह, मृदंग, ताशा, शहनाई आदि बाजों के बजाये जाने की चर्चा की गयी है।[6] रावण के वध के पश्चात अयोध्या लौटे हुए राम का स्वागत करते समय नर-नारियों तथा देव-नारियों के द्वारा विजय सूचक गीत गाये जाने का उल्लेख भी केशव ने किया है।[7] राम को सुलाने के लिए नाग-कन्याओं, पार्वत्य कन्याओं असुरकन्याओं, देव-कन्याओं और किन्नर कन्याओं के द्वारा अनेक बाजे बजाये जाने तथा गीत गाये जाने की बात लिखी गयी है।[8]

राम के रंगमहल में प्रतिदिन नाच गान का प्रबन्ध होने का उल्लेख केशव ने किया है। जब राम रंगमहल में पहुँचे तब अनेक षोडवियां वहां आयीं और वीणादि बाजों तथा अदभुत संगीत से उनके चित को प्रसन्न किया।[9] यहां ध्यान देने की एक बात है कि केशव ने छत्तीस राग रागनियों का उल्लेख किया है। इससे अनुमान किया जा सकता कि केशव को रागों का ज्ञान भी था। राम के सामने जो गान हुआ उसमें स्वर, नाद, ग्राम, ताल, आलाप, जति, मूर्च्छना, भाग, गमक आदि संगीत सम्बन्धी सभी का निर्वाह

१—छूटे सब सबनि के सुख सुप्तिवास।
विद्वद्विनोद गुण गीत विधान वास ॥—रा० च० ९।६

२—घर घर संगीत बीज न बाजैं अतीत।—रा० च० २६।२२

३—वही, ६।१२, १३

४—वही, ११।२७

५—गानबिन मान बिन हास बिन जीवहीं।—वही, ९।२८

६—रा० च० २८।७

७—वही, २२।१०

८—वही, २६।२४

९—रा० च० ३०।२

अच्छी तरह किया गया था।[1] उन स्त्रियों में मृदंग बजाने वाली स्त्री के हस्तलाघव की भी प्रशंसा की गयी है।[2] संगीत के प्रभाव से राम इतने प्रसन्न हो गये कि उन्होंने संगीत की मुक्त कन्ठ से प्रशंसा की थी। उनके अनुसार संगीत कामवाण से भी अधिक प्रभाव आदमी पर डालता है। पर संगीत में यह विशेषता अवश्य है कि काम बाण केवल युवकों पर ही अपना प्रभाव डाल सकता है किन्तु संगीत बालकों पर भी अपना अमिट प्रभाव डालता है।[3] राम के अभिषेक के अवसर पर स्वर्ग और भूलोक दोनों में ही बाजे बजाने तथा संगीत के होने की बात लिखी गयी है।[4]

लंकापुरी के निवासी भी संगीत के अभिज्ञ थे। हनुमान ने वहां जाकर देखा कि किन्नरियां सारंगी बजाती थी।[5] सोते हुए रावण के चारों ओर गाती हुई स्त्रियों को भी उन्होंने देखा था।[6] लंका में होने वाले संगीत से सीता के मन का खेद और भी बढ़ जाने का उल्लेख किया गया है।[7]

वीरसिंह देव चरित में घोषा, सुकेशी आदि सुन्दरियों के द्वारा जहांगीर के यशोगान किये जाने का उल्लेख केशव साहित्य में प्राप्त होता है।[8] वीरसिंहदेव के नगर के वर्णन के संदर्भ में प्रत्येक घर में संगीत पर विचार किये जाने की बात लिखी गयी है।[9] जिस प्रकार अयोध्या में राजा राम का रंगमहल नाच गान का केन्द्र था, उसी प्रकार वीर-सिंह देव की पुरी में भी राजा का रंगमहल था। उस रंग महल में युवतियां राजा के सामने नाद, ग्राम, स्वर, पद, ताल, आलाप से साथ गाती और नाचती थीं।[10] विशेष अवसरों पर मंगल गीत भी गाये जाते थे।[11]

१—वही, ३०।३

२—वही, ३०।८

३—वही, ३०।९

४—वही, २६।१६

५—कहूं किन्नरी किन्नरी लै बजावै।—वही, १३।५०

६—वही, १३।४८

७—वही, वही, १४।२७

८—सकल मंजु घोषा सुन्दरी। गावत सुखद सुकेशी खरी।—वी० च० १।२५

९—घर घर सुख संगीत विचार॥—वी० च० २८।२८

१०—वी० च० २०।३२

११—वही, ३३।१

श्रीकृष्ण को वश में करने के लिए राधा ने हर्षोल्लास के साथ गीत गाया था।[१] इन्द्रजीतसिंह के दरबार में रहने वाली रंगभूरति के अंगों में सभी राग मूर्तिमान थे।[२] चित्रशाला में राधा ने नाच गान किया था।[3] बलराम के वर्ष गांठ के समय गोपिकाओं ने अनेक प्रकार के नाचगान किये थे।[४] राधा ने भी कृष्ण का गुणगान किया था।[५] मन्दिरों में भक्ति रंजित गीतों को गाना धार्मिक कृत्य से सम्बन्ध रखता है। चतुर्भुज देव के मन्दिर में स्त्रियों के द्वारा गीत गाये जाने का उल्लेख मिलता है।[६]

केशव ने रामचन्द्रिका के तीसरे प्रकाश में संगीतकला का कुछ विस्तार के साथ वर्णन किया है। वहां पर संगीत के निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया गया है—

स्वर, नाद, ग्राम, ताल: आलाप, कला, जाति, मूर्च्छना, भाग और गमक। नीचे उक्त शब्दों का परिचय दिया जाता है।

गाते समय उच्चारण की जानेवाली ध्वनियों को स्वर कहा जाता है। शब्द का अनुकरण रूप ही 'स्वर' है। अर्थात् हर एक शब्द में आहति के बाद होने वाला शब्द लहरों के क्रम से उत्पन्न होकर फिर क्रम से लीन हो जाता है। इस का नाम "अनुरणन" भी है। अनुरणन स्वर का मुख्य स्वरूप है।[७] संगीत में इसके सात भेद हैं जिनके नाम षडज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद हैं। ये सप्त स्वर पशु पक्षियों की ध्वनिका अनुकरण करते हैं।[८] संगीत में इनके चिन्ह स, रि, ग, म, प, ध, नि हैं।

१—क० प्रि० ११८
२—वही, १।५५
३—र० प्रि० ५।२६
४—वही, ५।३२
५—वही, ७।३०
६—वी० च० १६।२४
७—संगीत शास्त्र, श्री वासुदेव शास्त्री, पृ० २५५
८—षड्ज रौति मयूरस्तु गावोनर्दन्ति चर्षभम्।
अजाविकौ च गाधारं क्रौचोनदति मध्यमम्॥
पुष्प साधारणेकाले कोकिलोरौति पचमम्।
अश्वस्तु धैवतरौति निषाद रौति कुंजर॥—डा० रामजी उपाध्याय के भारतस्य संस्कृति:-से उद्धृत, पृ० २५५

स्वरों के उच्चारण के तीन प्रकारों को नाद कहा जाता है। संगीत के आचार्यों के अनुसार आकाशस्थ अग्नि और मरुत के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है। नाद के बिना गीत, स्वर, राग आदि कुछ भी संभव नहीं है।[१]

संगीत में तीन ग्राम की मान्यता हैं। उनके नाम षड्ज, मध्यम और पंचम हैं। षड्ज से आरम्भ होने वाले स्वरों के समूह को षड्ज ग्राम और मध्यम से आरम्भ होकर सात स्वरों तक जाने वाले समूह को मध्यम ग्राम तथा पंचम के आरम्भ से सात स्वरों तक जाने वाले समूह को पंचम कहा जाता है।[२]

नाचने या गाने में उसके काल और क्रिया का परिणाम जिसे बीच-बीच में हाथ पर हाथ मारकर सूचित करते जाते हैं "ताल" कहा जाता है। संगीत के संस्कृत ग्रंथों में ताल दो प्रकार के माने गये हैं—मार्ग और देशी। भरत मुनि के अनुसार साठ मार्ग तथा एक सौ बीस देशी ताल गिनाये गये हैं।[3]

आलाप किसी स्वर रूप को "आदि" शब्दगत करके गाये जाने का प्रकार विशेष है।[४]

ताल में मात्रा के हिसाब से काम लेने को कला कहते है।[५] 'जाति" भी ताल ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाला एक प्रकार है। इसके पांच भेद माने गये हैं।[६]

संगीत में एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक जाने में सातों स्वरों के आरोह अवरोह मूर्च्छना कही जाती है। भरत के मतानुसार गाते समय गले को कंपाने से ही मूर्च्छना होती है और किसी किसी का मत है कि स्वर के सूक्ष्म विराम ही मूर्च्छना है। तीन ग्रामों के होने के कारण इकतीस मूर्च्छनाएं होती हैं।[७]

१—हिन्दी शब्द सागर, पृ० १७६७

२—लाला भगवानदीन, केशव कौमुदी, उत्तरार्ध, पृ० १३५

३—हिन्दी शब्द सागर, पृ० १४०१

४—केशव कौमुदी, लाला भगवानदीन पृ० १३६

५—लाला भगवानदीन, केशव कौमुदी, द्वितीय भाग, पृ० १३६

६—वही, १३६

७—हिन्दी शब्द सागर, पृ० २७६८

गीत के प्रबन्ध को "भाग कहा जाता है ।[१]

संगीत में एक स्वर श्रुति या स्वर पर से दूसरी श्रुति या स्वर पर जाने को एक प्रकार 'गमक' कहा जाता है। इसके सात भेद हैं-कंपित, स्फुरित, लीन, भिन्न, स्थविर, आहत और आन्दोलित । पर साधारणतः लोग गाने में स्वर के कांपने को ही 'गमक' कहते हैं ।[२]

केशव साहित्य में अनेक प्रकार के वाद्यों का उल्लेख किया गया है । वे इस प्रकार हैं—वीणा,[३] किन्नारी,[४] बांसुरी,[५] वेणु,[६] कर्नाल,[७] सितार,[८] शहनाई,[९] दुंदुमि,[१०] रूंज,[११] पखाज,[१२] आवझ,[१३] झांझ,[१४] मृदंग,[१५] भेरी[१६] नगार,[१७] तार,[१८] तूर,[१९] शंख[२०] आदि ।[२१]

वाद्य चार प्रकार के माने गये हैं। शारंगदेव रचित संगीत रत्नाकर में तत, सुषिर, अवनद्ध और धन-इन चार प्रकार के वाद्यों का उल्लेख किया गया है ।[२२]

"हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास" में वाद्यों का विभाजन चार वर्गों में किया गया है-तत, वेतात, धन और शेखर । तंत्र के वाद्य, पीतल लोहे के तार या रेशमी या सूती डोरे से बंधे होते हैं जिन्हें लकड़ी, हाथी दान्त या मिजराव से बजाते हैं, जैसे वीणा, तंबुरा आदि । बेतात भी तार ही वाले हैं पर उनमें तार के नीचे चमड़ा लगा होता है और उन्हें धनुष से बजाते हैं । सारंगी, तांस आदि इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। धन

१-लाला भगवानदीन, केशव कौमुदी, द्वितीय भाग पृ० १३६

२-हिन्दी शब्द सागर, पृ० ७६३

३-रा० चं० ३५।७

४-ज० प्र० छं, ४८

५-रा० चं० १३।५०

६-क० प्रि० ६।४५

७-ज० चं० ४८

८-क० प्रि० ६।४५

९-वी० चं० २१।३२

१०-रा० चं० ६।२२

११-वी० चं० २१।३२

१२-वही, २१।३२

१३-रा० चं० १३।२२

१४-वहीं, २१।३२

१५-रा० चं० ३५।७

१६-वी० चं० २१।३२

१७-वही, २१।३०

१८-रा० चं० १३।२२

१९-वही, १३।२२

२०-वही, १३।२२

२१-वही, १८।३५

२२-तंत्तत सुषिरं चावनद्धं धनमिति स्मृतम्। --शारंगदेव, संगीत रत्नाकर,

ढोलके से बाजे हैं जैसे पखावज, तबला, नगाड़ा आदि। सेखर मुंह से फूंककर बजाये जाते हैं, जैसे बांसुरी, शहनाई आदि।[१]

केशव साहित्य में उल्लिखित वाद्यों का विवेचन उपर्युक्त चार शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाता है।

तंत्रवाद्यों को तंत्रीवाद्य भी कहते हैं। केशव साहित्य में उल्लिखित तंत्रीवाद्यों में वीणा मुख्यवाद्य है। सीता के द्वारा पंचवटी में वीणा बजाने की बात रामचन्द्रिका में कही गयी है।[२] चतुर्भुज भगवान के दरबार में वीणा वादन होने का उल्लेख मिलता है।[३] राय प्रवीण की वीणा की तुलना एक स्थान पर देवसभा से की गयी है।[४] राम के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के पीछे जाती हुई सेना के द्वारा वीणा बजाने की चर्चा की गयी है।[५]

किन्नरी शब्द का प्रयोग केशव ने "सारंगी" के अर्थ में किया है। इस वाद्य का भी प्रयोग केशव साहित्य में अनेक सदर्भों में हुआ है। लंका में सुन्दरियों के द्वारा किन्नरी के बजाये जाने की बात कही गयी है।[६] यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि इस वाद्य को सभी स्थानों पर किन्नरियों के द्वारा ही बजाये जाने का उल्लेख किया गया है।

केशव के साहित्य में निम्नलिखित धनवाद्यों का उल्लेख किया गया है--नगारा, मृदंग, घट, पटह, झालरि, भेरी, दुंदुभि आदि। नगारा प्राचीन वाद्यों में से एक है। राज भवनों में प्रातःकाल के समय इसके बजाये जाने का उल्लेख वीरसिंह देव चरित में किया गया है।[७]

रामचन्द्रिका में मृदंग के लिए पखावज शब्द का भी प्रयोग किया गया है। इस ग्रंथ में राजाराम के महल में नृत्य प्रसंग में[८] तथा अश्वमेध यज्ञ के साथ जाती हुई सेना

१--हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, खन्ड ४, अध्याय ४, पृ० ६५५ सं० राजबली पाण्डेय।

२—रा० चं० ११।२७

३—वी० चं० १६।२५

४—क० प्रि० ९।४५

५—रा० चं० ३५।७

६—रा० चं० १३।५०

७—वी० चं० २१।३०

८—रा० चं० ३०।८

के वर्णन के प्रसंग में[1] मृदंग का उल्लेख प्राप्त होता है। रंगराय की उंगलियों का स्पर्श होते ही गूंगे मृदंग से सब प्रकार के शब्दों के निकलने की बात कही गयी है।[2]

घटवाद्य का उदर बड़ा, परन्तु मुंह छोटा होता है। इसका पिंड घनतायुक्त रहता है। हाथों से इसका वादन किया जाता है। अयोध्या के गृहों में इसके बजाये जाने का उल्लेख केशव साहित्य में किया गया है।[3]

पट अबनूस की लकड़ी से बनाया जाता है। दोनों ओर यह मृत बछड़े के चमड़े से मढ़ा हुआ होता है। युद्ध भूमि में इस को वजाया जाता है। परन्तु कभी-कभी घरों में भी बजाते हैं। अयोध्या के घरों में इस वाद्य को बजाये जाने का उल्लेख केशव ने किया है।[4]

झालरि को विजय घंटा भी कहते हैं। यह कांस्य की बनी हुई है। उन्नति आठ अंगुलि तक ही होती है। खासकर देवताओं के पूजन में इसका वादन करना आवश्यक माना जाता है।[5] अयोध्या के गृहों में इसे बजाये जाने की बात कही गयी है।[6]

मजीरा दो धातु के कटोरे होते हैं जो रस्सी से जुड़े होते हैं और तनजे के साथ बजाये जाते हैं—दोनों हाथों से परस्पर टकराकर[7] केशव ने वर्षाऋतु के वर्णन प्रसंग में इसकी चर्चा की है।[8]

आउस चमड़े से मढ़ा हुआ एक वाद्य है जिसको ताशा भी कहा जाता है। विवाह के अनन्तर सीता राम के अयोध्या प्रवेश के सन्दर्भ में[9] तथा वर्षा ऋतु के वर्णन संदर्भ में[10] इसकी चर्चा केशव ने की है।

भेरी तांबे से बनायी जाती है। उसका मुंह चमड़े से मढ़ा रहता है। बीच में

१—वही, ३५।७ २—क० प्रि० १।५३
३—रा० चं० ८।७ ४—वही, ८।७
५—संगीतशास्त्र, पृ० २८३, श्री के० वासुदेव शास्त्री।
६—रा० चं० ८।७
७—हि० सा० वृ० इ०, प्रथम भाग, खंड ४, अ० ४ पृ० ६५६
८—रा० च० १३।१२
९—रा० चं० ८।७
१०—वही १३।१२

रस्सी से बांधा जाता है। इसके बजाने में दोनों हाथों का प्रयोग किया जाता है। इसकी ध्वनि शत्रुओं को भय पैदा करने वाली होती है।[१] केशव ने राज भवनों में प्रात:काल इसे बजाये जाने की बात कही है।[२]

दुंदभि आम की लकड़ी से बनायी जाती है। कांसे के भाजन इसके अंदर रहते हैं। इसका मुंह चमड़े से बाँधा जाता है। चमड़े के कोण से इसका वादन किया जाता है। इसकी ध्वनि मेघ गर्जन के समान गंभीर तथा घोंकार युक्त होती है। यह विजय यात्रा. देवालय, अथवा शुभ अवसरों में बजायी जाती है।[३] केशव साहित्य में इसका प्रयोग सभी वाद्ययन्त्रों से अधिक रूप से किया गया है। राम के अश्वमेध के घोड़े के पीछे जाती हुई सेना के वर्णन प्रसंग मे[४] लव और राम की सेना के युद्ध प्रसंग में[५] तथा इन्द्रजीतसिंह की शत्रुओं पर विजय पाये पर[६] दुंदभि के बजाये जाने की चर्चा केशव ने की है।

केशव साहित्य में निम्न लिखित सेखरवाद्यों का उल्लेख किया गया है: तुरही, शंख, वेणु, शहनाई आदि।

तुरही या तूर्य पीतल का होता है। इसको डफ के साथ बजाया जाता है। रामचन्द्रिका मे केशव ने वर्षा वर्णन के प्रसंग में इसके बारे में लिखा है।[७]

भारतीय संस्कृति में शंख को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। महाभारत में कृष्ण के

१—वितस्तित्रय दैर्ध्यास्याम्भेरी त त्रे ण निर्मिता।
तस्याः सवलेये चर्मछन्ने छिद्रसमन्विते।
रज्ज्वा नियत्रिते गाढ मध्ये सूत्रेण बन्धनम्॥
दक्षिणस्थेन कोणेन वामहस्तेनताडनम्
उद्भटो भवति ध्वनो गंभीर रि भयकरः॥ —संगीतरत्नाकर, वाद्याध्याय, ११४६, ५०, ५१

२—वी० च० २१:१२

३—आम्रद्रुमद्भूतो महागात्रो महा ध्वनिः।
कांस्य भाजन संभार थर्मो वलयनिर्मितः॥
चर्मनद्धाननो बद्धोवध्र गैढि समन्ततः।
दृढ चर्मेण कोणेन वाद्यो वर्णेन दुंदनिः।
मेघनिर्घोष गंभीर घोंकारस्यात् मुख्यता।
मंगले विजये चैव वाद्यने देवालये॥ —संगीतरत्नाकर, वाद्याध्याय, श्लो० ११४५, ४६, ४७, ४८

४—रा० चं० ३५।७

५—वही, ३५।१२

६—वी० च० ८।३१

७—रा० च० १३।१२

द्वारा पांचजन्य, अर्जुन के द्वारा देवदत्त, भीमसेन के द्वारा पौंड्रक, युधिष्ठिर के द्वारा अनन्तविजय और नकुल और सहदेव के द्वारा सुघोषमणि पुष्पक नामक शंखों को बजाये जाने की बात भगवत् गीता में लिखी गयी है।[1] दोष रहित ग्यारह अंगुल की लम्बाई के एक शंख की नाभि को खुदवाकर उसके शिखर में एक रन्ध्र बाहर से आधा अंगुल और अंदर से उंदर के प्रमाण का करना है। उसे कर्कट मुद्राहस्त से पकड़कर पूर्ण बल से फूंक मारना चाहिए। इसके शब्द हुं, धुं इत्यादि हैं।[2] केशव साहित्य में युद्ध के प्रसंग में इसके बारे में लिखा गया है। मेघनाद को मारने के बाद लक्ष्मण ने शंख बजाया था।[3]

वेणु आबनूस की लकड़ी, हाथी दान्त, चन्दन, रक्त चन्दन लोहे, कांसे, चाँदी या सोने से बनायी जा सकती है। ..... दो, तीन या चार अंगुल की दूरी पर फूंकने के लिए एक उंगली के प्रमाण का पहला रन्ध्र बनाना है। रावण के महल में आसुरी कन्याओं ने बांसुरी बजायी थी।[4] राम के यज्ञाश्व के पीछे जाती हुई सेना के द्वारा भी वेणु को बजाये जाने का उल्लेख मिलता है।[5]

दक्षिण भारत में नागस्वर या तूर्य का बड़ा प्रचार है। शहनाई नागस्वर का प्रतिरूप है। यह उत्तर भारत में बजायी जाती है, परन्तु इसकी लम्बाई नागस्वर से आधी है। इसका नाद कोमलतर है। अयोध्या नगर के घरों में शुभ अवसरों पर शहनाई बजायी जाती थी।[6] वीरसिंह देव के नगर में प्रातःकाल शहनाई को बजाये जाने का उल्लेख केशव ने किया है।[7]

३-२२५ नृत्यकला :

नृत्यशब्द 'नृत्' धातु से जिसका प्रयोग गात्र के विक्षेप करने के अर्थ में होता है, बनता है। इसमें आंगिक अर्थात् अंग से सम्बन्धित भावों की बहुलता रहती है। इसलिए इसको करने वालों को नर्तक कहते हैं।[8]

१—भगवद् गीता, १।१५, १६
२—श्री के० वासुदेवशास्त्री, संगीतशास्त्र, पृ० २७२
३—रा० च० १८।३५
४—वही, १३।५०
५—वही, ३५।७
६—वही, ८।७
७—वी० च० २२।३२
८—भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८२

केशव साहित्य में विविध सन्दर्भों में नृत्य का उल्लेख किया गया है। रामचन्द्रिका में सीताराम के विवाह के प्रसंग में नर्तकियों के द्वारा नृत्य किये जाने की बात केशव ने लिखी है।[१] राजा राम के रंगमहल में नर्तकियों के द्वारा अनेक प्रकार के नृत्य किये जाने का उल्लेख किया गया है।[२] नाचते समय नर्तकियों के पैरों और पखावज की तालों सहित गीत के शब्द का प्रतिध्वनित होना बताया गया है।[३] गंधर्व जाति को नृत्यकला में प्रवीण माना गया है।[४] केशव के एक उल्लेख से प्रकट होता है कि नर्तकी रंगबिरंगी पोशाक पहनकर, अनेक गति-भेदों का निर्वाह करते रात के समय दीपमाला के प्रकाश में नाचती हैं।[५] वीरसिंह देव के रंगमहल में नर्तकियों के द्वारा नाद, ग्राम, स्वर, पद, ताल आलाप आदि के साथ नृत्य किये जाने का उल्लेख मिलता है।[६] रामचन्द्रिका के तीसवें प्रकाश में नृत्य का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। उस प्रसंग में नृत्य के सत्रह भेद बताये गये है।[७] लाला भगवान दीन ने इन नृत्यों का परिचय अपनी टीका में दिया है।[८]

इनके अतिरिक्त तीवर, उपरति[९], ढेकी, खुरमति,[१०] आदि नृत्य के भेदों का भी केशव ने उल्लेख किया है।

इस प्रकार संगीत पारिभाषिक शब्दावली के समान केशव ने नृत्यकला की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है। यद्यपि इनका विवरण कवि ने नहीं दिया है, फिर भी इन शब्दों से उनका नृत्य सम्बन्धी पारिभाषिक ज्ञान सिद्ध अवश्य होता है। तत्कालीन दरबारी अभिरुचि पर शास्त्रीय प्रभाव सभी ने स्वीकार किया है। इसलिए दरबार से संबद्ध व्यक्तियों को अपनी अभिरुचि के प्रमाण में कुछ शास्त्रीयता परिचय अवश्य देना पड़ता था। यही प्रवृत्ति इन शब्दों से स्पष्ट होती है।

१—कहूं नृत्यकारी नचै शोभसाजैं। —रा० च० ६।१३
२—रा० च० ३०।५
३—३०।७ वही
४—वही, १८।३
५—क० प्रि० १३।२७
६—वी० च० २०।३२
७—रा० चं० ३०।४, ५
८—केशव कौमुदी उत्तरार्ध, पृ० १३७।३६
९—वी० च० २०।३३
१०—वही, २०।३४

३-२३ काव्य-कवि समय :

कवि लोग जिस अशास्त्रीय, अलौकिक और परंपरागत अर्थ का उपनिबन्धन करते हैं वह कवि समय कहा जाता है। राजशेखर के अनुसार प्राचीन विद्वानों द्वारा जो अर्थ जिस रूप में प्रणीत हुए हैं, देशकाल वश अन्यथा हो जाने पर भी उन अर्थों का उसी रूप में निबन्धन कवि समय है।[1] वास्तव में लोक या समाज में कुछ आधारों पर ही कवि समयों का जन्म होता है। इस सम्बन्ध में डा० गुलाबराय ने लिखा है.... 'इन विश्वासों और प्रसिद्धियों का आधार चाहे प्राकृतिक सत्य न हो, परन्तु उनके सम्बन्ध में सारा सहृदय समाज एकमत रहता है और एक परम्परागत विना पढी का समझौता बन जाता है कि कम से कम कविता में इन बातों का इसी प्रकार से वर्णन किया जाय'।[2] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जीं के अनुसार भी कवि समय के अन्तर्गत वे ही बातें आती हैं जिन्हें प्राचीनकाल के पंडित सहस्र शास्त्रों और वेदों का अवगाहन करके, शास्त्रों का अवबोध करके, देशान्तर और द्वीपान्तर परिभ्रमण करके निश्चित कर गये हैं। देशकाल वश उनका यदि व्यतिक्रम हो भी गया हो तो उन्हें अस्वीकार नहीं करना चाहिए।[3] कवि समय की महत्ता के विषय में डा० विष्णुस्वरूपजी का कथन है कि कवि समय काव्य रचना का अत्यन्त उपयोगी तत्व है। इस साधना में यद्यपि इसका सीधा योग नहीं होता, किन्तु काव्य के रस साधक उपादानों का व्यापक आधार अवश्य बन जाता है।[4] कवि परम्परा के अनुयायी केशवदास जी ने अपने साहित्य में अनेक कविसमयों का समावेश उनके साहित्य में उल्लिखित कवि समयों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से नीचे लिखे उपशीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) गजसंबन्धी कवि समय
(ख) पक्षि संबन्धी कवि समय
(ग) पुष्प संबन्धी कवि समय
(घ) नछत्र संबन्धी कवि समय

१—पूर्वेहि विद्वांसः समस्तशास्त्रं सागं च वेदमवगाह्यशास्त्राणि चावबुध्य, देशान्तराणि द्वीपान्तराणि च परिभ्रम्ययानर्थानुपलभ्य प्रणीतवंतस्तेषां देशान्तर वशेन अन्ययात्वे पि तथा तेनोपनिबन्धो यः स कविसमयः। —काव्य मीमांसा, अध्याय १४

२—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित डा० गुलाबराय कृत 'कवि समय' शीर्षक लेख, पृ० ५५३

३—हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २३४

४—कवि समय मीमांसा, पृ० ३७

(च) वन संबन्धी कवि समय
(छ) समुद्र संबन्धी कवि समय
(ज) चन्द्रमा सम्बन्धी कवि समय
(झ) सर्प संबन्धी कवि समय
(ट) अन्य कवि समय

कवि समयों के अनुसार हाथी के कुंभ स्थल से मोती निकलते हैं जो गजमुक्ता या गज़मोती कहे जाते हैं। केशव ने इस बात का कई बार उल्लेख अपने साहित्य में किया है। राम के अभिषेक के समय वहां गज मुक्ताओं से भरे पन्ने के थालों का होना कहा गया है।[1] रणक्षेत्र में हाथियों के कुंभ स्थलों के कटने पर उनसे गज मुक्ताओं के निकलने का उल्लेख भी किया गया है।[2] इन्हें "नागनाग" नाम से भी केशव ने अभिहित किया है।[3] सीताराम के पाणिग्रहण के प्रसग में मंडप की कलसियों पर गजमोतियों की बहुत सी मालाओं के लटकने की चर्चा की गयी है।[4] उसी प्रसंग में राम के उर पर शोभित होने वाली गजमोतियों की माला को सन्तों के शान्त मनों के समान बताया गया है।[5] कृष्ण के द्वारा राधा को गजमुक्ता हार भेजने का उल्लेख एक स्थान पर किया गया है।[6] संस्कृत के प्राचीन कवियों के काव्यों में भी गजमुक्ता संबन्धी चर्चा की गयी है। कालिदास ने हिमालय का वर्णन करते समय लिखा है कि वहां से सिंह जब हाथियों को मार कर चले जाते हैं तब रक्त से लाल उनके पंजों की पड़ी छाप हिम की धारा से धुल जाती है। फिर भी उन सिंहों के नखों से गिरी हुई गजमुक्ताओं को देखकर ही यहां के किरात सिंहों का पता लगाते हैं।[7]

चकोर के द्वारा चन्द्रमा के वियोग में अंगार चुग कर बेसुध पड़े रहने तथा उसके

१–गजमोतिन युत शोभिजै, भरकत मणि के थार।–रा० च० २६।२५

२–तहं कुंभ फटैं ते गजमोति कटैं।–वही, ३६।१५

३–रामविलोकि कहैं रम अद्‌भुत खाये मरे नगनाग परे कै।–वही, ३८।१६

४–गजमोतिन की अवली अपार। तहं कलसन पर उरमित सुढार।–वही, ६।३६

५–वही, ६।५६

६–मत्त गयंदीन साथ सदा इनिशावर जंगम जंतु विदार्यो।–र० प्रि० १०।६

७–पद तुषार स्रुतिधौत रक्त यस्मिन्नदृष्ट्यापि हतिद्वपानाम्

विदन्तिमार्गं नखरन्ध्र मुक्तोमुंकुता फलैःकेसरिणां किराताः॥–कुमार संभव, १।६

दर्शन से फिर प्रफुल्ल चित्त होने[१] चातक या पपीहे के केवल स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले पानी को पीकर ही अपनी प्यास बुझाने,[२] हंसों के मृणाल का आहार रूप में स्वीकृत करने[३] मोर के पावस में बादलों को देखकर नाचने[४] कोकिला के बसंत में ही बोलने[५] चकई-चकवे के चन्द्रमा को देखकर अलग होने[६] उल्लूके रात में देख सकने[७] आदि का वर्णन केशव के साथ-साथ अन्य हिन्दी के कवियों ने भी किया है। इस प्रसंग में विस्तार से उक्त पक्षियों की चर्चा करते समय लिखा जा चुका है।

सूर्य के उदय होते ही कमल का खिलना तथा कुमुदिनी का डरना, स्त्री के दांतों के लिए कुन्द पुष्पों की उपमा देना आदि कुछ पुष्प संबन्धी कवि समय प्रसिद्ध है। केशव साहित्य में सूर्य को 'पद्‌मनी प्राणनाथ'[८] कहा गया है। चन्द्रमा को कोकनद मोदचंद खंडन भी कहा गया है। इनके द्वारा सूर्य और कमल संबन्धी कवि समय का पालन किया गया है। चन्द्रमा और कुमुदिनी में परस्पर प्रेम सबन्ध बताया जाता है, किन्तु सूर्य से इसका विरोध कविगण मान्य है। अतएव केशव ने एक स्थान पर सूर्य का उदय होते ही कुमुदिनी के डरने[९] की चर्चा की है। स्त्रियों के कपोल के लिए बंधूक फूल[१०] की उपमा दी गयी है।

सूर्य मंडल के लाल होने तथा चन्द्र मंडल के सफेद होने का उल्लेख केशव ने किया है। मकर राशि[११] के अंतर्गत श्रवण नक्षत्र में चन्द्रमा के शोभित होने की चर्चा एक स्थान पर की गयी है।[१२] राहु से चन्द्रमा के ग्रसे जाने का उल्लेख भी केशव में पाया

१–रा० चं० १।१५
२–र० प्रि० १२।१२
३–वी० चं० २२।३३
४–र० चं० १३।१६
५–वही, ३०।३३
६–र० प्रि० ७।३०
७–रा० चं० १३।८८
८–अरुणगात अति पात पद्मिनी प्राणनाथ मय।–रा० चं० ५।१०
९–तिवत चित्त कुमुदिनी त्रसे।–रा० चं० ५।१६
१०–शिखनख, ११
११–र० प्रि० ४।६
१२–रा० चं० ६।४६

जाता है।[१] बृहस्पति के पीला होने,[२] शनि[३] और राहु के काला होने[४] कुज के लाल होने[५] आदि का उल्लेख केशव में प्राप्त होता है।

वन में दावानल या दावाग्नि का वर्णन करना कवियों का एक नियम रहा है। केशव ने अपने लक्षण ग्रंथ कविप्रिया में भी इस नियम का उल्लेख किया है।[६] रामचन्द्रिका में भी वन में दावानल रहने का उल्लेख पाया जाता है। लक्ष्मण ने सीता से वनवास के कष्टों का वर्णन करते हुए वहाँ दावाग्नि के होने की भी बात कही थी।[७] सीता ने लक्ष्मण को दावाग्नि सहने का आश्वासन भी दिया था।[८]

समुद्र के वर्णन के समय बडवानल या बडवाग्नि जो उसके अन्दर रहती है, का वर्णन करना कवि परम्परागत नियम है। कवि प्रिया में केशव ने इस नियम का उल्लेख किया है।[९] रामचन्द्रिका में एक स्थान पर आकाश में स्थित सूर्य को समुद्र मध्यस्थ बडवानल कहा गया है।[१०] सीता ने राम के विरह को सहने की अपेक्षा समुद्र के बडवानल में वास करना सुखकर माना है।[११] केशव ने भरद्वाज मुनि को समुद्र के पयःपान से पुष्ट रहने वाला बडवानल लिखा है।[१२] समुद्र में मैनाक नामक हिमालय के पुत्र के रहने की भी चर्चा केशव ने की है। समुद्र का लंघन करते हुए हनुमान को अपने ऊपर विश्राम देने के लिए वह समुद्र के ऊपर आ गया था।[१३]

कवि समय के अनुसार चन्द्रमा की षोडश कलाओं में से एक शिव के सिर पर

१—रा०चं० ६।६०
२—क० प्रि० ५।१६
३—वही, ५।२०
४—वही, ५।२१
५—वही, ५।२८
६—सुरभी इभ वन जीव बहु भूत प्रेत भय-भीर।
भिल्ल भवन बल्ली, विटप, दवबन बरनहु धीर॥—क० प्रि० ७।३
७—कहुं दव दहन दुसह दुख भरही।—रा० चं० ६।२५
८—वायु को वहन दिन दावा को दहन।—रा० चं० ६।२३
९—गिरि बडवानल वृद्धि बहु, चन्द्रोदय ते जानि।
पन्नग देव अदेवगृह ऐसो सिंधु बखानि॥—क० प्रि० ७।२४
१०—रा० चं० ५।१२
११—वही, ६।२६
१२—रूपधरे बडबानल को जनु। पोषत हैं पय पानहि सो तनु॥—रा० चं० २०।५०
१३—उदधि नाक पति शत्रु को उदित जान बलवंत।—वही, १३।३६

रहती है। कवि समय के अनुसार शिव के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा को सदा बालरूप माना जाता है।[१] कुमार संभव में लिखा गया है कि ब्रह्मा जी के प्रति बृहस्पति ने निवेदन किया था कि तारकासुर की नगरी पर चन्द्रमा सर्वदा अपनी पूरी कलाओं से प्रकाश करता है, केवल उस कला को बचा लेता है, जिसे शिवजी ने अपने मस्तक की मणि बनायी थी।[२] केशव ने शिव के सिर पर रहने वाली चन्द्रकला को निष्कलंक कहा है।[३] उन नामों का आधार भी सांस्कृतिक मान्यताएं हैं।

सर्प के सिर पर मणि का रहना प्रायः प्रत्येक कवि ने स्वीकार किया है। केशव ने रामचन्द्रिका में शेष नाग के फनों की मणियों से जटित पलंग पर लेटकर वसुधा रूपी सुन्दरी के सुन्दर और रसीली कविता पढ़ने की चर्चा की है।[४] शेष नाग के अनेक मुख होने की भी बात कही गयी है।[५] नाग को अस्त्र के रूप में प्रयुक्त होने की भी चर्चा की गयी, है।[६] विष्णु के शेषनाग पर शयन करने का भी उल्लेख एक स्थान पर प्राप्त होता है।[७]

कवि समय के अनुसार पाप काला माना जाता है। ऐसा मानने का कारण डा० विष्णु स्वरूप के अनुसार—'अपयश और पाप आदि का प्रभाव अशुभ और तामसिक है। उन्हें कृष्ण वर्ण मानने में यही भाव समझना चाहिए।'

केशव ने पाप को काला माना है।[८] रामचन्द्रिका में लंका युद्ध के समय रीछों को पापों का समूह कहा गया है।[९] इसी प्रकार कीर्ति को श्वेत वर्ण का मानना भी कवि समय के अनुकूल है। केशव ने इसी नियम को दृष्टि में रखकर, अत्रि मुनि के सफेद केशों को कीर्ति के समान बताया है।[१०] नारी के सौंदर्य से संबन्ध रखने वाले अनेक कवि समयों

१—कवि समय मीमांसा, पृ० २०५

२—सर्वाभि सर्वदा चन्द्रस्तं कलाभि रूपासते।
नादते केवला लेखा हर चूडामणीकृताम् ॥—कुमार संभव, २।३४

३—रा० चं० १।१

४—वही, ६।३१

५—वही, १।१५

६—बंधे थे ब्राह्मण वचनवश माया सर्पहि राम।—वही, १७।१३

७—पन्नगारि प्रभु पन्नगशायी।—वही, १७।१२

८—क० प्रि० ५।२०

९—आय गयो जनु घात को, पातक को परिवारु।—रा० चं० १७।७

१०—सिर सेत विराजै कीरति राजै।—वही, ११।५

का उल्लेख केशव ने किया है। प्राकृतिक वस्तु वर्णन, शृंगार प्रसादन आदि के अंतर्गत इनकी चर्चा की गयी है।

समीक्षा :

कवि समयों का प्रधान प्रेरक तत्व सांस्कृतिक भावनाओं से उद्‌भूत जातीय सौंदर्यादर्श है। अतः काव्य विशेष में कवि समय की स्थिति इस बात पर भी निर्भर रहती है कि वह काव्य देश की मूल वर्तिनी चिन्तन और भाव धाराओं से किन अंशों में संबद्ध है। रीतिकाल में अधिक तथा नायिका भेद की काव्य रूढ़ि-सिद्ध चेष्टाओं के वर्णन को ही प्रश्रय दिया गया है। नवीन रमणीय दृश्यों की योजना में वह सर्वथा अशक्त थी। अतः कवि समयगत कतिपय साहित्यिक परंपराओं को उन्होंने अपनाया, किन्तु उन्हें भी रूढ़ियों में जकड़ने का प्रयत्न किया।

केशव संस्कृत के पंडित तथा प्रतिभाशाली कवि थे। किन्तु वे प्राचीन संस्कृत संप्रदाय को मानने वाले थे। अतः वे परंपरागत कवि समयों की उपेक्षा करके नवीन उद्‌भावनाओं का समावेश अधिक नहीं कर सके। यही कारण है कि उनके कवि समयों में केवल संस्कृत साहित्य संबन्धी विचार ही प्रकट किये गये हैं। इस संबन्ध में डा० भगीरथ मिश्र लिखते हैं कि रामचन्द्रिका में सीता के मुख का वर्णन करते हुए केशव कहते हैं—

देखे मुख भावै अनदेखे ही कमल चंद।
ताते मुख मुखै सखी कमलौ न चंदरी॥

यहां पर केशव का स्पष्ट विश्वास यही है कि चन्द्र और कमल प्रत्यक्ष इतने सुन्दर नहीं है जितना कवियों की कल्पना ने उन्हें सुन्दर बना दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि केशव कवि कल्पना को अधिक महत्व देते थे ओर वक्रोक्ति अर्थात् कथन की विशेषता ही कविता का प्राण समझते थे।[१]

३-३ साँस्कृतिक जीवन :

३-३१ पर्व एवं त्यौहार :

भारतीय सामाजिक जीवन में पर्व त्यौहारों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे जहां

१—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ५५

एक ओर जीवन की व्यस्तता जनित ग्लानि दूर होती है, वहां दूसरी ओर इनकी योजना से सामाजिक सह जीवन की भी भावना सुदृढ़ होती है। पर्व-त्यौहारों के अवसर पर अच्छा खाने-पीने, पहने-ओढ़ने और सजने-सजाने की भी प्रथा सदा से आ रही है। दशहरा, होली, दीवाली आदि की तो बात ही क्या छोटे छोटे त्यौहारों में ही मुँह मीठा किया जाता है। 'त्यौहार हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक हैं। शताब्दियों तथा सहस्राब्दियों से वह हमारे सामाजिक जीवन में नव प्रेरणाओं का संदेश देते रहे हैं। गत ऐतिहासिक स्मृतियों को जागृत करते हुए वह हमारे पिछले गौरव के मंगलमय मंत्र हमें सिखाते जाते हैं'।[१] केशव के समय हिन्दू लोग पर्व त्यौहारों को महत्वपूर्ण स्थान देते थे। वृत, पर्व और त्यौहार परस्पर मिश्रित परन्तु सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों में भिन्न भिन्न गुणों को अधिक महत्व प्रदान करने वाले हैं। व्रत में सात्विक प्रधान, रज तम अंशतः मिश्रित हैं। पर्व में रज प्रधान और सत्व और तम अंशतः मिलते रहे। त्यौहारों में तम प्रधान और रज, सत्व अंशतः मिलते हैं। इनमें से पर्व धार्मिक तत्व से अधिक संपृक्त माने जाते हैं तो भी पर्व त्यौहारों को हिन्दू संस्कृति में समान महत्व प्राप्त है। केशव के समय में इनका समाज में अधिक प्रचार था। इस संबन्ध में डा० प्राणनाथ चोपड़ा लिखते हैं कि 'मुगलकालीन पर्व-त्यौहारों में कुछ शास्त्र प्रतिपादित थे, अधिकांश पुराणोक्त तथा परंपरागत थे। हिन्दुओं के पर्व-त्यौहारों में अधिक संख्यक पुराणों, इतिहास तथा ज्योतिष से संबद्ध थे जब कि दूसरे जैसे बसन्त-पंचमी, होली, गणेश और गौर आदि ऋतु परिवर्तन से संबन्ध रखते थे।[२] केशव साहित्य में उल्लिखित पर्व त्यौहारों का विवेचन नीचे किया जाता है।

संवत्सर, ग्रहण पर्व, तीर्थस्थान आदि अवसरों पर मथुरा, काशी प्रयाग आदि पुण्य तीर्थों में जाकर लोग यथाशक्ति स्नान, दान, पूजापाठ, दर्शन हवन और ब्राह्मण

१—भारत के त्यौहार, श्री सुरेश चन्द्र शर्मा, भूमिका, पृ० १

२—Shastras suggest only a few, Puranas added a large number and tradition supplies the largest group. Most of the Hindu festivals are based on mythological, historical and astronomical considerations, while others like, Vasant Panchami, Holi, Ganesh and Gaur etc. are observed owing to the alterations of the seasons.

Dr. Prana Nath Chopra : Some aspects of Society and Culture During the Mughal Age. Page No. 78

भोजनादि करते और कराते हैं। केशव साहित्य में कुछ ही स्थलों पर इसका उल्लेख मिलता है। वीरसिंह देव चरित में लिखा गया है कि एक बार शिव-पुत्री नदी के तट पर बहुत लोग इकट्ठे हुए थे तथा उनमें से कोई दान दे रहा था, कोई स्नान कर रहा था, कोई होम कर रहा था तथा कोई भूमि, सुवर्ण, गाय आदि का दान दे रहा था।[१] पर्व सम्बन्धी नैमित्तिक दान की चर्चा पहले 'दान' शीर्षक के अन्तर्गत की जा चुकी है। रामचन्द्रिका में एक स्थान पर राम के द्वारा पर्व-तिथियों पर विप्रों को तौल कर सुवर्णदान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[२]

यद्यपि वर्ष भर हिन्दुओं के अनेक त्यौहार मनाये जाते हैं,परन्तु उनमें चार त्यौहार प्रधान हैं। ब्राह्मणों का रक्षा बन्धन, क्षत्रियों का दशहरा, वैश्यों की दीपावली और शूद्रों की होली। केशव साहित्य मे इनमें से केवल विजय दशमी, दीवाली और होली की चर्चा की गयी है।

विजय दशमी विजय की प्रेरणा देने वाला त्यौहार है। आस्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को यह मनाया जाता है। इसके सम्बन्ध में कई कथाएं जुड़ी हुई हैं। केशव ने रामचन्द्रिका में इस त्यौहार के सम्बन्ध मे यही बताया है कि उक्त तिथि को राम ने रावण पर विजय प्राप्त करने के लिए किष्किधा से लंका की ओर प्रयाण किया था।[३] मुगलकाल में भी यह त्यौहार धूम-धाम से मनाया जाता था। यह दिवस युद्ध यात्रा के लिए पवित्र माना जाता था।[४]

केशव साहित्य में दीवाली का तो सांगोपांग वर्णन नहीं किया गया है। कुछ

१—वी० च० ११०, ११

२—पुण्यकालन देन विप्रन तौलि तौलि कनका।
शत्रु सोदर को दई सब स्वर्ण ही की लंका।। —रा० च० २७।१६

३—तिथि विजय दशमी पाय। उठि चले श्री रघुनाथ।
हरि जूथ जूथ प्रसंग। बिन पच्छ के ते प्रतंग।। —वही, १४।३५

4—It was observed then, as now, all over the country and theatrical shows were held to commemorate the war between Rama and Ravana. It was considered an auspicious day for undertaking a military expedition. Early in the morning all the royal elephants and horses those in the stables were washed, groomed and caprisoned to be arranged for inspection by the emperor.
Dr. Prana Nath Chopra : Some aspects of Society and culture During the Mughal Age. Page No. 92

स्थलों पर केवल उसका उल्लेख मात्र हुआ है। केशव ने दीवाली का उल्लेख करते समय उसके साथ जुआ का सम्बन्ध स्वीकार किया है

रसिक प्रिया में उल्लेख किया गया है कि दीवाली के दिन राधा ने रात भर श्रीकृष्ण के साथ जुआ खेला था।[1] रामराज्य की प्रशंसा करते हुए कवि ने लिखा है कि वहां केवल दीवाली के समय ही द्यूतक्रीड़ा देखने को मिलती है।[2] वीरसिंह देव चरित में ही यही बात कही गयी है।[3] राज्य वितरण के समय अपने पुत्रों और भतीजों को राम ने जुआ नहीं खेलने का उपदेश दिया था।[4] कविप्रिया में कार्तिक मास का वर्णन करते समय केशव ने उक्त महीने में गृहों को अलंकरण करने, दीपमालिकाओं के शोभित होने तथा दंपतियों के जुआ खेलने का उल्लेख किया है।[5] केशव ने एक अन्य स्थान पर अयोध्या नगर की रोशनी का वर्णन करते हुए लिखा है कि रात के समय दीपकों के जलने से मानो दीवाली ही आकर अयोध्या में बस गयी है।[6]

ऊपर के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि केशव ने दीवाली के बारे में दो बातों का स्पष्ट उल्लेख किया है। पहली बात है कि दीवाली के समय दीपमालिकाओं की रोशनी होती है और दूसरी उस दिन के मनोरंजनों में प्रधान स्थान जुआ को दिया गया है। यद्यपि जुआ खेलना सप्त व्यसनों में एक माना जाता है[7] तो भी दीवाली के दिन क्षम्य माना जाता है। मुगल काल में यह विश्वास प्रचलित था कि दीवाली की रात जुआ खेलना मंगलकारी है। जहांगीर तो अपने दरबारियों को जुआ खेलने का प्रोत्साहन भी देता था।[8] यद्यपि धार्मिक आचरण को प्रेरणा देने वाले उस

१—र० प्रि० १३|१०

२—जुआ दिवारी को देखिये। —रा० च० ८|१०

३—वी० च० १८|२५

४—जुआ न खेलिए। —रा० च० ३६|३०

५—क० प्रि० १०|३१

६—नखतन की नगरी सी लसी। मानो अवध दीवारी बसी। —रा० च० ३६|१६

७—सप्त व्यसन : स्त्री के प्रति आसक्ति, द्यूत क्रीड़ा, मद्यपान, आखेट, वाक्य पारूष्य, अति व्यय करना और कठिन दण्ड देना।

8—Gambling was considered auspicious on this occasion. People kept awake the whole night trying one anothers luck at dice. Akbar was interested in the festive aspect of the celebrations, while Jahangir preffered gambling and some times ordered his attendants to play the games,

Dr, Prana Nath Chopra : Some aspects of Society and Culture During the Mughal Age. Page No. 93

त्यौहार के दिन जुआ खेलना निंद्य माना जाता है तो भी परम्परागत होने के कारण इसे स्वीकार किया गया है। अनुमान किया जा सकता है कि केशव ने अपनी सामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर इस लोक प्रचलित विश्वास को अपने साहित्य में स्थान दिया हो।

होली फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाने वाला त्यौहार है। पहले तो यह संभवतः शूद्रों के द्वारा ही मनाया जाता था, किन्तु कालांतर में प्रायः सभी त्यौहार सभी वर्गों से संबन्धित हो गये। होली भी सभी के द्वारा मनायी जाती है। केशव ने इस त्यौहार का अप्रस्तुत रूप में प्रयोग किया है। युद्ध क्षेत्र में रक्त रंजित होकर गिरे हुए वीरों का वर्णन करते हुए कवि ने उन्हें फाग खेलकर सोते हुए मस्त गंवारों के समान बताया है।[1]

ऊपर विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि केशव साहित्य में पर्वों और त्यौहारों का वर्णन पर्याप्त मात्रा में नहीं किया गया है। यत्र तत्र बिखरे हुए पर्व-त्यौहारों के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि कवि का मन इनसे आकृष्ट नहीं हुआ है। रसिकप्रिया में कृष्ण भक्ति से संबन्ध रखने वाले अनेक पर्वत्योहारों का वर्णन करने का अवकाश भी कवि के सामने रहा, तो भी उन्होंने कृष्ण भक्त कवियों के समान उन्हें प्रधानता नहीं दी है।

३-३२ शिष्टाचार और लोक व्यवहार :

किसी भी समाज के शिष्ट पुरुष जिस प्रकार के व्यवहार को अच्छा मानते हैं वही व्यवहार उस समाज का शिष्टाचार कहलाता है। भारतीय समाज में पारस्परिक व्यवहार में आयु तथा पद के साथ साथ कभी कभी वर्ण का भी ध्यान रखा जाता है। निम्न वर्ग का व्यक्ति आयु में बड़ा होने पर भी उच्च वर्गीय अल्पवयस्क के सामने शिष्टाचार का पालन करना अपना धर्म समझता है। इसी प्रकार राजा, उन्नत पदाधिकारी, सन्यासी, ब्राह्मण आदि के वर्गों के प्रति अन्य वर्गों का आदर भाव दिखाना भारत में प्राचीन काल से आने वाला संप्रदाय है।

केशव साहित्य में लोकाचार या लोक व्यवहार का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। इनको प्रधानतः तीन भागों में बांटा जा सकता है। (१) सम्मान प्रदर्शन अतिथि सेवा (२) विनम्र व्यवहार (३) अन्य लोकाचार।

१—खेलि फागु मानौ फगुहार।
सोइ गये मदमत्त गंवार॥ वी० च० ८।५०

सम्मान दर्शन के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनमें प्रणाम, साष्टांग, पालागन और प्रदक्षिणा मुख्य हैं।

जब हम किसी दूसरे के संपर्क में आते हैं तब एक दूसरे का अभिवादन या प्रणाम आवश्यक हो जाता है। यहीं से शिष्टाचार का प्रारंभ होता है। अभिवादन दो प्रकार का होता है—छोटा अपने से बड़ों को करता है और समान व्यक्ति एक दूसरे को करते हैं। पूज्य तथा तपस्वी भरद्वाज महर्षि को राम ने प्रणाम किया था।[1] सुग्रीव को राम का आश्रित बनाने के लिए हनुमान ने उसे लाकर उनके चरणों पर डाला।[2] केशव ने विज्ञानगीता के आरंभ में प्रणाम शब्द का प्रयोग प्रार्थना के अर्थ में किया है।[3] हनुमान ने सीता के सामने हाथ जोड़कर अपना परिचय दिया था।[4] केशवदास प्रतिदिन बड़े भक्ति भाव से परमेश्वर, शिव तथा गुरु को प्रणाम करते थे।[5] केशव ने एक जगह पर "पाँय-परि" का प्रयोग "अंजलि देना" के अर्थ में भी किया है।[6] इस प्रकार प्रणाम या अभिवादन अथवा बंदना से दो प्रयोजनों की सिद्धि होती है : पहला प्रयोजन यह है कि प्रणाम करने से मानव की आयु, ऐश्वर्य आदि की वृद्धि होती है।[7] दूसरा प्रयोजन यह है कि अपने किसी कार्य की समाप्ति निर्विघ्न होती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की उद्धत मानसिक प्रवृत्तियां संतुलित हो जाती हैं।

अभिवादन की प्राचीन पद्धति है साष्टांग प्रणाम। पेट के बल भूमि पर दोनों हाथ आगे फैलाकर लेट जाना जिसमें सिर, हाथ, पैर, हृदय, आंख, जांघ, वचन और मन, इन आठ अंगों से प्रणाम किया जाता है।[8] इसे जन भाषा में दण्डवत् भी कहते हैं। किसी व्यक्ति के प्रति पूज्य भाव प्रकट करने के लिए ही सामान्यतया साष्टांग नमस्कार

१—पाप कलापन के दिन दूषण।
देखि प्रणाम कियो जग भूषण॥—रा० च० २०।५१

२—वानर हनुमान सिधार्यो। सूरज को सुत पायनि पार्यो।—रा० च० ३३।२५

३—ताको प्रणाम केशव करत अनुदिन।—वि० गी० १।१

४—कर जोरि कह्यो पौनपूत। जिय जननि रघुनाथ दूत।—रा० च० १२।५६

५—अति प्रेम सौं नित्य प्रणाम करैं, परमेश्वर को, हर को गुरु को।—वि० गी० १।१

६—सन्ध्या करि रविपांय परि बाहर आये राम।—रा० च० ३०।२५

७—अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपजीवितः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥—मनुस्मृति, २।१२१

८—प्रमाणिक हिन्दी कोष, पृ० १३२२

किया जाता है। अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाकर राम और लक्ष्मण ने उन्हें साष्टांग नमस्कार किया था।[1]

"पालागन" प्रणाम का एक रूप है जिसमें पूज्य व्यक्ति का पादस्पर्श करके नमस्कार किया जाता है। केशव साहित्य में पालागन का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है। लंका से अयोध्या को लौटते समय राम पंचवटी गये और वहां अगस्त्याश्रम में अगस्त्य के पदों का स्पर्श करके नमस्कार किया था और फिर अत्रि महर्षि से बिदा ली।[2] जब राम के दरबार में असित, अत्रि, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि महर्षि आये तब उन्होंने सभा समेत उनके चरणों का स्पर्श करके उनकी पूजा की।[3] पतिव्रता नारियों के प्रति अपना गौरव दिखाने के लिए स्त्रियाँ भी उनके चरणों का स्पर्श करती थीं। सीता ने अनसूइया के चरणों का स्पर्श किया तथा उनसे आशीर्वाद पाया।[4] जब राम वनवास समाप्त क के सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या में आये तब लक्ष्मण ने भरत के चरणों का स्पर्श किया तथा शत्रुघ्न ने लक्ष्मण का पाद स्पर्श किया। फिर जब भरत और शत्रुघ्न सीता के चरणों पर पड़े, तब उन्होंने आशीर्वाद दिया।[5] इन्द्रजीतसिंह रामसिंह के पैरों पर गिरकर उसी प्रकार प्रसन्न हुए जिस प्रकार से लक्ष्मण राम के चरणों का स्पर्श करने से होते थे।[6]

प्रदक्षिणा करना भी एक प्रकार का अभिवादन था। प्रायः देखा जाता है कि भक्त लोग भगवान के मन्दिर में अथवा मूर्ति की प्रदक्षिणा करते हैं। देवताओं से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं की भी प्रदक्षिणा करना हिन्दू संस्कृति की विशेषता है। राम ने देवेन्द्र द्वारा भेजे गये रथ की परिक्रमा करके दाहिने दरवाजे से उस पर आरोहण किया था।[7] कुम्भकर्ण

१—साष्टांग छिप्र अभिवादन जाय कीन्हों।—रा० च० ११।१०

२—पायलागि अगस्त के पुनि अत्रि य ते बिदाभये।—रा० च० २०।१८

३—सुबन्धु रामचन्द्रजू उठे विलोकि कै तबै।—वही, २३।६
सभा समेत पां परे विशेष पूजियो सबै॥

४—हरू वाइ जाय सिय पांय परी।—वही, ११।६
ऋषि नारि सूंघि सिर गोद भरी॥

५—भरत चरण लक्ष्मण परे लक्ष्मण के शत्रुघ्न।
सीता पग लागत दियौ आशिष शुभ शत्रुघ्न॥—वही, २१।३१

६—आनि राम के पायनि परे। मनो लछिमन आनन्द भरे।—रा० च० १०।१५

७—रामचन्द्र प्रदच्छिणा करि दच्छ ह्वै जब ही चढ़े।—रा० च० १६।३८

रावण की प्रदक्षिणा करके युद्ध क्षेत्र में गया था।[1] आदर्श परिवार में बड़े भाई को पूज्य समझना तथा विशेष अवसरों पर उनके चरण धोना भारतीय संस्कृति का उल्लेखनीय विषय है। भरत ने स्वयं अपने हाथों से राम के चरण कमलों को धोया था।[2]

अतिथि या सम्मान्य जन के आने पर उन्हें अर्घ्य देकर आसन पर बिठाना और उनके चरण धोकर उनके आगमन के प्रति अपना हार्दिक संतोष प्रकट करना अतिथि सेवा के अंतर्गत माना जाता हैं। केशव के दशरथ ने मुनि विश्वामित्र के आने पर उनकी अनेक प्रकार की पूजा की।[3] असित, अत्रि, भृगु आदि महर्षियों के आने पर राम सभा समेत उठ खड़े हुए और उन्हें आसन पर बिठाकर अर्घ्य-पाद्यादि दिया था।[4] मुनियों के साथ अपनी सभा में आये हुए ब्रह्मा जी का भी राम ने इसी प्रकार सत्कार किया था और उसके पश्चात् पारस्परिक कुशल प्रश्नों से आत्मीयता का परिचय दिया था।[5] भारतीय ग्रामों में आज भी अतिथि सेवा के प्रति आस्था देखने को मिलती है। वन जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर ग्रामीण लोगों ने उनका परिचय तथा कुशल पूछा था।[6] अगस्त्य मुनि के द्वारा राम के सत्कृत होने का उल्लेख केशव ने किया है।[7] वृन्दादेवी अपने पास आयी हुई श्रद्धा से गले लगाकर मिली और उसकी कुशल पूछी।[8] अपने दरबार में आगत भाग्य और उदय का जहांगीर के अर्घ्य-पाद्य, धूप-दीप और आरति देकर स्वागत किया था। यद्यपि मुसलमान लोगों में अर्घ्य-पाद्य देने की प्रथा नहीं है तो भी केशव ने हिन्दू परंपरा के अनुसार इसका उल्लेख किया है। जब राम और लक्ष्मण सीता का अन्वेषण करते हुए शबरी के आश्रम में गये, तब उसने राम के चरण धोकर चरणामृत लिया और उन दोनों को उचित रूप से जलपान दिया।[9] राम की सभा में जब यमुना तटवासी अनेक ब्राह्मण आये तब उन्होंने बड़े आदर से उनका स्वागत किया और

१—कुंभकर्ण रावणै प्रदच्छिणा सुदै चल्यो। रा० चं० १८।२०

२—चरण कमल श्रीराम के भरत पखारि पाय। रा० चं० २१।५४

३—बहु भांति पूजि सुराय। कर जोरि के परिपाय॥ वही, २।१२

४—रा० चं० २३।६

५—वही, ३३।२,३

६—वही, ६।३३

७—बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजै।
सीता समेत रघुनाथ सबन्धु पूजैं। वही, ११।११

८—वृन्दा देवी हंसि मिली श्रद्धा हि कंठ लगाय। वि० गी० ६।२

९—यहि भांति विलोके सकल ठौर। गये सवरी पै दुउ देवमौर।
लिये पादोदक तेई पद पखारि। पुनि अर्घ्यादिक दीन्हें सुधारि॥ रा० चं० १२।४३

उनका मार्ग श्रम दूर किया।[1] राजा वीर सिंह ने अपने दरबार में आगत धर्म और उसके परिवार का आतिथ्य श्रद्धापूर्वक किया था।[2] अपने आश्रम में आये हुए एक ब्राह्मण को गाधि ने विधि पूर्वक अर्घ्य-पाद्यादि देकर उनका मार्ग श्रम दूर किया और उसे अनेक प्रकार के कन्द, मूल, और फल, फूल खाने को दिये थे।[3] जब सीता ने पतिव्रताओं का आदर्श अनुसूया के चरण स्पर्श किया तब उसने प्रसन्नता पूर्वक उनका सिर सूंघ लिया, तथा महावर मेंहदी, सिंदूर, केशर, कस्तूरी, चंदन आदि अंगराग दिया।[4] राजा जनक के नगर में शुकदेव को बड़े समारोह के साथ आतिथ्य दिया गया। राजा जनक की अंतःपुर स्त्रियों ने शुक को स्नान कराया, अनेक सुगंधियों को उनके शरीर पर लगाया। अनेक प्रकार के भोजन पदार्थ खिलाये गये और विविध प्रकार के वस्त्र पहनाये गये।[5] अपनी सभा में आये हुए दान और लोभ का वीरसिंह देव ने प्रणाम पूर्वक स्वागत किया और उनका आगमन अपने पूर्व जन्म का फल माना।[6] रामचन्द्रिका में श्वान-प्रसंग में एक मठाधिपति के यहां अतिथि का आना तथा मठाधिपति के द्वारा उन्हें भोजन खिलाने का उल्लेख किया गया है।[7] अयोध्या में आये हुए वानर और राक्षसों को आतिथ्य देने की बात भी एक स्थान पर कही गयी है।[8] हिन्दू संस्कृति में अतिथि सत्कार का महत्व-पूर्ण स्थान है। माता, पिता और आचार्य समकक्ष गौरव अतिथि को प्राप्त था। उपनिषदों में उसका उल्लेख मिलता है।[9] केशव ने अपने साहित्य में अथिति सेवा का जो उल्लेख किया है उससे प्रकट होता है कि वे अतिथि सेवा को सांस्कृतिक महत्व प्रदान करते थे।

१—रा० चं० ३४ ३५

२—तब कीनै आतिथ्य अनेक। श्रद्धा सहित धर्म सविवेक। वी० च० ३२।१६

३—अतिथि एक दिन गाधि के। आयो बुद्धि अगाधि।
विधि से आसन अर्घ्य दै। दूरि करी मग-आधि॥
नये मूल फल फूल धरे सब भोजन कै द्विज भूत भये जब॥ वी० गी० १३।५३,५४

४—हरुवाइ जाय सिय पाय परी। ऋषि नारि सूंघि सिर गोदि भरी।
बहु अंग राग अंग अंग रये। बहु भांति ताहि उपदेश दये। रा० चं० ११।६
लाला भगवानदीन के अनुसार प्रचीन काल में सौभाग्यवती स्त्री का सम्मान श्रृंगार कर के ही किया जाता था —केशव कौमुदी, पूर्वार्ध, पृ० १७०

५—वि० गी० १४।३२, ३३ ६—वी० च० २७।१०-१२

७—एक दिना इक पाहुन आयो। भोजन सो बहु भांति बनायो॥ रा० चं० २४।२१

८—रा० चं० २२।-२

९—मातृ देवो भवः पितृ देवोभवः आचार्य देवो भवः अतिथि देवो भवः।—
तैत्तरीयोपनिषद,

विनम्र व्यवहार मानव के सात्विक गुण का द्योतक है। मनुष्य की वाणी तथा शारीरिक हाव भाव द्वारा व्यक्त शालीनता में शब्दों की गंभीरता तथा उनके द्वारा अभिव्यक्त शिष्टता के भाव सन्निहित रहते हैं। भागवत के अनुसार अभ्युत्थान, विनम्रता एवं प्रणाम सज्जन लोग जो परस्पर करते हैं वह चित्त में स्थित ज्ञान रूप परम पुरुष के लिए ही करते है। शरीर और शरीर में अभिमान करने वाले अहंकार को नहीं करते।[१] प्रणाम करने वाला यदि अवस्था में अपने से छोटा होता तो उसे आशीर्वाद देना बड़ों का धर्म है: यह आशीर्वाद देहस्थ सर्वसाक्षी की ओर से देते हैं। किसी के प्रणाम करने पर भी आशीर्वाद न देना, मौन रहना, और संकेत से स्वीकृति सूचित करना अशिष्टता है। अतः भारतीय संस्कृति में आशीर्वाद देना, अंक भरना, सिर सूंघना आदि विनम्र व्यवहार के अंतर्गत आते हैं। केशव ने अपने साहित्य में अनेक स्थलों पर विनम्र व्यवहार का वर्णन किया है।

जब राम और लक्ष्मण ने याज्ञवल्क्य तथा सतानंद महर्षियों को दंडवत प्रणाम किया तब उन्होंने सिर सूंघकर उन्हें आशीर्वाद दिया।[२] इसी प्रकार जब सीता ने अनसूया के चरणों पर गिरकर उन्हें प्रणाम किया, तब उन्होंने उसका सिर सूंघकर उसे अंक में भर लिया।[३] जब राम और लक्ष्मण ने अगस्त्य महर्षि को साष्टांग नमस्कार किया तब उन्होंने प्रसन्न होकर सब प्रकार के आशीर्वाद दिये।[४] जब राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ने परशुराम को प्रणाम किया, तो उन्होंने उन्हें युद्ध में प्रबीण होने का आशीर्वाद दिया।[५] माता का आशीर्वाद संसार में सबसे अधिक प्रभावशाली होता है, क्यों कि उसके हृदय में अपनी संतान के प्रति अव्याज प्रेम रहता है। जब राम को अरण्यवासी होने की आज्ञा मिली, तब उन्होंने अपनी माता कौशल्या के पास जाकर उनसे आशीर्वाद मांगा।[६] राजतिलक के पश्चात् देवताओं ने रामचन्द्र को आशीर्वाद दिया कि वे दीन-दुःखियों की विपत्ति दूर करते हुए चिरकाल राज्य करें।[७]

१—प्रत्युत्गम प्रश्रयमाभिवादन
विधीयते साधुमिथः सुमध्यमे।
प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा
गुहाशाया यैव न देह मानिने॥ —श्रीमद् भागवत्। ४।३।२२

२—देखि दुऊ भये ऋषि राजहिं लीने। मुख्य सतानंद विप्र प्रवीने। —रा० चं० ५।१७

३—रा० चं० ११।६

४—आनंद आशिष अशेष ऋषीश दीन्हों श्र—रा० चं० ११।१०

५—सह भरत लक्ष्मण राम। चहुं किये आनि प्रणाम॥
भृगुनंद आशिष दीन। रण होहु अजय प्रवीण॥ —वही, ७।१७

६—सुदेहु आसीस मिलौ फिरि आइ। —वही, ६।७

७—रा० च० २७।७

अपनी तुच्छता दिखाकर दूसरे की महत्ता एवं उदारता की प्रशंसा करना शालीनता का एक अंग है। सीता और राम के विवाह के समय राजा जनक ने विश्वामित्र की बड़ी प्रशंसा करके अपनी विनम्रता का परिचय दिया था।[1] इसी प्रकार राजा जनक ने भी दशरथ के पूर्व वंशियों की प्रशंसा करते हुए कहा था कि इक्ष्वाकुवंशियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध सम्पन्न होना अपना भाग्य था।[2] इसी प्रकार राजा दशरथ ने भी अपनी विनम्रता प्रकट करते हुए कहा कि हमें आपके समान राजा की दासी भी मिलना कठिन था, किन्तु आपने कृपा करके त्रिभुवन-शिरोमणि अपनी कन्या को देकर हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाई है।[3]

घर से बाहर जाते समय व्यक्ति की कुशल और मंगल की कामना से प्रेरित होकर दही और रोली का टीका लगाने की प्रथा लोक में प्रचलित है। भारतवासियों का विश्वास है कि बड़े लोगों की शुभकामना के द्वारा उनके दुःख के कम हो जाने की संभावना है। जब राम को वन जाने का आदेश मिला तब वे शुभकामना प्राप्त करने की इच्छा से माता कौसल्या के पास गये थे।[4]

केशव ने जिन लोकाचारों का व्यवहार दिखलाया है,वे सभी रूढ और परम्परागत हैं। रूढि प्रियता इतनी अधिक है कि जहांगीर के द्वारा भी वे ही लोकाचार करवाये गये हैं, जो हिन्दू समाज में प्रचलित थे। यह आवश्यक नहीं कि केशव के युग में साष्टांग प्रणाम या परिक्रमा लोकाचार के रूप में प्रचलित है, फिर भी पौराणिक संस्कृति में इनका यथा विधि पालन होना मिलता है। इसी प्रकार के आग्रह से केशव ने अपने प्रबन्ध काव्यों में इनका निर्वाह अपने पात्रों द्वारा कराया है, किन्तु है सब कुछ परम्परा के आग्रह से ही।

उपर्युक्त प्रधान लोकाचारों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के आचार लोक में प्रचलित हैं। उनमें उपहार और शुभकामना के बारे में नीचे विचार किया जाता है।

मित्रता की शाश्वत रक्षा अथवा किसी शुभ अवसर को पुरस्कृत करके उपहार भेजने की प्रथा भारत में आज भी प्रचलित है। केशव ने अपने साहित्य में इस प्रथा का उल्लेख किया है। अयोध्या नगर के वर्णन के संदर्भ में केशव ने बताया है कि दिक्पालों

१—वही, ६।१७
२—वही, ६।२०
३—हमको तुमसे नृपति की दासी दुर्लभ आज।
पुनि तुम दीन्हीं कन्यका, त्रिभुवन की सिरताज॥ —वही, ६।२३
४—रा० च० ६।७

के द्वारा राजा दशरथ को बड़े बड़े दिग्गज उपहार के रूप में दिये गये थे।[१] विवाह के अनन्तर जब राम अयोध्या में प्रविष्ट हुए, तब नर्तकियों तथा गायिकाओं को अनेक प्रकार के वस्त्र और आभूषण उपहार के रूप में दिये जाने की बात केशव ने लिखी है।[२] राम के विवाह के समय दशरथ के द्वारा सब याचकों को हाथी, घोड़ों का दान दिये जाने का उल्लेख भी कवि ने किया है।[३]

केशव साहित्य में परिचय देने तथा कराने के अनेक भेदों की ओर संकेत किया गया है। यदि कोई दोनों पक्षों के व्यक्तियों से परिचित है तो वह एक का परिचय दूसरे से कराता है। केशव ने इस शिष्टाचार का उल्लेख किया है। विश्वामित्र ने राजा जनक का परिचय राम और लक्ष्मण को दिया था।[४] और उसके पश्चात् राम और लक्ष्मण का परिचय जनक को।[५] अपना परिचय आप ही देने की प्रथा भी केशव साहित्य में देखने को मिलती है। शूर्पणखा ने अपना परिचय राम को स्वयं ही दिया था।[६] उसके पहले राम ने भी अपना परिचय स्वयं दिया था।[७]

किसी के द्वारा पूछने पर अपना परिचय देना भी परिचय विधान का एक प्रकार है। हनुमान के पूछने पर राम ने अपना परिचय स्वयं दिया था।[८] वीरसिंह देव के पूछने पर दान और लोभ ने अपने परिचय के साथ उनके वहां आने का कारण भी बताया था।[९] राजा शिखिध्वज के पूछने पर देवव्रत के रूप में आयी हुई उसकी पत्नी ने अपना परिचय

१—कि दीह दीह दिग्गजन के केशव मनहुं कुमार।
दीन्हें राजा दशरथहिं दिगपालन उपमार।। —रा० चं० १।२६

२—वही, ८।१६

३—वही, ६।६६

४—केशव ये मिथिलाधिप हैं, जग में जिनकी रति बेलि बई है। —रा० चं० ५।२६

५—राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के। —वही, ५।३१

६—नृप रावण की भगिनी गनि मोकहं।
जिसकी ठकुराइत तीनहुं लोकहं।। —रा० चं० ११।३५

७—हम हैं दशरथ महीपति के सुत। सुभराम सुलच्छन नायक संजुत। —वही, ११।३४

८—वही, १२।५५

९—दान लोभ अपनौ वपु गह्यौ। आदि अन्त ब्यौरौ कह्यौ।
दे देवि कौ सासना पाई। तुम पर हम आये सुखदाई।। —वी० चं० २८।१३

देते हुए कहा था कि मैं महादेव का पुत्र हूं।[1] जहांगीर के पूछने पर भाग्य और उदय ने अपना परिचय दिया।[2]

किसी का परिचय पूछते, कराते या स्वयं अपना परिचय देते समय कुल तथा पिता के नामों पर अवश्य ध्यान दिया जाता था। हनुमान ने राम से उनके कुल तथा पिता के बारे में पूछा था।[3] विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण का परिचय कराते समय दशरथ का नाम लिया था।[4] राम ने शूर्पणखा से अपना परिचय स्वयं देते समय अपने पिता का नाम बताया था।[5] इस प्रकार परिचय देते समय वंश तथा पिता का नाम लेना किसी महान वंश तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों से सम्बद्ध व्यक्ति का भी महत्व प्रकट होता है।

कवि परम्परा में एक प्रसिद्ध रूढ़ि यह भी है कि कवि अपने ग्रन्थारम्भ में अपने वंश का परिचय देता है। केशव ने अपनी मुख्य कृतियों के आरम्भ में अपने वंश तथा पूर्वजों का परिचय दिया है।

४-३३ वस्त्र :

भोजन और आवास की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् मानव को शरीर की रक्षा के लिए वस्त्र की आवश्यकता होती है। वस्त्र उपयोगिता और अलंकरण दोनों ही उद्देश्यों को लेकर प्रचलित होते हैं। रीतिकालीन वेषभूषा के वर्णन में उपयोगिता की अपेक्षा वैभव प्रदर्शन की ओर ही विशेष ध्यान दिया गया है।

वस्त्र के लिए केशव साहित्य में अम्बर[6], निचोल[7], वासस[8], वास[9], पट[10], वसन[11], आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। केशव के ग्रन्थों में वर्णित वस्त्रों को निम्नलिखित

१०–महादेव को पुत्र हों। मानसीक सुनु राज ॥ —वि० गी० १६।५६

११–ज० ज० च० १६२

३—रा० च० ११।५४

४—रा० च० ५।३०

५—वही, ११।३४

६—वही, ३२।४२

७—वही, २४।३

८—वही, १४।६

९—वही, २०।४२

१०–वही, ३३।२३

११–वही, ३०।२२

चार शीर्षकों में विभाजित किया जाता है। —१) पुरुषों के वस्त्र, २) स्त्रियों के वस्त्र, ३) ऋषियों के वस्त्र, तथा ४) रेशमी, ऊनी वस्त्र।

केशव साहित्य में पुरुषों के सभी वस्त्रों का एक स्थान पर उल्लेख नहीं किया गया है। यद्यपि अनेक स्थानों पर राजाओं[1] तथा अभिजात वर्ग के लोगों[2] के सुवेश तथा वस्त्राभूषणों से सज्जित होने का उल्लेख प्राप्त होता है। यत्र तत्र बिखरे हुए उल्लेखों के आधार पर निम्नलिखित तथ्य विदित होते हैं।

पुरुषों के लिए सिर का वस्त्र पगड़ी थी।[3] कटि पर सुन्दर वस्त्रों को बांधने की प्रथा थी।[4] इस प्रकार के कपड़े को फेंटी भी कहते थे।[5] शरीर पर पिछौरी[6] उत्तरीय[7] या उपरीण[8] दुपटी[9] या अंगोछा[10] आदि कपड़े डाले जाने का उल्लेख मिलता है। इवान प्रशंग में अपराधी ब्राह्मण को राम ने पीताम्बर पहनाकर और सिर पर पगड़ी बंधवाकर मठाधिपति बनाया था।[11] ब्राह्मण वेशधारी लोभ और दान के पीली स्वच्छ धोती और उपरैना पहनकर वीरसिंह देव की राज सभा में आने का उल्लेख मिलता है।[12]

स्त्रियों के तीन वस्त्रों की चर्चा केशव ने की है। धोवती[13] अंगिया तथा

१—देश देश के नरेश शोभि जै सबै सुबेस।
मानियो न आदि अन्त। कौन दास कौन संत॥—रा० चं० २।५

२—आगे दिसि के शील गुण, भाषा भेष विचार।
वाहन वसन विलोकिये। केशव एकहि बार॥—रा० चं० ८।५

३—पागरू पट का जर कसी बागो सुभ सुकुमार॥—ज० चं० ६०
गंगाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ॥—रा० चं० ६।४६
पिय के सिर पाग——।—र० प्रि० ५।३६ र० प्रि० ५।११

४—कटि, केसव काछनी सेत कछै।—र० प्रि० ५।३६
रामचन्द्र कटि सौं पट बांध्यौ।—रा० चं० ५।४१

५—र० प्रि० ३।६०

६—क० प्रि० ११६

७—रा० चं० १२।६२

८—वी० चं० २६।६

९—के० ग्रं० २८५।१८

१०—वही, २०।५

११—रा० चं० ३४।१६

१२—पीत धोवती पहिरे गात। ऊपर उपरैना अवधात॥ वी० चं० २८।२

१३—के० ग्र०

उत्तरीय आदि स्त्री के वस्त्रों में मुख्य हैं। साड़ी या धोवती स्त्री का प्रधान वस्त्र है। केशव ने बारीक साड़ी,[१] तथा जरी की साड़ी[२] का भी उल्लेख किया है। अंगिया[३] आंगी[४] अथवा कंचुकी[५] स्त्री का दूसरा वस्त्र है। जो उनके वक्षोंजों को ढकने का कार्य करता है। "रामायण काल में कंचुकी का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। वाल्मीकि रामायण में स्त्रियों के वस्त्रों के सम्बन्ध में डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास का कथन है—"स्त्रियाँ अपने अधोवस्त्र को कटि भाग पर रसना से कस लेती थीं। उत्त-रीय उनके कंधों और वक्ष-स्थल पर पड़ा रहता था और आवश्यक होने पर शीघ्रता से उतारा जा सकता था।[६] परन्तु मुगल काल में साड़ी और अंगिया पहनने की प्रथा थी। केशव ने अपने साहित्य में स्त्रियों के वस्त्रों के विषय में प्रधानतः अपने युग से ही प्रेरणा ग्रहण की है। साड़ी पर ओढ़े जाने वाले वस्त्र को उत्तरीय[७] या ओढ़नी[८] कहा जाता है। रावण के द्वारा सीता हरण के पश्चात् राम को सीता का उत्तरीय मिला था जिसे उन्होंने अपने सब सुखों का मूल कहा था।[९]

ऋषियों का प्रधान वस्त्र भोज वृक्ष के छालों से निकाला जाता था जिसे वल्का,[१०] बाकल[११] या बलकल[१२] कहते थे। वनवास के समय राम-लक्ष्मण ने[१३] तथा मुनिवेश में रहते समय भरत ने[१४] इन्हीं वस्त्रों को धारण किया था। भरद्वाज मुनि के आश्रम में भी वल्कल वस्त्रों का होना बताया गया है।[१५] कालिदास ने भी अभिज्ञान-शाकुन्तल में कण्वमुनि के

१–रा० चं० २०।३१
२–वही, ८।१२
३–वही, ३१।३६
४–वही, ६।४४
५–वही, १६।३०
६–कल्याण–हिन्दू संस्कृति अंक, डा० शांतिकुमार नानूराम व्यास, पृ० ३०६
७–रा० चं० १२।२४
८–वही, १४।७
९–वही, १२।६२
१०–वही, २१।२२
११–वही, १२।५३
१२–वही, २०।४१
१३–सिरसि जटा बाकल वपु धारी। हरिहर मानौ विपिन विहारी।—
१४–रा० चं० २१।२२
१५–वही, २०।४१

आश्रम के वर्णन के संदर्भ में नदी तालाबों के किनारे मुनियों के वल्कलों से टपके हुए जल की रेखाओं का वर्णन किया है।[१] बन्दी सुत के कौपीन पहनने की बात भी एक स्थान पर कही गयी है।[२]

केशव साहित्य में रेशमी और ऊनी वस्त्रों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कवि-प्रिया में भक्त वत्सल श्रीकृष्ण का वर्णन करते हुये कवि ने पीताम्बरधारी कहा है।[३] जहांगीर से विदा होते समय बीरसिंह देव के पीले वस्त्र के पहनने का उल्लेख किया है।[४] रोम पाट को कियो।[५] लंका दहन के प्रसंग में हनुमान की पूंछ में ऊनी वस्त्रों के बांधने का उल्लेख मिलता है –श्याम पाट की ललित नोई। श्याम पाट की डोरी। इन उल्लेखों से रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों के प्रचलित होने की ओर संकेत मिलता है। "गंगा-जल" नामक सफेद चमकीले रेशमी कपड़े[६] तनसुख,[७] पीतपट[८] आदि विभिन्न वर्णों के वस्त्रों की भी चर्चा केशव ने की है। अनेक रंगों की कंचुकियां[९] तथा साड़ियां[१०] आदि के वर्णन के आधार पर तत्कालीन वस्त्रोद्योग की ओर भी संकेत मिलता है। मोमजा में वस्त्र में पानी के न भेद सकने के उल्लेख से[११] उक्त प्रकार के वस्त्रों के प्रचलन का भी संकेत मिलता है।

केशव के समय तक हिन्दू और मुसलिम संस्कृतियों को "आदान-प्रदान" की प्रथा बढ़ चुकी थी। मुस्लिम देशों से आने वाले कारीगरों द्वारा बनाये हुए जरी आदि के कपड़े अभिजात्य वर्ण में प्रवेश पा चुके थे। जरी या कलाबतू की कला मुख्यतः मुस्लिम स्रोत का परिचय देती है, जरी के वस्त्रों के लिए भारतीय नाम न मिलने के कारण केशव ने

१—तोयाधारपथाश्च वल्कल शिखा निष्यन्दरेखांकिताः।—अभिज्ञान शाकुन्तलक, प्रथमोक, १४

२—बन्दी सुत तेही समै आयौ केशव एक।
ठेगाकर कौपीन कटि उर अमित बिवेक॥—ज० चं० ११६

३—कनक वसन तन।—क० प्रि० १६।८

४—तन तिनि विदा करी सुख पाइ। निर्भय पटापियरौ पहिराई।—वी० च० १४।१

५—दासि दास वासि वास रोम पाट को कियौ।—रा० चं० ६।६४

६—रा० चं० ८।४६

७—वही, २६।२२

८—वही, ३४।१६

९—वही, २६।२२

१०—वही, ३२।३६

इनके विदेशी नाम ही ग्रहण किये हैं। जरायजरी[1] जरदोई, कामकली, जरकंबर[2] (जरी का दुशाला), पाटजरी[3] (जड़ाऊ रेशमी कपड़ा), जरवाफनी[4] आदि का प्रयोग केशव साहित्य में प्राप्त होता है।

मुस्लिम संस्कृति के आगमन के पूर्व ही रेशमी कपड़े का प्रचलन हो चुका था। उसके लिए 'पट" या "चीनांशुक" शब्द का प्रचार हो गया था। कालिदास ने रेशमी कपड़े के लिए "चीनांशुक" शब्द का प्रयोग किया है।[5] केशव ने रेशमी कपड़े के लिए पाट[6] और पट[7] शब्दों का प्रयोग किया है।

वाल्मीकि,[8] पाणिनि,[9] बाण[10] आदि प्राचीन कवियों की रचनाओं के आधार पर भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि की जा सकती है। केशव के समय में ऊनी और रेशमी वस्त्र बहुत प्रचलित रहे हैं। "आइने अकबरी" में तैंतीस प्रकार के रेशमी वस्त्रों का उल्लेख किया गया है।[11]

वस्त्रों की इस सूची से यह प्रतीत होता है कि कई प्रकार के कपड़े मुसलमान देशों या अन्य देशों से यहां आते थे। जरी आदि का काम मुस्लिम संस्कृति से सम्बद्ध है। रेशम आदि कपड़े चीन से भी आते थे। उच्च वर्ग के पुरुषों का पहनावा तो मुस्लिम ढांचे में ढल चुका था। लेकिन स्त्रियों की पोशाक में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ था।

१—रा० च० २३।८०

२—क० प्रि० ५।१३

३—रा० च० ६।७७

४—वी० च० १७।५५

५—चीनांशुक मिव केतोः प्रतिवातनीय मानस्य।—अभिज्ञान शाकुन्तल, १।३२

६—रा० च० २०।७

७—नखशिख छं० २७

८—डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, कल्याण-हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ३०६

९—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० १३५

१०—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २३

11—Abul Fazal has enumerated thirty three qualities of silk and thirty of cotton in the Ain-i-Akbari which were manufactured in India. Yusuf Husain : Glimpse of Medieval Indian Culture, Page No. 144

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दू स्त्रियों की वेषभूषा प्रायः मुस्लिम प्रभाव से अछूती रही। यदि कुछ प्रभाव था तो जरी के रूप में ही था।

३—३४ आभरण :

कभी कभी तो आभूषण ही जनता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के द्योतक माने जाते हैं। रीतिकाल प्रत्येक दृष्टि से अलंकरण का युग था। अलंकरण की प्रवृत्ति साहित्य, कला, वेशभूषा आदि में स्पष्ट झलकती है। सांस्कृतिक दृष्टि से अलंकरण की प्रवृति विकास की आदिम स्थिति से चली आ रही है।[1] समय-समय पर कुछ अंकुश लग जाता है, किन्तु रीतिकाल आभूषणों के वैविध्य के लिए प्रसिद्ध है। ऐन्द्रिय आकर्षण, कामोद्दीपन आदि कितने ही उद्देश्य इसके पीछे निहित थे।

अलंकारवादी केशव ने—भूषण बिन न बिराजही कविता वनिता मित्त' कहकर स्त्री सौंदर्य की वृद्धि के लिए आभूषणों का अनिवार्य होना स्वीकार किया है। केशव साहित्य में जिन आभूषणों की चर्चा की गयी, उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।—(१) पुरुषों के आभूषण और (२) स्त्रियों के आभूषण।

राजा दशरथ की अयोध्या के वर्णन के प्रसंग में वहां के लोगों को सब श्रृंगारों से अलंकृत कहा गया है।[2] सीता स्वयंवर-प्रसंग में सिन्धु राजा के "भूषण भूषित देह" होने का उल्लेख किया गया है।[3] सीता राम के विवाह प्रसंग में प्रस्तुत राम के नखशिख वर्णन के आधार पर तत्कालीन आभूषणों का अनुमान किया जा सकता है। नन्दीग्राम में मुनिवेश में रहते हुए भरत को हनुमान ने सब शोकों को त्याग कर भूषण धारण करने का उपदेश दिया था।[4]

1—A primitive instinct is to make one's person more beautiful and imposing by ornamentation. Jewellery is not worn only for the purpose of atracting attention, but it satisfies the desire not less deep rooted in humanity of establishing a distinctive mark or sex, rank and dignity.

Some aspects of Society and Culture during the Moghal Age. page No. 23

२—रा० चं० १।४७

३—रा० चं० ३।२६

४—वही, २१।२३

केशव साहित्य में पुरुषों के आभरणों का निम्नलिखित विवरण प्राप्त होता है। राजवर्ग में सिर पर मुकुट धारण करने की प्रथा प्रचलित थी। अपने भवन की अट्टालिका पर चढ़े हुए रावण का मुकुट राम ने बाण से गिरा दिया था।[१] युद्ध में मूर्च्छित होकर गिरे हुए भरतादि वीरों के किरीटों को लव-कुश अपनी माता के पास लाये थे।[२] सिंहासन पर राजा वीरसिंह देवके सिर पर मुकुट शोभित हो रहाथा।[३]युद्ध में जाते समय में सैनिक सिर पर टोप को धारण करते थे।[४] विवाह के समय वर के सिर पर विवाह मुकुट शोभित होता था।[५] कानों में मकाराकृत स्वर्ण-कुंडल पहने जाते थे।[६] कंठ में मोतियों की माला पहनी जाती थी। विवाह के समय राम के कंठ में मोतियों की दो लड़ी माला तथा गज मोतियों की माला शोभा दे रही थी।[७] राज वर्ग के लोग मणियों की माला पहनते थे। राजा राम के द्वारा समुद्र पर बांधे हुए सेतु को केशव ने मणिमाला से उपमित किया है।[८] रामचन्द्रिका के तेरहवें प्रकाश में मुद्रिका तथा कंकण का उल्लेख मिलता है।[९] इस प्रकार केशव साहित्य में पुरुषों—विशेषत: राजाओं के आभूषण निम्न लिखित है—सिर पर मुकुट, कानों में कुंडल, उर पर मणिमाला, हाथ में कंकण तथा अंगुली में मुद्रिका।

केशव साहित्य में स्त्रियों के आभरणों की चर्चा अधिकतया मिलती हैं। अग्नि प्रवेश के पहले सीता का वर्णन करते हुए उन्हें समस्त आभरणों से भूषित बतलाया गया है।[१०] सीताराम के विवाह के प्रसंग में पृथ्वी रूपी स्त्री को 'बहु रत्नमय वपु' कहा गया है।[११] अयोध्या की नारियाँ विशेष अवसरों पर भूषणों से भूषित रहती थी।[१२] सीता की दासियों के सभी अंगों पर इतने आभूषण थे कि उनके अंग देखे भी नहीं जा सकते थे।[१३] जहांगीर पुर की स्त्रियों का वर्णन करते हुए केशव ने लिखा है कि कांटों तथा वायु

१—राघव सरलाघव गति छत्र मुकुट यों हयो ॥ —वही, १५।४०

२—रण जाय कै सब सीस भूषण संग्रहे जु भले भले ॥ —वही, ३४।१८

३—वी० च० २८।१२

४—वही, ८।२५

५—रा० च० ६।७

६—श्रवण मकर कुंडल लसत मुख सुषमा एकत्र। —रा० चं० ६।४६

७—वही, ६।५६

८—मणि माला किधौं उर में बिलसै। —वही, १५।३३

९—वही, १३।८७

१०—सिगरे तन भूषण भूषित कीने। —रा० चं० २०।३

११—बहु रूपरूयों नव यौवना बहु रत्नमय मानिये। —वही, ६।३१

१२—रा० च० ८।८

१३—कंटक अटकत फरि फरिजात उडि उडि बसन जात बशबात।
तऊ न तिन के तन लखि परे मणिगन अंग अंग प्रति धरे॥ —वही, ३२।४०

के झकोरों से उनके वस्त्र फट जाने पर भी आभरणों के कारण उनके अंग दिखायी नहीं पड़ते थे ।[१] नीचे केशव साहित्य में वर्णित स्त्रियों के आभरणों की चर्चा अंगों के क्रम से की जाती है ।

सिर के गहनों के नाम फूल के आधार पर बने हैं । वास्तव में फूल स्वर्ण या रत्नों से खचित होते थे । शीश फूल[२], मांगफूल[३], सीस की मणि[४], सिरभूषण[५], वेणीफूल[६], आदि । कुछ विशेष अवसरों पर स्त्रियां अपने सिर पर मुकुट भी धारण करती थी । रानी पार्वती अपने पति वीरसिंह के द्वारा रखे गये मुकुट से शोभित थी ।[७] सीता के द्वारा हनुमान के हाथ राम के लिए भेजे गये सिरोभूषण को सीस की मणि[८] कहा गया है । सीता की दासियों के सिर पर शीशफूल था[९] । मांग पर मोतियों की माला भी पहनी जाती थी ।[१०]

चोटी का आभरण 'वेणीपान' नामक आभरण का उल्लेख केशव ने सीता की दासी के वर्णन के प्रसंग में किया है । सीता की दासियों की चोटियों में वेणीपान नामक आभूषण गुहे हुए हैं जो सिंगार लोक को चढ़ने के लिए सीढ़ियां हैं ।[११]

बेंद[१२] या बेंदा[१३] एक ऐसा गहना है, जो बंधा तो बालों में रहता है, पर लटकता ललाट पर है । यह भी मांग सोहाग का चिह्न माना जाता है । इसके साथ सिर के दोनों ओर मोतियों की लड़[१४] का शृंगार भी रहता है । सीता की दासियों के बीच मस्तक पर लाल बेंदी का पहने जाने का उल्लेख केशव ने किया है ।[१५] सीता की दासी के शिरो-

१—वी० च० २२। ८
२—रा० चं० ३१।६
३—वही, ३१।६
४—वही, १३।६५
५—वही, २१।४०
६—वही, ३१।६
७—वी० च० २६।१०
८—रा० चं० १३।६५
९—वही, ३१।६
१०—वी० च० २२।५३
११—कंचन पाम पांति सोपान । मनो सिंगार के जान । —रा० चं० ३१।७
१२—के० ग्रं० २११।७६
१३—रा० चं० ३१।७
१४—के० ग्रं० २१२।७६
१५—रा० चं० ३१।७ और बेन्दी मध्यभाग भाल मनि लाल । —वी० च० २२।५५

भूषणों के वर्णन के प्रसंग में एक शीशफूल, एक मांगफूल, दो लाल जटित बेंदा, आठ वेणी के दाने सब मिलकर बारह आभरणों का उल्लेख केशव ने किया है।[१]

कान के आभरणों में कर्णफूल[२] या श्रुतिफूल[३] मुख्य हैं। इन के अतिरिक्त ताटंक[४], कुंडल[५], खटिल[६] आदि प्रसिद्ध आभरण हैं। मणि जटित ताटंक सीता की दासी के कानों में सूर्य रथ के समान शोभित होने का वर्णन किया जाता है।[७]

कर्णफूल, व्रज, बुन्देलखण्ड और राजस्थानी वृद्धाएं आज भी पहनती हैं, परन्तु आधुनिक युग में इनका प्रचलन कम होता जा रहा है।

केशव ने नाक के आभूषणों में वेसरि, मुक्ताफल, कांटा, नाक मोती या बुलाक का वर्णन किया है। इन आभरणों का उल्लेख उन्होंने पूरे छन्द में किया है।[८] एक स्थान पर मुक्ताफल के कारण नासिका की कान्ति बढ़ जाने की बात कही गयी है।[९] रसिक प्रिया में राधिका के बेसर की चर्चा आयी है।[१०] सीता की दासी की नाक मोती से अलंकृत होकर मन को मोहित करती थी।[११] यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि डा० शान्ति कुमार नानूराम व्यास के अनुसार रामायण काल की स्त्रियाँ नाक में कोई गहना नहीं पहनती थीं, क्योंकि ऐसे किसी आभूषण का वाल्मीकि ने कोई संकेत नहीं दिया है।[१२] इस बात की पुष्टि डा० प्राणनाथ चोपड़ा के कथन से होती है · नाक के आभूषण मुस्लिम आक्रमण के पहले तक भारत में प्रचार में नहीं थे। इसका प्रमाण यही है कि पूर्वकालीन किसी साहित्य में अथवा चित्र में नाक के आभूषणों की चर्चा प्राप्त नहीं होती है।[१३]

१—रा० चं० ३१।६, १०
२—के० ग्र० २०७।६४
३—वी० च० ८।२५
४—रा० चं० ३१।१४
५—के० ग्रं० १२७।५८
६—वही, २०६।६६
७—रा० चं० ३१।१४
८—के० ग्र० २०७।५४
९—वी० च० २२।५७
१०—केसरि सों मांडि लइ बेसरि उतारिकैं। र० प्रि० ५।३४
११—रा० चं० ३१।१३
१२—रामायणकालीन संस्कृति, पृ० ६०
१३—Some aspects of Society and Culture during the Moghal Age. page No. 25

गले के आभूषणों की संख्या अधिक मिलती है। एक एक आभरण के कई कई नाम भी कवि ने लिखे हैं। गले के आभूषण के लिए कंठमाल[१], मणिमाल[२], कंठश्री, जलजहार आदि पर्यायों का प्रयोग केशव ने किया है। राम के द्वारा कोकिल के कंठ में दुलारी माला[३] तथा कलहंस के कंठ में कंठसिरी[४] पहनाये जाने की चर्चा की गयी है। वीरसिंह देव की नागरिक स्त्रियों के कंठों में लाल, काले, पीले, सफेद आदि रंग के अनेक आभूषण विराजमान थे।[५] इसी प्रकार सीता की दासियों के गले में लाल, सफेद आदि रंगों के आभूषणों की मधुर ध्वनि होने की चर्चा की गयी है।[६] कृष्ण के वियोग में राधिका ने मोतियों की माला, वनमाला, तथा मनोहर हार उतार दिये थे।[७] एक स्थान पर केशव ने स्त्रियों के गले में मणियुक्त माला के शोभित होने की बात लिखी है।[८] कंठमाला का उल्लेख मंदोदरी[९] लंका रूपी कन्यका[१०] के संदर्भ में मिलता है। मिथिला नगरी की नागरियों के गले में जलजहार[११] शोभित होता था।

केशव साहित्य में "वलय" बाहु के आभरण के रूप में उल्लिखित है। केशव ने "वलयावलित बाहु"[१२] कहकर वलय को बाहु के आभरण के रूप में लिखा है। रामचन्द्रिका में सीता की दासी के बाहु के अलंकारमय होने की बात कही गयी है।

केशव साहित्य में वर्णित कलाई के प्रमुख आभरणों में कंकण, मुंदरी आदि हैं। इनमें कंकण कलाई का तथा मुंदरी या अंगूठी उंगली का आभरण है। कवि प्रिया में

१—वी० च० २०।३०

२—वही, २२।८५

३—रा० च० ११।२६ दुलरी कल कोकिल कंठबनी।

४—कलहंसिनि कंठनि कंठसिरि।—वही, ११।२६

५—वी० च० २२।७१

६—रा० च० ३१।२४

७—र० प्रि० ६।४७

८—वी० च० २२।८५

९—छुटी कंठमाला लरै हार टूटे।—रा० च० १६।३०

१०—लंक कन्यका गले कि पीत नील कंठमाला।—वही, १५।४३

११—रा० च० ५।१६

१२—कें० ग्र० २०१।२७

कंकण की अप्रस्तुत रूप में चर्चा की गयी है। रास मंडल के बीच में रहने वाले श्रीकृष्ण ऐसे विराजमान हैं मानों किसी बंक लोचनी स्त्री की सुन्दर कलाई में कंकन पड़ा हो।[१] वीरसिंह देव के नगर वर्णन के प्रसंग में किंकण और कंकण की झंकार सुनायी देने की बात लिखी गयी है।[२] अंगूठी का उल्लेख केशव ने दो स्थलों पर किया है। हनुमान ने अशोकवन में सीता के सामने अंगूठी गिरा दी थी।[3] सीता की दासियों ने उंगलियों में रत्न जटित सोने की सुन्दर अंगूठियों को पहना था।[४]

कटि का केवल एक प्रमुख आभूषण है करधनी जिसे किंकिणी भी कहा गया है। रसिक प्रिया में राधिका के द्वारा विभ्रम के कारण कमर के आभूषण करधनी को उरमें पहनाये जाने का उल्लेख किया गया है।[५] करधनी में छोटी छोटी घंटियों का निनाद तथा मोतियों की कान्ति होने की चर्चा केशव ने की है।[६]

पैरों के गहनों में नूपुर,[७] अनौर,[८] बिछिये,[९] जेहरी,[१०] हंसक,[११] घूघुरी,[१२] मंजीर,[१३] और घोंचा[१४] मुख्य है। सीताने अपने चरणों के घुंघुरू जो सुवर्ण के थे और जिनमें नीलम जड़े हुए थे, पैर से उतार कर अपनी ओढ़नी में बांध लिए और भूमि पर फेंक दिया था।[१५] एक स्थान पर पैरों से घोंचा आभूषण के गिर जाने की भी चर्चा की गयी है।[१६]

१—जैसे बंकलोचनि कलित कर कंकननि।
दलित ललित दुति प्रकट प्रभानि की।।—क० प्रि० ३।४६
२—किंकन कंकन की झंकार।—वी० च० २१।३०
३—ठौर पाइ पौन पूत डारि मुद्रिका दई।—रा० चं० १३।६५
४—सुन्दर अंगुटिन मुंदरी बनी। वही, ३२।२७
५—कटि के तटहार लपेटि लियो कल किंकिनी लै उर सौ उरमाई।—र० प्रि० ६।३१
६—वी० च० १६।३४
७—कें० ग्रं० ३१।२५
८—वही, २१३।८६
९—वही, २१३।८६
१०—वही, २१३।८६
११—क० प्रि० ७।३२
१२—रा० चं० १२।२४
१३—क० प्रि० ७।४६
१४—वी० च० २५।३
१५—रा० चं० १२।२४
१६—वी० च० २५।३

स्त्रियों में पदत्राण पहने की प्रथा भी जारी थी। केशव ने एक स्थान पर अप्रस्तुत रूप से स्त्रियों के पनही पहनने की ओर संकेत किया है।[१] विधवा स्त्रियों को पदत्राण पहनने का अधिकार नहीं था।[२] वीरसिंह देव नगरी की स्त्रियों के वर्णन के प्रसंग में उनके पैरों के मणियुक्त जूतियों का उल्लेख है।[३]

केशव साहित्य में मनुष्यों का ही नहीं, किन्तु जंतु के श्रृंगार सम्बन्धी उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलते हैं। उक्त विषय से संबन्धित सामग्री को निम्नलिखित दो शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—पशुओं का श्रृंगार तथा पक्षियों का श्रृंगार। पशुओं में हाथी, घोड़े और गाय का श्रृंगार प्रधान है।

हाथी वैभव का प्रतीक है। केशव ने हाथियों के श्रृंगार का भी वर्णन किया है। भरत की सेना के हाथियों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि उनके मस्तकों पर मणि जटित घुंघरू सहित घन्टे शोभा दे रहे थे।[४] राजा दशरथ के हाथियों के अंगों पर चन्दन का तथा सिर पर सिंदूर का लेपन किया जाता था।[५] लंका दहन के प्रसंग में बड़े बड़े हाथियों के स्वर्ण किंकिणियों से युक्त होने की चर्चा अप्रस्तुत रूप में की गयी है। अलंकृत हाथी को वीरसिंह देव ने प्रयाग में दान में दिया था। उसके गले में सुन्दर मोतियों की माला शोभित थी जिनमें चार नीलमणियां लगी हुई थीं।[६]

युद्ध के घोड़ों को सुवर्ण की घन्टियों को पहनाया जाता था।[७] रामने अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को भूषणों से अलंकृत करके छोड़ दिया था।[८]

राजा राम प्रतिदिन सनाढ्य ब्राह्मणों को हजारों गायोंको दान में देते थे। उन गायों की पीठ को ताँबे से, खुरों को चांदी से तथा सींगों को सोने से मढा जाता था।[९]

१—जनु पहिरी, पदत्राण को माणिक तरी बनाया। रा० च० ३१।३५

२—खाय मधुरान्न नहिं पाय पनही धरैं।—वही, ६।१६

३—वी० च० २२।८२

४—मनि घुंघर घंटन के रव बाजैं।—रा० च० १०।१७

५—वही, ९।८

६—वी० च० ५।२५

७—भले स्वर्ण के किंकिनी यूथ बाजैं।
मिले दामिनी सों मनौ मेघ गाजैं।—रा० च० १७।३७

८—रा० च० ३५।६

९—वही, ३०।२७

पक्षियों के श्रृंगार के सम्बन्ध में केवल सुक, सारिका, कोकिल तथा हंस का उल्लेख मिलता है। पंचवटी में रामने सुक और सारिका की नाकों में मोती[1] कोकिल के कंठ में दुलारी माला[2] तथा कल हंस के कंठ में कंठसिरी[3] पहनाये थे। इसी प्रसंग में राम के द्वारा हिरन और खंजन की आंखों में अंजन लगाने का उल्लेख किया गया है।[4]

३—३५ श्रृंगार प्रसाधन :

सृष्टि के आदि से ही संसार के सभी देशों में प्रसाधन की प्रवृत्ति पायी जाती है। अपने को आकर्षक बनाना तथा स्वास्थ्य की रक्षा करना प्रसाधनके मुख्य उद्देश्य हैं। इस सम्बन्ध में श्री अत्रिदेव विद्यालंकार का कथन उल्लेखनीय है–"प्रसाधन से श्रृंगार या सौन्दर्य वृद्धि पहले मुख्य उद्देश्य रही। किन्तु बाद में उनके साथ ही शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य की दृष्टि भी सम्मिलित हो गयी। उदाहरणार्थ आँखों में अंजन लगानेसे धूप की गर्मी, पलकों पर सूक्ष्म जीवों से उत्पन्न रोग, पलकों का गिरना नहीं होता।[5] केशव की कविप्रिया के अनुसार सोलह श्रृंगार इस प्रकार हैं—(१) दांतों को मिस्सी लगाना (२) गाल और चुबुक पर तिल लगाना (३) स्वच्छ वस्त्र धारण करना (४) सुवर्ण के आभरण पहनना (५) केश विन्यास (६) मांग में सिंदूर भरना (७) भाल पर खौर (८) नेत्रों में काजल (९) मुखवास (१०) दन्त धावन (११) हाथों में मेंहदी लगाना (१२) महावर लगाना (१३) उबटन (१४) स्नान (१५) शरीर पर सुगंध द्रव्य लगाना और (१६) पुष्प सज्जा।[6] इन में से मेहदी लगाने, दांतों के मिस्सी लगाने, गाल तथा चिबुक पर तिल लगाने की चर्चा केशव साहित्य में नहीं मिलती है। स्वच्छ वस्त्र धारण करने और आभूषण पहनने के विषय में पहले ही उल्लेख किया गया है। नीचे अन्य प्रसाधनों के बारे में लिखा जाता है।

स्त्रियाँ अपने केश पाश पर बड़ा ध्यान रखती हैं : उनके केशों के घने तथा काले होने की चर्चा प्रायः सभी कवियों ने की है। स्वयं केशव ने कचभार[7] से ही

१—मुक्ता सुक सारिक नाक रचे।–रा०च० ११।२८
२—दुलरी कल कोकिल कंठ बनी।–रा० चं० ११।२६
३—कल हंसनि कंठनि कंठसिरी।–वही, ११।२६
४—मृग खंजन अंजन शोभ धनी।–वही, ११।२६
५—प्राचीन भारत के प्रसाधन, पृ० २२
६—क० प्रि० ४।१७
७—कें० ग्रं० १८६।११

स्त्रियों के चलने में बाधा उपस्थित होने की बात कही है। केशव ने कबरी के विभिन्न उपमानों से उसकी आकृति को स्पष्ट किया है।[१] सीता की दासियों की वेणी के वर्णन के प्रसंग में उसे सौंदर्य रूपी राजा का तलवार तथा सुखदायिनी श्रृंगार नदी कहा गया है।[२] स्त्री के बालों के बंधे हुए विशेष रूप को चोटी, बेनी, कबरी आदि कहा जाता है। इसके लिए कवि ने कबरी और वेणी,[३] शब्दों का प्रयोग किया है। एक वेणी को धारण करना नारी की विपन्नावस्था का प्रतीक है। सीता की वियोगिनि मूर्ति का वर्णन करते हुए केशव ने उन्हें एक वेणी धारिणी के रूप में चित्रित किया हैं।[४] जघनों तक लटकती हुई वेणी सौंदर्य वर्धक मानी जाती है। उसे नागिन की उपमा देना कवि परंपरा सिद्ध विषय है। केशव ने राधिका की वेणी को नागिनी के समान उल्लेख किया है।[५]

ललाट पर लटकने वाली लटों या अलकों से मुख की शोभा की वृद्धि होती है। केशव ने चिकनी बारीक, स्वच्छ और चमकीली लटकों को सौंदर्य वर्धक माना है।[६]

बेणी बनाने में मांग निकालना भी एक कार्य है। सिंदूर से मांग भरना प्राचीन भारतीय परंपरा है। इसका अधिकार केशव स्त्रियों के हाथों था। माँग भरना सौभाग्यवती होने का सूचक है। संपन्न परिवार की नारियां अपनी माँग को मोतियों से सुसज्जित करती है। दण्डक वन के वर्णन में वहां 'सिंदूर' नामक वृक्षों के रहने के कारण उसे सौभाग्यवती स्त्री के रूप में बताया गया है।[७] किन्तु वहां कवि ने सिंदूर से मांग भरने का उल्लेख नहीं किया है। वीरसिंह देव चरित में नारियों के सौन्दर्य वर्णन में उनकी माँग में सिंदूर भरे रहने तथा मोतियों की अवलो के शोभित होने की बात कही गयी है[८] सीता की दासियों के नखशिख वर्णन के प्रसंग में लिखा गया है कि उनकी मांग में सिंदूर भरा हुआ है, उस पर मोतियों की पंक्ति है तथा काली पाटियां शोभा दे रही हैं। इन तीनों का संगम त्रिवेणी के समान मन को आकर्षित करता है।[९]

हिन्दू नारियां चंदन आदि की बिंदियां और मृगमद, केसर आदि का तिलक या

१—वही, २१।७७
२—रा० चं० ३१।३   ३—वही, १३।५३
४—धरे एक वेणी मिली मैल सारी। रा० चं० १३।५३
५—दौरि गही व्यालु ऐसी बेनी उर डारि के। र० प्रि० ५।३४
६—रा० चं० ३१।१८
७—है सुभगा सम दोपति पूरी।
सिंदुर औैर तिलकावलि रूरी॥ रा० चं० ११।२१
८—वी० च० २२।५३   ९—रा० चं० ३१।८

टीका लगाती हैं जिससे उनके मुख की शोभा और बढ़ जाती है। इस प्रकार भाल पर तिलक लगाने का अधिकार सभी सधवा स्त्रियों को प्राप्त है। केशव ने दण्डक वन के वर्णन के संदर्भ में तिलकावलीं से संयुक्त मान कर ही उसे सौभाग्यवती के समान बताया है।[1] शिखनख के वर्णन के प्रसंग में 'भाल तिलक'[2] का उल्लेख किया गया है। वीर-सिंह देव चरित में स्त्रियों के भाल पर मृगमद का तिलक[3] सुन्दर लगने की बात कही गयी है। राधिका के भाल पर चमकने वाला तिलक कृष्ण को आकर्षित करता था।[4] त्रिवेणी के वर्णन के प्रसंग में कहा गया है कि वह भरत खण्ड के भाल पर कस्तूरी, चंदन और कुंकुम से युक्त टीका के समान विराजमान है।[5]

प्रातःकाल के संबन्धी नियम भारत देश में प्राचीन काल से प्रचलित हैं। उनमें दतौन करना प्रधान कार्य है। केशव साहित्य में दतौन करने का उल्लेख मिलता है। राम दतौन की कुंची कपूर में डुबोकर अपने दांत साफ करते थे।[6] वीरसिंह देव भी कपूर से मिश्रित पानी में बार बार कुंची को डुबोकर बत्तीस बार दतौन करते थे।[7] दतौन के साथ कुल्ला करने का भी उल्लेख केशव ने किया है। लाला भगवानदीन के अनुसार कुल्ला करने की विधि इस प्रकार है— कपूर मिश्रित जल से बारह कुल्ले करने चाहिए और प्रत्येक कुल्ले में उतना जल भरना चाहिए जितने से गला तक साफ हो जाय, पानी को गले में घर्घराकर तब फेंकना चाहिए। दातून और कुल्ले के जल में कपूर मिलाने से दंतरोग नहीं होते और मुख सुवासित रहता है।[8]

नेत्रों में काजल लगाना भी नारियों का प्रमुख प्रसाधन है। राम चन्द्रिका में सीता की दासियों को नेत्रों में अंजन लगाने के कारण विष लिप्त बाणों के समान कहा गया है।[9] शिखनख वर्णन के प्रसंग में भृकुटि को काजर की लीक से शोभित होना बताया

१—रा० चं० ११।२१ २—वही, ३१।१४

३—मृगमद तिलक रेख जुग बनी। वी० च २९।५६

४—किलकत अलि कजु तिलकचिलक मिस। र० प्रि० ६।३७

५—रा० चं० २०।३०

६—वही, ३०।२४

७—वी० च० २१।५,७

८—केशव कौमुदी, पृ० १४६

९—सुन्दर मुखर सुअंजन अंजित। बाण मदन विष सों जनु रंजित॥ रा० चं० ३१।१२

है ।[१] वीरसिंह देव चरित में स्त्रियों के अंजन लगाने की चर्चा की गयी है ।[२] सखी ने राधिका के सुन्दर नेत्रों में अंजन लगाया था ।[३]

प्राचीन काल से ही स्त्रियों के चरणों के प्रसाधन के रूप में महावर, जावक अथवा आलक्तक का उपयोग मान्य रहा है। केशव ने इसके लिए महावर[४], आलक्त[५], जावक[६] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। स्त्री के चलते समय महावर द्वारा पैरों की रक्षा[७] होने की बात लिखी गयी है ।एक अन्य स्थान पर महावर लगाने से नायिका के स्वयं भार बन जाने का[८] उल्लेख भी किया गया है। सखी के द्वारा राधिका के पैरों में महावर लगाने की चर्चा केशव ने एक स्थान पर की है।[९]

कालिदास ने लिखा है कि अलकापुरी में स्त्रियों को अनेक प्रकार के वस्त्राभरण तथा पैरों में लगाने का महावर आदि सभी वस्तुएं केवल कल्पवृक्ष से ही मिल जाती हैं ।[१०]

उबटन लगाने की ओर केशव ने केवल संकेत मात्र किया है। राजा राम के प्रातःकाल-कृत्य में 'शुभतन मज्जन करि'[११] लिखा गया है। जिससे उबटन लगाकर स्नान करने का अनुमान किया जा सकता है। किन्तु उबटन लगाने में प्रयुक्त वस्तुओं अथवा उसकी प्रक्रिया का स्पष्ट उल्लेख कवि ने नहीं किया है।

स्नान की क्रिया भारत में सदा से शुद्धता और पवित्रता की सूचक रही है। शरीर की कान्ति की वृद्धि के लिए स्नान अत्यावश्यक है। वीरसिंह देव के प्रातः कालीन कृत्यों में गंगाजल से स्नान करने की विधि भी सम्मिलित थी ।[१२]राम के भी प्रात.कालीन कृत्यों में स्नान सम्मिलित किया गया है ।[१३]बेतवा नदी में लोगों के स्नान करने तथा दान

१—शिखनख छं० ६
२—वी० च० २०।२०
३—र० प्रि० १३।१३
४—रा० चं० ६।४४
५—वही, ३१।३४
६—वही, ३१।३५
७—वही, ३१।३५
८—वही, ६।४४
९—दीनों मैं पाइ भंवाइ महावर। —र० प्रि० १३।१३
१०—लाक्ष राग चरणं कमलन्यासयोग्यं च यस्या।
मेकस्सूते सकल मबला मंडनं कल्प वृक्षः॥ —मेघ संदेश, उत्तरमेघ, श्लो० १२
११—रा० चं० ३०।१३
१२—गंगाजल स्नान करि पूजे पूरण देव। —वी० च० २२।६
१३—रा० चं० ३०।१६

लेने की चर्चा केशव ने की है।[1] ब्राह्मणों को अभिषेक कराना उत्तम राजा का लक्षण बताया गया है।[2] राजा के अभिषेक के समय सभी पवित्र नदियों का जल तथा सप्त द्वीपों का उपयोग किया जाता था।[3] राम के अभिषेक के अवसर पर वानर गण सातों समुद्रों तथा समस्त तीर्थों के जल से भरे हुए घड़े लाये थे।[4] वीरसिंह देव चरित में स्त्री पुरुषों के सम्मिलित स्नान का भी उदाहरण मिलता है।[5]

स्नान के पश्चात् शरीर को विविध सुगन्ध-द्रव्यों से सुवासित करना इस देश की प्रथा है। सामन्तीय वर्ग मे चन्दन कस्तूरी, गोरोचन, अगरु आदि सुगन्ध द्रव्यों का विशेष उपयोग होता था। इन द्रव्यों को अंगराग भी कहा जाता है। सीता के स्वयंवर में आये हुए राजाओं में सिंधुराजा को 'अंगराग रंजित'[6] तथा चंदन चित्र तरंग[7] कहा गया है। पलकाचार के प्रसंग में वहाँ की स्त्रियों को मृगमदमय तथा घनसारमय कहा गया है।[8] विवाह के पश्चात् राम के अयोध्या नगर प्रवेश के अवसर पर कुंकुम, कपूंर मृगमदचूर्ण की वर्षा नगर वासियों ने की थी।[9] समुद्र का वर्णन करते समय अप्रस्तुत रूप में नागरिक पुरुषों के चंदन लगाने की चर्चा की गयी है।[10] कृत्रिम सरिताओं का वर्णन करते हुए कवि ने उन्हें चंदन[11], कस्तूरी[12], तथा केसर के जल[13] से शोभित होने की बात कही है। राम के शयनागार में वस्त्रों को सुवासित करने के चूर्ण यक्षकर्दम, जिसे देवता लोग लगाना पसंद करते हैं, केसरयुक्त सुगन्धित उवटन, कस्तूरी, कपूंर, इत्र, जुवाद आदि अनेक सुगंध द्रव्यों के रखे जाने की चर्चा की गयी है।[14]

इन चीजों में यक्षकर्दम असमान्य सुगंध द्रव्य है। लाला भगवानदीन के अनुसार यक्षकर्दम एक अंगलेप है जो कपूर, अगरु, कस्तूरी और कंकोल पीसकर बनाया जाता

१—स्नान करत द्विज तर्पन देव। परित देत नर देव॥ —वी० च० १५।३३

२—वी० च० ३२।५

३—वही, ३२।१३

४—सातहु सिन्धुल के जल रूरे। तीरथ जालनि के पय पूरे।
कंचन के घट बानर लीने। आय गये हरि आनद भीने॥ —रा० च० २६।१२

५—वी० ग्रं० २५।२०

६—रा० चं० ३।२६

७—वही, ३।२७

८—रा० चं० ६।४३

९—वही, ८।१६

१०—वही, १४।४१

११—वही, ३२।२३

१२—वही, ३२।२६

१३—वही, ३२।२६

१४—वही, २६।२३

है ।[१] हिन्दी शब्द सागर में इसके सम्बन्ध में लिखा गया है कि यक्ष कर्दम एक प्रकार का अंग लेप है जो कपूर, अगरु, कस्तूरी और कंकोल मिलाकर बनाया जाता है। कहते हैं कि यक्षों को यह अंग लेप बहुत प्रिय है।[२] धन्वन्तरि ने भी कुंकुम, कस्तूरी, कपूर, चंदन और खस से बनी हुई महासुगन्धि को यक्षकर्दम नाम दिया है।[३] वीरसिंह देव के नगर में सुन्दरियों के द्वारा अनेक प्रकार के अंगराग लगाने की बात लिखी गयी है।[४] अनुसूया के द्वारा सीता के शरीर पर अनेक प्रकार के अंगराग लगाकर उनका सम्मान करने की भी बात उल्लिखित है।[५]

भारत देश में फूल अलंकरण दृष्टिकोण के अतिरिक्त मंगल के प्रतीक हैं। इसी कारण कुछ विशेष अवसरों पर फूलों की माला धारण करने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। केशव साहित्य में अनेक स्थानों पर फूलों को धारण किये जाने का उल्लेख मिलता है। सीताराम के विवाह के संदर्भ में सीता के एक सखी के द्वारा फूलों के विभूषण पहने जाने की बात कही गयी है।[६] रसिक प्रिया में अभिसारिका नायिका के वर्णन प्रसंग में उसके द्वारा सुमन सिंगार[७] किये जाने की चर्चा की गयी है।[८] धनुर्भंग के समय सीता ने राम के कंठ में स्वच्छ कमलों की माला पहनाई थी।[९] अनुसूया के द्वारा सीता के शरीर में अनेक प्रकार के जो अंगराग लगाये गये थे उनमें, मेंहदी का भी अनुमान किया जा सकता है। लाला भगवान दीन के अनुसार अंगराग में महावर, मेंहदी, सिंदूर, अर्गजा,केशर कस्तूरी, चंदनादि के लेप जो भिन्न भिन्न अंगों में लगाये जाते हैं।[१०]

दर्पण शृंगार प्रसाधनों के सहायक के रूप में माना जाता है। केशव साहित्य में दर्पण का उल्लेख हुआ है। जब राम विवाह के बाद अयोध्या में आये तब पुरवासियों में हर्षोल्लास छा गया था। उस समय कुछ नारियों ने अपने हाथों में दर्पण लिया था।[११] राम के अभिषेक के समय उन्हें दर्पण दिखाने का काम लक्ष्मण को सौंप दिया गया था।[१२]

१—केशव कौमुदी, उत्तरार्ध, पृ० १२५
२—हिन्दी शब्द सागर, पृ० २८४०
३—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, कादंबरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३१
४—वी० च० २०।२०　　५—रा० च० ११।६
६—तह एक फूलन के विभूषण एक मोतिन के किये। —रा० च० ६।६१
७—र० प्रि० ७ ३०　　८—रा० च० १६।३०
९—सीता जू रघुनाथ को अमल कमल की माल। —रा० म० ६।४६
१०—केशव कौमुदी, पूर्वार्ध, १७०, लाला भगवान दीन
११—रा० च० ८।११　　१२-वही, २३।२६

अग्नि के बीच में बैठी हुई सीता को 'मणि दर्पण में प्रतिबिम्ब' कहा गया है।[१] इससे स्पष्ट होता है कि केशव के समय मणि जटित दर्पणों का भी प्रचार समाज में था।

पान खाने से मुख सुवासित होता है और पाचन शक्ति बढ़ती है। केशव साहित्य में कहीं भी इसे पाचन शक्ति के वर्धक के रूप में नहीं कहा गया है। किन्तु मुख को सुवासित करने के लिए पान खाने की बात अनेक स्थलों पर कही गयी है। सीता स्वयंवर के समय इकट्ठे हुये राजाओं में कांची पुरी के राजा के पान खाते तथा मुस्कराते रहने की चर्चा की गयी है।[२] राम के शयनागार में बीरा रखा गया था।[3] पान में कपूर मिलाकर भी खाते थे। इसका उल्लेख अप्रस्तुत रूप से एक स्थल पर कवि ने किया है। युद्ध क्षेत्र में गजकुंभ फटते और गज मुक्ता कटते जाते थे। खून में मिलकर बहने वाले वे गजमुक्ता, पनारों से बहने वाली पीकधारा में मिले हुए कपूर के टुकड़ों के समान थे।[४] वियोगिनी राधा ने पान नहीं खाया था।[५] राधा ने पान से कृष्ण का सम्मान किया था।[६] पान-खाना प्रसन्नता का सूचक भी था।[७]

३-३६ खानपान :

किसी भी राष्ट्र की सभ्यता का परिचय वहां के खानपान तथा पाकविधि से प्राप्त होता है। खानपान से संबन्धित वर्णनों के संदर्भ में केशव ने वह दृष्टिकोण नहीं रखा जो कृष्ण भक्त कवियों को प्रेरणा देता था। तुलसी, सूर, जायसी जैसे कवियों ने अपने ग्रन्थों में भोजन सामग्री का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है। इन्होंने प्रसंगानुसार अपने समकालीन समाज में प्रचलित अनेक व्यंजनों की सूची दी है। अपने काव्यों की प्रबन्धात्मक प्रवृत्ति के कारण इनको ऐसा करने का सहज अवसर मिलता था। जायसी ने तो हिन्दू तथा मुसलमानों की भोजन सामग्रियों का अलग अलग वर्णन किया है। हर वस्तु का इतना विस्तृत वर्णन किया है कि इनके नामों से पाठक का मन ऊब जाता है।[८]

केशव ने रामचन्द्रिका में राजा राम के भोजन के प्रसंग में छप्पन प्रकार के व्यंजनों का वर्णन किया है। वल्लभ संप्रदाय में गिरिराज की पूजा के समय छप्पन भोग

१—रा० चं० २०।८१

२—पान खात मुसुकत मृदु। —रा० चं० ३।२२

३—रा० चं० २९।३३

४—वही, ३३।१५ ५—र० प्रि० ८।२७

६—वही, ३।६० ७—वी० च० ६।३१

८—पद्मावत, पृ० ५९५ (सं० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल)

लगाया जाता है, चाहे उसमें पदार्थ अधिक हो या कम। केशव के अनुसार उसमें छः प्रकार की मिठाइयां, चार प्रकार के खीर, चार प्रकार के भात, तीन प्रकार तक्र, छः प्रकार की दाल, पांच प्रकार की तरकारियां, पाँच प्रकार की रोटियां, पांच प्रकार के बड़े, पांच प्रकार के अचार, दो प्रकार दूध, दो प्रकार की झारी, दो प्रकार की सिकरिन और सात प्रकार के पन्ने[1] छप्पन भोग में आते हैं।

इसी प्रसंग में पांच प्रकार के भोजन तथा षट् रसों का भी उल्लेख केशव ने किया है।[2] लाला भगवान दीन के अनुसार १. चोष्य, जो चूस कर खाये जायें, २. पेय, जो पी लिये जांय, ३. भोज्य, जो दांत से कुचलकर निगले जांय, ४. लेह्य, जो चाटकर खाये जाय तथा ५. चर्व्य, जो चबाकर निगले जांय। ये पांच प्रकार के भोजन हैं तथा १. मधुर २. अम्ल ३. तिक्त ४. कटु ५. लवण ६. कषाय ये षट् रस हैं।[3] अन्न[4], रोटी[5] आदि से केवल सामान्य जीवन का बोध होता है। मिठाई के सम्बन्ध में कवि ने ऊख[6], मिसरी[7], बतासे[8], मधु[9], महूख[10], मिठाई[11], मधुरान्न[12] की चर्चा की है।

रामचन्द्रिका में दी हुई सूची में झारी शब्द है। यह एक प्रकार का जलजीरा है जो अमचूर, जीरे, नमक आदि से बनाया जाता है। इसी प्रकार पना भी खाद्य पेय है जो कच्ची आम को भून कर या उबालकर बनाया जाता है। 'पछावरि' भी दही से बना हुआ और भोजन के अन्त में पिया जाने वाला एक पेय विशेष है।

खान-पान के वर्णन में केशव ने सांस्कृतिक 'मीनू' का ध्यान रखा है। माखन[13], घ्यौ[14], दधि[15] का ध्यान भी रखा गया है। कृष्ण भक्ति साहित्य में कलेऊ[16] कृष्ण के साथ

१—रा च० ३०।२८-३०
२—वही, ३०।३१
३—केशव कौमुदी, उत्तरार्ध, पृ० १५३, लाला भगवानदीन।
४—के० ग्रं० पृ० २०।९
५—वही, ५३८।७
६—वही, १८९।३६
७—वही, १२५।४८
८—वही, १७३।७१
९—वही, १८।६४
१०—र० प्रि० १२ ५
११—के० ग्रं० १२५।४९
१२—रा० च० ६।१६
१३—के० ग्रं० १०२।८
१४—रा० च० ३४।३२
१५—के० ग्र० ७।२५
१६—मुख देखौ लै मुकुर कर करी कलेऊ लाज॥ —क० प्रि० १६।३०

रूढ मिलता है। इतने सुस्वादु और समग्र भोज्य सामग्री के बीच केशव ने इसका भी उल्लेख किया है।

बिखरे हुए रूप में यत्रतत्र प्राप्त उल्लेखों के आधार पर खान-पान संबंधी निम्न-लिखित तथ्य प्राप्त होते हैं। सीताराम के विवाह के अवसर पर भांति भांति के अन्न-पान तथा व्यंजन परोसे गये थे।[1]

मुनि लोग फल और मूलों को ही आहार के रूप में ग्रहण करते थे।[2] भरद्वाज मुनि केवल दूध ही पीते थे।[3] विधवा को मधुरान्न खाना वर्जित था।[4] जल तथा दूध के अतिरिक्त मदिरा राजाओं एवं उच्च वर्ग का प्रधान पेय था राजाओं को "पानविलासी" भी कहा गया है।[5] यद्यपि शिष्ट वर्ग में पियक्कड़ की निन्दा की जाती थी,[6] रावण के अन्तःपुर में मदिरा पीने की चर्चा की गयी है।[7] मदिरापान करने वाले ब्राह्मण की संपत्ति के नाश होने की बात लिखी गयी है।[8] पेय पदार्थों में ऊख के रस को अत्यन्त मधुर कहा गया है।[9] मधु को भी मीठा पेय पदार्थ स्वीकार किया गया है।[10]

केशव साहित्य में विविध प्रकार के मसाले द्रव्यों के भी नाम आयेहैं। लौंग,[11] रजनी[12] (हल्दी), राई, लोन आदि इनमें मुख्य हैं। इससे प्रकट होता है कि केशव को पाकशास्त्रीय विधान में अधिक अभिरुचि थी।

भारतीय मान्यता के अनुसार शाकाहार ही आध्यात्मिक उत्थान और सांस्कृतिक

१—रा० चं० ६।२६
२—बाका पहरे तन सीस जटागन हैं फलमूल अहारी।–रा० चं० २१।२२
३—पोषत पय पानहि सों तनु॥–वही, २०।५०
४—खाय मधुरान्नहि।–वही, ६।१६
५—पानविलास उदित आतुरी। परदा गमनै चातुरी॥–रा० चं० २३।३५
६—मद्यपानरत तियजित होई।
   तासु बैनि हनि पाप न लागौ॥–वही, १०।३६
७—वही, १३।५१
८—वही, ५।२४
९—र० प्रि० १२।५
१०—वही, १२।५
११—के० ग्रं० पृ० १८५।२६
१२—क० प्रि० ५।२६

उत्कर्ष का परिचायक है। किन्तु मांसाहार मनुष्य को राजसी तथा तामसी वृत्ति की ओर ले जाता है। केशव ने सात्विक आहार का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है। पर मांसाहार का उल्लेख नहीं के बराबर है। इतना होने पर भी यह बात स्पष्ट है कि केशव के भोजन सम्बन्धी अधिकांश वर्णन परम्परागत है। मुख्य रूप से ध्यान देने की बात यह है कि केशव ने साधारण जनता के खानपान के विषय में अधिक दिलचस्पी नहीं दिखायी है। केवल राजाओं तथा मुनियों के भोजन के सम्बन्ध में ही उल्लेख किया गया है।

३—३७ : मनोरंजन

मनोरंजन के साधनों के द्वारा भी भारतीय सांस्कृतिक धारणाओं का कुछ स्पष्टीकरण हो सकता है। प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि वे आध्यात्मिक या पारलौकिक तत्व को जितनी प्रधानता देते थे उतना ही ऐहिक जीवन को भी। डा० रामजी उपाध्याय के अनुसार संस्कृति की प्रगति के साथ-साथ मनो विनोदों की भी प्रतिष्ठा मानवों के सभी मंगलमय आयोजनाओं में हुई। हर्षोल्लास के सभी अवसरों पर विविध प्रकार के मनोविनोदों का आयोजन किया गया है। यज्ञ विधान, संस्कार समारंभ, युद्ध के प्रसंग आदि में नृत्य गीत आदि का आयोजन किया गया। शारीरिक स्वास्थ्य को प्रदान करने वाले कुछ मनोविनोदों का भी प्रचार हो गया था। वन विहार, जल विहार, मल्लयुद्ध, आखेट आदि की गणना इसी वर्ग के अन्तर्गत आती है।[1] हरिकथा श्रवण हरिभजन, हरिकीर्तन, श्रीकृष्ण लीला दर्शन आदि भक्ति प्रेरित साधनों द्वारा यदि मनुष्य अपने विश्राम की घड़ियों को या सुस्तवातावरण को व्यतीत करता है, तो हमें यही कहना पड़ेगा कि यहां मनोविनोद भी बहुत कुछ आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित है। लेकिन रीतिकालीन सामंतीय संस्कृति में इस प्रकार के साधनों का महत्व नहीं रह गया। उनका उपयोग सामंत पूर्ण रूप से ऐहिकता परक मन बहलावे में ही करता था। मुनक्की ने राजकुमारों के मनोरंजनों के विषय में लिखा है—"उनको राजा की ओर से प्रहसन और नाटक देखने, फुलवारियों में घूमने, प्रेमगाथाएँ सुनने, फूलों की सय्या पर आराम

१—"संस्कृतेः प्रकृत्यासह मनो विनोदानां प्रतिष्ठा मानवानां सर्वेषु मंगलमया यो जनेषुबभूवा सर्वेषुहर्षोल्लासादिक्षणेषु विविध प्रकाराणां मनो विनोदानां कारणमावश्यकं मतम्। तथा हि यज्ञ विधानेषु, संस्कार समारंभेषु, देवार्चनासु युद्ध प्रसंगेषु गीतिवाद्याभिनयादीना मायोजनं कृतम्। उपरंत कतिपय मनो विनोदानां लाभ प्रदायि स्वरूपाणि प्रशस्यानि दृश्यंते। तथाहि वन विहार, जल विहार मल्लयुद्ध मृगयादिकं स्वास्थ्य मंवर्द्धनाय-बभूवुः"।—भारतीय सांस्कृतिक निधिः—डा० रामजी उपाध्याय, पृ० २१४

करने आदि के लिए पूर्ण स्वातंत्र्य था।"[1] मनोविनोदों का मनुष्य के सांस्कृतिक विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

डा० प्राणनाथ चौपड़ा ने मुगल कालीन मनोविनोदों की सूची इस प्रकार दी है[2] (१) ताश खेलना (२) शतरंज खेलना (३) चौपड़ (४) चंदल-मंडल (५) पच्चीसी (६) चौगान (७) कुश्ती लड़ना (८) घूंसा-कुश्ती (९) दौड़ (१०) अस्त्रशस्त्रादि की क्रीड़ा (११) नरद (१२) मृगया (१३) मछली पकड़ना (१४) जल विहार (१५) घुड़ सवारी (१६) पशुयुद्ध (१७) इन्द्रजाल (१८) नृत्य (१९) संगीत (२०) अभिनय (२१) कहानी सुनना (२२) वागवाणी (२३) हाट-बाजार (२४) धूम्रपान । केशव साहित्य में निम्न-लिखित मनोविनोदों का उल्लेख मिलता है—(१) कंदुक क्रीड़ा (२) चौगान (३) भगर (४) मृगया (५) मल्ल युद्ध (६ पशुयुद्ध (७) जुआ खेलना (८, शतरंज (९) चौपड़ (१०) नट विद्या (११) इन्द्रजाल (१२) बसन्तोत्सव (१३) हिन्डोरा (१४) वन विहार (१५) जल विहार (१६) मछली पकड़ना (१७) आँख मिचौनी (१८) वन्दर का नाच (१९) बच्चों के खिलौने।

अध्ययन की सुविधा को दृष्टि में रखकर केशव-साहित्य में वर्णित मनोविनोदों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(क) खेल (ख) मल्लयुद्ध तथा पशुयुद्ध (ग) बौद्धिक दांवपेच के मनोविनोद (घ) मनोविनोद।

३—३७१ खेल-कूद :

कन्दुक क्रीड़ा भारत में अतिप्राचीन काल से चली आ रही है। रामायण काल में भी कन्दुक क्रीड़ा के प्रचलित रहने का उल्लेख मिलता है। रावण और सुग्रीव के द्वन्द्व युद्ध के वर्णन में अप्रस्तुत रूप में इसकी चर्चा की गयी है। रावण के धक्के देने पर

2–They (princes) have the permision to enjoy the pleasure of the comedy and the dance, to listen to tales and stories of love, to recline upon beds of flowers, to walk about in gardens, to listen to murmuring of the running waters, to hear si nging or other similar pastimes. Munucci : Storia. II. Page No. 352-53

3-Some Aspects of Society and Culture During the Mughal Age. Page No. 51-77

सुग्रीव ने गेन्द की तरह उछलकर उसे पटक लगा दी।[१] मुगलकाल में तो चौगान आदि के प्रचलन के कारण कन्दुक क्रीड़ा के अनेक प्रकार प्रचलित रहे। राम चन्द्रिका में गेन्द तथा उसके द्वारा खेले जाने वाली क्रीड़ाओं का उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त है। रावण ने कैलास पर्वत को गेन्द के समान आसानी से ऊपर उठाने का अहंकार प्रकट किया था।[२] लव ने अंगद को बाणों से गेन्द के समान ऊपर उछाल दिया था।[३] एक स्थान पर कवि ने चन्द्रमा को इन्द्राणी के द्वारा सूंघ कर फेंक दिये गये कन्दुक के रूप में वर्णन किया है।[४] कालिदास ने भी कुमार सम्भव में इस खेल के खेले जाने की बात लिखी है।[५] इस विवेचन से यह बात स्पष्ट होती है कि कन्दुक क्रीड़ा बहुत आसान समझी जाती थी।

चौगान भी एक प्रकार की कंदुक क्रीड़ा है। परन्तु इसको खेलने में विशेष प्रकार की विधि की आवश्यकता अपेक्षित होती है। केशव ने भी इस कन्दुक क्रीड़ा का विशेष वर्णन किया है। चौगान का दरबारी संस्कृति से अविच्छिन्न संबन्ध था। मुगल दरबारियों के लिए तो वह एक प्रमुख मनोरंजन था—"सभी मुगल बादशाह इस खेल को बहुत चाहते थे और इसके लिए पृथक मैदान भी कई स्थानों पर निर्मित थे।"[६] इस खेल के खिलाड़ी घोड़ों पर चढ़कर आजकल के हाकी स्टिक के आकार के डन्डों को लेकर खेलते थे। रामचन्द्रिका में चौगान की गेन्द को गोलाहल[७] कहा गया है। इस खेल में प्रयुक्त डंडे को छरी कहा गया है तथा उनके अनेक रंगों के होने की बात भी कही गयी है।[८] इसके खिलाड़ी घोड़े बहुत तेज दौड़ने वाले होते हैं।[९] आजकल के हाकी तथा फुटवाल के गोल पोस्टों की तरह दो स्तम्भ होते हैं, जिनको हाल कहा जाता है तथा जिनके बीच से होकर गेन्द का निकलना बाजी जीतना माना जाता है। इसीलिए केशव ने "हाल" करके जीतने

१—कन्दुवत् स समुत्थाप्य बहुम्या मलिपद्धरिः।—वाल्मीकि रामायण

२—गेन्द कयों में खेल को, हर गिरि केशोदास॥—रा० चं० १६।२८

३—भूलनते शरमारि उडायो। खेल के कन्दुक को फल पायो॥–वही, ३८।२२

४—फूलन की शुभ गेन्दनई है। सूंघि शची जनु डारि दई है॥–वही, ३०।४२

५—मन्दाकिनी सेकत वेदिकाभिः, साकन्दुकैः कृत्रिम पुत्रकैश्च।—कुमार संभव, १।२९

6—All the Mughal emperors showed keen interest in the game and Chaugan playing fields were marked out and reserved at several places. Dr. Pran Nath Chopra : Some Aspects of Society and Culture During the Moghal Age. Page No. 61

७—देखन लागो सबै जग जाल। डारि दयो भुव गोलाहाल॥–रा० चं० २९।६

८—सौहत हाथे लीन्हें छरी कारी पीरी राती हरी॥—वही। २९।५

९—गोला जाइ जहां तहं जबै हो। तहीं तितही तित सबै।–वही, २९।८

की बात कही है ।[1] वीरसिंहदेव चरित के उन्नीसवें प्रकाश में भी चौगान का वर्णन किया गया है ।[2] मंदोदरीके कंचुकि रहित उरोजों के वर्णन में इस खेल की कवि ने अप्रस्तुत रूप में चर्चा की है ।[3] इस खेल की लोक प्रियता इससे सिद्ध होती है कि तुलसी ने राम की[4] और सूर ने कृष्ण की[5] चौगान की क्रीड़ा का वर्णन किया है । इस खेल का सम्बन्ध घोड़ों से है, इसलिए विविध जातियों के घोड़ों तथा उनके लक्षणों का निरूपण भी केशव ने किया है । बिहारी ने भी इसका शृंगार के संदर्भ में "जीतिये खेलि प्रेम चौगान"[6] कहकर अप्रस्तुत रूप में उल्लेख किया है । इस खेल में एकाग्रता की आवश्यकता है । केशव ने एक स्थान पर लिखा है कि खिलाड़ी गेन्द के साथ इस प्रकार दौड़ते हैं, मानो रसिकों के लोचन सौंदर्य के साथ अनेक प्रकार का नृत्य कर रहे हों ।

भगर को कबड्डी कहा जाता है । इस खेल में दो दल होते हैं । एक दल का एक खिलाड़ी एक ही सांस में कबड्डी कहता हुआ दूसरी पारी में जाता है । यदि वह पकड़ा जाय और उसके कबड्डी कहने का श्वांस टूट जाय तो वह मरा हुआ माना जाता है, यदि वह किसी को छूकर कबड्डी के श्वास तोड़े बिना अपनी पारी में लौट आ जाय तो उसके द्वारा छुआ गया खिलाड़ी मरा हुआ माना जाता है । केशव ने इसका प्रत्यक्ष रूप से कहीं वर्णन नहीं किया है, परन्तु एक स्थान पर केशव ने लिखा है कि कबड्डी का खिलाड़ी, जो खेल में बहुतों को मारता है, सुभट नहीं कहा जाता ।[7]

मृगया राजकीय अथवा साधन सम्पन्न वर्ग के मनोरंजन का खेल है, जिसके लिए व्यक्ति में पर्याप्त साहस की भी आवश्यकता है । वाल्मीकि रामायण के अनुसार मृगया राजाओं की क्रीड़ा थी ।[8] राजर्षियों के मनोविनोद के लिये इसे जारी किया गया था ।[9] वन्य पशुओं का बाणों से संहार किया जाता था । कालिदास ने "अभिज्ञान शाकुं-तल" में आखेट से चर्बी का घट जाना, तोंद का छट जाना, शरीर का हल्का और फुर्तीला

१—जब जब जीतें हालकरि तब तब बजत निशान ।—वही, २६।११

२—वी० च० १६।१-१७

३—रा० चं० १६।३१

४—गीतावली, पद ४३-४४

५—सूर सागर, पद ४७८३

६—बिहारी सतसई, दो० १२८

७—भगर के खेल क्यों सुभट पद पावही ।—रा० चं० १६।२६

८—वाल्मीकि रामायण, ४।१८।३८।४०

९—राजर्षिणाहि लोकेस्मिन् रत्यर्थं मृगयावने ॥—वाल्मीकि रामा० १।४६।१६

हो जाना आदि गुणों की चर्चा की है।[१] मुगल काल में मृगया अभिजात तथा सामन्त वर्गों के मनोविनोद का प्रधान साधन था।[२] केशव साहित्य में मृगया का विशेष वर्णन नहीं किया गया है, किन्तु इसका उल्लेख अवश्य मिलता है। राज्यश्री की निन्दा करते समय राम के द्वारा राजा सुरथ की कथा का उल्लेख किया गया है जिसको सदैव मृगया-सक्त मानकर उसके मंत्रियों ने उसे राज्याधिकार से वंचित किया था।[३] कविप्रिया में 'राज्यश्री भूषण वर्णन' के प्रसंग में केशव ने लव और कुश के आखेट का वर्णन किया है। जब लवकुश मृगया खेलने जाते हैं तब मन्मथ को अपने वाहन मकर के मारे जाने, पार्वती को गजमुख के बांधने, षटमुख को अपने मयूर के मारे जाने तथा इन्द्र को अपने ऐरावत के मारे जाने का भय हो गया था।[४] कवि ने तत्कालीन राजाओं की प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि वे मृगया को ही अपनी शूरता का लक्षण मानते थे।[५]

भारतीय संस्कृति में मल्ल युद्ध का प्रचलन भी अति प्राचीन काल से रहा है। शारीरिक बलवृद्धि के लिए मल्ल युद्ध को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। डा० रामजी उपाध्याय के अनुसार सिंधु सभ्यता युगीन मल्लों ने चीतों के साथ भी युद्ध किया था। महाभारत में भी भीम और जरासन्ध में मल्ल युद्ध हुआ था। उस समय मल्ल युद्ध की कला का बड़ा विकास हुआ था।[६] मुगलकाल में मल्लयुद्ध भी लोकप्रिय क्रीड़ा थी। अकबर इस खेल को बहुत चाहते थे। उनके दरबार में फारसी तथा तूरानी मल्ल रहते थे।[७]

केशव साहित्य में कुछ स्थानों पर मल्ल युद्ध का उल्लेख प्राप्त होता है। अयो-

१—अभिज्ञान शाकुन्तल, द्वितीयांक, ५

२—Hunting was one of the best means of amusement and recreation during the Mughal times and was indulged in by the king, nobles and the commoners.

Some Aspects of Society and Culture During Moghal Age.

३—रा० च० २३।१६

४—क० प्रि० ८।३५

५—रा० चं० २३।३६

६—सिन्धु सभ्यता युगीनाः मल्ला चित्र कैरयुध्यान्ता। महाभारत कालीन मल्लयुद्धस्य विवरणं भीम जरासन्ध प्रकरणे दृश्यते तथा मल्लयुद्ध कला सुविकसिता बभूव।

—भारतस्य सांस्कृतिक निधिः, पृ० २७०

७—Dr. Pran Nath Chopra : Some Aspects of Society and Culture During the Moghal Age. Page No. 63

ध्या नगर के वर्णन में[१] तथा सीता-राम के विवाह के प्रसंग में[२] इस विनोद की चर्चा की गयी है। वीरसिंह देव के राज दरबार के वर्णन में भी वहां के मल्लों के लड़ने का उल्लेख किया गया है।[३] जहांगीर के राज दरबार के वर्णन के संदर्भ में भी मल्लयुद्ध की चर्चा की गयी है, जहां रामचन्द्रिका के सीता-स्वयंवर के संदर्भ में उल्लिखित पंक्तियों की ही पुनरावृत्ति की गयी है।[४] उक्त संदर्भों में केशव ने मल्ल युद्ध का नामोल्लेख मात्र किया है। इस युद्ध के नियमों का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं किया गया है।

विविध पशुओं का युद्ध देखना भारत का अति प्राचीन मनोरंजन है। हाथी, भैंसा बैल, बकरा, मुर्गा आदि पशु-पक्षियों का युद्ध देखने के लिए बहुत लोग एकत्र होते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य को पशु युद्ध देखने की बड़ी अभिरुचि थी।[५] केशव ने रामचन्द्रिका में अयोध्या नगर के वर्णन प्रसंग में[६] तथा सीता स्वयंवर के संदर्भ में[७], वीरसिंह देव नगर वर्णन के अवसर पर[८] और जहांगीर के राज दरबार के वर्णन में[९] पशुओं के युद्ध का उल्लेख किया गया है। थोड़े परिवर्तन के साथ एक ही प्रकार के छन्द उक्त संदर्भों में रखे गये हैं। यहां भी मल्ल युद्ध के समान पशुयुद्ध का केशव ने केवल नामोल्लेख किया है, उनके समय इस प्रकार के युद्धों के द्वारा मनोरंजन करने की प्रथा प्रचलित थी। राज-दरबारों में इनको बड़ी मान्यता दी जाती थी। एक अंग्रेज विद्वान के अनुसार भारत में हाथियों को पालने की कला इतनी अधिक विकसित हुई थी कि सिकन्दर के परवर्ती राजाओं ने हाथी पालन के लिए भारतीयों को ही नियुक्त किया था।[१०]

जुआ खेलना बौद्धिक दाँव पेंच का प्रधान मनोविनोद माना जाता है। इसके

१—रा० चं० २।३

२—कहूं भाट बोलैं कहूं मल्ल गाजैं। —वही, ६।१४

३—वी० च० ८७।८ ४—ज० ज० चं० छं० ४६

५—पशूनां पशुभिस्सह युद्धमयोजितम्। हस्ति महिष वृषजा कुक्कुट लावा दीनां युद्धस्य दर्शनाय बहुशः जनाः समागताः। चन्द्र गुप्त मौर्यस्य पशुयुद्ध दर्शन रुचि रतिशयासीत्।
—भारतस्य सांस्कृतिक निधिः. डा० रामजी उपाध्याय, पृ० २७१

६—महिष मेष मृग वृषभ कहुं भिरत मल्ल गज राज॥ —रा० चं० २।३

७—रा० चं० ६।१४ ८—वी० च० २७।७

९—ज० ज० च० ५०

10- "The proficiency of the Indians in this art attracted the attention of Alexander's successors ....he might belong." Wilson : Theatre of the Hindus.

विषय में पर्व और त्यौहार वाले प्रसंग में चर्चा की गयी है, तो भी प्रसंगवश यहां इस पर थोड़ा विचार किया जाता है। जुआ खेलना भारतीय दृष्टि से निषिद्ध है, तो भी भारत के सभी वर्गों के लोगों में इसका प्रचार सदा से रहा है। ऋग्वेद, रामायण तथा महाभारत के समय में भी इस क्रीड़ा के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं।[१] कवि वाणी सदा से इसका वर्णन करती आ रही है। शूद्रक के अनुसार यह आदमी को औदार्य प्रदान करने वाला, सुख तथा दुःख में समान व्यवहार का अभ्यास कराने वाला और साहस, बुद्धि, पराक्रम तथा आत्म विश्वास आदि गुणों को उत्पन्न करने वाला है।[२] कवि ने दिवाली के समय जुआ का वर्णन रामचन्द्रिका[३] तथा रसिक प्रिया[४] में किया है। राम के अनुसार जुआ खेलना राजाओं के लिए निषिद्ध है।[५] वास्तव में दीवाली के समय जुआ का खेल भावी हार-जीत का प्रतीक बन गया है। इसीलिए आज भी दीवाली के साथ द्यूतक्रीड़ा का अटूट सम्बन्ध है।

शतरंज भी भारत का पुराना खेल है। डा० शान्तिकमार नानूराम व्यास के अनुसार शतरंज शब्द की उत्पत्ति चतुरंग से है। शतरंज खेल के संकेत ऋग्वेद अथर्व वेद तथा बौद्ध और जैन ग्रन्थों में भी मिलते हैं। जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतवासियों में यह खेल बड़ा लोकप्रिय था।[६] डा० रामजी उपाध्याय के अनुसार शतरंज भारत से अरब देश और वहां से यूरोप में गया है।[७] केशव साहित्य में इस खेल का उल्लेख प्राप्त है। राधा के श्रीकृष्ण के साथ दांव लगाकर शतरंज खेलने की बात कविप्रिया में कही गयी है।[८] वीरसिंह देव चरित में भी स्त्रियों के द्वारा शतरंज खेले जाने की बात कही गयी है।[९] रसिक प्रिया में एक स्थान पर कहा गया है कि राधा के द्वारा प्रेम का शत-

---

१—रामायणकाली संस्कृति—डा० शान्तिकमार नानूराम व्यास, पृ० १०२

२—'कविवाणी कदाचित् द्यूतप्रशस्तौ प्रवृत्ता दृश्यते, तथाहि शूद्रकः द्यूतंहिनाम पुरषस्या सिंहासनं राज्यम् दंडोतु द्यूने नौदार्य वर्द्धनं, सुखदुःखयोः समभाव हाराभ्यसनं, साहस बुद्धि पराक्रमात्म विकासादीना मौत्वकृष्ठ्यंच संभवमन्यते।
—डा० रामजी उपाध्याय, भारतस्य सांस्कृतिक निधिः, पृ० २६८

३—रा० चं० २८।१०

४—र० प्रि० १३।२०

५—रा० चं० ३१।३०

६—रामायण कालीन संस्कृति, पृ० १०४

७—भारतस्य सांस्कृतिक निधिः, पृ० २७७

८—क० प्रि० १२।३०

९—कहूं सतरंज मतिरंज विल.स, वी० च० २०।१९

रंज बिछाया गया है और कृष्ण से बाजी लगायी है।[१] उक्त पद में शतरंज खेलने के विधान का भी वर्णन किया गया है। यहां बादशाह, वजीर, हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, आदि शतरंज की सामग्री की चर्चा की गयी है। इससे स्पष्ट है कि केशव शतरंज के खेल से खूब परिचित थे।

चौपड़ का खेल प्रायः उनके लिए होता है जिनके पास अधिक अवकाश हो। यह मध्यम और धनी वर्गों में सामान्यतया अधिक प्रचलित है। चौपड़ को चौसर भी कहते हैं।

केशव साहित्य में इस खेल का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। अपनी सखियों के साथ बैठकर राधा के द्वारा उस खेल को खेले जाने की बात कवि ने लिखी है।[२] वीरसिंह देव के राज्य में केवल चौपर में ही लोगों को पराजय प्राप्त होने की बात कही गयी है।[३] इसी प्रसंग में स्त्रियों के द्वारा चौसर खेले जाने का उल्लेख किया गया है।[४]

इस वर्ग के अन्तर्गत नट विद्या, इन्द्रजाल, वसन्तोत्सव, हिन्डौल वनविहार और जलविहार आदि मनोरंजन के साधन आते हैं।

नट विद्या में अंगों के विशेष प्रकार के अभिनय और प्रदर्शन को प्रधानता दी जाती है। केशव ने इस खेल का केवल नामोल्लेख किया है। अयोध्या वर्णन के प्रसंग में राज सभा के आगे वाले मैदान में अच्छे नटों के द्वारा नट विद्या का प्रदर्शन किये जाने का उल्लेख मिलता है।[५] वीरसिंह देव के राजदरबार के वर्णन के संदर्भ में भी यही बात कही गयी है।[६] जहांगीर के राज दरबार में भी नट विद्या के प्रदर्शन का उल्लेख पाया जाता है।[७] एक स्थान पर युद्ध क्षेत्र में खड्ग प्रहारों से गिरते हुए सैनिकों की तुलना कलाबाजी करने वाले नटों से की गयी है।[८] एक अन्य स्थान पर केशव ने लिखा है कि

१—र० प्रि० ८।२७
२—वही, ३।७१
३—वी० च० २८।२६
४—वही, २०।१६
५—कहुं नर्तत नट राज, रा० च० २।३
६—वी० च० ?७।८
७—ज० च० छ० ४७
८—भट नट मनो खुलहाटै चुकै।—वी० च० १२।३५

लव ने बाणों से अंगदको इस प्रकार नीचे से ऊपर किया, जैसे आकाश में नट के गोले नीचे ऊपर को आते जाते हैं ।[1] डा०प्राणनाथ चोपड़ाने मुगलकाल में नटोंकी अधिकता का उल्लेख किया है ।[2] अत: यह अनुमान किया जा सकता हैकि सामयिकता के प्रभावसे प्रेरित होकर केशव ने इस खेल का उल्लेख किया होगा ।

अलौकिक साधनों से लोकातीत सिद्धियों का प्रदर्शन इन्द्रजाल कहा जाता है । वेदों के मंत्र स्तुतियों के द्वारा देवतानुग्रह पाकर अलौकिक सिद्धियों को हस्तगत करलेने के कई उदाहरण मिलते हैं । इन्द्रजाल का प्रत्यक्ष उल्लेख तो केशव साहित्य में नहीं हुआ है । परन्तु रावण अंगद संवाद के प्रसंग में बाजीगर के द्वारा सिरों के काटे जाने की बात कही गयी है ।[3] डा० प्राणनाथ चौपड़ा के अनुसार मुगलकाल में ऐन्द्रजालकों के दल के दल होते थे ।[4]

वसन्त ऋतुराज कहा जाता है , वाल्मीकि के अनुसार वसन्त श्रृंगार वासना का उद्दीपक है ।[5] पुराणों में भी इसका समर्थन किया गया है । केशव ने वीरसिंह देव चरित के छब्बीसवें प्रकाश मे इस उत्सव का विस्तार से वर्णन किया है । वसन्त के समय उद्यानवन में बहुत सी सुन्दरियों के खूब सजधज कर आने का उल्लेख किया है । राजा वीरसिंह देव ने अपनी पत्नी "पार्वती" के सिर पर आम्र-मंजरी का मौर रखा । राजा ने अपने हाथों में पुष्पों के धनुष लिए । फिर धनुष और बाणों की पूजा की गयी । कुंकुम आदि सुगंध द्रव्यों से काम की पूजा की गयी । बीच-बीच मे भेरी, झांझ, शंख आदि की मधुर ध्वनि होने लगी ।[6]

ऊपर के विवेचन के विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि केशव ने कवि लोक में परम्परागत रूप से आने वाले वसन्तोत्सव या मदन मनोत्सव का वर्णन किया है ।

हिंडोरा वर्षा के आगमन पर मनाया जाने वाला उत्सव है । इसमें मनोविनोद का तत्व अधिक होने के कारण इसका वर्गीकरण खेल के अन्तर्गत किया जाता है । केशव

१—सोहत है ग्रध-ऊरध ऐसो होत बटानट को नभ जैसे ।—रा० चं० ३८।१३

2—Some Aspects of Society and Culture during the Mughal Age. Page No. 72

३—काटे जो कहत सीख, काटत घनेरे धाध ।—रा० चं० १६।२६

4—Some Aspects of Society culture during the Mughal Age. Page No. 72

५—वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा काण्ड, १।३०-३१

६—वी० च० २६।१-२०

ने इस खेल के बारे में उल्लेख किया है। कृष्ण के द्वारा गोपिकाओं के हिंडोरे पर झुलाये जाने की बात एक स्थान पर कही गयी है।[१] एक अन्य स्थान पर इसका प्रयोग अप्रस्तुत के रूप में किया गया है।[२] वीरसिंह देव के नगर में मणियुक्त हिंडोरों के रहने की बात लिखी गयी है।[३]

नगर में प्रायः कृत्रिम वस्तुओं के द्वारा ही मनोविनोद की प्राप्ति होती है। किन्तु जब उनसे मानव का मन ऊब जाता है तब प्राकृतिक वस्तुओं के द्वारा आनन्द का अनुभव करना चाहता है। इसी कारण भारत के राजाओं ने नगर के बाहर अनेक उपवनों का आयोजन किया था, जिनमें पुष्प, लता, पशु पक्षी आदि विनोद के अनेक साधन रहते थे। इन उपवनों में विहार करके राजा लोग अपना मन प्रसन्न कर लेते थे। वन विहार के समय सपत्नीक राजाओं के साथ हजारों रमणियों, सपत्नीक नागरिक, वेश्याएं, बन्दीजन, हाथी, घोड़े रथ आदि भी जाते थे।

केशव में वन विहार सम्बन्धी अनेक वर्णन मिलते हैं। रामचन्द्रिका तथा वीरसिंह देव चरित में तो अनेक छन्दों में इसका वर्णन किया है। वसन्त काल की शोभा देखकर राम अपने अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ उपवन में चले गये।[४] वहां जाकर उन्होंने अपने अन्तरंग सखा शुक से सीता की दासियों के नखशिख के सौंदर्य की प्रशंसा सुनी। उसके बाद राम अपने परिजनों के साथ बाग में विहार करने गये। उस बाग में अनेक प्रकार के पुष्पों तथा फलों से युक्त वृक्ष और लता शोभित थे। उसमें कई प्रकार के पक्षी कल-कल निनाद कर रहे थे। उसमें कृत्रिम पर्वत तथा उनसे निकलने वाली कृत्रिम नदियां भी थीं। उनकी शोभा देखकर राम और उनके साथी प्रसन्न हो गये।[५] वीरसिंह देव चरित में सुन्दरियों की इच्छा के अनुसार वीरसिंह देव उपवन में जाने, वहां वृक्ष, लता और गुल्मों की शोभा देखने, पक्षियों के कलकल निनाद सुनने तथा क्रीड़ा पर्वत और कृत्रिम नदियों की शोभा देखने आदि का वर्णन किया गया है।[६] रसिक प्रिया में एक स्थान पर राधा के साथ श्रीकृष्ण के वन विहार जाने का ऊल्लेख प्राप्त होता है।[७]

१—र० प्रि० ५।२३
२—र० प्रि० ८।२८
३—तामैं मनिमय बनौंहिंडोला। —वी० च० २०।८
४—रा० च० ३१।६-४०
५—रा० चं० ३२ वें प्रकाश के १ से ३२ तक के छन्दों के आधार पर
६—वी० च० २३ और २४ वें प्रकाशों के आधार पर
७—र० प्रि० १।१७

भारत देश उष्ण प्रधान होने के कारण जल विहार को प्राचीन काल से ही प्रमुख स्थान दिया गया है। भारतीय धर्म चर्चा में नदी-स्नान को महत्वपूर्ण स्थान इसी कारण दिया गया है। वैदिक साहित्य में भी पुरूरव कथा प्रसंग में अप्सराओं के जल विहार का उल्लेख किया गया है। नौका विहार भी जल विहार का एक प्रधान अंग था। कालिदास के रघुवंश में राजा कुश नाव पर बैठकर नारियों की जलक्रीड़ा देखते हैं।[१] मुगलकाल में भी नावों पर बैठकर जल विहार करने के प्रमाण मिलते हैं।[२] केशव साहित्य में रामचन्द्रिका तथा वीरसिंह देव चरित में जलक्रीड़ा का उल्लेख बड़े विस्तार से किया गया है। रामचन्द्रिका के ३२ वें प्रकाश में सीता की दासियों के जलक्रीड़ा करते समय किसी के द्वारा हंसों को पकड़े जाने, किसी के द्वारा आभूषण गिराने, किसी के द्वारा डुबकी लगाकर उन आभूषणों को बीच से ही पकड़ लाने तथा उन्हें देखकर देव कन्याओं के विमोहित हो जाने का उल्लेख किया गया है।[3] सम्मिलित जलक्रीड़ा का भी उल्लेख केशव ने किया है। राम ने भी तरुणियों के साथ सरोवर में जलक्रीड़ा की थी।[४] वीरसिंह देव चरित में भी इसी प्रकार की सम्मिलित जलक्रीड़ा का वर्णन किया गया है।[५] रसिक प्रिया में राधा-कृष्ण की जलक्रीड़ा का वर्णन किया गया है। इस संदर्भ में उनके डुबकी लगाने और भीतर ही भीतर निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचकर निकलने आदि का उल्लेख है।[६]

इनके अतिरिक्त मछली पकड़ने[७] आंख मिचौनी[८] बंदर का नाच[९] बच्चों के खिलौने[१०] आदि की ओर भी केशव साहित्य में संकेत किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केशव ने प्राय: उच्च वर्गीय खेलों और मनोविनोदों का ही वर्णन किया है। खेलों के सम्बन्ध में केशव ने कहीं निंदा या स्तुति नहीं की। जुए को अवश्य राजाओं के लिए वर्जित बतलाया गया है। राजवर्ग से विशेष संबन्धित होने के कारण चौगान के वर्णन में कवि ने विशेष रुचि ली है। चौपड़

१—परस्पराम्युक्षण तत्पराणां तासां नृपो मज्जन राग दर्शी।
नौ संश्रयः पार्श्वगतांकिराती मुपात्त बाल व्यजन बभाषे ॥ —रघुवंश, १६।५७

२—डा० प्राणनाथ चोपड़ा-सम एस्पेक्ट्स आफ सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मोगल एज। —पृ० ६८

३—रा० चं० ३२।३७
४—वही, ३२।३७-३८
५—वी० च० १५।२०
६—र० प्रि० १५।३७
७—रा० चं० २४।७
८—र० प्रि० ५।२६
९—वी० च० २२।६७
१०—रा० चं० २१।३३, क० प्रि० ११।३८

और शतरंज को कामशास्त्रीय उद्दीपन के रूप में लिया गया है। ब्रज के लोक साहित्य में भी चौपड़ का उल्लेख कामक्रीड़ा के भाग के रूप में किया गया है। वसन्तोत्सव और जलक्रीड़ा तो कामशास्त्रीय महत्व रखते ही हैं। इस प्रकार केशव ने कामशास्त्रीय क्रीड़ाओं या मनोविनोदों के वर्णन में सामान्य खेलों के वर्णन की अपेक्षा अधिक रुचि ली है। मुगल कालीन ललित वातावरण के राज्याश्रित कवि से यही आशा की जा सकती है।

मुगल काल के विलासी वातावरण में वेश्याओं की मान्यता बढ़ गयी थी। प्रत्येक राज दरबार में वेश्याओं को स्थान मिल गया था। दरबारों में होने वाले नाच गान देखने के लिए दरबारी लोग एकत्र होते थे। वात्स्यायन ने भी अपने समय में प्रचलित गोष्टियों का विस्तृत ब्यौरा 'कामसूत्र' में दिया है।[1] केशव के विचार से स्त्री पूज्य है। इसी कारण उन्होंने अपने साहित्य में वेश्या के तत्व की निन्दा की है। पर परिस्थिति प्रभाव से वेश्या का समावेश केशव साहित्य में हुआ है। लेकिन वेश्या गमन का औचित्य उन्होंने कहीं नहीं बतलाया है। यहां तक कि रसिकप्रिया के नायक निरूपण में भी वेश्या को छोड़ दिया गया है। अपने आश्रयदाता इन्द्रजीत सिंह के दरबार में रहने वाली वेश्या प्रवीणराय की तुलना रमा, शारदा और उमा से की है।[2] राज दरबारों में रहने वाली अनेक वेश्याओं का उल्लेख कवि ने किया है। राजा रामसिंह के दरबार में काम सेना नामक वेश्या रहती थी। इसी प्रसंग में सुकेशी, मंजुघोषा, और उर्वसी नामक देव वेश्याओं का भी उल्लेख किया गया है।[3] एक स्थान पर उल्लेख किया गया है कि धन देने से ही वेश्या संतुष्ट होती है।[4]

विवाह, अभिषेक आदि विशेष अवसरों पर वेश्याएं अपनी कला के प्रदर्शन द्वारा लोगों का मनोरंजन करती थीं। सीताराम के विवाह के समय पर वेश्याओं ने नाचगान से बरात के लोगों का मनोरंजन किया था।[5] शिष्ट समाज में वेश्या से संपर्क रखना निन्द्य माना है तो भी कामशास्त्र के अनुसार वेश्या से संभोग करने की मनाही नहीं है।[6] सब कलाओं का ज्ञान रखने वाली वेश्या का जनता सम्मान करती थी। राजा तथा कला प्रेमी नागरिक तक उसे मान देते थे।

१—रामायणकालीन संस्कृति, डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, पृ० १०१
२—र० प्रि० १।५८, ५९, ६०
३—र० प्रि० ११।३५ ४—वही, १०।७
५—कहूं लोलिनी वेडिनी गीत गावें। रा० चं० ६।१३
६—वात्स्यायन काम सूत्र, अनु० कविराज विपिनचन्द्र बंधु, पृ० ३५

ऊपर के विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि वेश्या मनोविनोद का एक प्रमुख साधन था। प्राचीन काल से ही उसे समाज में मान्यता मिलती आ रही है। देवालय आदि धार्मिक संस्थाओं में भी उसे प्रवेश प्राप्त था। विशेष धार्मिक कृत्यों में भी उसका नाच-गान होता रहा। यही कारण है कि देवालयों में देवदासियों की प्रथा चलती रही, यद्यपि आजकल इसका प्रचलन बहुत कम हो गया है।

३-३७३ दान :

त्याग, दान, परोपकार आदि भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। श्री दयाशंकर उपाध्याय के अनुसार धार्मिक कार्यों में दान अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। धर्म ग्रंथों में तो इसका विशद विवरण मिलता है। वृहस्पति एवं अत्रि तो भूमि दान को ही प्रधान दान मानते हैं। लेकिन दान को स्थायित्व प्रदान करने के लिए राजा या प्रजा दान पत्र लिखवाते थे।'[१]

देशकाल और पात्र को दृष्टि में रखकर अपने अभ्युदय के उपलक्ष्य में दान दिया जाता है। केशव दास ने अपने साहित्य में दान का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है। उन्होंने दान के अनेक वर्गीकरण किये है :

(१) विधि विधान के आधार पर—सात्विक, राजस और तामस

(२) दाता की भावना के आधार पर—उत्तम, मध्यम, अधम

(३) नियमितता के आधार पर—नित्य और नैमित्तिक

(४) फलापेक्षा के आधार पर— सकाम और निष्काम

(५) धर्म के आधार पर—दक्षिण तथा वाम

(१) सात्विक, राजस तथा तामस दान :

किसी विद्वान ब्राह्मण को सस्त्रीक अपने हाथों पूजा कर वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए सुवर्ण सहित जो दान दिया जाता है, वह सात्विक दान कहा जाता है।[२] देश

१—परिषद् पत्रिका, सं० वैधनाथ पाण्डेय, जनवरी १९६६; पृ० ९७

२—रा० चं० २१।३

और काल को ध्यान में रखकर ब्राह्मण को दिया जाने वाला दान भी सात्विक दान के अंतर्गत आता है।[१] अनुपकारी व्यक्तियों को देशकाल और पात्र को ध्यान में रखकर जो दान दिया जाता है उसे भगवद्गीता में सात्विक दान कहा गया है।[२]

आलस्य के कारण अपने हाथ से न देकर दूसरों के हाथों से दान दिलाना राजसी दान कहलाता है।[३] भगवद्गीता के अनुसार प्रत्युपकार की इच्छा से या फलापेक्षा या अप्रसन्नता से जो दान दिया जाता है, वह राजस दान कहा जाता है।[४]

विधिविहीन[५] और श्रद्धा रहित होकर[६] जो दान दिया जाता है, वह तामस दान कहा जाता है। भगवद्गीता के अनुसार देश, काल और पात्र का ध्यान नहीं रख कर आदर-सत्कार के बिना जो दान दिया जाता है, वह तामस दान दिया जाता है।[७]

२—उत्तम, मध्यम, अधम दान :

दाता की व्यक्ति भावना को दृष्टि में रखकर केशव ने दान के उत्तम, मध्यम और अधम इन तीनों भेदों की भी चर्चा की है।[८] ब्राह्मण के घर जाकर अनेक प्रकार उसका पूजन करके जो दान दिया जाता है वह उत्तम दान कहा जाता है।[९]

१—पाइ सुविप्रहि दीजे दान। देस काल सो सात्विक दान॥ वी० च० २८।२१

२—दातव्य मिति यद्दानं दीयते अनुपकारिभिः।
देशे कालेच पात्रेच तद्दानं सात्विकं विदुः। भगवद्गीता, १७।२०

३—[अ] देहि नहीं अपने कर दानै। और के हाथ जो मंगल जानै।
दानहि देत जु आलस आवै। सो वह राजस दान कहावै॥ रा० च० २१।४
[आ] आपन देय देय जुग दान। तासौं कहियै राजसु जाना॥ वी० च० २८।२४

४—यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्यवापुनः।
दीयतेच परिक्लिष्टं तद्दानं राजसंस्मृतम्॥ भगवद्गीता, १७।२१

५—विप्रन दीजहु हीन विधानै। जानहु ता कहं तामस दानै। रा० च० २१।५

६—बिन श्रद्धा अरु वेद विधान। दान देहि ते तामसदान॥ वी० च० २७।२४

७—अदेशकाले यद्दान मपात्रे भ्यश्चदीयते।
असत्कृत मवज्ञातं तत्तामस मुदाहृतम्॥ भगवद्गीता, १७।२२

८—तीन्यों तीनि तीनि अनुसार। उत्तम मध्यम अधम विचार। वी० च० १८।१५

९—द्विजाधम देइजु जाइ। बहुभांति पूजि सुराइ।
कछु नाहिनैं परिमान। कहिये सो उत्तम दान॥ रा० च० २१।६

ब्राह्मण को अपने घर बुलाकर दान देना मध्यम[१] तथा किसी गुणी व्यक्ति के मांगने पर दान देना अधमदान कहा जाता है।[२] केशव के अनुसार अधम दान का कोई फल नहीं होता है।[३] उन्होंने इसे धर्मनाश के लिए दिया जाने वाला दान माना है।[४]

३—नित्य या नैमित्तिक दान :

प्रतिदिन विधि-विधान के अनुसार जो दान दिया जाता है वह नित्य दान[५] तथा पर्वादि विशेष अवसरों पर दिया जानेवाला दान नैमित्तिकदान[६] कहलाता है।

४—सकाम तथा निष्काम दान :

फलापेक्षा तथा वासना के अनुसार दान दो प्रकार का होता है।—(१) सकाम तथा (२) अकाम। फल की इच्छा से दिये जाने वाला दान सकाम तथा ईश्वर के प्रेम से दिया जाने वाला दान अकाम कहलाता है।[७] अकाम दान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि भगवद्‌गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि नियत कर्म करने में ही तुम्हारा अधिकार है। फलकी इच्छा में तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। कर्मफल का कारण मत बनाना और कर्म के परित्याग में तुम्हारी आसक्ति नहीं बढ़नी चाहिए।[८]

५—दक्षिण तथा वाम दान :

धार्मिक कृत्यों के लिए दिया जाने वाला दान दक्षिणा और धर्म विरुद्ध कृत्यों के लिए दिया जाने वाला दान वाम दान कहलाता है।[९]

१—द्विज को देइ बुलाइ। कहिए सु मध्यम राइ॥ वही, २१।७

२—गुनि याचना मिस दानु। अति हीनता कहं जानु॥—वही, २१।७

३—मांगे दीजै अधम सुदास। सेवा कौ सब निरफल दान॥—वी० च० २८।२५

४—धर्म विनोसो अधम् बखान।—वी० च० २७।३०

५—प्रतिदिन दीजत नीम सौं ता कहं नित्य बखान।—रा० चं० २१।८

६—कालहिं पायजु दीजिये सौं नैमित्तिक दान।—रा० चं० २१।८

७—दान सकाम अकाम कहे हौं। पूरि सबै जग मांझ रहे हैं॥
इच्छित ही फल होत सकामैं। राम निमित्त तै जनि अकामै॥—रा० चं० २१।१०

८—कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन।
माकर्म फल हेतुर्मूमाते संगो स्त्वकर्मणि॥—भगवद्‌गीता, २।४७

९—दानतै दच्छिण वाम बखानौ। धर्म निमित्त तो दच्छिण मानौ।
धर्म विरुद्ध ते वाम गुणौजु दान कदान सबै ते सुनौ जु।—रा०च० ११।११

इन मुख्य दान भेदों के अतिरिक्त केशव ने षोडष दान का भी उल्लेख किया है। वीरसिंह देव चरित्र में प्रयाग के वर्णन के संदर्भ में षोडष दान दिये जाने की बात कही गयी है।[१] केशव ने दान के योग्य वस्तुओं के रूप में भूमि,[२] वस्त्र[३] आदर भाव सूचित करने के लिए पुष्पमाला,[४] गाय,[५] पशु, भोजन, आभरण पुत्र, कलत्र और प्राण,[६] ग्राम[७-८] हाथी,[८] घोड़े,[९] आदि का उल्लेख किया है। विवाह आदि शुभ अवसरों पर वितान, कवच, छत्र, चामर, गज, हय, आदि को दान में दिये जाने की बात भी कही है,[१०] राजा मधुकरशाह के द्वारा अपने परिवार को पुराण वृत्ति दान रूप में प्राप्त होने की चर्चा भी केशव ने की है।[११] विशेष पर्व त्यौहारों तथा यज्ञ के समय को ही केशव ने दान के लिए समुचित काल[१२] तथा पुण्यतीर्थों को योग्य देश माना है।[१३]दान के उत्तम पात्र के रूप में ब्राह्मण को विशेषतः सनाढ्य ब्राह्मण को स्वीकार किया है।[१४]

केशव के अनुसार दान देने से समस्त पापों का विनाश, भोगों की प्राप्ति संपत्ति की वृद्धि और यश प्राप्ति होती है।[१५] ब्राह्मण जाति के रावण को मारने से राम को जो ब्राह्महत्या का दोष लग गया था। उससे विमुक्ति पाने के लिए राम को दान देने की

१—नारीनर बहु डुबकी लेत। जनु अपने अभिलाषनि हेत।
हरि बूझत सब बारहि बार जहां तहां षोडष उपचार।।—वी० च० ५।२६

२—रा० चं० २१।१३

३—वी० च० ३२।५२

४—रा० चं० २३।३३

५—वही, ३०।२७

६—वि० गी० १८।६

७—रा० चं० ३४।४२

८—वी० च० ५।४२

९—रा० चं० २६।२१

१०—वही, ६।६४,६५

११—दोउ दीन पुकारहिं जग में जय की कीर्ति।
कृष्ण दत्त मिश्रहि दई जिन पुराण की वृत्ति।।—वि० गी० १।१७

१२—रा० चं० ०७।६,२६।१८

१३—वी० च० ५।२६

१४—देहु सनाढ्यन आदि दै। आये सहित विवेक।।—रा० चं० २१।१४

१५—दान दिये नासत सब रोग। दान दिये उपजत दिन भोग।
दान दिये दिन संपति बढ़ै। दान दिये जगती जस चढ़ै।।—वी० च० १।५६

सम्मति भरद्वाज ने दी थी। दान देने से परलोक में सुख मिलने की बात भी लिखी गयी है। दान के कारण अमर कीर्ति प्राप्त हुए प्रसिद्ध व्यक्तियों के नामों का उल्लेख भी केशव ने किया है। इन में हरिश्चन्द्र, तोडरमल, बीरबल, मधुकरशाह आदि मुख्य हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केशव के अनुसार दान एक सांस्कृतिक कर्म है। देश और काल को दृष्टि में रखकर उत्तम ब्राह्मण को दान देने से दाता के पापों का विनाश तथा शाश्वत कीर्ति की प्राप्ति हो सकती हैं। उक्त विवेचन से केशव की धार्मिकता का भी परिचय प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त एक ऐतिहासिक कारण भी माना जा सकता है। तत्कालीन इतिहास क्षत्रियों के लिए एक प्रकार से युद्ध वीरता, ह्रास का ही इतिहास है। युद्ध वीरता के कुंठित हो जाने पर दान वीरता एक क्षतिपूरक क्रिया बन जाती है। प्रशस्ति गायक भी दान वीरता के गीत अधिक गाने लगते हैं। दान वीरता का अत्युक्ति पूर्ण वर्णन केशव ने भी किया है और अन्य सभी कवियों ने भी। केशव ने विशेष रूप से ब्राह्मण को दान देना ही प्रमुख माना है। इस प्रकार राजकीय दान का प्रमुख अधिकारी ब्राह्मण माना जाता था। किन्तु अन्य जातियां भी इस क्षेत्र में ब्राह्मण से प्रतियोगिता मानती थी। ब्राह्मणों को ही अधिक प्रधानता देना इस प्रतियोगिता के कारण ही माना जा सकता है।

३—४ लोक संस्कृति :

भारतीय जीवन के अनन्त स्रोतों का मूल उद्गम मुख्यतः लोक संस्कृति ही है। यह लोक संस्कृति अपने प्रकृत रूप में आज भी हमारे गांवों, वनों और पर्वतों में प्रकृति की छाया में अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए हैं। लोक शब्द का अर्थ सामान्य जन है। वह सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज की सब गतिविधियों को अपना कर आगे बढ़ता है। डा० सत्येन्द्र के अनुसार "लोक" मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।[१] एक प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान भी इसी वर्ग से सम्बद्ध संस्कृति को लोक संस्कृति मानते हैं।[२]

१—मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, पृ० ३

2- Culture is the complex whole which includes knowledge, belief, art morals, law, customs and other capabilities acquired by man as a member of society.
E. B. Tylor : primitive culture page No. 1

लोक संस्कृति की आत्मा गांवों में उपलब्ध होती है । इस सम्बन्ध में आचार्य युगलकिशोर जी का विचार उल्लेखनीय है। उनके अनुसार लोक संस्कृति की आत्मा गांवों और जंगलों में रहने वालों के रीति-रिवाजों और आचार-विचारों में निहित है। अपने देश और संस्कृति की समृद्धि के लिए हमें लोक संस्कृति के संरक्षक सन्देशवाहक आदिम जातियों और किसान मजदूरों से तादात्म्य संबन्ध स्थापित करना चाहिए।[1] आचार-विचार, तीर्थाटन, पर्वत्यौहार आदि में जो एकता भारत में हमें प्राप्त होती है, वह अन्य देशों में अपेक्षाकृत कम प्राप्त होती है। महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज के अनुसार भारतीय लोक संस्कृति में पौराणिक कथाओं, तीर्थाटन, व्रत, उत्सव और पर्वों की जो प्रणाली परम्परागत चली आ रही है, उसी से लोक संस्कृति का संपादन हुआ। इस प्रशस्त प्रणाली ने भारतीय जीवन एवं भारतीय संस्कृति तथा भारत देश को प्राणवान् और जाग्रत बनाये रखने में बड़ा योगदान दिया है।[2]

समाज विशेष में प्रचलित उन बातों को हम लोक मान्यताएं कह सकते हैं जिनकी सत्यता का अनुभव मानवजाति परम्परा से करती आयी है। ऐसी मान्यताओं की पुष्टि दो प्रकार से होती है। पहले पूर्व युगों के विविध ग्रन्थों द्वारा इनका परिचय प्राप्त होता है और दूसरे परिवार या समाज के बड़े बूढ़े अनेक आख्यानों तथा उपाख्यानों के द्वारा उनके प्रति विश्वास दिलाते हैं। शताब्दियों तक प्रचलित होने के कारण ये मान्यताएं तथा विश्वास किसी भी देश या समाज की संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाती हैं। भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित जिन परम्परागत मान्यताओं का वर्णन केशव साहित्य में मिलता है उन्हें दस शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है : १. पौराणिक प्रसंग २. ज्योतिष के प्रति आस्था ३. स्वप्न दर्शन ४. शकुन-अपशकुन ५. भूत-प्रेतादि पर विश्वास ६. टोने टोकना ७. शपथ खाना ८. शाप और वरदान ९. कवि प्रसिद्धियां तथा १०. उपचार सम्बन्धी विश्वास।

३-४१ पौराणिक प्रसंग और कथा श्रवण पर विश्वास :

पौराणिक कहानियों का भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। इन कहानियों के द्वारा भारतीय संस्कृति की प्राचीनता तथा महत्ता का परिचय मिलता है। केशव द्वारा प्रयुक्त पौराणिक कथाओं के सूत्र ये हैं :—

१—सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृ० १३
२—सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृ० १६

समुद्र मंथन, पृथु का पृथ्वी दोहन[१], राक्षसों से भयभीत होकर विष्णु का भागकर प्राण रक्षा कर लेना, परशुराम के भय से क्षत्रियों का स्त्री रूप धारण कर लेना[२] वामन का पृथ्वी मापन तथा बलि का पाताल पतन[3], गजेन्द्र मोक्ष, नृसिह द्वारा प्रह्लाद की रक्षा[४], आन्तरिक कलह के कारण यदुवंश का नाश[५], मेघनाद के द्वारा देवेन्द्र का बांधा जाना[६], अपने भार मोचन के लिए पृथ्वी का सुर लोक में जाना[७], वराह कथा[८], कैटभ, नरक, मधु और मुर का विष्णु द्वारा वध[९] रावण के द्वारा कैलास पर्वत का उठाया जाना[१०] अगस्त्य का समुद्र पान[११] प्रलय के समय विष्णु का वट पत्र पर रहना[१२] त्रिपुर दहन[१३] देवी दुर्गा के द्वारा शुंभ निशुंभ का मारा जाना[१४] कृष्ण के द्वारा अर्जुन के प्रति गीता का उपदेश[१५] शुक महर्षि का वैराग्य[१६] कृष्ण सुदामा की मैत्री[१७] सहस्रार्जुन के द्वारा रावण का पकड़ा जाना और उसको विचित्र जन्तु समझकर अस्तबल में बांधना[१८],

---

१—उद्दिम छीर समुद्र मथ्यो सब रतन जु लीने ।
उद्दिम वसुधा गाइ दुही सब बीजनि का जैं ॥ —ज० ज० चं० २०

२—विष्णु भाजि भाजि जात छोड़ि देवता अशेष । —रा० चं० १८।१५

३—वामन मांग्यो त्रि पैग धरा दछिना बलि चौदह लोक दिये ।
रंचक बैर हुतो, हरि बंचक बांधि पताल तऊ पठयो ॥ —रा० चं० १८।१८

४—ज्यों गज की प्रह्लाद की कीरत ज्यों ही विभीषन को जस बाढो । —रा० चं० १५।१४

५—करै बिना शत्रु और को, ताको नित्य विनाश ।
केशवदास प्रकाश जग ज्यों यदुवंश विनाश ॥ —वही, १८।१५

६—वानर को नर को बपुरा, पल में सुरनायक बांधि लियो । —वही, १६।१३

७—दुख निवेदन को भव भार को भूमि किधौं सुर लोक सिधाई । —क० प्रि० ५।३५

८—वह हरी हठि हिरनाच्छ दैयत देखि सुन्दर देह सौं ।
कर बीर यज्ञ वराह बर ही लई छीन सनेह सौं ॥ रा० चं० ४।१५

९—कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जेइ मार्यो

१०–पर्वत उठाय गति कीन्हीं है कमल की । —रा० चं० ४।१५

११–कुंभज पावन जानि उपावन घोखे पियो पचि जानि न दीनो । —र० प्रि० ८।३२

१२–बट दल बसन सजल थल भल कर । —क० प्रि० १६।८

१३–वर ज्यों हौं हरि त्रिपुर हर, बारक करि भ्रू भंग । —क० प्रि० १०।३

१४–हरि हर सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों । रा० चं० १६।२२

१५–बन्धु नाश अर्जुन कियो हरि के उपदेश । —वि० गी० ६।३२

१६–वि० गी० १४।२६-२८

१७–साहि देखि राख्यौ उर लाय ।
ज्यों हरि सुखन सुदामहि पाय ॥ —वी० च० ६।२६

१८–हैहय करी सो करैंगे । —रा० चं० ४।२२

भागीरथ के द्वारा गंगा का भूलोक में लाया जाना[१] ,सहस्त्रार्जुन के द्वारा जमदग्नि का सिर काटा जाना[२] जनमेजय के द्वारा नागयज्ञ किया जाना[३] राजा नल और दमयन्ती का वियोग[४] इन्द्र से डरकर मैनाक का समुद्र में छिप जाना[५] चन्द्रमा का राहु द्वारा ग्रसा जाना[६] राम की मृत सेना पर इन्द्र का अमृत बरसाना[७], गाधि ब्राह्मण का चंडाल वंश में जन्म लेना[८], त्रिशंकु की कथा[९] , काम दहन की कथा[१०] हरिश्चन्द्र का सत्यव्रत, दधीचि का त्याग, तथा अंबरीष की भक्ति[११], विक्रमादित्य का सुशासन[१२] आदि।

भक्ति कालीन साहित्य की प्रमुख विशेषता पौराणिक दृष्टांतों तथा उदाहरणों की योजना कही जा सकती है। यदि रीतिकाल और भक्तिकाल को अलग किया जा सकता है तो उसमें पौराणिक कथाओं का भी एक प्रमुख आधार होगा। केशव इस दृष्टि से भक्ति कालीन संस्कृति के अधिक ठहरते हैं। रीतिकालीन साहित्य में पुराण कथाओं के इतने सूत्र नहीं मिलते। अधिकांश दृष्टांत और कथासूत्र वे ही हैं जिनका किसी न किसी रूप में भक्ति कवियों ने उल्लेख किया है। संस्कृत साहित्य की प्रबन्ध धारा में भी पौराणिक सूत्रों का आधिक्य रहता था। उदाहरण के लिए कालिदास ने पृथु का प्रसंग[१३] दिया है। पौराणिक सूत्रों से केशव साहित्य का सांस्कृतिक परिवेश भी विस्तार ग्रहण करता है। और भक्तिकालीन साहित्य की संस्कृति का प्रतिपादन भी हुआ है। काव्य के अप्रस्तुत विधान का भी उद्धार इन कथा सूत्रों से हुआ है। इन से यह बात भी सिद्ध होती है कि केशव मुख्यतः प्रबन्धकार थे। मुक्तकों में कथा सूत्रों का इतना विस्तृत आयोजन संभव नहीं हो सकता।

१—मनो भगीरथ पथ चल्यौ। जह तहं सहित उछाह॥ —रा० चं० ६।३०

२—तब तासुमद छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू। —वही, ८।३५

३—जनमे जय तें ज्यों हरि डरै। तक्षक की रक्षा सी करै। —वी० च० १४।३२

४—इहि दुख देखन की नौ कोह। नल दमयन्ती भयौ बिछोह। वी० च० १।३८

५—उदधि नाकपति शत्रु को। उदित जानि बलवंत॥ —रा० चं० १३।३६

६—राहु ग्रसन भय उर में माडि। अये चन्द्र मंडली छाडि। —वी० च० १६।३

७—रा० चं० २०।१६

८—वि० गी० १३।३६

९—वी० च० ११।४७

१०—वही, १।४०

११—ज० ज० चं छं० ११८

१२—वि० गी० २।२२

१३-य सर्व शैलाः परिकल्प्य वत्सं। मेरौ स्थिते दोग्धरि दोह दक्षे।
भास्वंति रत्नानि महौषधीं च। पृथूप दृष्टाम दुदुहुर्धरित्रीम्॥ कुमार सम्भव, प्रथम सर्ग २

हिन्दू संस्कृति में पौराणिक या धार्मिक कथाओं को महत्वपूर्ण स्थान है। लोगों में यह विश्वास स्थिर हो गया है कि पुण्यकथाओं के पठन या श्रवण करने से पापों का विनाश तथा पुण्य की प्राप्ति होती है। डा० सत्येन्द्र ने कथा श्रवण के महात्म्य के वर्णन से सम्बन्धित लोक तत्व का दिग्दर्शन इस प्रकार किया है—'किसी देवता की कहानी या चरित्र का पाठ एक विशेष महत्त्व रखता है। इसमें यह मान्यता है कि ऐसा पाठ देवता को प्रसन्न करता है। और उससे देवता वश में होता है और वह वहां पर प्रस्तुत हो जाता है।''[1] कथा श्रवण के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए डा० सत्येन्द्र आगे लिखते हैं कि 'कथा द्वारा राम या कृष्ण जहाँ दैत्यों या असुरों का संहार करते होते हैं, वहां वे स्रोता के भी वैसे ही शत्रुओं का संहार करते होते हैं।' अतः चरित पाठ से न केवल उस पुरुष की प्राप्ति होती है, वरन् ऐसे प्रकट अप्रकट संकट भी टल जाते हैं। इसीलिए राम-लीला या राम कथा या अन्य कथाओं का प्रचलन हुआ है।[2] इसी कारण अति प्राचीन काल से सभी धार्मिक तथा अन्य काव्य ग्रन्थों के अन्त में महात्म्य का वर्णन होता आया है। वाल्मीकि रामायण में भी उस बात की पुष्टि की गयी है। वहां एक श्लोक में लिखा गया है कि इसके पाठ से पुत्रहीन को तुत्र प्राप्ति तथा धनहीन को धन प्राप्ति होती है। जो प्रतिदिन इसके श्लोक के एक चरण का भी पाठ करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।[3] भगवद्गीता में भी स्पष्ट कहा गया है कि एकादशी आदि पर्व दिनों में जो आदमी गीता का अध्ययन करता है, वह किसी भी अवस्था में किसी व्यक्ति से भी अपमानित नहीं हो सकता। जो आदमी प्रतिदिन गीता का पाठ तथा श्रवण करेगा वह अनेक अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त करेगा। जहां गीता और उसका पाठ होता है वहां प्रयागादि सभी तीर्थों का निवास होता है।[4]

तुलसी ने भी रामकथा के महात्म्य के प्रति इसी प्रकार का विश्वास व्यक्त किया

१—मध्य युगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन—पृ० ४६६

२—वही, पृ० ४६३

३—अपुत्रो लभते पुत्रं अधनो लभते धनम्।
सर्वं पापैर्हि समुच्यते पादमप्यस्ययः पठेत् ॥—वाल्मीकि रामायण, उत्तर० १११।५

४—यो धीते विष्णु पर्वाहौ गीतां श्रीहरिवासरे।
स्वप्न जाग्रत चलन्तिष्ठन् शत्रुभि र्नसहीयते ॥—गीता महात्म्य, २०
गीता पाठंच श्रवणंयः करोति दिने दिने।
क्रतवो वाजि मेधाद्याकृता स्तेन सदाक्षिणाः ॥—वही, २५
गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्यपाठंच वर्तते।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि भूतले ॥—वही, ४०

है ।[1] केशव साहित्य में भी कथा श्रवण महात्म्य की चर्चा की गयी है । रामन्द्रिका में केशव ने रामचरित्र को सुनने तथा पढ़ने वालों को पुण्य प्राप्ति होने का उल्लेख किया है । कवि के अनुसार रामचरित्र का पाठ करने वाला चाहे पुरुष हो चाहे नारी, चाहे ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय, चाहे वैश्य हो चाहे शूद्र उसे पुत्र कलत्र तथा सम्पति की प्राप्ति और अनेक यज्ञदान तथा तीर्थ स्नान करने का फल मिलेगा ।[2] रामचन्द्रिका-पाठ के फल के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि जो इस रामचन्द्रिका कहेगा, या पढ़ेगा वह अपने सब पाप पुण्यों का नाश करके राजा जनक की इसी देह से राम भक्त कहलाता हुआ सब प्रकार के भोग भोगेगा और अन्त में मुक्ति को प्राप्त करेगा ।[3] राम के अभिषेक की कथा का पल भर भी गान करने से पुत्र और सम्पति की प्राप्ति, सकल पापों का विनाश और स्वर्ग की प्राप्ति होने की बात कही है ।[4] केशव ने अपने काव्य के अन्तर्गत स्तोत्रों को सुनने, पढ़ने, पढ़ाने, मनन करने तथा मनन करने वालों को संपत्ति की प्राप्ति होने की चर्चा की है । विवेक के द्वारा बिन्दु माधव से इस वरदान की याचना करायी गयी है ।[5] विज्ञानगीता के अन्त में कवि ने लिखा है कि विज्ञानगीता को नित्य वैराग्य बुद्धि से पढ़ने, सुनने या सुनाने से संपत्ति मिलेगी, आपत्तियों का नाश होगा और पुत्र तथा पौत्रादि की प्राप्ति होगी ।[6] वीरसिंहदेव चरित के अन्त में धर्म से वीरसिंह देव ने यही वरदान माँगा था कि वीरसिंह चरित्र को सुनते ही सन्तों का दुःख दूर हो जाय ।[7] इस प्रकार कथा श्रवण के फल का विश्वास अनेकत्र प्रकट हुआ है । यह हरिकथा की तत्कालीन लोक-प्रियता का प्रमाण है ।

१—पुण्य पापहरैं सदा शिवकरम् विज्ञान भक्ति प्रदंम् ।
माया मोह जलापहं सुविमल प्रेमांबुपूरं शुभम् ।।—रामचरित मानस

२—रामचन्द्र चरित्र को जु सुनै सदा चित लाख ।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्री रघुराय ।।
यज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होय ।
नारि का नर विप्र छत्रिय वैश्य शूद्र कोय ।।—रा० चं० ३६।२८

३—रा० चं० ३६।३६

४—वही, २७।२६

५—सुनो ईश या स्तोत्र को सुनैगो ।
पढ़ावै पढैगो गुनावै गुनैगो ।
सबै सम्पदा सिद्धि ताको करौ जू ।
सदा मित्र ज्यों शत्रुता तो हरै जू ।।—वि० गी० २२।३०

६—वि० गी० २१।५४

७—वीर चरित सन्तत सुनत दुः कौ वंश नसाय ।—वी० च० ३३।५३

४—४२ शाप एवं वरदान में विश्वास :

जो व्यक्ति हमें कष्ट देता है उसके प्रति क्रोध की भावना उत्पन्न होना मानवीय स्वभाव का लक्षण है। इसी को प्रचलित भाषा में "कोसना" कहते हैं। शाप देने या कोसने की बात वस्तुतः तब अधिक सामने आती है जब पीड़ित जन असहाय या असमर्थ होता है। इस सहज मानसिक भाव का चित्रण कविगण अपने काव्य में करते ही आ रहे हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पूर्णतः निःसहाय व्यक्ति अपने अपकारी को कोसता है। लेकिन दिव्य शक्ति सम्पत्ति व्यक्ति अपनी वाणी के बल के द्वारा शाप देकर प्रतीकार लेता है।

दिव्य शक्ति संपन्न व्यक्ति को कष्ट पहुंचाने पर वे अपने तपोबल से उन्हें कठिन दण्ड के भोगी बनाते हैं। रामचन्द्रिका में अहल्या वृत्तान्त के वर्णन के सन्दर्भ में केशव ने बताया है कि गौतम की पत्नी अहल्या इन्द्र के साथ बुरा सम्बन्ध रखने के कारण उसे अपने पति के शापवश पत्थर बनना पड़ा।[१] वनमार्ग पर जाते हुए राम, लक्ष्मण तथा सीता को देखकर ग्रामीण लोगों ने उन्हें "मुनिशापहत" माना था।[२] केशव ने एक स्थान पर तपविशिष[३] (तपस्या के वाण अर्थात् शाप) भी माना है। क्योंकि तपस्या से सिद्धि प्राप्त होती है।[४] अप्रत्यक्ष रूप से शाप देने पर भी उसका फल भोगना भी वर्णित है। ब्राह्मण की हत्या से सम्पत्ति का[५] तथा स्वदेश या विदेश में स्थित राजा का[६] नष्ट होना आदि इसी प्रकार की उक्तियाँ हैं। हनुमान को कपि रूप में आया हुआ दानव समझकर उसे शाप देने को सीता संसिद्ध होती है।[७] अपने गुरु शुक्राचार्य की पुत्री पर कुदृष्टि डालने के कारण राजा दंडक के शुक्राचार्य का शापग्रस्त होने तथा उस देश के उजड़ जाने पर वहां दण्डकारण्य के बसने की बात की ओर भी केशव ने संकेत किया है।[८] जब राम और लक्ष्मण वन में सीता का अन्वेषण करते हुए जा रहे थे तब कबन्ध राक्षस ने उन्हें

१—गौतम को यह नारि, इन्द्र दोष दुर्गति गई।
देखि तुम्हें नर कारि, परम पतित पावन भई॥—रा० च० ५।५

२—किधौ मुनि शाप महता।—रा० च० ७।३४

३—तप विशिष अनेकन की जुअग्नि।—वही, ७।४०

४—रा० च० ३३।५३

५—त्यों द्विज दोष ते संतति नाशत त्यों गुण भाजत लोभ के आगे।—वही, २४।२७

६—वही, ३०।२८

७—काहि बेगि वानर पाप। नतु तौहि दीह्रौं शाप॥—वही, १३।७१

८—वही, ११।१६

मारने की चेष्टा की। राम ने उसे मार डाला तो उसने गंधर्व का रूप धारण करके राम से कहा था मैं पूर्व जन्म में गंधर्व था।[1] लेकिन इन्द्र के शाप के कारण मैं राक्षस हो गया।[2]

शाप के समान वरदान की भी चर्चा केशव साहित्य में प्राप्त होती है। शाप से आदमी का विनाश होता है तो वरदान के द्वारा अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

केशव साहित्य में वरदान सम्बन्धी विश्वास का भी उल्लेख किया गया है। जब दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करने का निश्चय किया तब उन्होंने कैकेयी के पास जाकर उसे पूर्वदत्त वर मांगने की बात कही तो उसने पहले वर से भरत को राज्य प्राप्ति तथा दूसरे से राम का वनवास मांगा था।[3] महादेव के द्वारा रावण को अनेक वरों की प्राप्ति होने और इन वरों की शक्ति से सब लोगों को गीत गाने का उल्लेख केशव द्वारा किया गया है।[4] जब लक्ष्मण ने मेघनाथ को युद्ध में मारा था तब इन्द्रादि देवताओं ने प्रसन्न होकर उनसे वर मांगने को कहा था। और उन्होंने रामचन्द्र की भक्ति माँगी थी।[5] वशिष्ट की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने जब उनसे वर मांगने को कहा था तब उन्होंने देव-पूजन की विधि की शिक्षा मांगी थी।[6] मालव देश के निवासी गाधि नामक ब्राह्मण के द्वारा भगवान के प्रति तपस्या करने, उनके प्रकट होकर उससे वर मांगने की बात कहने और उससे भगवान् की अद्‌भुत माया देखने की इच्छा प्रकट करने का उल्लेख केशव ने किया है।[7] वाराणसी में विष्णु के द्वारा शिव की तपस्या करने तथा उनके प्रकट होकर विष्णु को सभी लोगों का राज्य, सभी प्रकार की शक्ति तथा लक्ष्मी की प्राप्ति होने का सौभाग्य प्रदान किये जाने की बात भी कवि ने लिखी है।[8] विज्ञान गीता की रचना पर संतुष्ट होकर जब वीरसिंह देव ने केशव से कुछ मांगने को कहा तब उन्होंने अपने पूर्व

१—पीछे मघवा मोहि शाप दई। गन्धर्व ते राक्षस देह भई।
फिर के मघवा सह युद्ध भयौ। उन क्रोध के सीस पै वज्र हयौ।—वही, १२।३४

२—रा० च० २२।३४

३—रा० च० ६।४

४—वामदेव तुमको वर दीन्हों। लोक लोक सिगरे वश कीन्हो।—

५—रा० च० १८।३५

६—वरमांगि कछु ऋषिराज सयाने। बहुभांति किये तपपन्थ पयाने॥
पुजओ परमेश्वर मोमन इच्छा। सिखओ प्रभु देव प्रपूजन शिक्षा॥—रा० च० २५।२६

७—वि० गी० १३।३०।३५

८—वही, ६।५७-५८

पुरुषों की वृत्ति, अपने बालकों को सुख तथा अपने लिए गंगा तट पर वास मांगा था।[1]

३-४३ उपचार सम्बन्धी विश्वास :

इस शीर्षक के अन्तर्गत आने वाली बातों की सत्यता की परख करना बहुत कठिन है। परन्तु उनके प्रति समाज के बड़े भाग का विश्वास अवश्य रहता है। आधुनिक शिक्षित समाज में उन्हें अन्धविश्वास कहकर टाल दिया जाता है। परन्तु कवि वर्ग आज भी समाज के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करने के लिए उनकी चर्चा अवश्य करता है।

केशव साहित्य में उल्लिखित उपचारों को चार उपशीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है। १. नजर लगना २. टोना टोटका ३. जंत्र मंत्र और ४. सिद्ध-सिद्धियां।

भारतीय समाज के विश्वास के अनुसार किसी भी अवस्था के व्यक्ति को दूसरों की नजर लग सकती है। तथापि बच्चों तथा सुन्दर व्यक्तियों को दूसरों की नजर लगने का डर अधिकतर लगता है। केशव साहित्य में राधिका को नजर लगने की बात का उल्लेख किया गया है। श्री कृष्ण के प्रेम की उपेक्षा करने वाली राधिका से उसकी अन्तर्गत सखी कहती है कि तुम्हें क्या हो गया है। तुम्हें नजर लग गयी है या भूत-प्रेत लग गया है।[2] सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि नजर लगने से व्यक्ति के मानसिक संतुलन में अन्तर आता है। और उसकी स्थिति अस्तव्यस्त हो जाती है। वियोग के कारण दुःखी नायिका की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि नजर लगने के कारण ही उसकी यह स्थिति हो गयी है।[3]

भारतीय स्त्रियों का टोने-टोटके में भी विश्वास रहता है। प्रो० मस्पेरो ने मिस्र के सम्बन्ध में टोने पर विचार करते समय यह बताया है कि देवता से अपने मनचाही कराने के लिए उसे वश में करना ही होता था। और वश में करने के लिए कुछ अनुष्ठान, बलियां, प्रार्थनाएं और मंत्रों का उपयोग करना होता है, जो स्वयं देवता ने ही प्रकट

१—मांगि मनोरथ चित्त के, कीजै सबै सनाथ।
  बृत्ति दई पुरखान की, देऊ बालकनि आसु।
  मोहि आपनो जानिकै, गंगातट देउ बासु॥ —वि० गी० २१।५५-५६

२—डीठि लगी किधौं प्रेत लग्यौ। —र० प्रि० ४।१३

३—वही, ८।४२

किये थे। इनसे उसे वश में करके मन चाहा काम कराया जा सकता था। टोने और टोटके की अमिट छाप हमारे लोक जीवन पर आज भी स्पष्ट मौजूद है। शिक्षित या अशिक्षित सभी लोग इनका आश्रय लेते हैं। श्री जनार्दन मुक्तिदूत ने टोटके और टोने में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि टोटके मुख्यतः अमंगल सूचक, अनिष्ट निवारक, रोग निवारक या टोने के बचाव के लिए किये जाते हैं। इसलिए टोटके स्त्रियों में बहुत लोक-प्रिय हैं और अब तो टोटके केवल स्त्री वर्ग द्वारा बोला जाने वाला शब्द ही है। इसके विपरीत टोना अमंगल सूचक, रोग उत्पादक, मरण, उच्चाटन, अनुचित आकर्षण, सम्मोहन वशीकरण आदि के लिए किया जाता है जिससे व्यक्ति विशेष की मनोकामना पूरी हो जाती है तो किसी को हानि भी पहुँचती है। इसीलिए टोने केवल सयाने सिद्ध, अघोरी शैव्य तथा अन्य वाम मार्गियों की विरासत में रह गये।[१]

केशव साहित्य में अनेक स्थलों पर टोने टोटकों का उल्लेख मिलता है। लंका में पहुँचने के बाद हनुमान ने लंकिणी की इच्छा के अनुसार उसे मार डाला।[२] उसे लंका का बलिदान सम्पन्न हो गया था। इस टोने के पूर्ण होने के बाद हनुमान जी चुपचाप लंका में घुस गये। यदि अशोक वाटी में जाकर उपद्रव न करते तो, शायद किसी को पता भी नहीं चलता। रामचन्द्रिका में केशव ने रावण और मेघनाद के तांत्रिक यज्ञों का राम के द्वारा नष्ट किये जाने की बात भी लिखी है।[३] राक्षस लोग अपनी माया के बल से युद्ध क्षेत्र में अन्धकार उत्पन्न करके शत्रु को भ्रांत कर देते थे। रण क्षेत्र में रावण के द्वारा तपो-बल से 'माया तम' उत्पन्न किये जाने की भी कही गयी है।[४] तपस्वी व्यक्ति अपने तपो-बल से सिंह जैसे क्रूर जंतुओं को वश में कर लेते थे। इस तथ्य की ओर केशव ने अप्रत्यक्ष रूप से संकेत किया है।[५] एक जगह पर केशव ने वियोगिनी नायिका की दशा का वर्णन करते हुए जादू-टोने के कारण उसकी वैसी दशा के उत्पन्न होने का उल्लेख किया है।[६] टोने की प्रक्रिया में बलिदान भी सम्मिलित है। कापालिक के द्वारा रक्त की बलि चढ़ाने का भी उल्लेख केशव में प्राप्त है।[७]

१—लोक जीवन में टोने और टोटके की मान्यता—श्री जनार्दन 'मुक्तदूत', सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति अंक, सं० २०१० वि०

२—रा० चं० १३।४५, ४६, ४७

३—वही, १६।३३, १८।३३

४—तपबल माया तम उपजायो। कपि दल के मन संभ्रम छायो॥ —रा० चं० १७।८

५—जनुसिंह के सुत दोउ सिद्ध श्री रमे।
बन जीव देखत यों सबै मिथिला गये॥ —रा० चं० ५।७

६—र० प्रि० ८।४२

७—कै श्रोणित कलित कपाल यह किलकामालिक काल को। —वही, ५.१०

टोने-टोटके की तरह जंत्र-मंत्र के प्रति भी केशव साहित्य में विश्वास किया गया है। रामचन्द्रिका में कथारंभ में ही नेत्रों में अंजन लगाकर संतों के त्रिकाल दर्शी होने की बात लिखी गयी है।[1] राम के नखशिख वर्णन के संदर्भ में शत्रुओं को वश में करने तथा स्वयं अजेय रहने के मंत्रों की ओर संकेत किया है।[2] राम लक्ष्मण को विश्वामित्र ने अच्छे-अच्छे अस्त्र देकर उन्हें चलाने के मंत्र भी सिखाये थे।[3] बाल्मीकि मुनि ने लव-कुश को अमूल्य अस्त्र-शस्त्र ही नहीं अपितु उन्हें चलाने के मंत्रों को भी सिखाया था।[4]

अनेक स्थानों पर वशीकरण मंत्रों में भी विश्वास प्रकट किया गया है। मंदोदरी[5] तथा सीताजी की दासी[6] के कुचों के वर्णन में उनमें वशीकरण चूर्ण के होने की चर्चा की गयी है। वशीकरण मंत्र के अर्थ में ही महामंत्र[7] का भी उल्लेख किया गया है। सीता की दासी के नखशिख वर्णन में ही मोहन शक्ति, मोहिनी बूटी, आदि वशीकरण सामग्री का उल्लेख किया गया है।[8] इनके अतिरिक्त मनोभव यंत्र मनोहर तंत्र[9] आदि का भी उल्लेख प्राप्त है। कवि ने रसिकप्रिया में उच्चाटन मंत्र[10] का भी उल्लेख किया है।

केशव साहित्य में कुछ अलौकिक शक्तिशाली विद्याओं में विश्वास प्रकट किया गया है। विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण को बला अतिबला नामक दो विद्याओं को सिखाया था जिनके कारण उनकी भूख, प्यास, काम, क्रोध आदि अनिष्टकारिणी वासनाओं का नाश हो गया था।[11] बाल्मीकि ने संजीवनी विद्या के मत्रों से मंत्रित जल का प्रोक्षण

१—लोचन अनुरूपिनि श्याम सरूपिनि अंजन अंजित संता। —वही, १।२०

२—विधि लिख्यौ शोधि सुतत्र। जनु जयाजय के मंत्र॥ —वही, ६।४७

३—रा० चं० ३।२८

४—अस्त्र शस्त्र दीन्हे घने, दीन्हे मंत्र अशेष। —वही, ३३।५७

५—वशीकरण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे॥ —वही, १६।३१

६—अखिल लोक जलमय करि धरे। वशीकरण चूरण चय भरे॥ —वही, ३१।२८

७—महामंत्र हू हो तन बोध। इसी काल अहि करि जनु क्रोध। —वही, २३।३५

८—मोहन शक्ति ऐसी। मीन धुजा धुज जैसी।
मंत्र बशीकर साजैं। मोहन मूरि विराजैं॥ —रा० चं० ३१।३८

९—लोचन मनहु मनोभव यंत्रहि। भ्रूयुग ऊपर मनोहर मंत्रहि। —वही, ३१।१२

१०—राधे तेरे नाम कै उच्चाट मंत्र मानियै। —र० प्रि० ४।१८

११—रा० चं० ३।२८

करके सीता को सचेत किया था।[1] दोष निवारण के लिए रक्षायंत्र बान्धने की प्रथा की ओर एक स्थान पर कवि ने संकेत किया है।[2]

जंत्रतंत्र तथा मंत्रों और सिद्धों का अविनाभाव सम्बन्ध है। श्रीराम की वन्दना करते हुए केशव ने अणिमा, गरिमा और महिमा सिद्धियों का उल्लेख किया है।[3] सिद्ध लोगों की उपस्थिति को अशुभकारक निवारक माना गया है।[4] असली सिद्धि को अप्राप्त व्यक्ति को कवि ने पाखंडी माना है। रावण के वश में पड़ी हुई सीता को पाखंडी की सिद्धि कहा गया है।[5]

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि केशव के समय में अन्धविश्वासों की कमी नहीं थी। शिक्षित, अर्द्धशिक्षित तथा अशिक्षित लोगों में टोने-टोटकों के प्रति बड़ी आस्था थी। केशव ने सामयिक तथा परम्परागत उपचारों का उल्लेख अपने साहित्य में किया है। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र के विचार उद्धरणीय है—"इस समय के अशिक्षित लोग अन्ध-विश्वासी थे। इनकी भक्ति भावना धर्म के बाह्यागों तक ही सीमित थी। ये लोग व्रत तीर्थ आदि में विश्वास करते थे। सन्तों और वीरों की सब प्रकार की अन्ध परम्पराओं और रीतियों का पालन करते थे। जादू टोने में भी उन्हें प्रगाढ़ विश्वास था। झुंड के झुंड स्त्री पुरुष पीरों के तकियों पर अपनी मुरादें लिये पहुँचा करते थे और ये लोग जो अधिकांश में रंगे हुए सियार होते थे, उनको फर्जो, तावीज वगैरह देकर खूब लूटते और उन्हें भ्रष्ट करते थे।[6]

इस प्रकार के टोने-टोटके, मंत्र, अभिचार आदि को विशेष रूप से निर्गुणिया सन्तों ने विशेष प्रश्रय और प्रोत्साहन दिया था। पुरानी महत्ता सन्तों की लुप्त हो गयी और वे इन सब के द्वारा अपने महत्व की झूंठी प्रशंसा करना चाहते थे। केशव ने इन सबकी आलोचना न करके इनको काव्योद्धारक तत्वों के रूप में ग्रहण किया है। तुलसी ने इन सब की आलोचना भी की है।

१—सींच मंत्र संजीव जीवन जीउठी तेहि काल।—वही, ३३।५४
२—यौवन श्री जल जानि जनु। बांधे रक्षा यंत्र।।—वही, ३१।३७
३—रूपदेहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि।
भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को।।—वही, १।३
४—रा० चं० ६।८
५—वही, १२।२०
६—रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १७

३—४४ भूत प्रेतादि के प्रति विश्वास :

स्थूल शरीर से निकलते ही जीव वायवीय शरीर को ग्रहण करता है। इसी समय जीव की प्रेत संज्ञा होती है। फलतः वह अधिक चलने वाला तथा वायवीय जीवत बन जाता है। स्थूल शरीर में अधिक समय तक निवास करने के कारण शरीर के प्रति उसका विशेष अभिनिवेश होता है। अतएव जीव बार-बार वायुप्रधान शरीर के द्वारा पूर्व शरीर के सूक्ष्मावयवों की ओर रहने की चेष्टा करता रहता है। श्राद्धादि शास्त्र विहित कर्मों के द्वारा प्रेत शरीर से वह मुक्त होता है।

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत रहने वाले अनेक विश्वासों के समान भूत प्रेतों का विश्वास भी महत्वपूर्ण है। भूत प्रेतों की कल्पना किसी न किसी रूप में प्रायः सभी जातियों और विदेशों में पायी जाती है। साधारणतः लोग इनके रूपों और व्यापारों आदि के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की विलक्षण कल्पनाएँ कर लेते हैं और उनके उपद्रव आदि से बहुत डरते हैं। अनेक अवसरों पर उनके उपद्रवों से बचने तथा उन्हें प्रसन्न रखने के लिए अनेक प्रकार के उपाय भी किये जाते हैं।.... ... इनका विचारण काल रात और निवास स्थान एकांत या भीषण वन आदि माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि ये भूत कभी-कभी किसी के सिर पर विशेषतः स्त्रियों के सिर पर आ चढ़ते हैं और उनसे उपद्रव तथा बकवाद कराते हैं।[१]

केशव के साहित्य में भूत प्रेतों के प्रति विश्वास की चर्चा की गयी है। केशव के अनुसार भरत ने अपने पिता दशरथ के भौतिक शरीर दाहक्रिया विधिवत की थी और उन्हें प्रेत शरीर से मुक्त कर दिया था।[२] शव के आस पास प्रेत योनियों के रहने का उल्लेख कवि ने किया है।[३] शिव को भूत प्रेतों का अधिपति माना जाता है। कवि ने एक स्थान पर लिखा है कि शिव के वन की रक्षा भूत करते हैं।[४] कृष्ण के वियोग से विवेक भ्रष्ठ राधिका को देखकर उसकी सखियां उसे वायुग्रस्त मानती हैं।[५] केशव ने एक स्थान पर चर्चा की है कि कृष्ण के मतिभ्रम को देखकर उसकी दासियाँ समझती हैं कि

१—हिन्दी शब्द सागर, पृ० २५।८६

२—रा० चं० १०।११

३—वही, १३।४६

४—भूतल हैं शिव के वन को जहां।—वि० गी० ४।३२

५—र० प्रि० ८।४२

उसे किसी स्त्री की हवा लग गयी है ।[1] भयंकर रात के समय प्रेतनियों के संचार करने का उल्लेख कवि ने एक स्थान पर किया है ।[2]

प्रसंगवश यहां पर प्रेतयोनि के विषय में कुछ लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा। चौरासी लाख योनियों में प्रेत योनि भी एक मानी गयी है। अप्रकृत मरण प्राप्त करने वालों को प्रेत योनि मिलती है। प्रेतों के मन में यह इच्छा सदा बनी रहती है कि जहां पर उनका धन, सुखसामग्री अथवा शरीर सम्बन्धी परिवार रहते हैं वहीं पर वे भी रहें। एक प्रसिद्ध जनश्रुति के अनुसार केशव को भी प्रेतयोनि मिली थी। डा० विजयपाल सिंह ने इसका विवरण इस प्रकार दिया है—"इन्द्रजीतसिंह के मन में एक बार यह भवना हुई कि मेरी यही मंडली अनन्तकाल तक बनी रहे। केशव ने प्रेत यज्ञ करने की सलाह दी। फलतः संपूर्ण मंडलि ने अपने जीवन की आहुति प्रेत यज्ञ में दी और सब लोगों के साथ केशव भी प्रेत हो गये।—गोस्वामी तुलसीदास जी ने प्रेतयौनि से उद्धार पाने के लिए स्वरचित रामचन्द्रिका का इक्कीस बार पाठ बतलाया।— —केशव दास जी ने रामचन्द्रिका इक्कीस बार पाठ किया। फलतः केशवदास जी को प्रेत योनि से मुक्ति मिल गयी।[3]" इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केशव को भूत प्रेतों पर बड़ा विश्वास था।

४-४५ शकुन सम्बन्धी विश्वास :

सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि कार्य विशेष पर जाते समय शुभ या अशुभ शकुनों के हो जाने से कार्य के सम्पन्न होने अथवा नष्ट हो जाने की पूर्व सूचना प्राप्त होती है। इन शकुनों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है—(१) शुभ शकुन और (२) अपशकुन।

भावी कार्यो से संभाव्य सुख की सूचना पहले किसी न किसी रूप में प्राप्त हो जाने को शुभ शकुन कहा जा सकता है। यह सूचना कई प्रकार से होती है। कभी प्राकृतिक व्यापारों से, जैसे सूर्य का निर्मल हो जाना आदि, कभी शारीरिक व्यापारों से, शरीर के वाम या दक्षिण भाग का फड़कना आदि, कभी किसी मानसिक परिस्थिति, जैसे अचा-

१—वही, ८।४३

२—पैतनि को पूछैं नारि कौन पै तैं सीख्यो यह।—र० प्रि० ७।२१

३ – केशव और उनका साहित्य, पृ० २०

नक मन में हृर्दोल्लास का छा जाना आदि तथा जीव जन्तुओं के कार्यों से जैसे गाय का दर्शन होना। केशव साहित्य में कुछ स्थलों पर शुभ शकुनों का उल्लेख मिलता है।

विश्वामित्र सहित राम लक्ष्मण के मिथिला प्रवेश के समय सूर्योदय हुआ था। उसके बारे में कवि का कहना है कि ऐसा शकुन अब तक किसी को नहीं हुआ था।[१] जब वीरसिंह देव रामशाहि से मिलने गये तब उन्हें भी ऐसा ही शुभशकुन हुआ था।[२] परशु-राम ने जब राम को दानव वध का कार्य सफलता पूर्वक करने का आशीर्वाद दिया तब सूर्य निर्मल होकर निकल आया।[३] कालिदास ने भी पार्वती के जन्म के समय ऐसे ही वातावरण का चित्रण किया है।[४] शुभ सूचक वस्तुओं के दर्शन भावी सुख की संभावना का भी केशव ने उल्लेख किया है सुग्रीव को वस्त्र एवं घुंघुरू के मिलने पर कवि ने बताया है कि वे मानो सुग्रीव राज्य लक्ष्मी के आगमन के सूचक हैं।[५] यदि अनायास कुछ धन प्राप्त हो जाता है तो लक्ष्मी की भावी प्राप्ति की सूचना लोक मानस समझने लगता है। यही बात यहां व्यंजित है।

भावी अनर्थ सूचना जिनके द्वारा पहले ही मिलती है उन्हें अपशकुन कहा जाता है। राजा का मुकुट गिर जाना या हरण किया जाना अमंगलकारी अथवा अशुभ सूचक माना जाता है। अंगद के द्वारा रावण का मुकुट लेकर चले मानो यम लोक में उसके आगमन के लिए "प्रस्थात"[६] रखने जा रहे हों।

शकुन अपशकुनों पर विश्वास भारत देश में प्राचीनकाल से ही प्रचलित हैं और साहित्य में उनकी एक कथानक रूढ़ि बन गयी। मुगलकाल में भी यह विश्वास अत्यन्त प्रचलित था। केशव के कुछ ही समय बाद आरम्भ होने वाले रीतिकाल के विषय में

१—काहू को न भयो कहूं। ऐसौ सगुन न होत।
पुर पैठत श्रीराम के, भय मित्र उद्धौत ॥—रा० चं० ५।८

२—काहू को न भयौ कहूं ऐसौ सगुन न होत।
वीरसिंह के चलतही भयौ मित्र उद्धोत ॥—वी० च० ११।२१

३—रा० चं० ५।५१

४—प्रसन्नदिक्पांशु विविक्तवातं शंखस्वनंमनंतर पुष्टि वृष्टि।
शरीरिणां स्थावर जगमानां सुखाय तज्जन्मदिन बभूव ॥—कुम.र संभव, १।२३

५—सीता के पद-पद्म के नूपुर पट जनि जातु।
मनहु कार्यौ सुग्रीव घर राज्यश्री प्रस्थानु ॥—रा० चं० १२।२५

६—"प्रस्थान" वह चीज है जो यात्रा दोष निवारणार्थ शुभ मुहूर्त में स्थानांतर में रख दी जाती है।—

विचार करते हुए डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि हिन्दू नृपतियों की अन्ध आस्था का तो कहना ही क्या ? वे तो शकुन के बिना पत्ता भी नहीं तोड़ सकते थे ।[1] केशव साहित्य में उपलब्ध शकुन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि केशव ने परम्परा पालन की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर इनकी अपने साहित्य में चर्चा की है ।

३-४६ शपथ और प्रतिज्ञा पर विश्वास :

प्रायः सभी देशों के लोग शपथ खाने पर विश्वास रखते हैं । लोगों का विश्वास है कि जो बात शपथ खाकर कही जायेगी अथवा जिसके करने के लिए शपथ खिला दी जायेगी, सामान्यतया उसका निर्वाह अवश्य किया जाता है । इसी प्रकार प्रतिज्ञा पर लोगों का बड़ा विश्वास है । क्योंकि प्रतिज्ञा का निर्वाह करने वाला आदमी समाज में बड़ा ही सम्मान योग्य समझा जाता है ।

केशव साहित्य में 'शपथ' या सौंह का उल्लेख किया गया है । चोरी नहीं करने का सौंह खाकर भी श्रीकृष्ण के बार बार चोरी करने की चर्चा गोपिकाओं के मुख से कवि ने करायी है ।[2] रामचन्द्रिका में सीता परित्याग के समय राम ने भरत से कहा था कि मैंने सीता को त्यागने का संकल्प कर लिया है । यदि तुम इसके विरुद्ध कोई बात कहोगे तो तुम्हें मेरी हत्या का पाप लगेगा ।[3] वीरसिंह देव के जहांगीर का हमेशा साथ देने की सौगन्ध प्रयाग में खाने का उल्लेख भी केशव ने किया है ।[4] भरत ने कौशल्या से शपथ खाकर कहा था कि यदि राम को वन भेजने में मेरा हाथ है तो मुझे ब्रह्म हत्या का पाप लगेगा ।[5] इससे स्पष्ट होता है कि किसी पुण्य तीर्थ में शपथ खाने वाला व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में अपनी बात का निर्वाह करेगा ।

केशव साहित्य में प्रतिज्ञा सम्बन्धी विश्वासों की भी चर्चा की गयी है । सीता स्वयंवर के संदर्भ में जब कोई भी राजा शिव धनुष को तोड़ नहीं सका तब राजा जनक को अपनी प्रतिज्ञा के भंग हो जाने की चिन्ता हुई थी ।[6] राजा जनक ने अपने व्रत के भंग

१—रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १४
२—सौंह को सोचु सकोचु न पांच को डोलत साहु भये करि चोरी । —र० प्रि० २।१७
३—मोको हतौ बहुरि बात कहौ जु तेरी । —रा० चं० ३३।३६
४—सौंहैं कीन्हीं माँझ प्रयाग । वीरसिंह सुलतान स भाग ।। वी० च० ५।५३
५—रा० चं० १०।७
६—रा० चं० ४।३१

होने की बात विश्वामित्र से कही थी ।[१] कुश ने सीता के सामने शत्रुओं को मार कर लव को छुड़ा लाने की प्रतिज्ञा की थी ।[२] रत्नसेन ने अपने सैनिकों से शत्रुओं को मारने की प्रतिज्ञा लेने की बात कही थी ।[३] सखी नायक से कहती है कि तुम्हारी चेष्टाओं में विलक्षणता दिखाई पड़ती है । तुम को मेरी सौंगन्ध है, सच बताओ कि तुम किस दूसरी नायिका से प्रेम कर रहे हो ।[४] केशव ने एक स्थान पर अनेक प्रकार के शपथों का वर्णन किया है ।—माता का मांस खाना, पिता का रक्त पीना, भाइयों का गला काटना[५] आदि ।

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि केशव साहित्य में शपथ और प्रतिज्ञा का जो उल्लेख प्राप्त होता है. उससे केशव में परम्परा पालन की दृष्टि के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों का भी परिचय मिलता है ।

३-४७ स्वप्न सम्बन्धी विश्वास :

प्राचीन काल से ही मनुष्य स्वप्न में विश्वास करता आया है । मानव वर्ग सोते समय प्रायः स्वप्न देखता है जिनमें कुछ सत्य सिद्ध होते हैं और कुछ असत्य । कुछ का सम्बन्ध अतीत या आगामी घटनाओं से जोड़ लेता है और कुछ को निरर्थक समझ लेता है । स्वप्न में मानव ने अनेक आदेश पाये थे और अनेक भावी इष्ट-अनिष्टों का अनुमान किया था । फ्राइड के विचारों से अभिभूत आधुनिक युग में भी स्वप्नों की सत्यता में विश्वास प्रकट करने वालों की कमी नहीं है ।

केशव साहित्य में केवल भावि गतिविधि के निर्देशक स्वप्नों का ही उल्लेख हुआ है । रामचन्द्रिका के आरम्भ में केशव के स्वप्न में बाल्मीकि मुनि का प्रकट होना और उनसे सुख प्राप्ति का उपाय केशव द्वारा पूछा जाना[६] तथा रामचरित का गान करने का

१—व्रत भंग हमारे भयो । —रा० चं० ५।३८

२—रिपुहि मार संहारि दल यमतें लेहु छड़ाउ ।
लवहि मिलै हौं देखिहौं, माता तेरे पाय ॥ —वही, ३५।२६

३—करहु पैज पन धारि मार सामंत न किज्जिहु । —र० बा० ७

४—सांची कहौ मेरी आन काहे कौं डराने हौ । —र० प्रि० १।१३

५—र० प्रि० १४।३१

६—बालमीकि मुनि स्वप्नमह दीन्हें दरशन चारु ।
केशव तिन सों यों कह्यौ, क्यों पाऊं सुख चारु ॥ —रा० चं० १।७

उपदेश मुनि के द्वारा किया जाना[१] आदि बातों का उल्लेख किया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सांसारिक सुखों से विरक्त केशव का मन विक्षुब्ध था और बाल्मीकि ने स्वप्न में प्रकट होकर उनकी सुख प्राप्ति के लिए रामचरित लिखने की सम्मति दीं थी। इस प्रकार रामचन्द्रिका को लिखने की प्रेरणा केशव स्वप्न द्वारा ही मिली थी।

३-४८ ज्योतिष में विश्वास :

भारतियों को ज्योतिष पर बड़ी आस्था रहती है। ज्योतिष के अनुसार प्रत्येक शुभकार्य अथवा संस्कार आदि के लिए गुणी, गणक या ज्योतिषी को बुलाकर शुभ मुहूर्त आदि जानने का प्रयत्न करना भारतीय समाज में सर्व सामान्य विषय है। दिन, रात, मास और वर्ष के चक्र की लोगों को बहुत पहले ही वैज्ञानिक जानकारी हो चुकी थी और कवि ने उनका अनेक स्थलों पर उल्लेख भी किया है। केशव ने अपने ग्रन्थ कवि प्रिया के प्रणयन का उल्लेख किया है कि 'मिती फगुन सुदी पंचमी बुधवार, संवत् सोलह सौ अट्ठानवे' को इस ग्रन्थ का प्रारम्भ किया था।[२] राम चन्द्रिका का प्रारम्भ भी केशव के अनुसार सोलह सौ अट्ठानवे कार्तिक मास शुक्ल पक्ष तथा बुधवार को हुआ था।[३] कवि के अनुसार रसिक प्रिया का आरम्भ सोलह सौ अड़तालीस शुक्ल पक्ष सप्तमी तिथि तथा सोमवार को हुआ था।[४] विज्ञान गीता की रचना की तिथि या वार के सम्बन्ध में कवि ने कुछ भी नहीं कहा था। केवल संवत् का ही उल्लेख करके उसे सबको सुखदायक माना है।[५] वीरसिंह देव चरित के रचना काल के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि संवत सोलह सौ तिरसठ के व्यतीत होने पर और सोलह सौ चौंसठ के आरम्भ पर की थी। तब तक अनल नामक संवत्सर लग गया था जिसके कारण समस्त दुःख दूर हो गये थे तथा सभी सुखों

१—भला बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै।
न राम देव गाइ है। न देव लोक पाइ है॥ —रा० चं० १।२६

२—प्रगट पंचमी को भयो कवि प्रिया अवतार।
सोरह सौ अट्ठानवो फागुन सुधि बुधवार॥ —क० प्रि० १।४

३—सोरह सौ अट्ठानवे कातिक सुधि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका तब लीन्हों अवतार॥ —रा० चं० १।६

४—र० प्रि० १।११

५—सोरह सौ बीते बरष विमल सत सठा पाइ।
भई ज्ञान गीता प्रगट सब ही को सुख दाइ॥ —वि० गी० १।१३

का उदय हो चुका था।[१] जहांगीर जसचन्द्रिका का प्रारम्भ कवि के अनुसार संवत् सोलह सौ उनहत्तर, वैशाखमास को हुआ था।[२]

ऊपर के विवरण से दो बातें स्पष्ट होती है। पहली यह है कि केशव ने प्रायः अपने प्रमुख ग्रन्थों की रचनाकाल का उल्लेख किया है। दूसरी बात यह है कि उन्होंने शुक्लपक्ष तथा बुधवार को अधिक मान्यता दी है। क्योंकि अपने महाकाव्य रामचन्द्रिका तथा प्रधान लक्षण काव्य "कविप्रिया" का प्रारम्भ एक ही पक्ष तिथि तथा वार में किया है और वेहैं कार्तिक,शुक्लपक्ष, पंचमी, बुधवार। कार्तिक मास शरत्ऋतु में आता है। शरत्ऋतु भारतीय संस्कृति में बहुत महत्वपूर्ण मानी गयी है। कभी संवत्सर का आरंभ भी कार्तिकसे होता था। मारवाड़ी जाति में अब भी दीपावलि से उनके आर्थिक वर्ग का आरंभ होता है। श्रुति परम्परा में भी "जीवेम शरदश्शताम्" का संकल्प प्रसिद्ध रहा है। केशव ने ज्योतिषके अनुसार उसी मास को महत्व देकर एक सांस्कृतिक परंपरा का महत्व दिया है।

युद्ध यात्रा करते समय शुभ लग्न को प्रधानता देने की बात भी कवि ने कही है। राम ने विजय दशमी को किष्किंधा के ऋष्यमूक पर्वत से लंका की ओर अभियान किया था।[३] राजा दशरथ ने राम के अभिषेक के लिए वशिष्ठजी से शुभ लग्न बताने की प्रार्थना की थी।[४] वनवास से लौटने के बाद राम का राज्याभिषेक एक शुभ घड़ी में सम्पन्न होने की बात केशव ने लिखी है।[५] मकर राशि के अन्तर्गत श्रवण नक्षत्र में चंद्रमा का प्रवेश होना शुभ है। केशव ने रामचन्द्र के नखशिख का वर्णन करते हुए इसी तथ्य को प्रकट किया है। रामजी के कानों में मकाराकृति कुंडल और मुख की शोभा एक ही स्थान पर शोभा दे रहे हैं। वे इस प्रकार हैं मानो मकर राशि के अन्तर्गत श्रवण नक्षत्र में चद्रमा शोभा दे रहा हो।[६] लाला भगवानदीन ने भी केशव के ज्योतिष ज्ञान की बड़ी

१—संवतु सोरह से तैंसठा। बीति गये प्रगटे चौंसटा।
अनल नाम संवत्सर लग्यौ। भग्यौ दुख सब सुख जगमगे।—वी० च० १।४

२—सोरह सैं उन हत्तरा माधव मास बिचारु।
जहांगीर सक साहिकी करी चन्द्रिका चारु।—ज० ज० च २

३—तिथि विजय दशमी पाय। उठि चले श्रीरघुराय।—रा० च० १४।३५

४—दिन एक कहो शुभशोभ रयौ। हम चाहत रामहिं राजदयो।—वही, ६।२

५—आयी जब अभिषेक की घटिका केशवदास।
बाजे एक हि बार बहु दुंदुभि दीह अकाश॥—रा० च० २६।२६

६—श्रवण मरक कुंडल लसत मुख सुखमा एकत्र।
तदपि स रास र नरनि की निरखि शुद्ध गति होति॥—रा० च० ६।४६

प्रशंसा की है।[१] ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शनिग्रह सूर्य का पुत्र माना जाता है। मानिक मय मंडप पर श्याम रंग के वितान की शोभा का वर्णन करते हुए केशव ने लिखा है कि उस मंडप की शोभा इस प्रकार हैं कि मानो सूर्य की गोद में शनि देव शोभित हो रहे हैं।[२] शनि, सूर्य और गुरु आदि ग्रहों के मध्य चंद्रमा के प्रकाशित होने की बात केशव ने कही है।[3]

कुछ यात्रा के लिए शरद् ऋतु ही श्रेष्ठ तथा अनुकूल मानी जाती है। चार्वाक ने महामोह से शरतऋतु के आने पर ही युद्ध के लिए प्रस्थान करने की सम्मति दी थी।[४] प्राचीनकाल में राजमहलों में ज्योतिषियों को रखने की प्रथा थी। केशव ने राजा राम की सभा में ज्योतिषियों के रहने का उल्लेख किया है। उन्होंने उनके लिए गणक शब्द का प्रयोग किया है।[५]

केशव के समय में ज्योतिष के प्रति बड़ी आस्था थी। इस विषय के सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र का मन्तव्य उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं कि नैतिक बल के ह्रास से लोग पूर्णतः भाग्यवादी बन गये थे। सभी वर्ग के लोगों को ज्योतिष में प्रगाढ़ आस्था थी— सम्राट और अमीरों के साथ-साथ ज्योतिषियों का एक समुदाय चलता था।[६]

३—५ निष्कर्ष :

केशव साहित्य में संस्कृति के दो रूप स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। पौराणिक संस्कृति और तत्कालीन संस्कृति। रामचन्द्रिका में मुख्यतः रामायणकालीन संस्कृति मिलती है। उसके साथ ही प्रबन्धों के लिए आवश्यक सांस्कृतिक वर्णन और चित्रण भी उनमें स्फीत हैं। इन्हीं तत्वों में कहीं कहीं तत्कालीन जीवन भी झलक जाता है। तत्कालीन जीवन की स्पष्ट झलक उनके अन्य प्रबन्धों में प्राप्त होती है। उन प्रबन्धों में सांस्कृतिक वृत्त आश्रयदाता राजा को केन्द्रमानकर उभरता है। सामन्य जन का जीवन इस वृत्त की झिलमिला-

१—उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठ के कुछ अंश मकरराशि में पड़ते हैं। केशव की विचित्र सूक्ष्म और ज्योतिष ज्ञान की सूचक है।—केशव कौमुदी पूर्वार्ध, पृ० ६६

२—मंडपलालन को यक सोहै। श्याम तहां छतुरी मन मोहै।
ताहि यथा उपमाहिय साजै। सूरज अंक मनो शनि राजै॥—रा० चं० २६।३०

३—शनि सूर बृहस्पति मंडल में परिपूरन चन्द्र मनो बल में।—वही, २६।३३

४—शरदहि आवत हीं वरद, करो विवेक बिहाल।—वि० गी० १०।४

५—गणकचिकित्सक आशिष, वन्धुन कियो प्रणाम।—रा० चं० ३०।२५

६—रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १४

हट में हो जाता है। उसी वृत्त के अन्तर्गत ब्राह्मण संस्कृति भी भास्वर प्रतीत होती है। केशव का आभिजात्य वस्तुतः राजसी और धार्मिक दोनों ही तत्वों से समन्वित है। ब्राह्मण संस्कृति पौराणिक संस्कृति की पृष्ठभूमि में पनपी थी। पौराणिक संस्कृति का मुख्यतः यही उपयोग केशव साहित्य में मिलता है। इसके साथ इन सभी सांस्कृतिक स्तरों ने केशव साहित्य के अप्रस्तुत को समृद्ध किया है। यह भी कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक जीवन का प्रमुख या प्रत्यक्ष निरूपण केशव साहित्य में अत्यल्प है। अप्रस्तुत विधान में ही उसका उपयोग अधिक हुआ है। केशव की वर्णन प्रियता ही अप्रस्तुत निरूपण के लिए उत्तरदायी है। □

चतुर्थ अध्याय : केशव साहित्य में दर्शन

४-० प्रस्तावना :

मध्यकालीन भारतीय इतिहास की सबसे प्रमुख घटना भारतीय दार्शनिक धाराओं का सामाजिक आंदोलन के रूप में परिणत हो जाना है। यद्यपि आंदोलन की मूल भूमि भक्ति मूलक थी, फिर भी समन्वय की शक्ति प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय थी। इसी एक विशेष धारा की स्वीकृति तो संभव थी पर अन्यों की स्पष्ट अस्वीकृति नहीं मिलती। वैदिक दर्शन विकास क्रम में विविध व्यावहारिक रूप ग्रहण करता गया। पुराणों में आकर सभी दार्शनिक धाराएं लोकमानस से संपृक्त हुई। लोक मानस ने एक धार्मिक संकट के समय पुराणों के माध्यम से प्राप्त दार्शनिक शक्तियों को सहेजा और एक सांस्कृतिक आंदोलन को व्यापक बनाया। उसके परिणाम स्वरूप मध्यकाल में रचित समस्त साहित्य की पृष्ठभूमि में दार्शनिक तत्व समाविष्ट हो गये।

इस काल में रचित भक्ति साहित्य तो पूर्णतः भक्ति दर्शन से ओत-प्रोत था और काव्यशास्त्रीय पद्धतियों के सहयोग से समस्त दर्शन उपयुक्त काव्य वस्तु बन गयी। रीति-काल में काव्यशास्त्रीय रूढ़ियाँ एवं परंपरायें प्रमुख हो गयी और दार्शनिक प्रेरणाएं शिथिल। किन्तु केशव की स्थिति बीच की है। उनमें रीतिकालीन परंपराएं भी प्रमुख हैं और साथ ही दर्शन, भक्ति और रीतिकाल में उपेक्षित प्रबन्ध धारा भी लुप्त नहीं है। विज्ञानगीता तो शुद्ध दार्शनिक कृति है ही, अन्य ग्रंथों में भी यत्र तत्र दार्शनिक उक्तियां बिखरी हुई हैं। इन सबके आधार पर केशव की दार्शनिक पृष्ठभूमि को देखा जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में केशव के दार्शनिक विचारों का विश्लेषण भी अभिप्रेत है।

४-१ साध्य पक्ष : ब्रह्म :

केशव के दार्शनिक विचारों के अध्ययन के लिए उनके विज्ञानगीता तथा राम-

चन्द्रिका ये दो ग्रंथ आधार स्वरूप हैं। विज्ञानगीता की रचना प्रधान रूप से कृष्णचन्द्र के प्रबोध चन्द्रोदय तथा योगवाशिष्ठ के आधार हुई है। इन दोनों ग्रंथों में भारतीय अद्वैतवाद का प्रतिपादन तथा ज्ञान और भक्ति का समन्वय किया गया है। विज्ञानगीता में केशव की दार्शनिक विचारधारा अद्वैतवाद के आदर्श पर चली है। रामचन्द्रिका में केशव के इष्ट देव राम की कथा तथा उनकी कीर्ति का वर्णन किया गया है। केशव की रामभावना पर भी रामोपासक वैष्णव अद्वैतवाद की स्पष्ट छाप है। पारमार्थिक दृष्टि से केशव के राम परब्रह्म हैं। किन्तु उनके ग्रंथों में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि उनका ब्रह्मत्व केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि विभिन्न दार्शनिक अद्वैतवादों में से किस वाद के अनुसार है। उपासना के क्षेत्र में केशव रामोपासना संबन्धी रामानन्द संप्रदाय से प्रभावित प्रतीत होते हैं। रामानन्दी संप्रदाय के समान ही केशव के इष्टदेव राम है और मूल मंत्र राम नाम।' रामानन्द जी ने विष्णु के अन्य रूपों में राम रूप को ही लोक के लिए अधिक कल्याणकारी समझ कर चुन लिया और एक सफल संप्रदाय का संगठन किया। इसके साथ ही साथ उन्होंने उदारता पूर्वक मनुष्य मात्र को इस सुलभ सगुण भक्ति का अधिकारी माना और देश-भेद, वर्णभेद, जाति भेद आदि का विचार भक्तिमार्ग से दूर रखा।..........रामानुज संप्रदाय में दीक्षा केवल द्विजातियों को ही दी जाती थी। पर स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति का द्वार सब जातियों के लिए खोल दिया।'[1] केशव ने द्विजातियों के अतिरिक्त शूद्रों को भी राम-भक्ति का अधिकारी मानकर रामानन्दी संप्रदाय का प्रभाव स्वीकार किया।

किन्तु श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी केशव को निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित मानते हैं। वे लिखते हैं कि दीक्षा की दृष्टि से ये राधा कृष्ण के उपासक थे। रसिक प्रिया में राधाकृष्ण को ही आधार मान कर रचना की गयी है। कविप्रिया में भी स्पष्ट कर दिया है कि शृंगार रस के आलंबन राधा कृष्ण ही हो सकते हैं।[2] इस प्रकार इस विषय के संबन्ध में अनेक मत हैं कि केशव का किस संप्रदाय से संबन्ध था पर हम इतना कह सकते हैं कि केशव ने राम को 'औतारी', 'औतारमनि' माना है और उनकी भगवत्ता को विच्छिन्न नहीं होने दिया।

डा० विजयपाल सिंह के मतानुसार केशव का दर्शन भक्ति एवं धर्म अध्ययन प्रसूत है। यह नहीं कि शंकर के समान उनकी बुद्धि ने दार्शनिक सिद्धान्तों के नये द्वार

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ११८

२—हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ४०६

खोले हो, और यह समझना भी भूल होगी कि केशव तुलसी के समान भीतर तक भीगे निपट भक्त हों। अतः केशव का दर्शन और भक्ति अनुभूति मूलक होने की अपेक्षा अध्ययन प्रसूत ही अधिक है।[1] इस का अभिप्राय यह नहीं कि केशव में भक्त की अनुभूति नहीं है। रामचन्द्रिका में ही अनेक ऐसे स्थल मिल जायेंगे जिनको अनुभूति की कसौटी पर कसकर कोई भी यह कह नहीं सकता कि उन स्थलों में एक भक्त की अनुभूति नहीं है। इसका कारण यह है कि भक्त की भावुकता कवि की भावुकता के द्वारा लायी गयी है। चाहे केशव में स्वानुभूति का अभाव भले ही हो, उनके साहित्य की पृष्ठभूमि सुदृढ़ अध्ययन पर आधारित तथा सामंजस्यवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही है। केशव भले ही अपने कहे रास्ते पर स्वयं न चले हों, दूसरे तो उस पर चलकर कृतकृत्य हो सकते हैं। तुलसी के समान केशव भी धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे। तुलसी के समान केशव की भी चिन्तन भूमि अद्वैतवाद की है और आचार्य होने के कारण तुलसी की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हैं।

४ ११ अद्वैतवाद :

ब्रह्म तथा जीव के अभेद को अद्वैत कहते हैं। इस वाद के अनुसार एक ब्रह्म के अतिरिक्त किसी की भी पृथक सत्ता नहीं है। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' ही इसका प्रधान सूत्र है। ब्रह्म एक अद्वितीय, निर्गुण, निरंजन, निरवयव, निर्विशेष सत्ता है और चैतन्य एवं आनन्द उसका स्वरूप है। 'यतो वाचः निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' के अनुसार यह सत्ता अवाङ.मानस गोचर है। इसे प्रत्यक्ष चैतन्य या शुद्ध ब्रह्म कहा जा सकता है। मांडूक्योपनिषद में इसे सकल भेद रहित 'तुरीय' कहा गया है। ईशावास्योपनिषद में आत्मतत्व के विषय में कहा गया है कि वह चलता है, वही नहीं चलता, वह अविद्या युक्त लोगों से करोड़ों वर्षों में भी प्राप्त नहीं होता। विद्वान लोगों के लिए बहुत निकट है। वह आत्मा में निवास करता है, वही बाहर भी है।[2] केनोपनिषद में ब्रह्म तत्व के विषय में यह कहा गया है कि वह श्रोत्रादि के भी श्रोतादि होने के कारण उसमें चक्षुरिन्द्रिय नहीं जा सकता, वाग् भी नहीं जा सकती, तथा मन भी प्रवेश नहीं प्राप्त कर सकता।[3] जिसे

१—केशव और उनका साहित्य, पृ० ११६

२—तदेजतितन्नेजति तद्दूरेतदन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्य बाह्यतः। —ईशावास्योपनिषद, ५

३—न तत् चक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छतिनोमनः। केनोपनिषद, ३

मन मनन नहीं कर सकता किन्तु जिससे मन मनन किया जा सकता है उसी को तुम ब्रह्म समझो। जिसकी उपासना की जाती है वह नहीं है।[1]

वास्तव में इस असीम जगत के पीछे एक असीम सत्ता की स्वीकृति भारतीय संस्कृति से मिलती है। यद्यपि उसके नाम भेद हैं; यही शुद्ध ब्रह्म अज्ञान के संपर्क में आकर भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट होता है। जीव और जगत के सभी भेद अज्ञान जन्य तथा मिथ्या हैं। ईश्वर भी समष्टिगत सात्विक अज्ञान के संपर्क में आये हुए शुद्ध चैतन्य का नाम है। इस प्रकार शुद्धाद्वैत के अनुसार ब्रह्म के दो रूप हमारे सामने आते हैं— निर्गुण ब्रह्म तथा सगुण ब्रह्म। सगुण ब्रह्म, जीव और जगत के भेद सब अज्ञान के प्रपंच है। परिदृश्यमान जगत के सत्य को अद्वैतवाद तीन रूपों में समझने का प्रयत्न करता है—

(१) प्रातिभासिक सत्य

(२) तात्विक या पारिमार्थिक सत्य

(३) व्यावहारिक सत्य

रज्जु में सर्प की तथा शुक्ति में चांदी की प्रतीयमान सत्ता तात्विक नहीं, प्रातिभासिक मात्र है। क्योंकि रस्सी तथा शुक्ति के यथार्थ ज्ञान के जन्म के साथ साथ यह भ्रान्ति समाप्त हो जाती है। जगत् का सत्य भी ऐसा ही है। केशव ने भी इस शुक्ति रजत भ्रान्ति को स्वीकार करके लिखा है कि भ्रम के कारण ही शुक्ति रजत में मिल जाती है और भ्रम के विनाश से शुक्ति अलग निकल आती है :

भ्रम ही ते जो शुक्ति में होति रजत की जुक्ति।
केशव संभ्रम नास ते, प्रगट सुक्ति ही सुक्ति ॥[2]

आत्मा को अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान जब तक नहीं होता तब तक ही ईश्वर जीव और जगत के भेद हमारे ज्ञान में आते हैं। जब तक हमें यह तत्वबोध नहीं हो जाता कि यह वस्तुतः सर्प नहीं, रस्सी है तब तक हमें सर्प का ज्ञान वास्तविक ही लगेगा। इसी प्रकार

१—यन्मनसा न मनुतेवेव येनाहुर्मनो मतम्।
तदेवब्रह्मत्वम् विद्धिनेदयदिदमुपासते ॥ —केनोपनिषद,

२—वि० गी० १७।३२

आत्मबोध जगत हमारे लिए सत्य है। उसके सत्य को अस्वीकृत नहीं कर सकते। यही उसका व्यावहारिक सत्य है। भक्ति इस व्यावहारिक सत्य और उपास्योपासक के भावात्मक द्वैत को लेकर चलती है। यह द्वैत तात्विक न होते हुए भी भाव की परिणिति के लिए अनिवार्य है। अतः अद्वैतवाद तात्विक दृष्टि से ब्रह्म और जीव में उपयोगिता की दृष्टि से अभेद मानते हुए भी साधना की दृष्टि से कभी योगाश्रयी हो जाता है कभी ज्ञानाश्रयी। शंकराचार्य भी इस व्यावहारिक सत्य को अस्वीकार नहीं कर सकते थे। इसी लिए उन्होंने स्वयं अनेक भक्ति स्तोत्रों का प्रणयन किया है। केवल तत्व बोध तक जीव और ब्रह्म का द्वैत रहता है, इसके बाद ब्रह्मात्मक की स्थिति आ जाती है। इस स्थिति को तुलसी ने 'जानत तुम्हहिं तुमहि हो जाय' के द्वारा व्यक्त किया है। किन्तु भक्त तात्विक अद्वैत में नहीं, रसात्मक अद्वैत में विश्वास करता है। इस अद्वैत में आस्वाद्य आस्वादक का व्यावहारिक भेद स्पृहणीय हो जाता है। भक्त की स्थिति भगवान से भिन्न न होते हुए भी आस्वादन की प्रक्रिया के लिए पृथक बनी रहती है। उसका लक्ष्य कैवल्य नहीं, ब्रह्मास्वाद के संकल्प से युक्त सान्निध्य की स्थिति है।

दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्म निरूपण की तीन पद्धतियां मिलती हैं—पहली पद्धति उसे निर्गुण कहने की और दूसरी पद्धति सगुण कहने की। किन्तु ये दोनों दृष्टियां अपने आप में अपूर्ण हैं। इनकी पूर्णता तीसरी पद्धति में घटित हो जाती है, ब्रह्म सगुण भी है और निर्गुण भी हैं।[1] ब्रह्म और माया के सम्बन्ध को लेकर विवाद कुछ जटिल हो जाते हैं।

सामंजस्यवादी साहित्यकार तर्क के सत्य को अनुभूति का सत्य बनाने का प्रयत्न करता है तथा स्थूल मत भेदों से ऊपर उठता है। केशवदास ने कवि के रूप में अपने साहित्य में दार्शनिक तत्वों का प्रतिपादन किया है। यहां केशव के ब्रह्म, जीव, माया, जगत, आदि विषयों पर विचार किया जाता है।

इस बात में कोई कोई विप्रतिपत्ति नहीं है कि केशव पर शंकर के अद्वैतवाद का काफी प्रभाव पड़ा है। शंकर के अनुसार वेदान्त दर्शन का प्रतिपाद्य है—माया जन्य भेदत्व बुद्धि की समाप्ति और अखण्ड एकत्व की उपलब्धि। केशव ने भी विज्ञान गीता में इसी विषय का प्रतिपादन किया है :

जीत्यौ चाहै इन्द्रियगन भांति भांति माया मनु।

१—अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा। —तुलसी

लोपि कै अनेक भाव देख्यो चाहै एकताहि ।।
जीत्यौ चाहै काल, इहु देहु चाहै रह्यौ गेहु ।
सोई तौ सुनावै गुनै ज्ञान गीतिकाहि ।।[१]

"लौपिकै अनेक भाव, देख्यौ चाहि एक ताहि" के द्वारा केशव ने अनेक रूपता में एक रूपता देखने का उपदेश दिया है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के दो मार्ग हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति[२]। वेदान्त सार में उपरति की व्याख्या प्रवृत्ति तथा निवृत्ति उभय मूलक है । गीता में निष्काम कर्म का ही प्रतिपादन है ।[3]

५—१२ निर्गुण ब्रह्म :

ब्रह्म के दो रूप "पर" और "अपर" केशव को मान्य है। पर रूप आदि तथा अन्तहीन है। वह अमित है, अबाध है, अकल, अरूप और अज है। वह जरामरण और अवर्ण है। वह अच्युत, अनामय, निर्मल, अनंग, नाश रहित तथा इन्द्रियागोचर है। तिमूर्ति तथा वेद उसे जोऽसि सोऽसि "आदि शब्दों से पुकारते हैं।[४] इस निरूपण पर औपनिषदिक निषेधात्मक विशेषणवाली शैली का प्रभाव स्पष्ट है। साथ ही ब्रह्म के अतिरिक्त जो कुछ है, वह मिथ्याभास मात्र है। श्रुति की उक्ति है कि ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। केशव ने इस उक्ति का उल्लेख किया है।

एक ब्रह्म सांचौं सदा, झूठौं यह संसार ।[५]

वही ब्रह्म भीतर, बाहर और घटघट में व्याप्त है।[६] ब्रह्म ही तमोगुण, सतोगुण और

१—वि० गी० १।६

२—निवर्तितानामेतेषां तद्व्यतिरिक्त विषयेभ्यः उपरमणमुपरतिः। अथवा
विहितानां कर्मनां विधिना परित्यागः।—वेदान्तसार, पृ० ६

३—कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन ।
माकर्म फलहेतुर्भूर्माते संगो स्त्वकर्मणि ॥—भगवत् गीता, २।४७

४—जाको नहीं आदि अन्त अमित अबाधियुत अकल अरूप अज चित्त मे अतुर है।
अमर अजर अज अद्भुत अवर्ण अनंग अच्युत अनामय सुरसना ररतु हैं ॥
अमल अनंग अति अक्षर असंग अरु अस्तुन अदृष्ट देखिबेको परमतु है ।
विधि हरि हर वेद कहत जो सि सो सि केशवदास कह प्रणमहि करतु है ॥—वि०गी० १६।२१

५—वही, १३।८

६—भीतर बाहर व्यापक जो है।—वि० गी० १६।१४

रजोगुण है। वह सर्वशक्तिमान तथा अपरिमेय है। वह नित्य वस्तु, विचारपूर्ण एवं सर्व भाव से अदृष्ट है। न तो वह पुरुष है और न नारि। जगत के अनक स्वरूपों की उत्पत्ति ब्रह्म के ही अद्भुत भावों से हुई। विष्णु से लेकर परमाणु तक सभी उसी से उत्पन्न हुए हैं।[1] इस प्रकार ब्रह्मके श्रुत्युक्त गुणोंका निरूपण केशवने किया है। प्रमुखतःउसको सृष्टि-कर्ता और सर्व व्यापक बतलाया गयाहै। ब्रह्म ही समस्त प्राणियोंकी शरणहै। वह नित्य नवीन माया रहित तथा निर्विकार है। वह अखण्डहै, मुक्त तथा देवाधिदेवहै।[2] वही रजोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा के रूप में संसार की रचना करता है, सतोगुण का आश्रय लेकर वह विष्णुनाम से समस्त ससार की रक्षा करता है और तमोगुण का आश्रय लेकर रुद्र के रूप में वही जगत का नाश करता है।[3] कालिदास ने भी कुमारसंभव में ब्रह्म को सृष्टि स्थिति और लय का कारण माना है। देवता लोग ब्रह्मा की स्तुति इस प्रकार करते हैं: "संसार को रचने के पहले एक ही रूप में रहने वाले, पर जब संसार रचने लगते हैं तब सत्व, रज और तम तीन गुण उत्पन्न करके ब्रह्म विष्णु और महेश नाम के तीन रूप से बन जाने वाले आपको प्रणाम।" आप ही शिव, विष्णु और हिरण्यगर्भ इन तीन रूपों से अपनी शक्ति प्रकट करके संसार का नाश, पालन और उत्पादन करते हैं। संसार को आपने उत्पन्न किया है, पर आपको किसी ने उत्पन्न नहीं किया। आप संसार का अन्त करते हैं। पर आपका कोई अन्त नहीं कर सकता। आपने संसार का प्रारम्भ किया है। पर

१—तमतेज सत्व अनंतु अबु चाहत है जुअमेय।
सर्वशक्ति समेत अदभुत है प्रमान प्रमेय॥
नित्य वस्तु विचार पूरन सर्वभाव अदृष्ट।
पुंस नारि न जानिये सुनि सर्व भाव अदृष्ट॥
ताके अदभुत भाव ते भये सरूप अपार।
विष्णु आनि परमानु लौं उपजत लगी न वार॥—वि० गी० १५।११,१२

२—अनादि अन्तहीन है जु नित्य ही नवीनु है।
निरीह निर्विकार है सुमध्य अध्य हार है॥
समस्त शक्ति युक्त है सुदेव देव मुक्त है॥—वि० गी० १५।४०,४१

३—एक है जो रजोगुण रूप तिहारौ।
तेहि सृष्टि रची विधिनाम बिहारो।
गुण सत्व धरे तुम रक्षक जाको अब विष्णु कहै सिगरो जग ता को।
तुमही जग रुद्र सरूप सम्हारो कहिये तेहि मध्य तमोगुण भारो।—रा० चं० २०।१७,१८

आपका प्रारंभ नहीं हुआ। आप संसार के स्वामी हैं, पर आपका कोई स्वामी नहीं।[१] भगवद्‌गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है कि मैं अज हूँ, अनश्वर हूं और सब प्राणियों का ईश्वर हूं तो भी मैं अपनी प्रकृति को वश में लाकर माया शक्ति के द्वारा उत्पन्न हो रहा हूं।[२] इस प्रकार केशव ने जिस निर्गुण ब्रह्‌म का प्रतिपादन किया है वह वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में संकीर्तित ब्रह्‌म से अलग नहीं है। किन्तु विभिन्न भारतीय दर्शन इस सत्ता को विभिन्न नामों से पुकारते हैं। माध्यमिक बौद्धों ने भी परिवर्तनशील नाम-रूपात्मक सत्ता के पीछे एक पर सत्ता को स्वीकार किया है। उनका शून्य आगे चलकर तो वैदिक दर्शनों से प्रभावित होकर एक नित्य सत्ता के अर्थ में स्पष्ट ही गृहीत होने लगा। शैवागमोंने शक्ति के संयोग से परे शिव मात्र सत्ता के रूप में इसे माना है। वैष्णव तंत्रों एवं आगमों में विष्णु से भी परे इस सत्ता को महाविष्णु नाम दिया गया है। सारांश यह है कि इस सत्ता की स्वीकृति प्रत्येक भारतीय आस्तिक दर्शन में किसी न किसी रूप में मिलती है। भेद तो नाम मात्र का है। केशव की सामंजस्य बुद्धि का यही निष्कर्ष है :—

कहै एक तासों शिवे, शून्य एकै, कहैं काल एकै महाविष्णु एकै।
कहैं अर्थ एकै परब्रह्‌म जानो, प्रभापूर्ण एकै सदा शून्य मानो ॥[३]

यहां पर "सत्ता" सदा शून्य है। इसका रूप है 'ज्योतिर्मय" ।

४—१३—सगुण ब्रह्म :

जब निर्विशेष ब्रह्‌म माया अथवा सृष्टि प्रपंच के सम्पर्क में आता है तो उसमें गुणों का आरोप हो जाता है। यह रूप स्थूल सूक्ष्म जगत का नियामक, अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ आदि विशेषणों से युक्त है। ये विशेषण इसके गुणों के आधार पर बन जाते हैं। ब्रह्‌म की इस दशा को अद्‌वैत वाद सगुण ब्रह्‌म कहता है। यही जनसामान्य

१—नमस्त्रिमूर्तये तुभ्य प्रक्स ष्टेहि: केवलात्मने।
गुणत्रय विभागाय पश्चात भेद मुपेयुषे ॥
त्रिसृभि स्त्ववभ वस्याभिर्मँहिमानमुदीरयन्।
प्रलयस्थिति सर्गाणामेकः कारणतांगत:
जगद्‌योनिरयोतिस्त्वं जगदांतो निरंतकः।
जगदादि रनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वर। ॥-कुमार संभव, २।४,६,९
२—अजो पितन्नव्ययात्मा भूतानाभीश्वरोपिसन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभावाम्यात्ममायया ॥-भगवत् गीता, ४।६
३—वि० गी० २०।४८

का ईश्वर है। शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से यह सत्ता भी व्यावहारिक है, अतः इस अवस्था और पर अवस्था के ब्रह्म में कोई तात्विक अन्तर नहीं। दोनों की एक ही सत्ता है। इस प्रकार केशव ने अद्वैतवाद के अनुसार निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दोनों रूप मानकर दोनों में अभेद स्वीकार किया है।

इन दोनों में उपासना, भक्ति, लोक व्यवस्था, एवं लोक रक्षा की दृष्टि से सगुण ब्रह्म ही मान्य है। इसी कारण भक्त कवियों ने ब्रह्म के सगुण रूप को ही स्वीकार किया है। केशव का विश्वास है कि अनन्त तथा निर्गुण ब्रह्म ही राम के रूप में अवतरित हुआ है :

तुम आदि मध्य अवसान एक। अरु जीव जन्म समुझो अनेक॥
तुमही जु रची रचना विचारि। तेहि कौन भांति समझो मुरारि॥
सब जानि बूझियत मोहि राम। सुनियैं जो कह्यो जग ब्रह्म नाम॥
तिन के अशेष प्रतिबिम्ब जाल। तेइ जीव जानि जग में कृपालु॥[१]

विश्वास की प्रार्थना पर वशिष्ट ने ब्रह्म के विशेष सत्व तत्व का विवेचन उपर्युक्त पंक्तियों में किया है। वशिष्ट का यह तत्व विवेचन पूर्णतः 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के सिद्धान्त पर आधारित हैं। वशिष्ट के मतानुसार जब सच्चिदानंद परब्रह्म सगुण रूप धारण करेंगे और त्रिलोक के तीनों ताप हरेंगे तब सब लोग उसको राम कहेंगे और तब से राम शब्द स्वयं सिद्ध मंत्र हो जायगा।[२]

वास्तव में समस्त जीव तात्विक दृष्टि से राम मय ही हैं। वे जगत की भी ब्रह्म से भिन्न कोई अपनी सत्ता नहीं मानते। जगत् माया का एक दर्पण मात्र है जिसमें ब्रह्म का प्रतिबिंब जीव रूप में दिखायी देता है। यही जीवों की अनेकता का रहस्य है। जीव की अनेकता की व्याख्या प्रतिबिम्बवादी पद्धति से की है। उसी की अद्भुत भाव से विष्णु से लेकर परमाणु तक नानारूपात्मक जगत की सृष्टि हुई है :

ताके अद्भुत भाव ते भये सरूप अपार।
विष्णु आनि परमानु लै उपजत लगी न वार॥[३]

१—रा० चं० १५।१, २
२—जहीं सच्चिदानन्द रूपै धरेंगे। सु त्रैलोक के ताप तीनों हरेंगे॥
कहैगो सबै नाम श्रीराम ताको। स्वयं सिद्ध है शुद्ध उच्चार जाको॥ —रा० चं० २६।५
३—वि० गी० १५।१२

यही अद्भुत भाव जिससे समस्त सृष्टि उद्भूत है, अद्वैतवाद की दृष्टि से त्रिगुणात्मिका माया की समष्टि से उपहित चैतन्य रूप है। इस उपाधि के रजोगुण की प्रधानता से सृष्टि की रचना, सत्व की प्रधानता से पालन एवं तम की प्रधानता से संहार होता है। इन्हीं शक्तियों को हम भावना के क्षेत्र में ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहते हैं :

इक है जो रजो गुन रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची विधि नाम विहारो।
गुण सत्वधरे तुम रक्षत जाको। अब विष्णु कहै सिगरौ जग ताको।
तुम ही जग रुद्ररूप संघारो। कहिये तिन मध्य तमो गुण भारो।।[1]

इसी तत्व को केशव ने विज्ञान गीता में भी स्वीकार किया है—

रक्षक होने विष्णु, विधि करता, हर हरतार।[2]

केशव के अनुसार जो त्रिगुणात्मिकता माया है वह अपने सगुण ब्रह्म से भिन्न नहीं है। गुण से गुणी पृथक नहीं, अवयव से अवयवी पृथक नहीं, इसी प्रकार ब्रह्म से जीव अलग नहीं किन्तु अलौकिक आनन्दादि गुणों के अभाव में जीव भ्रमित होता रहता है। इस गुणमयी माया से रहित निरुपाधिक चैतन्य ही अखण्ड ब्रह्म हैं—

तुमही गुन रूप गुनी तुम ठाए।
तुम एक ते रूप अनेक बनाए।।[3]

इस प्रकार अखण्ड ब्रह्म ही सर्वाधार माना जाता है। केशव ने विज्ञान गीता में इस का वर्णन इस प्रकार किया है—

अकृत मै अखण्डित त्वै।
अशेष जीव मण्डि त्वै।।
समस्त शक्ति युक्त है।
सुदेव देव मुक्त है।।[4]

इस प्रकार यह निरीह, निरंजन, निरवयव अखण्ड रूप कभी सर्वशक्ति संपन्न तथा कभी

१—रा० चं० २०।१७-१८
२—वि० गी० १५।१३
३—रा० च० २०।१७
४—वि० गी० १५।४१

अशेष जीव मंडित दिखायी पड़ता है। शुद्ध चैतन्य ब्रह्म माया एवं उसकी कृति का आरोप ही इसका कारण है।

केशव ने अपने राम को परमेश्वर माना है। अतः गरुड़, कुबेर, यम, शिव और करोड़ों सूर्य तथा चंद्रमा अपने को राम का दास मानते हैं।[1] इनके 'नरइव लीला' की चर्चा करते हुए कहा गया है कि श्री रघुनाथ जी सर्वव्यापी और सर्वज्ञ होने पर भी मनुष्य की सी लीला करके मूढ़ों को मोहित कर लेते हैं।—

यद्यपि श्री रघुनाथ जू सम सर्वग सर्वज्ञ।
नर कैसी लीला करत, जेंहि मोहत सब अज्ञ ॥[2]

इन्हें कुछ स्थलों पर यज्ञ पुरुष, नारायण इत्यादि से अभिहित किया गया है। ये ही कृष्णावतार में वालि के अवतार जरा नामक व्याध के बाण से मारे गये थे।[3] ये सदा अन्तर्यामी चतुर्दश लोकों के आनन्ददाता तथा निर्गुण और सगुण स्वरूप हैं।[4] ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि केशव के उपास्य एवं अवतारी ब्रह्म राम तुलसी दास के राम के निकट आते हैं। प्रायः राम के ब्रह्म और उपास्य सम्बन्धी जितने उपादानों का प्रयोग गोस्वामी में मिलता है, केशव ने भी उनका अत्यधिक प्रयोग किया है। इस प्रकार केशव और तुलसी राजदरबार तथा ठाकुर दरबार के या दो स्कूलों के होते हुए भी राम के अवतारत्व की दृष्टि से अभिन्न प्रतीत होते हैं। राम चन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में केशव ने तुलसीदास के इस सिद्धान्त से सहमति प्रकट की है कि निर्गुण ही सगुण हो जाता है।

पुराणों के अनुसार केशव का राम भी परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् रूप है। उन्होंने धरा को रावण आदि राक्षसों से मुक्त करने के लिए लोक में मानव का रूप धारण किया है, किन्तु उन्होंने राज परिवार में जन्म लिया है। अतः उनके समस्त कार्यों में राजकीय मर्यादा है। रामचन्द्रिका के राम का विकास मुख्य रूप से वाल्मीकी रामायण,

१—पच्छिराज जच्छराज प्रेतराज जातुधान।
देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान ॥
पर्वतारि अर्ब खर्ब खर्ब सर्वदा बखानि।
कोटि कोटि सूर चन्द्र रामचन्द्र दास मानि ॥ —रा० च० १२।१७

२—वही, १२।२६

३—सुनि वासव सुत बल बुधि निधान। मैं शरणागत हित हते प्राण।
यह सांटो लैं कृष्णावतार। तब ह्वै हौ तुम संसार पार ॥ —रा० च० १३।४

४—राम सदा तुम अन्तरयामी। —रा० च० २०।१५

हनुमन्नाटक, आध्यात्म रामायण तथा प्रसन्नराघव की छाया में हुआ है।

केशव के सगुण ब्रह्म राम यद्यपि परमात्मा परब्रह्म थे, तो भी आलोच्यकालीन राजाओं की जो सहज दुर्बलताएं थीं उनसे मुक्त नहीं थे। उन पर सामंतीय वैभव तथा विलास की गहरी छाप पड़ गयी है। डा० हीरालाल दीक्षित के शब्दों में राज्याभिषेक के बाद तो केशव के राम बिल्कुल केशव के समकालीन श्रृंगारिक मनोवृत्ति रखने वाले राजा महाराजाओं के रूप में दिखलायी देते हैं। वह कभी चौगान खेलने जाते हैं तो कभी सीता के साथ वाटिका की सैर करने, कभी रनिवास की स्त्रियों के साथ जाकर जलक्रीड़ा करते हैं तो कभी दरबार में बैठ कर नाच गाने का आनन्द लेते हैं।[1] यद्यपि केशवदास ने राम को परब्रह्म निर्गुण के रूप में स्वीकार किया है तो भी उनके सगुण रूप को ही अधिक प्रश्रय दिया है।

ऊपर के विवेचन से तीन निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहला केशव अद्वैतवाद से प्रभावित होने के कारण ब्रह्म को निर्गुण तथा निरवयव मानते हैं। दूसरा ब्रह्म निर्गुण होते हुए भी भक्तों के मनोरथ पूरा करने तथा दुष्टों का विनाश करने सगुण रूप राम के रूप में अवतार लेते हैं। तीसरा उन्होंने परमात्मा के अवतार स्वरूप राम को अपने समकालीन विलासी राजाओं के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया है।

४—१४ अवतारवाद :

हिन्दू संस्कृति जिन श्रुति-स्मृतियों पर अवलंबित है उनमें मूलतत्व सच्चिदानन्द के दो रूप माने गये हैं—निराकार और साकार। योगी अपने योग की साधना से और ज्ञानी तत्व चिंतन के द्वारा निराकार का साक्षात्कार कर सकते हैं। सगुण रूप भक्ति मार्ग का साध्य है। निर्गुण रूप ही जगत की सृष्टि, स्थिति और लय के लिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में अवतरित होता है। इसके अतिरिक्त जगत में धर्म की स्थापना, भक्तों के परित्राण तथा अत्याचारी राक्षसों के संहार के लिए भगवान बार-बार अवतार लेता है।[2] तुलसी ने शिव के द्वारा पार्वती से यही तत्व कहलाया था।[3]

१—केशवदास, डा० हीरालाल दीक्षित, पृ० १४१

२—रा० चं० २०।१८-१६

३—जब जब होय धरम की हानी। बढहिं असुर अधम अभिमानी।
करहिं अनीति जाय नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुरधरनी॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस रामजन्म कर हेतु॥—तुलसी रामायण, बालकाण्ड।

४—१४१ हिन्दू संस्कृति में अवतारवाद :

भारत के मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद एक शक्तिशाली प्रेरक तत्व के रूप में काम करता रहा है। कई निर्गुण संप्रदाय इसके विरोधी रहे हैं और कभी विरोधी रहते हुए भी प्रकारांतर से इसके प्रभाव में आ गये हैं। मध्यकालीन साहित्य, मूर्ति, चित्र, वास्तु, संगीत, नृत्य आदि सभी कलाएँ अवतारवाद की कल्पना से अनुप्राणित हैं। अतः अवतारवाद के तत्व को समझे बिना ये कलाएँ ठीक से समझी नहीं जा सकती। "अवतारवाद की अन्तर्निहित एकता और उसका आपाततः दृश्यमान वैचित्र्य निपुण निरीक्षक को भी चकित कर देते हैं। इस धर्म साधना का साहित्य बहुत बड़ा है, विभिन्न संप्रदायों और उपसंप्रदायों के मूल ग्रन्थ, उन पर लिखी गयी टीकाएँ, उनकी रसात्मक साहित्यिक अभिव्यक्तियां, उनकी पूजा अर्चा सम्बन्धी साहित्य बहुत विशाल है।"[१] वैष्णव संप्रदाय में भगवान के मानव रूप अवतारों को ही मुख्यतः स्वीकार किया गया है, यद्यपि अन्य अवतारों की भी अस्वीकृति नहीं है। उनमें भी राम और कृष्ण प्रमुख हैं। मध्यकालीन सभी कवि इन्हीं दो अवतारों को लेकर चले हैं। डा० दीन दयाल गुप्त के अनुसार राम का अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम और पुष्टि पुरुषोत्तम रमेश, दोनों का है। धर्म संस्थापन के लिए भगवान का जो अवतार होता है, वह चक्रव्यूहात्मक है। संसार को केवल आनन्द देने के लिए जो अवतार होता है वह उनका रस रूप है। कृष्णावतार में कृष्ण ने अपने दोनों रूपों से चक्रव्यूहात्मक तथा रसात्मक अवतार लिया था।[२]

केशव के ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उन्होंने राम को तो भगवान के चक्रव्यूहात्मक अवतार के रूप में माना है। किन्तु श्रीकृष्ण के केवल रस रूप को ही स्वीकार किया है। रसिक प्रिया में कृष्ण के रस रूप का ही वर्णन किया गया है। रसिकप्रिया में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है—

"श्रीवृषभान कुमारि हेतु श्रृंगार रूप भय"[३]

किन्तु राम अधर्म का नाश करने वाले और धर्म के प्रचारक हैं। इन्होंने अपनी इच्छा से पृथ्वी पर मानव रूप धारण कर लिया है। रावण को मारकर तपस्वियों को व्रतपालन की सुविधा प्रदान करना इनका कार्य मान माना गया है :[४]

१—मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, भूमिका, पृ० ७ (डा० कपिलदेव पाण्डेय)

२—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, दूसरा भाग, पृ० ४०४

३—रसिक प्रिया, १।२

४—निजेच्छया भूतल देहधारी। अधर्म संहारक धर्मचारी ॥
चले दशग्रीवहि मारिबो को। तपी व्रती केवल पारिबो को ॥—रा० च० ११।४१

केशवदास ने रामचन्द्रिका में भगवान के दस अवतारों का वर्णन करके अवतारवाद के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। ब्रह्मा ने श्रीराम की स्तुति करते हुए कहा है—हे राम तुम ही संसार हो और सब संसार तुम्हीं में स्थित है। तुम्हीं ने संसार के सब जीवों के कृत्यों की सीमा बांध दी है। जब जिस जीव को सीमा का उल्लंघन करते देखते हो, तब उसको नष्ट करने के लिए तुम कोई अवतार लेते हो। तुम ही विविध अवतारों के रूप में प्रकट होते रहे हो।[1]

केशव ने अपने साहित्य में केवल राम, कृष्ण और परशुराम के अवतारों के ही शक्ति, शील तथा सौन्दर्य का वर्णन किया है। शेष अवतारों का केवल उल्लेखमात्र किया है।

४—१४२ दशावतार :

भगवान के अवतार असंख्येय माने गये हैं। किन्तु उनमें दस अवतार मुख्य हैं—(१) मत्स्य (२) कच्छप (३) वराह (४) नृसिंह (५) वामन (६) परशुराम (७) श्रीराम (८) बलराम (९) बुद्ध और (१०) कल्कि। केशव के साहित्य में इन सभी के नाम उल्लिखित हैं।[2]

४—१४३ राम :

केशव ने राम के दिव्य मंगल विग्रह का वर्णन किया है। सीता और राम के विवाह के समय राम के नख-शिख वर्णन के द्वारा केशव ने राम के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन किया है। केशव के अनुसार राम के सिर पर गंगा जल के समान सफेद पगड़ी शोभा देती है। उनकी भौंहें किंचित वक्र, सुन्दर, निर्मल चिकनी तथा दीर्घ हैं। उनके कानों के मकाराकार कुण्डल मुख की शोभा बढ़ाते हैं। केशव ने उनके मुख की शोभा का वर्णन करते हुए सांगरूपक के द्वारा पुष्करिणी के समान चित्रित किया है।[3] राजतिलक के सन्दर्भ में भी केशव ने राम के राज चिन्हों का विशद वर्णन किया है।[4] इससे यह स्पष्ट होता है कि राम के सम्बन्ध में केशव की धारणा लोक रक्षा से सम्बन्धित है। साथ

१—रा० च०
२—वही, २०।२०-२३
३—वही, ६।४६-५७
४—वही, २६।११,१७

ही उनका सौन्दर्यमूलक रूप भी पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ है। आस्तिक लोक तंत्र की दृष्टि से उनमें एक आदर्शराजा भी परिलक्षित है। राम की शक्ति कविप्रिया के कुछ उदाहरणों में व्यंजित है। शील का चित्रण भी कहीं-कहीं किया गया है। इस कारणशील, सौन्दर्य और शक्ति के प्रतीक राम की अविकल झांकी केशव साहित्य में मिलती है।

४—१४४ कृष्ण :

केशव ने कृष्ण के केवल श्रृंगारी रूप का ही वर्णन किया है। केशव के अनुसार उनका सिर पगड़ी से शोभित है, गले में दुपट्टा प्रकाशमान है, कटि में दुपट्टा कसा हुआ है, शरीर पर अंगराग का लेपन किया गया है। पान का बीड़ा खाने के कारण उनका मुँह शोभा देता है।[1]

भक्तिकाल में कृष्ण का जो मधुर रूप रसिक सम्प्रदायों में मान्य था केशव का भी वही इष्ट प्रतीत होता है। इस पर पहले भी कुछ विचार किया जा चुका है।

४–१४५ परशुराम :

केशव के अनुसार परशुराम पैंती, हवन काष्ठ, शृवा, कुश और कमंडल को लिये हुए थे। कटि से कर्ण तक तूणीर बांधे थे। उनके वक्षःस्थल पर भृगुचिन्ह सा कुछ दिखायी पड़ता था। धनुष, बाण और तूणीर लिए हुए थे। मेखला और मृगछाला को धारण कर लिया था। उनका आकार बहुत भयानक था। उन्हें देखकर मत्तदंतियों का मद दूर हो गया था।[2] राम के अनुसार वे अखण्ड कीर्तिवान, सहस्त्रार्जुन के हंता तथा दैत्य दानवों के विजेता थे।[3] महादेव के अनुसार राम और परशुराम दोनों में अभेद था। परशुराम के अवतार की आवश्यकता की पूर्ति होने के बाद उनके ईश्वरांश की समस्त शक्तियां राम में केन्द्रित हो गयीं।[4]

इस प्रकार परशुराम एक ओर ब्राह्मण तपस्वी उपकरणों से संयुक्त हैं और दूसरी ओर क्षत्रिय चिन्हों से सामान्यतः धरती का भार उतारने के लिए नहीं, एक जाति की निरंकुशता को दूर करने के लिए उनका अवतार हुआ था। इस प्रकार उनकी गणना

१—रसिक प्रिया, १३।१४

२—राम० चं० ७।१५

३—वही, ७।१६

४—वही, ७।४५

पूर्णावतारों में नहीं हैं। राम में परशुराम से मिलने से पूर्व जिन अंशों की कमी थी वे अंश परशुराम से उन्हें प्राप्त हुए और वे पूर्णावतार हो गये। यही पौराणिक मत का सार है।

४-१४६ रहस्यवाद :

कवि प्रकृति में कभी कभी परम सत्ता की छाया देखकर प्रभावित हो जाता है और उसे परम शक्ति द्वारा संचालित देखता है। पहले पहल जब मानव की सृष्टि हुई और उसने पृथ्वी पर आकर देखा कि सूर्य, अग्नि, वायु, जल आदि वस्तुएं अपने जीवन के लिए अनिवार्य हैं तब उसने उनमें देवत्व की स्थिति को स्वीकार किया तथा उनकी अनिर्वचनीय शक्ति की स्तुति करने लगा। उन्हीं स्तुतियों का संग्रह ऋग्वेद है। गीता में कृष्ण अर्जुन से कहता है, इस संसार में जो दिव्य शक्तियां हैं वे सब मेरे ही अंश हैं। मैं आदित्यों में विष्णु हूँ, ज्योतियों में मैं जगमगाता सूर्य हूँ, वायु में मरीचि हूं और नक्षत्रों में चंद्रमा हूँ।[1]

केशवदास ने भगवान राम की अनिर्वचनीय लीलाओं के वर्णन में इस रहस्यात्मक भावना का आश्रय लिया है। उनके अनुसार भगवान राम की ज्योति से अखिल विश्व आलोकित है।[2] ये अमल अनंत अनादि देव हैं। वेद इनके सभी रहस्यों को खोलने में असमर्थ हैं। ये सभी को समान दृष्टि से देखते हैं। न तो इनका किसी से वैर है और न प्रेम, फिर भी सभी भक्तों के निमित्त राम के रूप में अवतीर्ण होते हैं।[3] वेदों के द्वारा पूर्ण काम के रूप में संज्ञापित होने पर भी विश्व के कर्ता, पालक और हर्ता होने पर भी इन्होंने अत्यंत कृपा करके मनुष्य का शरीर धारण किया है। ये देवताओं में श्रेष्ठ, राक्षसों के नाशक और मुनियों के रक्षक हैं।[4] ये रघुपति ब्रह्म से लेकर परमाणु तक सभी में व्याप्त अज और अनंत हैं।

१—आदित्यानामहं विष्णुः ज्योतिषां रविरंशुमान।
मरीचि मरुतामस्मि, नक्षत्राणामहं शशिहिः अश्र। भगवद्गीता-१०।२१

२—जागत जाकी जोति जग एक रूप स्वच्छंद। रा० चं० १।२१

३—तम अमल अनंत अनादि देव।
नहिं भेद बखानत सकल भेव॥
सबको समान नहि बैर नेह।
सब भक्तन कारण धरत देह॥ रा० चं० ७।४६

४—रा० चं० ११।१५

परमात्मा रामचन्द्र का प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है। उनके दर्शन मात्र से ही सृष्टि में विलक्षण प्रकाश और प्रभाव संचालित होते हैं। सीता और लक्ष्मण के साथ राम के वन में प्रविष्ट होते ही जल शून्य सरोवर जलपूर्ण हो गये, कमलों के ऊपर भ्रमरावली संचार करने लगी। वहाँ के सूखे पेड़ और लताएं पुनः हरे भरे तथा पुष्पों से सुसज्जित हो गये। इस प्रकार जहां राम विश्राम करते थे, वहां सभी भोग स्वतः उपस्थित होते थे।[1]

४-२ देव दर्शन :

भारतीय संस्कृति प्रत्येक पदार्थ की दृश्य जड़ सत्ता की नियामक शक्ति को स्वीकार करती है। यह शक्ति चेतन है और यही उस पदार्थ की अधिदैविक शक्ति है। बिना चेतन के आधार के जड़ की कोई स्थिति नहीं हो सकती। शरीर से शरीराभिमानी चेतन जीव जब चला जाता है, तब शरीर रहता नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु का अधिष्ठातृ देवता है। उसके बिना वस्तु का अस्तित्व ही संभव नहीं रहता। श्री दीनानाथ जी शर्मा के अनुसार देवतावाद के प्रसारक वेद ही हैं। हिन्दू संस्कृति में देवताओं के प्रति अगाध श्रद्धा रही है। देवता परमात्मा के ही उत्तम अंग हैं। अंगी की पूजा अंगों के द्वारा ही होती है। इसी लिए देवपूजा हिन्दू संस्कृति का एक अंग है। इन देवताओं में अलौकिक शक्ति रहती है। यदि पारमार्थिक दृष्टि से देखा जाय तो इस सपूर्ण संसार का भरण पोषण देवताओं पर आश्रित है। देवताओं के अनुकूल होने पर ही संसार सुख की स्वास ले सकता है।[2] इन देवताओं की संख्या वैदिक काल में सीमित थी। किन्तु पौराणिक काल तक ३३ करोड़ों तक पहुंच गयी।

देवताओं के लिए कवि ने देव,[3] सुपरवा,[4] विबुध,[5] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इन देवताओं में इन्द्र,[6] अग्नि,[7] आदित्य,[8] यम,[9] वायु,[10] वरुण,[11] चंद्रमा,[12]

१—वही, ६।३६

२—कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ३५२

३—रा० चं० २२।४

४—वही, ४।६

५—वही, २।६

६—वही, ५।५५

७—वही, १०।११

८—वही, १६।३

९—वही, १६।२४

१०—वही, १।३६

११—कॅ० ं० ३६१।११२

१२—वाके अतिशीतकर तुहूं सीतासीताकर।
चंद्रमः सी चंद्रमुखी सब जग जानिए॥ रा० च० ६।४०

रुद्र,[१] कुबेर,[२] षण्मुख,[3] शेष,[४] हली,[५] काम,[६] दिक्पाल,[७] लोकपाल,[८] गजमुख[९] आदि मुख्य हैं।

द्यावा पृथ्वी के अतिरिक्त उक्त सभी देव पुराण काल में भी मान्य रहे। प्रकृति की दिव्य शक्तियों का भाव समाप्त होता गया। विष्णु सूर्य की कला न रह कर पृथक सर्वशक्तिमान देवता बन गया, जिसके राम कृष्ण आदि अवतार भी हुए। ब्रह्मा, विष्णु और महेश पुराण काल में सर्व प्रमुख देवता हो गये। इनमें भी विष्णु का स्थान सब से अधिक लोकप्रिय हो गया। समस्त अवतारवाद की कल्पना विष्णु पर ही केन्द्रित है, यद्यपि उसमें प्रच्छन्न वैदिक सूत्र भी खोजे जा सकते हैं।

४-२१ त्रिदेव : ब्रह्मा, विष्णु और महेश :

ब्रह्मा : केशव ने ब्रह्मा के लिए विरंचि,[१०] करतार,[११] ईश[१२] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। सृष्टि के प्रारंभ के समय कमल पर आसीन होने के पौराणिक विश्वास के आधार पर ब्रह्मा के लिए रूढ कमलासन[१३] शब्द का भी प्रयोग केशव ने किया है। चतुरानन,[१४] और चतुर्मुख[१५] शब्दों के द्वारा ब्रह्मा के चार मुखों के होने की कल्पना भी की गयी है। प्रलयाब्धि के मध्य प्रकाशमान एक अरुण कमल खिला था। उसकी कर्णिका पर एक पद्म के ही रंग का बालक बैठा था। बालक ने चारों ओर देखने

१—रुद्र की समुद्र की अमर सिंह रान है। क० प्रि० ११।३२
२—ज० ज० चं० १।२३
३—नातो बरनैं षटमुख तदपि नई नई। रा० १।२
४—मानहु शेष असेष धर धरनहरि वरि बंड। रा० चं० ३१।४
५—भयवस्य शूली हली चक्रधारी। वि० गी० ७।८
६—कामजू से रूप रूरे हिय हरियत है—र० प्रि० २४।१६
७—जानि जानि चंद मुख केशव चकोर सम, चंद्रमुखी चंद ही के बिंब त्यों चितेर है। र० प्रि० १४।२०
८—दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की—रा० ३।३४
९—दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को —रा० १।२
१०—बिरंचिगुण देखै। राम० चं० १।१५
११—आये विश्वामित्र जी जनु दूजो करतार। वही, १।४५
१२—ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जोन्हाई।—वही, ३।१५
१३—केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै। वही, १७।४६
१४—चतुरानन चित चिन्तन कीन्हो। रा० चं० १३।४५
१५—कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ७९४

की इच्छा की और वह चतुर्मुख हो गया। विमला या सरस्वती इसकी पत्नी होने के कारण इसका नाम विमलापति[1] भी पड़ गया हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये केशव के द्वारा वर्णित मुख्य देवता हैं। इन तीनों का समन्वय ही त्रिमूर्ति कहलाता है। ब्रह्मा पहले बराबर अपने मन से मानसिक सृष्टि करता रहा। किन्तु मानसिक सृष्टि के प्राणियों की प्रवृत्ति सृष्टि में नहीं लगी। अन्त में स्वयं स्रष्टा ने अपने दाहिने भाग से मनु और वाम भाग से शतरूपा को प्रकट किया। यह युग्म सृष्टि के विकास में प्रवृत्त हुआ। इस प्रकार क्रमशः सृष्टि होने लगी।[2] केशव ने सृष्टि-कर्ता के रूप में परब्रह्म के सगुण रूप विधि[3] ब्रह्मा को स्वीकार किया है।

विष्णु :

केशव ने विष्णु के लिए अनेक पर्यायों का प्रयोग किया है। जैसे हरि,[4] नारायण,[5] सुरराय,[6] चक्रधारी,[7] कमलापति,[8] त्रिभुवनपति,[9] श्रीस[10] परमेसुर,[11] जगदीश,[12] त्रिभुवन सासन,[13] करतार,[14] करतारहु को करतार,[15] परमानन्द,[16] आनन्दकंद,[17] आदि। केशव साहित्य के आधार पर विष्णु से सम्बन्धित इन पौराणिक मान्यताओं का उल्लेख इस प्रकार है—"आषाढ़ मास में विष्णु लक्ष्मी के साथ पन्नग शय्या[18] पर सोता

१—कै कमला विमलापति कोऊ।—रा० च० ६,२८
२—कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ७९४
३—इक है जो रजो गुण रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची विधि नाम विहारो।—रा० २०।१७
४—रा० म० ३।२
५—नारायण सोहति सकल द्विज दूषण संयुक्त। वही, ३।८
६—श्रीहरि की जनु मूरत लसै।—वही, ११।२०
७—शिशु सौ लसै सग धाय। वनमाल ज्यों सुरराय।—वही, १३।८
८—भयत्रस्य शूली हली चक्रधारी।—वि० गी० २।८
९—के० ग्रं० पृ० १३२।५०
१०—वही, ४६६।२३
११—रा० चं० ३१।२२
१२—के० ग्रं० पृ० ४६८।१६
१३—वही, २९९।२६
१४—वही, ३६८।१२
१५—सौकर मांगन को बलि पै करतारहु को करतार—रा० चं० ४।१५
१६—के० ग्रं० १।१
१७—वही, ७०६।२३
१८—क० प्रि० १८।२७ यहि समय सेज सोवन लियौ श्री हरि साथ श्री नाथ हु।

है। सर्पों के शत्रु गरुण पर आरूढ़ होता है।[१] विष्णु के हृदय पर श्रीवत्स का चिन्ह शोभित है :[२] वह सृष्टि, स्थिति, लय का नियामक हैं।[३] केशव ने लिखा है कि भगवान विष्णु भूलोक में अनेक स्थलों पर विभिन्न रूपों में विराजमान हैं। साकद्वीप में साक्षात् विष्णु निवास करता है।[४] हरिवर्ष खण्ड में विष्णु लक्ष्मी के साथ रहता है।[५] रम्यक खण्ड में भगवान मत्स्य रूप में विराजमान हैं।[६]

वेदसार सर्वस्व विष्णु अपनी योगमाया से जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में व्यक्त होता है। श्रुतियां उसकी निःस्वास से निःसृत हैं। "निश्वसितमस्य वेदाः" समस्त श्रुति, स्मृति, और पुराण उसी का गुणगान करते हैं। ऋग्वेद का विष्णु सूर्य और उसका आयुध सूर्याकृति का गोल और गतिशील चक्का है।[७] जो पीछे चक्र बन गया। ऋग्वेद में यह तीन डग लेकर भू स्थल[८] को पार करता है। यही बाद में पौराणिक वामनावतार का प्रतीक बन गया।

महेश :

केशव ने महेश के लिए ईश,[९] शंभु,[१०] मदनकदन,[११] हर,[१२] सित कंठ,[१३] संकर,[१४] गिरीश,[१५] महादेव,[१६] उमापति,[१७] गंगाधर,[१८] पंचमुख,[१९] शूली,[२०] हर,[२१]

१—पन्नगारि प्रभु पन्नग साई।—रा० चं० १७।२

२—जो नारायण उर श्री बसन्ती।—वही. १३।७६

३—रा० चं० १०।१७,१८

४—वि० गी० ४।१२

५—वही, ४।३४

६—वही, ४।३५

७—ऋग्वेद, ६३।४

८—वही, ७।६९

९—रा० चं० १।४६

१०—वही, ४।४, क०प्रि० ७.७

११—रा० चं० ४।१३

१२—वही, ३।२

१३—वही, ७।८

१४—वही, ७।१९

१५—गिरीश नारायण पै सुनी ज्यों।—रा० चं० २१।१६

१६—वी० च० २।६

१७—रा० चं० २५।१७

१८—वही, २६।११

१९—वि० गी० २।२४

२०—वही, २।८

२१—क० वि० ५।५

भूतनाथ,[1] त्रिलोचन,[2] बिंदुमाधव,[3] विश्वनाथ,[4] रुद्र,[5] खंडपरशु,[6] सोमधर,[7] धूरजटी,[8] - कासीस,[9] भैरव,[10] कपालनाथ, आदि अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। केशव ने अपने ग्रन्थों में शिव के निम्न लिखित गुणों का उल्लेख किया है। शिव के पीछे हमेशा प्रमथ गणों की बड़ी भारी सेना चलती है, जो उसकी आज्ञा का तुरन्त पालन करती है।[11] भारद्वाजादि महर्षियों को पौराणिक कथाओं का ज्ञान प्रदान करने वाले हैं।[12] वशिष्ठादि तपस्वी महर्षियों को वर प्रदान करने वाले हैं।[13] पार्वती को आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश देने वाले हैं।[14] वह शालमालि द्वीप में सोमरूप में विराजमान हैं।[15] जंभूद्वीप में इलावृत खण्ड परमपावन है। वहां शिव विराजमान है। शिव के वन की रक्षा भूत करते हैं और पार्वती वहाँ क्रीड़ा किया करती है।[16] केशव ने शिव का वर्णन इस प्रकार किया है।—

शिव के उज्ज्वल और विशाल वक्षस्थल पर हार के समान वासुकि विराजमान है। स्वच्छ और सफेद कुन्द कलियों के समान गंगोदक के कण जटाओं पर शोभा देते हैं। नख रेखा के समान चन्द्र रेखा चन्दन के समान भस्म और अंजन रेखा के समान विष की काली आभा उनके शरीर में यथास्थान सुशोभित है और सर्व मंगला पार्वती साथ है। मस्तक पर जावक के समान अग्नि की रेखा शोभित है।[17]

भगवान शिव से सम्बन्ध रखने वाली जितनी पौराणिक कथाएँ हैं उतनी प्रायः

१—ज० ज० च० छं ३०

२—क० प्रि० ६।१२

३—वि० गी० ११।१६

४—वही, ११।१३

५—रुद्र समुद्र सदा तपसाके।—वि० गी० ६।५१

६—खण्ड परशुको शोभिजै, सभा मध्य कोदंड।—रा० च० ३।१४

७—के० ग्र० २६५।७१

८—वही, २८५।१८

९—वही, ५४०।७

१०—वही, ७०१।४०

११—रा० च० २६।२

१२—गिरीश नारायण पै सुनी ज्यौं। गिरीश मोसौं जु कही कहौं त्यौं।—रा० २१।१३

१३—वही, २५।२६

१४—वीर नरेश धनेश तुम, मोहि जु बूझीगाथ।
सोई श्री शिव को शिवा, बूझी है नृपनाथ॥—वि० गी० १।२६

१५—वही, ४।२१

१६—भूतल है शिव के वन को जहं। पारवती पति केलि करै तहं—वि० गी० ४।३२

१७—रा० च० २५।२५

अन्य देवताओं के सम्बन्ध में नहीं हैं। उसने समय-समय पर अवतार धारण कर शैव-मत की लोक में स्थापना की है। नैष्टिकरूप से भगवान शंकर की आराधना सभी शैव संप्रदायों में होती है।

४—२२ हरि और हर में अभेद :

केशव उपासना के क्षेत्र में हरि और हर में कोई अन्तर नहीं मानते। उन्होंने अपने साहित्य में अनेक स्थलों पर अपना अभेदवाद का स्पष्ट उल्लेख किया है। वीरसिंह देव चरित के प्रारम्भ में उन्होंने शिव की स्तुति की है तो रामचन्द्रिका में श्रीराम की वन्दना। इस प्रकार ग्रन्थारम्भ में ही उन्होंने अपना अभिमत प्रकट किया है। विज्ञानगीता में उन्होंने उल्लेख किया है कि परमात्मा परब्रह्म को कोई शिव कहता है और कोई शून्य। एक उसे काल कहता है और दूसरा महाविष्णु। कुछ कहते हैं कि ये सब परब्रह्म के ही स्वरूप हैं—

कहैं एक ता सों शिवे शून्य एकै।
कहैं काल एकै महाविष्णु एकै।
कहैं अर्थ एकै परब्रह्म जानो॥[1]

इसी ग्रंथ में उन्होंने हरि और हर का अभेद प्रकट किया है।[2] रामचन्द्रिका में तो यह बात और भी स्पष्ट की गयी है। समुद्र पर सेतु बन्धन करने के पश्चात् राम ने अति भक्ति भाव से सेतु के आरम्भ के स्थान एक शिव लिंग की स्थापना और उसकी आराधना की। उस मूर्ति के महात्म्य का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि जो इसके दर्शन करेगा, वह भवसागर से पार तर जायेगा।[3] केशव ने उस प्रकाशमान मूर्ति को संसार सागर के जहाज के कर्णधार के रूप में उत्प्रेक्षा की है—

सेतुमूल शिव शोभिजै, केशव परम प्रकाश।
सागर जगत जहाज को, करिया केशवदास॥[4]

१—विज्ञानगीता, २०।४८

२—वही, ११।२८

३—उरते शिवमूरति श्रीपति लीन्हीं।
शुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्हीं॥
इनको दरसै परसै पग जोई।
भव सागर को तरि पार सो होई॥—रा०

४—रा० चं० १५,३५

केशव ने एक स्थल पर वर्णन किया है कि विष्णु ने शिव की तपस्या की थी इनके वरदान से समस्त लोकों का आधिपत्य तथा लक्ष्मी को प्राप्त किया था।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव ने तुलसी के समान शिव और विष्णु में अभेद स्वीकार किया है। इसलिए भक्ति के प्रसंगों में शिव और विष्णु को अभिन्न तथा आराधनीय माना गया है। इससे केशव की उदारता प्रकट होती है।

४-२३ अन्य देवता :

इन्द्र : केशव ने इन्द्र के लिए सुरराज[2], सुरराई[3], पर्वतारि[4], मघवा,[5] सुरनायक[6], देवेन्द्र,[7] हरिहय[8], देवदेव[9], शक्र[10],अमरेस,[11] पाकशासन,[12] घनवाहन[13] आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

इन्द्र वेद का सर्व प्रमुख और सर्वशक्तिमान देवता था। प्रत्येक मन्वन्तर में स्वर्गाधिपति का पद बदलता रहता है। इन्द्र शतक्रतु कहलाता है। सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाला चक्रवर्ती मन्वन्तर में इन्द्र होता है। इसकी पत्नी का नाम शची और पुत्र का नाम जयन्त है। केशवदास ने इन्द्र के शची और जयंत के साथ भूलोक में संचार करने का उल्लेख किया है।[14] इन्द्र वर्षा का अधिपति है। वृष्टि से ही लोक का पोषण और जीवन चलता है। इन्द्र के मेघों के अधिपति होने का उल्लेख भी केशव ने किया है।[15] वर्षा के समय इन्द्रधनुष के कारण मेघों में नाना प्रकार के रंगों का वर्णन भी केशव ने किया है।[16] पौराणिक विश्वास है कि इन्द्र को हमेशा यह भय होता है कि भूलोक के

१—वि० गी० ६।५७-५६
२—रा० म० ५।३१ ३—वही, ७।८
४—वही, ४।६, ११।१७ ५—वही, ११।३४ वि० गी० १६।६१
६—वि० गी० १६।१०६, रा० म० ३।८ ७—ज० ज० चं० १८६, क० प्रि० ६।५१
८—क० प्रि० ५।५
९—तहं राजा दशरथ लसै देवदेव अनुरूप। —रा० च० २।६
१०-किधौं चक्र कौ छत्र मढ्यौ मानिक मयूख पट। —रा० चं० ५।१०
११-के० ग्र० पृ० ५८१।२६ १२—क० प्रि० ५।१०
१३-र० प्रि० १४।२६
१४-देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भू लोक में सोहिए। —रा० चं० ६।३५
१५-भरत सकल सेना मध्य यों वेष कीन्हें।
सुरपति जनु आये मेघमालानि लीन्हें॥ —रा० चं० २१।१७
१६-शोभा अति शक्र सरासन में। नाना दुति दीसति है घन में॥ —रा० चं० १३।१४

निवासी यज्ञ, याग, तप आदि के द्वारा उसे पद भ्रष्ट करेंगे। अतः वह उनके यज्ञ यागादि के अनुष्ठान में विघ्न पहुँचाने के लिए या तो स्वयं प्रयत्नशील होता है या अप्सराओं को भेजता है। केशव ने इस विश्वास के आधार पर राजा शिखिध्वज के तपस्या करते समय अप्सराओं के साथ देवेन्द्र के उपस्थित होने का उल्लेख किया है।[१]

केशव ने इन्द्र के लिए जिन पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया है, वे उनके देवताओं का राजा होना, वज्रायुध से पर्वतों के पंखों को काट देना तथा यज्ञ पुरुष होना आदि मान्यताओं को प्रकट करते हैं। इन्द्र बल का प्रतीक है।[२] वह श्वेत रंग का है।[3] इन्द्र के साथ इन्द्रानी[४] का उल्लेख भी केशव ने किया है। इसके पर्याय मघौनी[५], शची[६], पुलोमजा[७] आदि भी मिलते हैं। देवराज इन्द्र की आराधना श्रुतियों में अनादिकाल से चली आ रही है। आध्यात्म विज्ञान, आयुर्वेद आदि अमूल्य विषयों का प्रवर्तन इन्द्र के द्वारा जगत में हुआ है।

अग्नि :

केशव ने अग्नि के लिए पावक[८], अग्नि[९], धूमकेतु[१०] आदि पर्यायों का प्रयोग किया है। वैदिक काल का यह मुख्य देवता था। किन्तु केशव के समय केवल यज्ञ[११] और विवाह[१२] में ही इसकी महत्ता सीमित हो गयी है। अग्नि आठ दिक्पालों में एक माना जाता है। दक्षिण एवं पूर्व दिशा के मध्य का कोण अग्निकोण कहा जाता है। यह उसी का पालक है। इसके अनेक रूप हैं। प्राणियों के भीतर यह जठराग्नि बनकर पचन करता है। समुद्र में बडराग्नि के रूप में निरन्तर प्रज्वलित होता है। वन में दावाग्नि तथा सूर्य मण्डल में दिव्याग्नि इसी के रूप हैं। व्यवहार में आने वाले अग्नि के भी—

१—वि० गी० १६।१०६
२—पवन पवन कौ पूत अरु परमेश्वर सुरपाल। —क० प्रि० ४।५२
३—कीरति हरिहय सरद घन जोन्ह जरा मंदार। —क० प्रि० ५।५
४—के० ग्रं १४०।८, ५३७।५ ५—रा० चं० २३।१६
६—के० ग्रं० ३३४।५४ ७—वही, पृ० २२।१४
८—रा० चं० ११।४१
९—अग्नि सर्वभक्षी दुःखदायक अयन को। —रा० चं० २८।१५
१०—धूम पुर के निकेत मानो धूमकेतु की शिखा॥ —रा० चं० १२।२०
११—वही, १।४८
१२—पावक पूज्यौ समिध सुधारि। आहुति दीनो सब सुख कारी। —रा० चं० ६।९

ब्राह्म, प्राजापत्य, गार्हस्त्य, दक्षिणाग्नि और क्रव्याघ अग्नि—पांच रूप होते हैं। वेदों में इसकी उत्पत्ति के विषय में कहा गया है। इसीलिए इसका जातवेद[१] नाम पड़ा। इसकी पत्नी का नाम स्वाहा है। अग्नि और स्वाहा के युगल रूप का उल्लेख केशव ने किया है।[२] हिन्दुओं की अन्त्येष्टिक्रिया में भी अग्नि का प्रमुख स्थान है।[३]

सूर्य :

सूर्य के लिये केशव ने दिनेश[४], मित्र[५], भानु[६], अर्क[७], सूरज[८], रवि[९], खचर[१०] नभश्री[११], तरनि[१२], आदि पर्यायों का प्रयोग किया है। सूर्य को देखकर कमल विकसित होते हैं। इसके आधार पर यह कविसमय प्रसिद्ध है कि सूर्य और कमलिनी में पति-पत्नी का सम्बन्ध है। केशव ने इस मान्यता का भी उल्लेख पद्मिनी प्राणनाथ[१३] के द्वारा किया है। सूर्य के लिए सूर[१४] और दिनकर[१५] शब्दों का भी केशव ने प्रयोग किया है।

ऋग्वेद में सूर्य विश्वदेवों के अन्तर्गत माना गया है। यह समस्त चराचर जगत का जीवन दाता और संपूर्ण प्राणियों का आराध्य है। यह ज्योतिर्मय, जीवन प्रदाता, उष्णमय तथा ज्ञान स्वरूप है। सूर्योपासना का वैदिक काल में बहुत प्रचलन था। कुशान और शक साधारणतः सूर्य के उपासक थे। कालिदास ने उसके हरे रंग के साथ सात घोड़ों का उल्लेख किया है जो एक रथ में जुड़े हैं।[१६] वैदिककाल से सूर्य और चंद्र के युगल रूप

१—केशव लजात जलजात जातवेद ओप। —रा० चं० ६.५६
२—कै अति शोभित स्वाहा सनाथ कै सुन्दरता शृंगार सनाथ। —रा० चं० २६.२२
३—करी अग्नि चर्चा। मिटी प्रेत चर्चा। —रा० चं० १०।११
४—भृगुकुल कमल दिनेश सुनि जीति सकल संसार। —वही, ७
५—पुर पैठत श्री राम के भयो मित्र उद्योत। —वही, ५।८
६—तम पुंज लियौ गहि भानु मनो। —वही, ८।२५
७—अर्क सपह जहं जगमगै। —वही, ११।२०
८—ज० ज० चं० १४६
९—रवि की छवि ज्यों अधरात बखानौ —रा० चं० १६।२८
१०—वी० च० ११।२४ ११—वही, २२।३३
१२—शिखनख २१
१३—अरुन गात अतिप्रात पद्मिनी प्रान नाथ मय। —रा० चं० ५।१०
१४—रा० चं० २६।३३
१५—चढ़ोगगन तर वाय दिनकर वानर अरुन मुख। —रा० चं० ५।१३
१६—कालिदास के ग्रंथों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति, डा० गायत्री वर्मा, पृ० ४४४

को स्वीकार किया गया है। केशव ने 'दोऊ तेजवंत'[1] के द्वारा वैदिक विश्वास को अंगीकार किया है। प्रातःकाल उदीयमान सूर्य अलौकिक सौंदर्य युक्त होता है। उस सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए केशव ने 'अरुन तरनि'[2] शब्द का प्रयोग किया है। सूर्य के चारों ओर जो प्रकाश पुंज होता है, उसे परिवेश[3] के द्वारा केशव ने व्यक्त किया है।

चन्द्र :

केशव के साहित्य में चन्द्र के लिए निशिनाथ[4], हिमांशु[5], विधु[6], मयंक[7], शशि[8], आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। केशव ने चन्द्रमा को सौकुमार्य का प्रतीक भी माना है।[9] शुक्ल पक्ष की द्वितीया की चन्द्रमा को हिन्दू संस्कृति में महत्ता दी गयी है। 'द्वैज का चांद'[10] के द्वारा केशव ने इस सत्य का उल्लेख किया है। रात्रि और चन्द्र का अविनाभाव सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का केशव ने पति-पत्नी संबन्ध के उपमान के रूप में उल्लेख किया है।[11] पूर्णिमा की रात्रि को चन्द्रमा की प्रेयसी मानकर 'राकारमन'[12] शब्द का प्रयोग किया गया है। 'तारानाथ'[13] भी इसी प्रकार का प्रतीकात्मक नाम है। पूर्ण चन्द्र से युक्त रात्रि राका है[14]। चन्द्रमा के प्रकाश के लिए चन्द्रिका[15] का प्रयोग हुआ है। चांदिनी[16] शब्द का प्रयोग अति सामान्य है।

चन्द्र की उत्पत्ति समुद्र से बतायी जाती है। ज्योतिष शास्त्र, चन्द्र मण्डल को ही

१—दोऊ भगवत तेजवत बलवंत दोऊ।
दुहुन की वेदन बखानि बात ऐसी है॥ क० प्रि० ११।४२

२—अरुन तरनि के विलास एक दोय उडु अकास॥ —रा० च० ३०।२०

३—परिवेश मनो रवि को फिरि आयौ। —रा० च० २२।६

४—अपनी रवि की अंबु लै सेवत जनु निशिनाथ। —वही, २६।२४

५—हिमांशु सूर सी लगै सो बात वज्र सी बहै॥ —वही, १२।४२

६—के० ग्रं० पृ १२१।२२ ७-शिख-नख, छं० १६

८—क० प्रि० ५।५

९—तेज सूर से अपार चन्द्रमा से सुकुमार। —र० प्रि० ९४।१६

१०—देखि द्वैज के चन्द ज्यो। होत नगर आनन्द॥ —बी० च० १७।२१

११—पत्नी पति बिनु दीन अति, पति पत्नी बिनु मंद।
चन्द्र बिना ज्यों यामिनी, ज्यों यामिनी बिनु चन्द्र॥ —वि० गी० १६।३६

१२—के० ग्रं० पृ० ५७१।७१ १३—वही, २१०।७१

१४—वही, ५७१।७१ १५—वही, ४।१५

१६—वही, २६६।२३

वृष्टि का आधार मानता है। समुद्र का ज्वार-भाटा चन्द्रमा से सम्बन्धित है। स्वर्गादि लोकों से प्राणी पृथ्वी पर चन्द्र मंडल से होकर जल वृष्टि के द्वारा ही आता है।[1] सूर्य से द्वितीय स्थान चन्द्रमा का है। यह 'जग लोचन'[2] भी माना जाता है। चन्द्रमा के साथ धार्मिक भावना धीरे धीरे समाप्त होती गयी और सौंदर्य पक्ष उभरता गया। यही कारण है कि चन्द्र अधिक लोकप्रिय हो गया। केशव साहित्य में चन्द्रमा देवता के रूप में कहीं उल्लिखित नहीं है।

गणेश :

केशव ने गणेश के विविध नाम रूप और गुणों का वर्णन किया है। कवि ने उसके लिए एक रदन, गजवदन, मदनकदन सुत, गौरिनंद, चंदजुत, लंबोदर[3], थानुसुत[4] आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। यह नित्य देवता है। परन्तु विभिन्न समयों में विभिन्न प्रकार से उसकी लीला प्रकट होती है। पंच देवोपासना में भगवान गणपति मुख्य है। प्रत्येक कार्य का आरम्भ श्री गणेश की स्मरण-वंदना से ही होता है।

केशव ने अपने प्रसिद्ध काव्य रामचन्द्रिका, कविप्रिया तथा रसिक प्रिया के आरम्भ में गणेश की प्रार्थना की है। यह शंकर के प्रमथ गणों के अधिपति 'गनपति' है। केशव के अनुसार यह बड़ा चतुर है।[5]

राम और सीता :

रावण के वध के लिए राम का अवतार हुआ। राम केशव की रामचन्द्रिका के नायक हैं। भगवान विष्णु के लिए केशव ने जिन विशेषणों का प्रयोग किया है, वे सभी राम के विषय में भी व्यवहृत हुए हैं। परन्तु यहां उन्हीं विषयों का उल्लेख किया गया है जो रामावतार से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। राम के लिए केशव ने सीतापति[6], राम-

१—हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ७८४

२—जगलोचन विलोपक मानि। —वी० च० ११।१०

३—र० प्रि० १।१

४—के० ग्र० पृ० १३१।७५

५—सागर से धीर गनपति से चतुर अति। —र० प्रि० १४।१६

६—सुनौ सु सीतापति साधु चर्चा। —रा० चं० २१।१६

गोविन्द,[1] आदि अन्य नाम है। कृष्ण के अधिकांश नाम उसकी लीलाओं के द्योतक हैं। गिरि को धारण करने की लीला के आधार पर उनका गिरिधर[2] नाम हुआ। कृष्ण की लीलाओं में प्रमुख स्थान शृंगारी लीलाओं का है। मोहन,[3] के रूप में समस्त गोपियों के मन को हर लेता था। राधा और गोपियों के साथ उन्मुक्त विहार का द्योतक "सुविहारी" शब्द है। वनमाली,[4] शब्द से पुष्पहार को धारण करने का भाव प्रकट होता है। द्वारका नाथ कृष्ण के राजा रूप का द्योतक है। राधारमन[5] कृष्ण की सर्वाधिकप्रिया राधा के उसके मधुर सम्बन्ध की भावना को व्यक्त करता है।

यद्यपि केशव के पूर्वज और केशव वल्लभ संप्रदाय से संबद्ध थे, पर उनकी कृतियों पर विशेषत: रसिकप्रिया पर युगलोपासना और माधुर्य भक्ति वाले संप्रदायों का अवश्य प्रभाव पड़ा है। जोरी, जुगल शब्द इन्हीं संप्रदायों की उपासना पद्धति को ध्वनित करते हैं। गो संस्कृति के कृष्ण सब से बड़े संस्थापक थे। इसके आधार पर गोपाल,[6] गुवाल[7] शब्दों का प्रयोग हुआ है। केशव ने कृष्ण के रसमय स्वरूप को ही अपनी रसिक प्रिया के नायक के रूप में स्वीकार किया है। कृष्ण ने राधिका के लिए श्रृंगार रूप में अवतार लिया था।[8]

केशव की प्रवृत्ति राधिका की ओर अधिक झुकी हुई प्रतीत होती है। उनके अनुसार कृष्ण का श्रृंगार लीलावतार राधा के लिए ही हुआ था। राधा एक विशिष्ट गोप सुता,[9] अहीर की जाय[10] के रूप में कृष्ण के सम्मुख आती है। यह अपनी पूर्ण सज्जा और विलास के साथ रसिकप्रिया में प्रतिष्ठित है। दिव्य विलास की पूर्ण परिणति के लिए राधा सोलह श्रृंगार करती है। रसिक संप्रदायों में सुरतांत वर्णन अधिक प्रिय रहा है। नागर एवं नागरी की काम केलि का वर्णन सुरतांत के रूप में केशव ने किया है।

१—के० ग्रं १६८।४९

२—गोपधने, बलवीर बिराजत, खात बनाइ गिरी गिरधारी।—वही, ३७।५८

३—हरिहर केशव मदन मोहन घनस्याम सुजान।—के० ग्रं० १०६।४०

४—वही, २८।७७

५—वही, ३६।५७

६—तहं दयाल गोपाल तब विप्र वेष बुल्लिय बयन।—वही, ४६६।८

७—वही, १८७।६१

८—श्री व्रजभानु कुमारि हेत श्रृंगार रूप मय।—र० प्रि० १।२

९—के० ग्रं १३।८

कामदेव और रति :

केशव ने कामदेव के लिए मनमथ,[१] रतिनाथ,[२] रतिपति,[३] पंचबाण[४] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। कामदेव मन का अधिष्ठाता और सौन्दर्य का प्रतीक है। यह मानसिक क्षेत्र में संकल्प से ही व्यक्त होता है। कवि कामुक और कलाकार इसकी आराधना सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए करते हैं।

कामदेव के साथ रति का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। सुन्दर तथा अलंकृत पति-पत्नियों की तुलना केशव ने रति और मन्मथ से की है।[५] इसके बाण पांच होने के कारण इसे पंचबाण या असमसरआसन[६] कहते हैं। इसके बांच वाण पुष्प हैं।[७] यह स्वेत वर्ण का माना गया है।[८] और यह बल का प्रतीक माना गया है।[९] अपने प्रेम को शाश्वत बनाने के उद्देश्य से पति-पत्नि कामदेव की पूजा करते हैं। केशवदास ने वीरसिंह देव चरित में राजा वीरसिंह देव तथा उनकी पत्नी पार्वती के द्वारा की गयी कामदेव की पूजा का वर्णन किया है।[१०] केशव के अनुसार काम देव का स्वरूप इस प्रकार है :—

"काम का संपूर्ण अंग पुष्पों से अलंकृत हैं। उसके कमल सदृश नेत्र मोहमयी मदिरा का पान करते हैं। उसकी लंबी-लंबी भुजाएँ रति के कंठ में शोभा पाती रहती हैं। उसका स्वरूप कृष्ण के समान है तथा कृष्ण की भांति ही समस्त संसार को अपनी ओर आकर्षित करता है।"[११] केशव के अनुसार कामदेव बड़ा चोर है जो ज्ञानियों के ज्ञान

१—मनहुं बहति मनमथ संदेसनि।—रा० चं० १।३०

२—किधौं रतिनाथ जसनाथ केशवदास।—वही, ६।३४

३—किधौं रतिपति स्याम उभै संभु सीस पर।—के० ग्रं पृ० ४६१।२१

४—पंचबाण बाणनि के आन आन भांति गर्व।—क० प्रि० १४।२८

५—सब शृंगार संदेह मनु रतिमनमथ मोहै।—रा० चं० १।४७

६—विधिकीन्हों आसन शरासन असमसर।—क० प्रि० ५।१०

७—अरविंद मशोकं च चूतं च नव मल्लिका।
नीलोत्पलंच पंचैते पंचबाणस्य सायकाः॥—अमरकोश,

८—क० प्रि० ५।५

९—वही, ६।५२

१०—नृपकरिं फूलनि कौ धनु लियौ। फूलनि फूल सर संयुक्त कियौ।
अपने परि पहिनीति अनूप कीनौ। कामदेव के रूप।
कीनी पूजा परम अनूप। पारवती रानी रतिरूप॥—वी० च० २६।१३,१४

११—वि० गी० २।४

कवच को फूल के बाणों से बेधने वाला है। विवेकियों को अविवेकी बनाने तथा मुमुक्षिओं की साधना में बाधा डालने वाला है। वह अनेक जन्मों की तपस्याओं के फल को लूटने वाला तथा जीवों को स्वर्ग मार्ग से रोकने वाला है।[१]

आदिशेष :

सहस्र फणधारी आदिशेष पौराणिक देवता हैं। पौराणिक विश्वास के अनुसार वह अपने सहस्र फनों के ऊपर पृथ्वी भार को वहन करता है। भगवान विष्णु उसे अपनी शय्या बनाकर उप पर सोते हैं।

केशव ने आदिशेष के लिए अनन्त,[२] सहस्रमुख[३] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। केशव ने शिवधनुष की तुलना आदिशेष के साथ की है।[४] कवि ने विष्णु के लिए पन्नगसायी[५] शब्द का प्रयोग करके यह बात स्पष्ट की है कि शेष भगवान विष्णु की शय्या है। शेष का रंग श्वेत माना गया है।[६]

उपर्युक्त मुख्य देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य देवताओं का उल्लेख भी केशव ने किया है। बलदाऊ[७] (बलराम), विश्वंमरदयाल,[८] चतुर्भुजदेव[९] आदि। चतुर्भुजदेव संभवत: वीरसिंह देव का इष्ट विग्रह होगा।

४—२४ देवियां :

सरस्वती :

कवि केशवदास ने सरस्वती के लिए बानी,[१०] विमला,[११] सरस्वती[१२]-गिरा,[१३]

१—रा० चं० २४।१०

२—अनन्तमुख गावै विशेषहि न पावै।—रा० चं० १।१५

३—वि० गी० १।२४   ४—रा० चं० ३।१४

५—वही, १७।१२   ६—क० प्रि०

७—वारुनी के बस बलदाऊ भये सखा सब।—र० प्रि० ५।१८

८—विश्वंभर देव दयाल देव दच्छिणजानि जीवन मुक्त।—वि० गी० ३।१३

९—देखे जाइ चतुर्भुजदेव जिनकी करत जगत सब सेव।—वी० च० १६।२५

१०—बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय।—रा० १।२

११—संग सोहती हैं, कमला विमला अमला मति हेतु तिहूं पुर की।—वि० गी० १।२

१२—रण सोभमान सरस्वती जनु अंबिका अविषाद।—वि० गी० १२।५

१३—आयी है एक महाबन ते तिय गावति मानो गिरा पगुधारी।—र० प्रि० १४।१६

शारदा,[१] ब्रह्माणी,[२] आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

यह सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की धर्म पत्नी तथा समस्त विद्याओं की अधिष्ठात्री है। इसकी कृपा से प्राणी ज्ञान को प्राप्त करते हैं। यह श्वेत पद्मासन पर आसीना, शुभ्र हंसवाहिनी तथा वीणा पुस्तक हस्तिनी मानी जाती है। केशव के अनुसार देवता, सिद्ध, ऋषि तपस्वी आदि सरस्वती की प्रशंसा करते करते थक जाते हैं, किन्तु उसके गुणों का अन्त नहीं पा सके। भूतकाल में उसकी प्रशंसा हुई है, वर्तमानकाल में हो रही और भविष्यकाल में होगी तो भी उसकी पूर्ण प्रशंसा असंभव है। उसके पति ब्रह्मा चार मुखों से, पुत्र महादेव पांच मुखों से, नाती षडानन छः मुखों से उसका वर्णन करते हैं, तो भी उसकी उदारता का पूर्ण वर्णन नहीं हो पा रहा है।[३] केशव ने उसके वीणा पुस्तक धारिणी तथा राजहंस पर आरूढ़ रूप का भी वर्णन किया है।[४] अपनी शिष्या तथा कवयित्री रायप्रवीण की तुलना केशव ने सरस्वती से की है।[५]

लक्ष्मी :

केशव ने लक्ष्मी के लिए कमला,[६] पुरुषोत्तम की नारी,[७] रत्नाकर लालित[८] आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। इसको कमल हस्ता के रूप में भी चित्रित किया गया है। केशव ने रायप्रवीण की तुलना इससे की है। लक्ष्मी का जन्म समुद्र से हुआ है। यह विष्णु भगवान की प्रिय पत्नी तथा संपत्ति की देवी मानी जाती है। यह हमेशा वक्षः-स्थल पर रहने वाली तथा सर्वलोकाराध्या है।

पार्वती :

केशवने पार्वती के लिए पर्वतनन्दिनी,[९] दुर्गा,[१०] कालिका,[११] अम्बिका,[१२] शिवा[१३]

१—रायप्रवीन की शारदा सुचि रुचि रंजित अंग।—क० प्रि० १।५६
२—ब्रह्मानी सी पुस्तक धरै।—वी० च० ११२
३—रा० च० १।७
४—वीणा पुस्तक धारिणी राज हंस सुत संग।—क० प्रि० १।५६
५—वही, १।५६
६—श्री कमला कुच कुंकुम मंडन पंडित देव अदेव निहारियो।—रा० च० ४।१५
७—यद्यपि पुरषोत्तम की नारि।—रा० च० २३।३०
८—रत्नाकर लालित सदा।—क० प्रि० १।५८
९—सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यौ पर्वत नन्दनी।—रा० च० ७।२६
१०—हरहरि सब हारे देवि दुर्गा लरी ज्यों।—वही, १६।२२
११—कालिका कि बरखा हरषि हिय आयी है।—१३।१६
१२—वि० गी० १२।५ १३—वही, १।१६

गौरी,[१] रुद्रानी,[२] मृडानी[३] आदि विशेषणों का प्रयोग किया है।

पार्वती परम शिव की धर्म पत्नी तथा हिमालय की पुत्री है। यह लोक मंगल की भावना का संपादन करने वाली है। केशव ने पार्वती के मंगल स्वरूप के साथ-साथ प्रलयकाल के समान भयंकर तथा शुंभ निशुंभ राक्षसों का विनाशक रूप का भी वर्णन किया है।[४] इस प्रकार पार्वती का पुराणगाथाओं में प्राप्त रूप ही केशव में अधिक मिलता है।

सती नारियां :

केशव ने अपने साहित्य में प्रातः स्मरणीया अनेक नारियों का उल्लेख किया है। उनमें गौतम तिय,[५] (अहिल्या), तुलसी, सती देवी,[६] अनसूया[७] वृन्दा,[८] दमयंती, इन्दुमती[९] आदि मुख्य हैं। भारतीय साहित्य में वन देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। केशव ने भी विंध्यवासिनी,[१०] मलयदेवी,[११] आदि का उल्लेख किया है।

४—२५ भू-चर देव और देवियां :

इन में गंधर्व[१२] संगीत के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। किन्नर, जच्छ,[१३] किन्नरी,

---

१—गौरी और गिरा लजानी मोहे मुनि मूढ प्रानी।—र० प्रि० १६।२१

२—रुद्रानी की सी दुति धरै।—वी० च० २।१७

३—करैं सेव बानी मघौनी मृडानी।—रा० चं० १३।३०

४—रा० चं० १३।१६,२२

५—गौतम की यह नारि इन्द्र दोष दुर्गति गयी।—

६—पति हितपितु पर तनु तज्यौ सती साखि दै देव।
लोक लोक पूजित भई तुलसी पति की सेव॥—रा० चं० ६।२०

७—पति व्रतिन की देवता अनसुया शुभ गात।—वही, ११।४

८—सदा शुद्ध बृन्दा बनी भू बली है। तहां नित्य मेरी विहार स्थली है।—रा० ३४।४४

९—कोहै दमयंती, इन्दुमती रति राति दिन।—वही, ६।५६

१०—विंध्यवासिनी देवी जहां तुम दोऊ जान जावौं उहां।—वी० च० ११।६०

११—सहज सुगंधित अंग मानहु देवी मलय की।—रा० चं० ६।६२

१२—सकल सुरासुर बन्धत पाइ गंधर्वनि गावत रस भरी।—वी० च० २।१०

१३—किन्नर हौ नर रूप बिचच्छन जच्छ की स्वच्छ सरीरन सो हौ।—रा० ११।३३

सुरी, यक्षिणी,[1] सुकेशी, उरवसी, [2] आदि भूचर देवी और देवों का उल्लेख भी केशव में मिलता है।

४-२६ दैत्यदानव :

देवताओं के विरोधी निशाचर[3], रैनिचर[4], और राक्षस[5] कहलाते थे। रावण[6], कुंभकर्ण[7], बाण[8], लवण[9], बलि[10], कैटभ, नरकासुर, मुर, मधु[11] मारीच, सुबाहु[12], हिरण्य कस्यप[13], हिरणाक्ष[14] (हिरण्याक्ष), शंबर[15], कबंध[16], अघासुर, बकासुर[17] आदि असुरों का उल्लेख केशव ने किया है। इन असुरों में रावण के लिए अनेक पर्यायों का प्रयोग केशव ने किया है। रामचंद्रिका की कथा रामायण से संबद्ध होने के कारण उसमें रावण का प्रमुख पात्र है। केशव ने रावण के लिए दशमुख[18], दससीस[19], दस-सिर[20], दशकंठ[21], लंकपति[22], लंकेश[23], दशग्रीव[24] आदि पर्यायों का प्रयोग किया है।

१—रा० चं० १३।५०
२—सुकेसी नचै उर्वसी मान पावै। —वही, १३।१६
३—मृग मित्र बिलोकत चित्त जरै लिए चंद्र निशाचर पद्धति को। —वही, १२।५०
४—रनि चर छद्म बहु भांति अभिलाषहि। रा० चं० १२।१६
५—न राकस बैर करै बहुधाहि। —वही, २।१५
६—रावणै चलै चलै ते धाम धाम ते तबै। —वही, १६।३६
७—कुंभकर्ण रावणै प्रदक्षिणा सुदै चल्यो। —रा० १८।२०
८—रावण बाण महबली जानत सब संसार। वही, ४।१८
९—लवणासुर आयि गयो यमुना तट। —वही, ३४।४८
१०—शुक्राचारज के कहे बलि साधि सबु रीति। —वि० गी० १६।४४
११—कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जेइ मारियो। —वही, ४।१५
१२—मारीच बिडार्यो जलधि उतार्यो मार्यो सबल सुबाहु। —रा० चं० ३।१०
१३—बद्र गयो प्रभु परलोक कीन्ही हिरण्य कश्यप गाथ जू। —वही, ६।३३
१४—वह हरी हठि हिरनाच्छ दैयत देखि सुंदर देह सों। —वही, ६।३२
१५—शंभर छड़ाइ लई कामिनी के काम की। —वही, १२।२०
१६—वन अंध-कबंध विलोकत ही। —वही, १२।३२
१७—रसिक प्रिया० १४।२६
१८—रा० चं० ४।३
१९—रा० चं० ४।४
२०—वही, ४।५
२१—वही, ४।६
२२—वही, ४।१६
२३—वही, ४।२७
२४—वही, १०।४२

राक्षसियों में शूर्पनखा[१], केसी, पूतना[२], सिंहिका[३] आदि का उल्लेख किया गया है। अघासुर, बकासुर और पूतना का सम्बन्ध कृष्ण वार्ता से है।

४-२७ ऋषि और महर्षि :

केशव ने अपने साहित्य में अनेक ऋषियों, महर्षियों तथा मुनियों का उल्लेख किया है। वशिष्ठ[४] इक्ष्वाकु वंश के पुरोहित तथा ब्रह्मज्ञान संपन्न थे। विश्वामित्र[५] राम के धनुर्विद्या के गुरु थे। सतानंद[६] राजा जनक के पुरोहित थे। शुक्राचार्य[७], राक्षसों के गुरु के रूप में प्रसिद्ध हैं। अगस्त्य[८], भरद्वाज, जाबाली, अत्रि, गौतम, वामदेव[९], जमदग्नि[१०], नारद[११], असित, अंगिरा, कश्यप, व्यास, वाल्मीकी, दुर्वासा, कण्व, पर्वत[१२] आदि महर्षियों का उल्लेख केशव ने किया है। इनमें से अधिकांश ऋषि वैदिक हैं। और इनका सम्बन्ध परवर्ती युग में पुराणगाथाओं से भी हो गया।

४-३ साधक पक्ष : जीव :

उपनिषदों में जीव की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि जिस प्रकार अग्नि से विष्फुलिंग निकलते हैं, उसी प्रकार परमात्मा से जीव निकलते हैं।[१३] केशवदास जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानते हैं—

.... जग ब्रह्म नाम।
तिन को अशेष प्रतिबिंब जाल।
तेइ जीव जानि जग में कृपाल ॥[१४]

१—रा० च० ११।३२ २—र० प्रि० १४।२६
३—रा० चं० १३।४०
४—राजा दशरथ सों कह्यौ वचन वशिष्ठ बनाय। —रा० च० २।२३
५—विश्वामित्र पवित्र मुनि केशव बुद्धि उदार॥ वही, १।५१
६—सतानन्द आनन्द मति तुम जुहु ते उन साथ। —वही, ६।४४
७—एक समै शुक्र चित्त विचारै। —वि० गी० १४।२६
८—तृष्णालता कुठार लोभ समुद्र अगस्त्य से। —रा० च० २।५०
९—वही, ६।८
१०—तब तासु छवि मद छक्यों अर्जुन हथ्यो ऋषि जमदग्नि जू।
११—श्री नारद की दरसै मति सी। —रा० च० १३।२६
१२—वही, २६।५
१३—तद्यथा अग्नेः विस्फुलिंगाः व्युच्चरन्ति ऐव मेवात्मनः।
१४—रा० च० २५।२

इस पर गीता का प्रभाव परिलक्षित होता है ।[1] केशव ने जीव के विषय में इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से निकलती तथा संसार में प्रकाश फैलाकर फिर उसी में लीन हो जाती हैं, वैसे ही ब्रह्म का चिदंश जीव का स्फुरण कर अन्त में उसी में लीन हो जाता है ।[2] इससे प्रकट होता है कि जीव ब्रह्म के चिदंश से आविर्भूत हैं । उसमें चित के आधारभूत सत तत्व भी अनिवार्यतः रहता है । केशव ने जीव के चेतन पक्ष को प्रमुख मानकर अपना सिद्धान्त वाक्य कहा है । सत् और चित में आधार-आधेय सम्बन्ध होने के कारण आधेय को प्रधानता मिलती है । सूर दास ने जीव की उत्पत्ति ईश्वर के अंश से और उसकी इच्छा से मानी है । सूरदास के परब्रह्म स्वयं ही कहते हैं कि सर्व प्रथम अकेला मैं ही अमल, अकल, अज तथा भेद विवर्जित रूप में था । पश्चात् मैं ही अनेक प्रकार के जीवों की उत्पत्ति करके नाना रूपों में शोभित हुआ ।[3] यह शक्ति सब जीवों में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार ऊख में रस[4] अथवा सूर्य की प्रभा का । अनेक घटों में[5] परब्रह्म का चेतन अंश होने पर भी जीव आनंदादि के अभाव में अपने सत् स्वरूप को भूल जाता है । इसका कारण जीव का अज्ञान या भ्रम बताया गया है । इसी भ्रम के कारण जीव अपने स्वरूप ज्ञान को भूल जाता है । कबीर ने इसी भ्रम को परमात्मा से जीव को अलग करने वाला गुण माना है—

तेरा सांई तुज्झ में ज्यों पहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों वन वन ढूंढे घास ।।

ब्रह्म और जीव का अन्तर बतलाते हुए केशव कहते हैं कि ब्रह्म सदैव एक रूप रहता है और जीव को अनेक वार जन्म लेना पड़ता है । सर्वज्ञ होने के कारण ब्रह्म को जीव दशा का पूर्ण ज्ञान होता है, परन्तु अल्पज्ञ होने के कारण जीव को ब्रह्म की रचना का ज्ञान नहीं होता—

तुम आदि मध्य अवसान एक, अरु जीव जन्म समुझौ अनेक ।

१—ममै वांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः । —भगवद्गीता, १५।७
२—उपजत ज्यों चित रूप तें जीवन तिहि विधि जात ।
रवि ते उपजत अंश ज्यों रवि ही माँझ समात ।। —वि० गी० १५।१८
३—पहिलौ हौं ही हो तब एक ।
अमल अकल अज भेद विवर्जित सुनि विधि विमल विवेक ।
सो हौं एक अनेक भांति करि सोभित नाना भेष । —सार.वली, २१३८
४—सारावली, ३१३ ५—वही, ३१३

तुम ही जु रची रचना बिचारि, तेहि कौन भांति समुझौ मुरारि।[1]

माया के संसर्ग से जीव अनेक रूप धारण करता है। जिस प्रकार पुष्प, रज, रूप तथा सुगंधी से युक्त रहते हुए भी स्वयं उनके प्रभाव को नहीं जानता, ठीक उसी प्रकार चिदंश जीव माया मोह के संसर्ग से अपने वास्तविक रूप से अनभिज्ञ रहता है।[2] शुद्ध चैतन्य माया के मलिन आवरण से मलिन हो जाने के कारण अल्पज्ञ अनीश्वर सुख-दुःख भोक्ता जीव कहलाता है। वह कर्ता भोक्ता बनकर नाना योनियों में फिरता रहता है। इसी तत्व को केशवदास ने स्वीकार किया है। :

उपजत माया संग ते जीव होत बहु रूप।
उत्तम मध्यम अधम सब सुनि लीजै भवभूप ॥[3]

केशव ने माया को महामोह कहा है। इस महामोह के संपर्क से वह सुवर्ण जैसा शुद्ध चैतन्य किस प्रकार मलिन हो जाता है और उसका स्वर्णिम प्रकास कैसे चला जाता है, इसका विवरण केशव ने काव्यमयी शैली में व्यक्त किया है—

महामोह संग जीव यों मोहहि मांझ समात।
लोह लिप्त ज्यों कनक कन लोहाई ह्वै जात ॥[4]

यह जीव काम क्रोध मदादि अनेक माया के आवर्तनों में फंसकर इस संसार में इधर उधर भ्रमता फिरता है—

काम क्रोध मद मढो अपार जैसे जीव भ्रमै संसार।[5]

और लोभ मोह मद तथा काम के वशीभूत होकर अपने सहज रूप को भूल जाता है।[6]

१—रा० चं० २५।१

२—ज्यों रस रूप सुगंध मय पुष्प सदा सुख राउ।
पुष्प न जानत जानिये, ताको तनिक प्रभाव ॥
त्यों सब जीव चिदंशमय, वर्णत जीवन मुक्त।
भूलि जात प्रभुता सबै, महामोह संयुक्त ॥ —वि० गी० छं० १७, १८

३—वही, १५।११

४—वही, १५।२६

५—रा० चं० २६.६

६—लोभ मद मोह वस काम जब ही भयौ।
भूलि गयौ रूप निज वीधि तिन सों गयो ॥ —रा० चं० २५।१३

इतना ही नहीं वरन् काम, क्रोध आदि के वश में फंसे हुए जीव को बड़ी दुर्दशा होती है।[१] वासना जीव को जिस ओर ले जाती है। वह उसी ओर जाकर लीन हो जाता है—

जित लै जै है वासना तित ही ह्वै है लीन।[२]

वासना के अधीन जीव नाना प्रकार के भ्रम जालों में फंस जाता है। जिस प्रकार बालक काठ के घोड़े पर चढ़कर घोड़े के गुणों को स्वयं ग्रहण करता है अथवा जिस प्रकार लड़कियां गुड्डे-गुड़ियों में पुत्र पौत्रादि की कल्पना कर उनसे खेलती हैं, उसी प्रकार मोहासक्त की दशा होती है। वह अपने वास्तविक तत्व को भूलकर संसार तथा उसके नाना व्यवहारों को सत्य मान लेता है।[3] जिस प्रकार कोई अन्धा अन्य अंधों के साथ किसी अन्ध कूप में गिर कर भी नहीं पछताता उसी प्रकार मोह के अन्धकार में पड़कर भी जीव को पश्चात्ताप नहीं होता। वह बन्धन में डालने वालों को ही बंधु समझता है, तथा विषय रूपी विष को मिष्ठान्न समझकर उसे खाता है। इस प्रकार विषय वासनाओं का नियामक होते हुए जीव इनका दास बन जाता है। और अपने वास्तविक रूप को भूलकर बन्धन में ही सुख का अनुभव करता है।[४]—यह वासना दो प्रकार की होती है—

दुविध वासना होति है शुभ और अशुभ प्रमाना।[५]

अशुभ वासना के वश में आकर जीव अनेक दुष्कर्म करता है जिसके फलस्वरूप उसका उद्धार नहीं हो सकता। अतः शुभ वासना से ही उसे ब्रह्म पद की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु शुभ मार्ग के लिए बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है—

यत्नन सों शुभ पंथ लगावै तौ अपनौ तौ पद पावै।[६]

शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए जीव को अपने शरीर तो धारण करने पड़ते हैं, किन्तु वह न मरता है, न जीवित रहता है। जन्म मृत्यु मोह ग्रस्त जड़ जीव का धर्म है, जीव का नहीं। शैशव, यौवन तथा जरा आदि अवस्थाओं का सम्बन्ध भी जड़ शरीर से ही

१—रा० चं० २४।८
२—वि० गी० १४।१२
३—वही, ६।४४
४—वही, ६,४५
५—वही, १४।४३
६—रा० चं० २५।५

है।[1] केशव का यह विचार गीता से मिलता है। गीता में भी कौमार, यौवन, जरा, आदि शारीरिक विकारों से आत्मा को मुक्त कहा गया है।[2] इस प्रकार केशवदास ने अनेक उदाहरणों के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि जीव परमार्थतः ब्रह्म ही है किन्तु माया के चक्कर में पड़कर अनेक भ्रम जालों में फंस जाता है और अपने चैतन्य एवं आनन्द से वंचित रह जाता है। जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि होते हुए भी काष्ठ खण्ड उस तेज को नहीं पहचानता और जिस प्रकार चित्रों में रूप रहते हुए भी वे उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं, उसी प्रकार वह जड़ जीव अपनी तात्विक स्थिति को समझने में असमर्थ हो जाता है।[3]

४—३१ जीव के भेद :

तात्विक दृष्टि से जीव का वर्गीकरण नहीं हो सकता। किन्तु मुक्ति पथ के यात्री के रूप में जीव की साधना के स्तर की दृष्टि से मुक्त और बद्ध दो प्रकार के जीव कहे गये हैं। व्यावहारिक दृष्टि से केशव ने जीवों के उत्तम, मध्यम और अधम तीन वर्ग किये हैं।[4] उत्तम जीव वे होते हैं जो ईश्वरीय सत्ता में आस्तिम्य बुद्धि तथा पूर्ण विश्वास रखते हैं और संसार में अनासक्त भाव से रहते हैं।[5]

उत्तम कोटि के जीव वे कहलाते हैं जो ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल काम करते हैं और जो संसार में सदैव विरक्ति भाव से रहते हैं। यदि कभी किसी कारणवश ईश्वरेच्छा के विरुद्ध कोई कार्य हो जाता है तो वे अपने आप को स्वयं दंडित करते हैं। वे दूसरे जीवों

१—रा०च०, ३७।१०,११

२—देहि नो स्मिन यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।—भगवत गीता, २।१३

न जायते म्रियते वाकदाचित्।

नायं भूत्वा भविताबान भूयतः।

अजो नित्यः शाश्वतो यं पुराणो।

नहन्यते हन्यमाने शरीरे॥—भग० गी० २।२०

३—ते जब से तरु खंडनि मे तरु खंड न तेजनि को पहिचानतु।

रूप विराजत चित्रनि में परिचित्र न रूप चरित्र बखानतु॥

त्यों सब जीवनि मध्य प्रभाव समूढन जीव प्रभाव न मानतु।—वि० गी० १६।१८

४—वि० गी० १५।११

५—वही, १५।८-२३

को भी अपने शुभ मार्ग पर ले जाते हैं ।[1] वासनाओं में फंसकर जो ईश्वर को भूल जाते हैं और सांसारिक दुःखों के आघातों से जिन्हें वास्तविकता का ज्ञान आ जाता है और शास्त्रों की शरण में जाकर सन्मार्ग पर आ जाते हैं वे मध्यम जीव है । वे जीव दान, व्रत, संयम. तप, त्याग आदि के द्वारा जन्मांतर में ज्ञान प्राप्त करके जीवन मुक्त कहलाते हैं ।[2] जो इश्वर को बिल्कुल भूलकर वासनाओं में उलझ जाते हैं तथा वेद पुराणों का जिन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जिनकी रति पापों में अधिक बढ़ जाती है ऐसे जीव अधम कोटि के कहे जाते हैं । ये जीव नाना योनियों में चक्कर काटते रहते हैं–

जिन को न कछु अपने प्रभु की सुधि ।
बहु भांति बढ़ावत हैं मन की बुधि ।
सुनिहू सुनि वेद पुराननि के मत ।
होत तऊ बहु पापनि सों रत ।।
ते अति अधम बखानिये जीव अनेक प्रकार ।
सदा सुयोनि कुयोनि में भ्रमत रहे संसार ।।[3]

विज्ञानगीता में केशव ने मुक्त जीव का लक्षण दिया है कि जो संसार के सुःख दु,खों को समान समझता तथा राग-विराग रहित होता है, जिसने अहंकार को छोड़ दिया है, जो संसार की प्रत्येक वस्तु का वास्तविक रूप पहचानता है, जो बालक के समान संसार में विंचरण करता है तथा स्वयं अपने को, जड़ तथा जंगम को सम दृष्टि से देखता है वही जीवन्मुक्त है—

लोक करै सुख दुखनि के जिनि राग विरागनि या मह आने ।
डारै उपारि समूल अहं तरु कंकच कांचन जो पहिचाने ।

१—उत्तम ते प्रभु शासन संमत । ह्वै जगसों न कहूं कबशुं रत ।
कौनहूं एक प्रसाद तें भूपति । होतुं हैं शासन भंग महामति ।।
आपुहिं अ पुनि क्यों करि दंडहि । कारज साधत है तिह खंडहिं ।
औरहु आपने पंथ लगावै··· ··· । वि० गी० १५।२०,२१

२— ··· ते सब मध्यम जीव कहावै ।
होत जे जीव कछु मन के वश । भूलत हैं अपने प्रभु केयश ।
पीडिये आधिनि व्याधिन के जब । बूझत वेद पुराणन को तब ।
दानन दै व्रत संयम के तप । संगत जेवत साधत है जप ।
जन्म दये बहु ज्ञाननि पावत । तेजग जीवन मुक्त कहावत ।।–वि गी० १५।२१-२३

३—वि० गी० १५।२४,२५

बालक ज्यों सवै भूतल में भव आपुन से जड जंगम जाने ।
केशव वेद पुरान प्रमान तिन्हें सब जीवन मुक्त बखाने ।।[1]

केशव का विचार गीता के इस विचार से मिलता है—

योग युक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्म भूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।।[2]

भगवत गीता में जितेन्द्रिय कर्म योगी के जो लक्षण कहे गये उनसे केशव अवश्य प्रभावित दिखायी पड़ते हैं ।

४—३२ मुक्त जीव :

मुक्त जीव वह है जो संसार में रहते हुए भी अनासक्त भाव से नलिनीदल गत जलवत रहे । केशवदास ने रामचन्द्रिका के उत्तरार्द्ध में राम को जीवोद्धार का मार्ग बतलाते हुए वशिष्ठजी के मुँह से मुक्त जीव की परिभाषा तथा स्वरूप का उल्लेख कराया है । वशिष्ठ जी ने बतलाया कि मुक्त जीव वह है, जिसके वाह्‌य और अन्तर दोनों ही अति शुद्ध होते हैं, जो कर्म करता है, पर उसमें लिप्त नहीं होता । बाहर से तो मूर्ख जान पड़ता है, किन्तु अन्तः करण से ज्ञानी होता है । जो संसार में सर्व प्राणियों को आत्मवत समझता है और जिसका अहं भाव नष्ट हो जाता है । वह संसार के नाना प्रकार के कर्म बन्धनों में रहते हुए भी मुक्त ही है । विचक्षण ज्ञान से जो आदमी अच्छी बुरी वस्तुओं को जानकर उनका त्याग करता है, वह जीवन मुक्त कहा जाता है ।[3]

४—३३ जीव की अवस्थाएँ :

४—३३१ विदेहावस्था :

जीवन मुक्त अवस्था के बाद जीव जिस दशा का अनुभव करता है विदेहावस्था

१—वि० गी० २१।३२ २—भगवत गीता, ५।७

३—बाहरहूं अतिशुद्ध हिये हूं ज्ञानि न लागत कर्म कियेहूं ।
बाहर मूढसु अन्त सयानो । ताकहं जीवन मुक्त बखानो ।
आपन सों अवलोकिये सबही युक्त अयुक्त ।
अहंभाव मिट जाय जो कौन बद्ध को मुक्त ।।
ज्ञानि सबै गुण दोषन छंडै । जीवन मुक्तनि के पद मंडै ।। रा० चं० २५।१७,१८,१६

कहलाती है। विदेहावस्था का लक्षण बतलाते हुए केशव ने लिखा है कि इस अवस्था को प्राप्त कर जीव दृश्य तथा अदृश्य, सम्पूर्ण जगत को रूपक मात्र समझने लगता है। वह परब्रह्म की इच्छा को ही सबसे ऊपर मानता है और उसके अनुसार कार्य करता है। इस अवस्था में जीव कर्म अकर्म में लीन नहीं होता और संसार में रहते हुए भी अनासक्त रहता है। इस अवस्था में जीव एकमात्र चिदानन्द में ही लीन रहता है–

देखहु अनदेखतहू लिपि रूपक से न सरूप को धावै।
आपु अनिच्छ चले परइच्छ की केशवदास सदा पति पावै।
कर्म अकर्मनि लीन नहीं निज पायज ज्यों जल अंक लगावै।
ह्वै अतिमत्त चिदानन्द मध्यनि लोभ संदेह विदेह कहावै ॥[1]

जीवन्मुक्त के सारे लक्षण विदेह पर भी लागू हो सकते हैं। संसार की सब चीजों को मिथ्या जानकर छोड़ने वाले को महात्यागी समझना चाहिए। लोक और अलोक दोनों को साधन की दृष्टि से देखना चाहिए, न साध्य की दृष्टि से। संसार को मिथ्या मानकर जो उसे छोड़ देता है, वही महात्यागी है, वही विदेहावस्था सम्पन्न है।[2]

४—३३२ अज्ञान की सात भूमिकाएं :

योगवाशिष्ठ में जीव के सम्बन्ध में विचार किया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार संसार की भावना से युक्त चित के रूपांतर जीव, कल्पित आकार वाले ब्रह्मा से लाखों और करोड़ों की संख्या में भूत, वर्तमान, और भविष्य में उत्पन्न होते हैं जैसे कि झरने से जल के कण। जैसे जल के ऊपर सदा ही अनेक बुलबुले उठा करते हैं और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही सब देश और काल में अनन्त जीव उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं।–

असंख्याताः पुराजाताः जायन्ते यापिवाद्यभौः।
उत्पत्तिष्यंति चैवांबु कणौ धाष्वनिर्झरोत।
अनारतं प्रतिदिशं देशे देशे जले स्थले।
जायंतेव म्रियन्तेव बुदबुदाइव वारिणि ॥[3]

योग वाशिष्ठ में जीव की सात अवस्थाएँ मानी गयी है—(१) बीज जाग्रत (२) जाग्रत

१—वि० गी० २१।३३
२—वही, २१।३४
३—योगवाशिष्ठ, ४।४३।१,२,३

(३) महा जाग्रत (४) जाग्रत स्वप्न (५) स्वप्न (६) स्वप्न जाग्रत (७) प्रभासुषुप्त। केशव ने भी इसी के आधार पर अज्ञान की सात भूमिकाएँ स्वीकार कर ली हैं—

बीजजु जाग्रत एक अरु दूजौ जाग्रत जानु।
महाजु जाग्रत तीसरी जाग्रत स्वप्न बखानु।
स्वप्न पंचई है समुझि स्वप्नो जाग्रत षष्ठ।
प्रभा सुषुप्त सातई सुनो सदा मति निष्ठ।।[1]

योग वाशिष्ठ में इनका लक्षण निम्नलिखित प्रकार दिया गया है।—

बीज जाग्रत :

सृष्टि के आदि में चित का जो नाम रहित और निर्मल चिंतन, जिसे भविष्य में होने वाले जीवादि नामों से पुकारा जा सकता है और जिसमें जाग्रत अवस्था का अनुभव बीज रूप में स्थित होता है, उसे बीज जाग्रत कहते हैं।

जाग्रत :

परब्रह्म से तुरन्त उत्पन्न हुए जीव का यह ज्ञान कि "यह मैं हूं, यह मेरा है" जाग्रत कहा जाता है।

महाजाग्रत :

पहले जन्म में उदय हुआ और दृढ़ता को प्राप्त हुआ यह ज्ञान कि यह मैं हूं और यह मेरा है महा जाग्रत कहलाता है।

जाग्रत स्वप्न :

जाग्रत अवस्था के मनोराज्य में जब जीव तन्मय होकर उसके तत्व को समझने लगता है उसे जाग्रत स्वप्न कहते हैं।

स्वप्न :

महाजाग्रत अवस्था के भीतर निद्रा के समय अनुभव के विषय के प्रति जागने

१—वि० गी० १७।४२,४३

पर जब इस प्रकार का भाव हो कि यह विषय असत्य है और इसका अनुभव थोड़े समय के लिए हुआ था उस ज्ञान का नाम स्वप्न है।

स्वप्न जाग्रत :

जब अधिक समय तक जाग्रत अवस्था के स्थूल विषयों का और स्थूल देह का अनुभव न हो तो स्वप्न ही जाग्रत के समान होकर महा जाग्रत सा मालूम पड़ने लगता है। स्थूल शरीर के मौजूद रहते हुए अथवा न रहते हुए जब इस प्रकार का अनुभव होता है, उसे स्वप्न जाग्रत कहते हैं।

सुषुप्ति :

उपर्युक्त छः अवस्थाओं से रहित जीव की अचेतन स्थिति का नाम सुषुप्ति है। उस अवस्था में संसार के तृण, मिट्टी, पत्थर आदि सब ही पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म रूप से वर्तमान रहते हैं।[1] केशव ने भी इसी आधार पर विज्ञान गीता में इनका वर्णन किया है।[2]

४-३३३ ज्ञान की सात भूमिकायें :

सत्य का ज्ञान प्रदान करने वाली ज्ञान की सात भूमिकाओं का विवरण योग वाशिष्ठ में दिया गया है। योग वाशिष्ठ के अनुसार (१) शुभेच्छा (२) विचारणा (३) तनुमानसा (४) सत्वापत्ति (५) असंसक्ति (६) पदार्थाभावनी तथा (७) तुर्यगा—ये सात ज्ञान की भूमिकाएं हैं।[3] योगवाशिष्ठ में इनका वर्णन इस प्रकार है—

"वैराग्य उत्पन्न होने पर अज्ञान निवारण और शास्त्र तथा सज्जनों की सहायता से सत्य को समझने की इच्छा, शुभेच्छा, शास्त्र के अध्ययन तथा सज्जनों के संग से सद् की ओर प्रवृत्त होना, विचारणा, शुभेच्छा तथा विचारणा के अभ्यास से मन की स्थूलता का कम होना तनुमानसा, पूर्वोक्त तीनों भूमिकाओं के अभ्यास से विषयों के प्रति विरक्त तथा शुद्ध आत्मा में चित्त की स्थिरता की उत्पत्ति होना सत्वापत्ति, पूर्वोक्त चार अवस्थाओं के अभ्यास के कारण सांसारिक विषयों के प्रति विरक्ति तथा सत्ता के प्रकाश में मन की स्थिरता असंसक्ति, पूर्वोक्त पांचों भूमिकाओं के अभ्यास के कारण भीतर और बाहर के

१—योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धान्त, डा० भीखनलाल आत्रेय, पृ० २३४-२३५

२—विज्ञान गीता, १७।४५,५०

३—योगवाशिष्ठ तथा उसके सिद्धान्त, पृ० ४५३

सब पदार्थों की निस्सारता का अनुभव होना पदार्थाभावनी तथा पूर्वोक्त छः भूमिकाओं के अभ्यास से आत्म भाव में अविचिलित भाव का उत्पन्न होना तुर्यगा कहलाती हैं।"[१]

केशव ने भी योगवाशिष्ठ के आधार पर ही ज्ञान की भूमिकाओं का नामोल्लेख किया है—

प्रथम शुभेच्छा जाननी पुनि सुविचारन आन।
तीजो है तन मानसा, केशव राय प्रमान॥
चौथी सत्वापत्ति पुनि, असंसक्ति को जानि।
छटी अर्थ अभावना, सप्त तुर्यगा मानि॥[२]

इन का विवरण भी योगवाशिष्ठ के अनुसार ही केशव ने किया है।[३] इन अज्ञान तथा ज्ञान की भूमिकाओं के ज्ञान से जीव के अज्ञान का नाश हो जाता है तथा आत्मा का बोध हो जाता है। विज्ञान गीता में जीव के पूछने पर देव ने कहा था—

अज्ञान ज्ञान की भूमिका हमहिं सुनाउ सुजान।
सुनत नसै अज्ञान सब जाते बाढै ज्ञान॥[४]

४-३४ मृत्यु : पुर्नजन्म : मुक्ति :

संसार में सब से भयानक तथा अवांछनीय वस्तु मृत्यु है। मृत्यु जीवन का अन्त करने वाली घटना है जो लोग शरीर को ही सब कुछ मानते हैं, उनके लिए मृत्यु से बढ़ कर दुःख प्रद वस्तु कोई नहीं है। किन्तु जो लोग शरीर को केवल आत्मा का निवास स्थान मानते हैं, उनके लिए मृत्यु केवल शरीर के नाश का नाम है। भारतीय दर्शन में मृत्यु के विविध रूपों का जो वर्णन मिलता है, वह अत्यन्त रोचक है।

केशव ने अपने साहित्य में मृत्यु सम्बन्धी अपने विचारों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार देही अविनाशी है। जन्म मरण, जरा मृत्यु आदि केवल शारीरिक धर्म हैं। जीव का नाश नहीं होता, किन्तु शरीर का नाश होता है।[५] भगवत गीता में भी श्रीकृष्ण

१—योगवाशिष्ठ, पृ० ४५३
२—वि० गी० १७।५२-५३
३—वही, १७।५४-६०　　　४—वही, १७।४१
५—देही अविनाशी सदा देश विनाश विचार।　—वि० गी० १४।५

ने कहा है कि कोई भी शस्त्र आत्मा का छेदन नहीं कर सकता, आग जला नहीं सकती, पानी सींच नहीं सकता तथा हवा भी इसे शोषित नहीं कर सकती।[१]

केशव के अनुसार मृत्यु अवांछनीय होने पर भी अवश्यंभावी है। संसार के सभी प्राणी मृत्यु के वशीभूत हैं। "अजर, अमर, अज और अमिट तथा जितने भी पाताल और आकाश लोक के जीव हैं सभी काल के गाल में जाने वाले हैं।[२] संयोग का अंत वियोग और जीवन का अन्त मरण है। जैसे पके फल की अंतिम स्थिति गिर पड़ना है वैसे ही जन्मे हुए मनुष्य का मरण से पीछा नहीं छूट सकता। गीता में भगवान कृष्ण ने भी यही भाव स्पष्ट किया है।[3] मृत्यु किसी के रोकने से नहीं रुक सकती। अतः तुम निश्चिंत होकर राज्य करो।"[४]

यद्यपि मृत्यु मानव को अस्पृहणीय है तो भी युद्ध क्षेत्र में वीर उसका आह्वान करते हैं। केशव ने वीरसिंह देव चरित में शेख के मुँह से कहलाया है कि योद्धा युद्ध क्षेत्र में मरना अधिक पसन्द करते हैं। अब इस स्थान को मैं कैसे छोड़ूं ? भागते समय यदि मृत्यु हो गयी तो संसार मुझे क्या कहेगा ? चाहे भागूं या लड़ूं मरना दोनों प्रकार से है।[५]

पुनर्जन्म :

कर्म फल की प्राप्ति के लिए जन्म मरण की शृंखला अनिवार्य है। इसलिए हिन्दू संस्कृति में पुनर्जन्म का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। आत्मा की आयु शरीर की आयु से नियन्त्रित नहीं होती, यह विश्वास सर्वमान्य है। केशव के साहित्य में पुनर्जन्म संबन्धी अनेक मान्यताओं का उल्लेख हुआ है। कवि ने राम चन्द्रिका में राम के मुँह से कहलाया है कि इस संसार में जितने जीव हैं उनका जन्म मरण नहीं छूटता। वे

१—नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः॥ —भगवत् गीता, ३।२३

२—जितने थिर चिर जीव जग, अध उरध के लोक।
अजर अमर अज अमिट जन कवलित काल सशोक॥ —वि० गी० १४।२२

३—जातस्यहि धृओ मृत्युहः धृवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्यार्थे न त्वं सोचितुमर्हसि॥ —भगवत गीता, २।२७

४—मीचु कौन पर राखी जाय। कीजै राजकाज सुख पाइ। —वी० च० ६।२३

५—वही, ४'७६, ८३

बार बार मरते और जन्म लेते हैं।[१] जीव गर्भ से बड़ी कठिनाई से निकलते हैं।[२] श्रुति, स्मृति, पुराण, भगवत् गीता आदि में पुनर्जन्म के प्रमाण प्राप्त हैं। भगवत् गीता में कहा गया है कि मानव जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्रों को धारण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा जीर्ण शरीरों को छोड़कर नये शरीरों को ग्रहण करता है।[३]

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में डा० सदाशिव फडके के विचार ध्यान देने योग्य हैं, "मरण के बाद जीव को उसी समय दूसरी देह मिल जाती है, परन्तु वह स्थूल देह नहीं होती। वह तेजः प्रधान, वायु प्रधान "आतिवाहिक" देह होती है, जिसको ग्रहण करके जीव अपने पुण्य या पाप के अनुसार विविध लोकों में अथवा पितृ लोक के विभिन्न स्तरों में पहुंचता है और वहां सुख दुःख का भोग करके पुनः नियंता के विधान से यथायोग्य स्थूल देह को प्राप्त होता है। इस प्रकार जीव का पुनर्जन्म अवश्यंभावी है और उसका हेतु है कर्म।[४]

केशव ने विज्ञान गीता में मालव देश के निवासी ब्राह्मण गाधि के प्रसंग में लिखा है कि उसने भगवान की तपस्या करके उनसे वर मांगा था कि मैं तुम्हारी अद्भुत माया देखना चाहता हूं। भगवान से वर पाकर उसने एक चंडाल वंश में जन्म लिया।[५] इस कहानी के द्वारा स्पष्ट होता है कि केशव पुनर्जन्म वाद में विश्वास रखते थे।

मुक्ति :

संसार में प्राणी को दुःख मिलता है उसका प्रधान कारण अविद्या है। उस अविद्या के नष्ट हो जाने से प्राणी को जो शाश्वत सुख मिलता है उसे मुक्ति कहते हैं। मुक्ति के स्वरूप के विषय में केशव ने लिखा है कि घर-द्वार, दारा-पुत्र आदि सभी को बन्धन के रूप में समझना तथा बाह्य जगत में परिदृश्यमान सभी पदार्थों को ब्रह्म का स्वरूप मानना ही मुक्ति है—

१—मरणहि जीवन तजहीं। मरि मरि जन्म न भजहिं॥—रा० चं० २४।१

२—उदरनि जीव परत है। बहु दुःख सो निकसत है।—रा० चं० २४।२

३—वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।
नवानि गृह्णाति नरो पराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा।
न्यान्यानि संयाति नवानि देही॥—भगवद्गीता, २।२२

४—कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ४१३

५—वि० गी० १३।३६

मेरे घर धन पुत्र तिय यह बन्धन मन मान।
दृश्यादृश्य सुब्रह्म है, यहै मुक्ति जिय जान ॥[1]

योगवाशिष्ठ के अनुसार सब इच्छाओं से अलग होने पर जो चित्त का वीतराग हो जाना है उसे आत्मदर्शी तत्वज्ञानी मोक्ष कहते हैं।[2] जब दृश्य पदार्थों में रस न प्रतीत हो और उनमें किसी प्रकार का स्वाद न आवे और उन्हें प्राप्त करने की इच्छा मन में न उदय हो, तब मुक्ति का अनुभव होता है।[3] सांसारिक कष्टों से इस प्रकार मुक्ति पाना मोक्ष का एक रूप है। सूरदास इसके अतिरिक्त मुक्ति का दूसरा रूप यह मानते हैं कि दर्शन, भजन, तनजा, वित्तजा और मानसी सेवा तथा गुण लीलागान में उस परम सुख का अनुभव करना जो शाश्वत और सुख प्रद है।[4] यह भक्ति सांख्य, वेदान्त बौद्ध और जैन दर्शनों के अनुसार इस शरीर के रहने पर भी प्राप्त हो सकती है, क्योंकि जब तत्वज्ञान हो जाता है, तब फिर शरीर के बंधन उस मुक्त जीव के लिए बंधन नहीं रह जाते। इस अवस्था को जीवन मुक्ति कहा गया है, और शरीर त्याग के पश्चात की अवस्था को विदेह मुक्ति।[5]

केशव ने मुक्तिपुरी के चार प्रमुख साधन—साधु संग, शम, संतोष और विचार—बतलाये हैं :—

मुक्तिपुरी वर द्वार के चार चतुर प्रतिहार।
साधुन को सतसंग सम अरु सन्तोष विचार ॥[6]

केशव ने योगवाशिष्ठ के आधार पर इन साधनों का उल्लेख किया है।[7] उन्होंने कहा है कि यदि कोई उनमें किसी एक को भी अपना लें तो उसे सुखपूर्वक प्रभु के द्वार में प्रवेश

१—वि० गी० १४।४८

२—सकलाशा स्वसंसत्य। यत्स्वयं चेतसः क्षयः।
समोक्ष नाम्ना कथित स्तत्वज्ञैरात्मदर्शिभिः॥ —योगवाशिष्ठ, ५।७३।३६

३—दृश्यं विरसतां यातं यदान स्वद्यते क्वचित्।
तदानेच्छा प्रसरति तदैव च विमुक्तता॥ —वही, ६।२।३७।३३

४—अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, डा० मायारानी टंडन, पृ० ५७६

५—तुर्यावस्था सातई जाते जीवन मुक्त।
ताते ऊपर होति है अति विदेहता युक्त। —वि० गी० १७।६०

६—रा० चं० १५।६, वि० गी० १४।४५

७—सतोषः साधुः संगश्च विचारोथ शमस्तथा।
एत एव भवांबोधा उपायास्तरणे नृणाम्॥ —योगवाशिष्ठ, २।१२।१६

प्राप्त हो जाता है और जो इन चारों का मनसा, वाचा और शुद्ध भाव से संग्रह करता है वह संपूर्ण वासनाओं से मुक्त होकर अपने यथार्थ रूप को प्राप्त कर सकता है।[१] योग-वाशिष्ठ में भी यही बात बतायी गयी है।[२]

साधु संग :

केशव ने साधु का लक्षण बतलाते हुए लिखा है साधु वह है जो कज्जल कलित तथा अगाध चक्रव्यूह की भांति अगम संसार में प्रविष्ट होकर भी उससे निष्कलंक निकल आता है।[3] केशव की दृष्टि में सत्संग गंगासागर तीर्थ से भी बड़ा तीर्थं है क्योंकि साधुओं के उपदेश इतने अद्‌भुत और पावन होते हैं कि वे जीवन काल में ही पापियों को पवित्र करके जीवन मुक्त बना देते हैं।[४] योगवाशिष्ठ के अनुसार जो सत्संग रूपी शीतल और निर्मल गंगा में स्नान करता है, उसे किसी तीर्थ दान जप और यज्ञ से क्या प्रयोजन है।[५] केशव की विचार धारा इस सम्बन्ध में योगवाशिष्ठ से बहुत प्रभावित हैं।

शम :

रूप, रस, गंध, श्रवण, स्पर्शादि इन्द्रियों को भोगते हुए भी मन का उसमें लीन न होने देने से सच्चे शम का आविर्भाव होता है और वही शम मुक्ति प्रद होता है।[६]

१—तिनमें जग एकहु जो अपनावै।
सुख ही प्रभु द्वार प्रवेशहि पावै।
जो इन को संग्रह करै मन वच छांडनि छांडि।
मिलै आपने रूप को सकल वासना छांडि॥ वि० गी० १४।४६-४७

२—एते सेव्याः प्रयत्नेन चत्वारो द्वौत्रयोथवा।
द्वार मुद्घाटयन्त्येते मोक्षराज गृहेतथा॥ —योगवाशिष्ठ, २।११।६०

३—यह जग चक्रव्यूह किय कज्जल कलित अगाधु।
तामह पैठि जो नीक से अकलंकित साधु॥ —रा० च० २५।१०

४—गंगासागर सो बडो। साधुन को सत संग
पावन कर उपदेश अति। अद्‌भुत करत अभंग॥ —रा० च० २३।९

५—यः स्नातः शीत सितया साधु संगति गंगया।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः॥ —योगवाशिष्ठ, २।१६।१०

६—देखतहु बहु काल छिए हु। बात कहे सुने भोग किये हु।
सोवत जागत नेक न लोभै। सो समता सबही मह सोभै॥ —रा० च० २५।११

योगवाशिष्ठ के अनुसार शांत उसे कहते हैं जो सब जीवों के प्रति मित्रता का भाव रखता है, जो अपने इन्द्रियों को जीतकर सब प्राणियों के साथ एक सा व्यवहार करता है, जो न किसी वस्तु का त्याग करता है, तथा न किसी वस्तु की आकांक्षा करता है।[१] केशव के शम के लक्षण भगवद् गीता के स्थित प्रज्ञ के लक्षणों से मिलते हैं।[२]

सन्तोष :

मन में किसी वस्तु की अभिलाषा न हो, किसी वस्तु के मिलने पर सुखी अथवा नष्ट होने पर दुखी न हो और मन को परमानन्द स्वरूप ईश्वर में लगाये रहे, उस आचार को सन्तोष कहते हैं।[३] केशव के सन्तोष का लक्षण योग वाशिष्ठ की इस विचारधारा से प्रभावित है कि संतुष्ट वह कहलाता है जो अप्राप्त वस्तु की वांछा को छोड़कर प्राप्त वस्तु में समभाव से व्यवहार करता है और जिसे कभी खेद या हर्ष का अनुभव नहीं होता।[४] गीता में भी स्पष्ट किया गया है कि मन के निर्मल हो जाने पर सभी दुःख दूर हो जाते हैं और निर्मल मन शीघ्र ही परमात्मा में लीन होता है।[५]

विचार :

मुक्ति का चौथा साधन विचार है। मैं कौन हूं? कहां से आया हूँ? किस लिए आया हूँ? किस प्रकार से पुनः मैं अपने मूल पद को प्राप्त कर सकता हूं? कौन मेरा हितैषी है? और कौन मेरा अहितैषी है? आदि विषयों पर ध्यान देना विचार कहलाता

१—शमशालिनि सौहार्दवति सर्वेषु जंतुषु।—योगवाशिष्ठ, २।१३।७३
यः समः सर्वभूतेषु भावि कांक्षति नोज्झति।
जित्वेन्द्रियाणि यत्नेन सशांत इति कथ्यते॥—वही, २।१३।७३

२—यस्सर्वत्रानभिस्नेह स्तवत् प्राप्यशुभा शुभं।
नाभि नन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।—भगवद्गीता, २।५७

३—जी अभिलाश न काहु कि आवै। आये गये सुख दुख न पावै।
लै परमानन्द सों मन लावै। सो सब माहि संतोष कहावै॥—रा० च० २५।१२

४—अप्राप्त वांछ मुत्सृज्य संप्राप्ते समतां गतः।
अदृष्टखेदा खेदौव्यः सस तुष्ट इहोच्यते॥—योगवाशिष्ठ, २।१५।६

५—प्रसादे सर्वभूतानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्न चेतसोह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठति।—भगवद्गीता, २।६५

है ।[1] योगवाशिष्ठ के अनुसार बिना विचार किये कोई भी तत्व अच्छी तरह नहीं जाना जाता । विचार से ही तत्व ज्ञान होता है और तत्व ज्ञान से आत्मा में शांति आती है । मैं कौन हूं ? संसार नामक यह दोष कैसे उत्पन्न हो गया है ? आदि बातों पर विचार करने से ही मानव मुक्ति को प्राप्त हो सकता है ।[2]

इस प्रकार मुक्ति के चार साधनों को अपनाने से मानव मुक्त हो जाता है और मुक्त पुरुष का अहंभाव नष्ट हो जाता है । मुक्त मानव, मनुष्य से लेकर कीट पतंगादि तक विश्व के सभी छोटे बड़े जीवों को आत्मवत समझता है, क्योंकि अहंभाव के नाश से भेद दृष्टि नष्ट हो जाती है ।[3]

४—३५ मन :

केशव ने जीव के साथ मन का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान माना है । व्यक्त जगत में मन से बढ़कर शक्तिशाली कोई पदार्थ नहीं है । मन ही जगत की सृष्टि करता है और मन ही सब प्रकार के सुख-दुःखों का उत्पादक है । मन के हाथ में ही बन्धन और मोक्ष है । योगवाशिष्ठ के अनुसार संकल्प करने का नाम मन है : मन संकल्प से भिन्न कुछ नहीं हैं जैसे जल द्रवत्व से और वायु स्पंदन से भिन्न कोई दूसरा पदार्थ नहीं है । जहां संकल्प है वहीं मन है । मन संकल्प से भिन्न कभी किसी प्रकार नहीं है ।[4] भगवद्गीता में अर्जुन ने

१—आयो कहां अबहौं कहि को हौं ।
ज्यों अपनो पद पाऊं सोटो हौं ।
बन्धु अबन्धु हिये मह जानै ।
ता कह लोग विचार बखानै ॥—रा० चं० २५।१३

२—(क) न विचारा दृते तत्वं ज्ञायते साधु किंचन ।
विचाराद् ज्ञायते तत्वं तत्वाद्विश्रं तिरात्मनि ॥—योगवाशिष्ठ, २।१४।५२
(ख) कोहं कथमय दोषः संसाराख्य उपागतः ।
न्यायेनेति परामर्शो विचार इति कथ्यते ।।—वही; २।१४।५०

३—आपन सो अवलोकिये सबही युक्त अयुक्त ।
अहंभाव मिटि जाय जो कौन बद्ध को मुक्त ।।—रा० चं० २५।१८

४—संकल्पनं मनोविद्ध संकल्पात्तन्नभिद्यते ।
यथा द्रवत्वात्सलिलं तथा स्पंदो यथानिलं ॥
यत्र संकल्पनं तत्र तन्मनो गह तथा स्थितं ।
संकल्प मनसी भिन्ने न कदाचन केचन ।।—योगवाशिष्ठ, ३।४।४३,४४

श्रीकृष्ण से प्रश्न किया था कि मन बड़ा चंचल, विक्षोभ कारक, बलवान तथा दृढ़ है। इसलिए उसका निग्रह करना उसी प्रकार कठिन हैं, जिस प्रकार हवा को दवा लेना।[१] श्रीकृष्ण ने अर्जुन की बात स्वीकार करके कहा था कि निश्चय ही मन का निग्रह करना कठिन है। वह चंचल तो है ही किन्तु अभ्यास तथा वैराग्य से उसका निग्रह करना संभव होता है।[२] दूषित मन पतन का कारण और शुद्ध मन मुक्ति का साधन होता है। संस्कृत के "मनएव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः" को केशव ने निम्न प्रकार व्यक्त किया है :—

जग कौ कारण एक मन मन को जीत अजीत।
मन को मन सुनि शत्रु है, मनही कौ मन मीत ॥[३]

केशव का निर्णय है कि मन में लगी हुई गाँठ मन से ही छूटती है।—

मन की दीन्हीं गांठ प्रभु मनही पै छुर आउ।[४]

केशव मन का स्वरूप ब्रह्म के समान रूप और अरूप मानते हैं। उसकी संचालिका शक्ति बुद्धि के बढ़ाने से वह बढ़ता है और घटाने से घटता है-

मन को रूप अरूप हैं जैसो है आकास।
बढ़त बढ़ाये बुद्धि के घटत घटाये आस ॥[५]

जो लोग मन को अपने स्वाधीन कर लेते हैं उन्हें गृह त्याग की आवश्यकता नहीं है—

मन हाथ सदा जिनके तिनके वन ही घर है
घर हो वन है।[६]

१—चंचलहि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़ं।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिवसुदुष्करम् ॥—भग० गीता ६।३४

२—असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलं।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येणत गृहयते।—भग० गी० ६।३५

३—वि० गी० २१।१६

४—वही, २१।२१

५—वि० गी० २१।२०

६—वही, २१।४३

अद्वैतवाद के अनुसार चित्त माया या अज्ञान की ही एक कृति है अतः वही बन्धन का प्रधान कारण है। किन्तु मुक्ति के लिए भी उसी चित्त की अपेक्षा है। निर्मल चित्त अज्ञान के दूर हो जाने पर अहं ब्रह्मास्मि की अनुभूति करके अखंडाकार हो जाता है, इस अवस्था में पहुँचकर ब्रह्म का दर्शन करके चित्तवृत्ति उस अज्ञान का नाश कर देती है और वह खुद अज्ञान की एक कृति होने के कारण उसका भी नाश हो जाता है। इसलिए मुक्ति के लिए भी चित्त एक अनिवार्य उपकरण है। केशव भी यही मानते हैं। स्वर्ग और नरक बन्धन और मुक्ति सब कुछ मन की ही ग्रन्थि के विभिन्न रूप हैं—

स्वर्ग नरक बन्धन मुक्ति मानो मन की गाथ।[1]

इस प्रकार केशव का विचार है कि बन्धन और मोक्ष चैतन्य के धर्म नहीं किन्तु उपाधि रूप मन के हैं जो माया की प्रसूति है। ज्ञान के द्वारा इसकी निवृत्ति हो जाने पर आत्म रूप की उपलब्धि हो जाती है।

४—४ माया :

ब्रह्म की अपार आदि और अन्त रहित चित शक्ति ही माया के रूप में प्रकट होती है। इसका स्वरूप कोई नहीं जानता, ज्ञान होते ही यह नष्ट हो जाती है और नाश होने पर सुख देती है।[2] मानव को जगत के दुःखों में बाँधने वाली माया का स्वरूप बड़ा विचित्र है। केशव ने इसे माया, अज्ञान महामोह, संसृति आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया है। काली रात्रि के अन्धकार में रस्सी प्रतीत होने वाला सर्प विकार माया ही है।—

अविकारी जगदीस है भ्रम ही ते सविकार।
केशव कारी रजनि में सूझत सर्प विकार॥[3]

विज्ञान गीता में सरस्वती ने मन से कहा था कि मोह और माया के वशीभूत होने पर

१—वि० गी० २१।३

२—इति मायेव दुष्पारा चिच्छक्तिः परिजृंभते !
इत्वमाद्यन्त रहिता ब्राह्मीशक्ति रनामया।
ईदृशी राममायेयं या स्वनाशेन हर्षदा।
न लक्ष्यते स्वभावो स्याः प्रेक्षमाणैव नस्यति—योग० ६।३।१७०।१८

२—वि० गी० १७।३४

मन में उच्च विचार उत्पन्न नहीं होते उसके संभ्रम में पड़कर व्यक्ति आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है—

मोह मनी माया वशी और न मन में आइ।
ताके संभ्रम विभ्रमनि भ्रमेन महि अकुलाइ॥[1]

जिनका संसार में जन्म होता है उनका विनाश भी अवश्यंभावी है। सब के लिए माया बन्धन कठिन रहता है---

जे जग में जनमत है, तिन के केशव अन्त।[2]

गीता में भी श्रीकृष्ण ने कहा है कि जब तक प्राणी माया के बन्धन में रहेगा तब तक उसका जन्म तथा मरण होते ही रहेंगे। जो उत्पन्न होता है, उसकी मृत्यु तथा जो मर जाता है उसका जन्म अवश्यंभावी होते हैं।[3] माया का दूसरा नाम संसृति है। वह मोह को उत्पन्न करने वाली है। संभ्रम और विभ्रम उसकी सन्तानें हैं। उसकी संपूर्ण कहानी स्वप्न के समान है---

संसृति नाम कहावति माया।
जानहु ताकहं मोह की जाया।
संभ्रम विभ्रम संतति जाकी।
स्वप्न समान कथा सब तकी॥[4]

सूरदास ने भी माया के दो रूप विद्यामाया तथा अविद्यामाया माने हैं। उनकी अविद्यामाया केशव की माया के समान ही है। उनके अनुसार प्राणी को ईश्वर की ओर से विमुख करके सांसारिकता में फंसाये रखना अविद्या माया का मुख्य कार्य है, जिसके लिए वह काम, क्रोध, मद, लोभ, अज्ञान आदि अनेक मानसिक दुर्बलताओं के सहयोग से प्राणी को सत्पथ से दूर भटकाये रहती है। इस अविद्या माया के हाथ में पड़े प्राणी की स्थिति वैसी ही पराधीनता की रहती है जैसे नटी के बन्धन में पड़े कपि की जिसे लकुट

१—वही, १३।२५

२—वही, १३।२६

३—जातस्यहि धृवो मृत्युः धृवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्य्येर्थे नत्वं शोचितु मर्हसि॥—भग० गी० २।२७

४—वि० गी० १३।२८

के भय से 'कोटिक नाच' नाचने पड़ते हैं। अविद्या माया जनित लोभ के कारण प्राणी नाना स्वांग बनाने की निर्लज्जता दिखाता है।[1] महा माया जीवों के बन्धन का कार्य करती है :

जीव बंधै सब आपनि माया।[2]

यह माया अनिर्वचनीय भी है क्योंकि न तो इसे सत् ही कहा जा सकता है न असत्। सत् इसलिए नहीं कि ज्ञान द्वारा इसका नाश हो जाता है—ज्ञाननिर्वर्त्य। असत् इसलिए नहीं कि जब तक इसकी व्यवहारिक सत्ता है, इसकी स्पष्ट प्रतीति होती है। शुक्ति में शुक्ति का ज्ञान न होने तक, रस्सी में रस्सी को न जानने तक रजत और सर्प को कौन झूठा कहे। अतः इस दशा में 'भाव रूप है' अनिर्वचनीय है।[3] माया सत्व, रजस और तमस् तीनों गुणों से युक्त है, जिसके द्वारा ब्रह्मा और विष्णु और महेश की सृष्टि होती है। अद्वैतवाद ने भी माया का यही रूप स्वीकार किया है। वेदांत सार के अनुसार माया का स्वरूप है—

सदसद्भ्यानिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञान विरोधि
भावरूपं यत्किंचिदिति।[4]

केशव ने भी माया का यही स्वरूप माना है—

सबही सबको सर्वदा माया परम दुरंत।[5]

जब तक विवेक द्वारा माया के परिवार मोह, मद आदि का नाश नहीं होता तब तक माया के वशीभूत रहने के कारण जीव को मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मोहादि का नाश होने पर जब प्रबोध हो जाता है, तो जीव इस जीवन में ही जीवन्मुक्त हो जाता है —

जब विवेक हति मोह को, होइ प्रबोध संयुक्त।
तबहि जानो जीव को, जग में जीवनमुक्त ॥[6]

१—अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, डा० माया रानी टंडन, पृ० ५७३
२—रा० चं० १५।१६
३—केशव और उनका साहित्य, डा० विजयपाल सिंह, पृ० १३२
४—वेदांत सार, पृ० २
५—वि० गी० १३।२६
६—वि० गी० १।३२

४-५ जगत् :

दृश्य जगत्, दृश्य संसृति, संसार आदि अनेक नामों से व्यवहृत होता है। मैं और तुम आदि भेद की मिथ्या भावना जगत् और दृश्य कहलाती है। जब तक इसका अनुभव होता है तब तक मोक्ष नहीं प्राप्त होता। इस भावना को सर्वज्ञ ऋषियों ने अविद्या, संसार बंधन, माया, मोह और अंधकार आदि अनेक नामों ने पुकारा है।[1] महाप्रभु वल्लभाचार्य ने जगत् की उत्पत्ति भगवान के द्वारा और संसार की जीव के द्वारा होना बताया है।[2] अद्वैतवाद की दृष्टि से यह जगत् ब्रह्म का विवर्त है। शुद्ध चैतन्य अज्ञान की सत्व प्रधान समष्टि के संपर्क में आकर ईश्वर नामधारी होकर इस जगत की सृष्टि करता है। अतः ब्रह्म अज्ञानांश की प्रधानता से इस जगत् का उपादान कारण भी है और स्वकीय चैतन्य अंश की प्रधानता से निमित्त कारण भी है। इसी प्रकार जगत् का लय भी उसी कारण रूप ईश्वर में हो जाता है। जगत् कारण रूप में सूक्ष्मावस्था में तथा स्थूल पांच भौतिक रूप में हमारे सामने आता है। इस प्रकार हम तीनों दशाओं को अव्यक्त और व्यक्त या दृश्य और अदृश्य के भीतर ले जा सकते हैं, जिनकी उत्पत्ति और रूप का स्थान अज्ञान की समष्टि से उपहित ईश्वर चैतन्य है।[3] केशव इसी दार्शनिक सिद्धान्त को मानकर उसे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं :

दृश्यादृश्य सुब्रह्म है यहै मुक्ति जिय जान।
जाते उपज्यौ ताहि मिलि, अनल ज्वाल परिमान ।।[4]

इस जगत् का मिथ्यात्व उन्होंने ठीक अद्वैती पदावली में अनेक स्थलों पर स्पष्ट किया है। रज्जु-सर्प के, शुक्ति-रजत के तथा स्वप्न आदि के अनेक उदाहरण देकर केशव ने इसका मिथ्यात्व सिद्ध किया है :

१—जगत्त्वमहमित्यादि मिथ्यात्मा दृश्यमुच्यते ।
यावदेतत्संभवति तावन्मोक्षो न विद्यते ॥—३-१-२३
अविद्या संसृतिर्बन्धो माया मोहो महत्तमः ।
कल्पितानीतिनामानि यस्याः सकलवेदिभिः ॥—३-१-२०, योगवाशिष्ठ

२—तत्वदीप निबन्ध—शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक, २६

३—डा० विजयपालसिंह

४—वि० गी० १४।४८, ४६

माया दरशन तुम कह्यौ ताके सबै विलास।
पुत्र कलनि आदि दै झूठौ सब संसार।
जाको देखो स्वप्न सो सांचो ब्रह्म विचार ॥[1]

केशव ने दृश्य तथा अदृश्य अखिल व्यावहारिक सृष्टि की सत्ता का आधार मन को ही माना है।[2] इस विषय को केशव ने अनेक प्रकार से विभिन्न स्थलों पर समझाया है। विज्ञान गीता के आरम्भ में केशव ने रूपक शब्दों में बतलाया है कि सृष्टि की उत्पत्ति ईश तथा माया के संसर्ग से होती है। ईस तथा माया के संसर्ग से मन रूपी पुत्र की उत्पत्ति होती है। मन की दो पत्नियां हैं, प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति से तीनों लोक उत्पन्न हैं। इसी से मोह, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, तृष्णा आदि उत्पन्न हैं। ज्ञान, सम, संतोष विचार आदि निवृत्ति की संतान हैं।

ईश माय विलोकि के उपजाइयो मन पूत।
सुन्दरी तिहि द्वै करी तिहि ते त्रिलोक अभूत।
एक नाम निवृत्ति है जग एक प्रवृति सुजान।
वंश द्वै ताते भयो यह लोक मानि प्रमान।
महा मोह द्वै आदि हम, जाये जगत प्रवृत्ति।
सुमुखि विवेकहि आदि दै प्रकटन भई निवृत्ति।[2]

अन्य स्थल पर जीव को ज्ञानोपदेश दिलाते हुए केशव ने देवी के मुख से कहलाया है कि शुभ तथा अशुभ वासना से युक्त शरीर सम्बन्धात्मक सृष्टि का बीज है, जो भाव और अभाव में क्रमशः सुख-दुःख का अनुभव करता है। शरीर का बीज विदेह चित्त वृत्ति है, जो स्वप्न दशा के समान संभ्रम, विभ्रम आदि से युक्त है। चित्त की उत्पत्ति "प्राण स्पंद" तथा भावना से होती है। प्राण स्पंद तथा भावना की उत्पत्ति "संवेद" से होती है। संवेद का बीज "संवित्" तथा संवित् का बीज "परमसत्ता" है। परम सत्ता दो प्रकार की होती है। एक तो एक रूप तथा दूसरी नानारूप। प्रथम को काल सत्ता कहते हैं और दूसरी का नाम "वस्तु सत्ता" अथवा चित्त सत्ता। चित्त सत्ता ही सब पदार्थों की उत्पत्ति का कारण

१—वि० गी० १३।८३,८४

२—वही, २१।१६

३—वही, २।१२,१४

और बीज के बीज को कोई नहीं जानता। केशव उसी की आराधना करने का उपदेश देते हैं।[1]

४—५१ जगत्, मिथ्या : अनित्त

अद्वैतवाद के अनुसार "ब्रह्मसत्यं जगतिमिथ्या है। केशवदास ने भी ठीक अद्वैत-वादी पदावली में अनेक स्थलों पर प्रकट किया है कि संसार की नानारूपात्मक सत्ता मिथ्या है। रज्जु सर्प, शुक्तिरजत तथा स्वप्न आदि के अनेक अनेक उदाहरण देकर उन्होंने ही इसकी अनित्यता को सिद्ध किया है।—

माया दरशन तुम कह्यो, ताके सर्व विलास।
पुत्र कलत्रनि आदि दै, झूठो सब संसार।।
जाकौ देखौ स्वप्न सौ, साचो ब्रह्म विचार।।[2]

उन्होंने स्वीकार किया है कि संसार में जो नाना रूप दिखायी देते हैं वे दृश्य मात्र तथा क्षण भंगुर हैं। माया मोह जन्य संसार की वास्तविक सत्ता नहीं है। जिस प्रकार शुक्ति में भ्रम के कारण रजत का आभास होता है उसी प्रकार इस मिथ्या जगत में भी नित्यता का आभास होता है। किन्तु जिस प्रकार दीप के प्रकाश से रज्जु में सर्प की भ्रांति दूर होकर यथार्थ ज्ञान होता है, उसी प्रकार शास्त्राध्ययन तथा गुर उपदेश से उत्पन्न यथार्थ ज्ञान के द्वारा भ्रम का निवारण हो जाता है और तत्व ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है—

भ्रम ही ते जो शुक्ति में होति रजत की युक्ति।
केशव संभ्रम नाश ते प्रकट शुक्ति की शुक्ति।।[3]

यहां के पुत्र, मित्र, स्त्री, दुहिता आदि सारे सम्बन्ध मिथ्या हैं। इसी प्रकार लोभ, मद, काम आदि की भी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। ब्रह्म का स्वरूप ही शाश्वत सत्य है। जो लोग तुमको छोड़कर कई बार अलग हो गये हैं और तुम ही जिनका परित्याग अनेक

१—वि० गी० २०।२,३,७-१२

२—वही, १३।८३,८४

३—वही, पृ० ६६

पर्याय कर गये हो उनके लिए सोचना मूर्खता है ।[१] जिस प्रकार समुद्र का जल बडबाग्नि की ओर जाता है उसी प्रकार विष्णु, महादेव आदि सभी दृश्य शरीर मृत्यु की ओर अग्रसर होते हैं तो औरों की गणना ही क्या है ।—

ब्रह्मा विष्णु शिव आदि दैं जितते दृश्य शरीर ।
नाश हेतु धावत सबैं ज्यों बडवानल नीर ॥[२]

जगत के समस्त दृश्य पदार्थ, तथा संबन्ध धूलि कण के समान क्षण भंगुर हैं—

यह सब जैसे धूरि कथा, दीह नाच सब होइ ।
को जाने उडि जात कहं मरे न मिलई कोइ ॥[३]

यहां की किसी वस्तु को अपनी समझना मूर्खता है । एक ही घर के मक्खी, मच्छर, मूसा, घूस, कीड़े, कुत्ता, बिल्ली पक्षी, मनुष्य आदि अनेक दावेदार हैं । यह बड़ा ही विकट भ्रम जाल है ।[४] हाथी घोड़े इष्ट मित्र बन्धु-बाँधव परिजन आदि सब क्षणिक हैं । यहां तक कि मनुष्य का अपना शरीर भी अन्त में अपना साथ छोड़ देता है—

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गांऊं न ठाऊं कुठाऊं विलै हैं ।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तिय कहूं संग रैहै ॥[५]

सांसारिक संबन्ध उसी प्रकार क्षणिक हैं जिस प्रकार थोड़ी देर के लिए नांव में बैठे हुए यात्रियों का संयोग, आकाश के बादलों अथवा भवंडर में त्रृण समूह का कुछ काल के

१—पुत्र मित्र कलत्र केतजि वत्स दु:सहयोग ।
कौन के भट कौन की दुहिता मृषा सब लोग ।
एक ब्रह्म सांचो सदा झूठो यह संसार ।
कौन लोभ मन काम को सुत मित्त विचार ।
तुमहें गये तजि बार बहु, तुमहुं तजे बहु बार ॥—
तिन गनि सोच कहां करो, रे बावरे गवार ॥—वि० गी० १३।७-६

२—रा० च० २४।२४

३—वि० गी० १३।१५

४—माछी कहै अपनो घरु माछरमूसो कहै अपनो घरु ऐसो ।
कोनें घुसी कहैं घूसि घिनौनी बिलारि औ व्याल बिलेमहं वैसो ।
कोटक स्वान सो पक्षि औ भिक्षुक भूत कहैं भ्रम जाल है जैसो ।
कोहूं कहौ अपनौ घरु तै सहि ता घरू सों अपनो घर कैसो ॥—रा० २४।२६

५—वही, १६।२६ तथा क० प्रि० ६।५६

लिए एकत्रित होकर वियुक्त होना। संसार के जीवों का उसी प्रकार कुछ काल के लिए संयोग होकर अंत में वियोग हो जाता है, जिस प्रकार हाट मार्ग या बारात में कुछ समय के लिए लोगों का संयोग होना और फिर वियोग हो जाना।[1] यह समस्त नानारूपात्मक जगत् जिसमें जीवों की विभिन्न योनियों, स्वपच कीट तथा राजा रंक के नानावेष आदि सब माया की कृति हैं।—

जन्म मरण तेरो मृषा, श्वपच कीर नृपवेष।
झूठो सिगरो नाउं हैं, माया कर्म अलेष॥[2]

यद्यपि यह जगत झूठा है—

झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई।
काहू सांचे को बनायो ताते सांचो सो लगतु है॥[3]

किन्तु व्यावहारिक दृष्टि इसकी स्थिति माननी पड़ेगी और इस अवस्था में तत्वज्ञान के आ जाने पर ही इससे मुक्ति पाना संभव होता है।—

मरनहिं जीवन तजहीं, मरि मरि जन्म न भजहीं।[4]

ऐसी अवस्था में यह जगत दुःखजाल है:—

जग मांझ है दुख जाल, सुख है कहां इहि काल।[5]

दुख से परिपूर्ण इस जग में जीव को वशीभूत होना ही पड़ता है—

जग को कारण एक मन।
मन को जीति अजीति॥[6]

४—५२ संसार की स्थिति :

भारत के प्रायः सभी दर्शन संसार को दुःख पूर्ण मानते हैं। केशव भी संसार को दुःखपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि संसार में कोई भी सुख नहीं है। सर्वत्र दुःख ही

१—वि० गी० १४।७
२—वही, १३।८५
३—वही, १४।६
४—रा० चं० २४।१
५—वही, २३।१२
६—वि० गी० २१।१६

दुःख है। मृत्यु के उपरांत भी जीव दुःख से छुटकारा नहीं पाता। वह बार बार मरता है और जन्म लेता है—

जगमें न सुख है, यत्र तत्र दुःख है।[1]

जन्म मरण का यह चक्र चलता ही रहता है—

मरणि जीवन तजहिं, मरि मरि जन्म न भजहीं।[2]

सूरदास ने भी संसार को अनेक स्थलों पर सेमर सा निस्सार, मिथ्या, स्वप्न स्वरूप अंधकारमय विष सागर आदि कहा है।[3] गर्भ में जाने के समय से लेकर मृत्यु तक बाल्यावस्था, युवावस्था, और वृद्धावस्था, हरेक अवस्था में जीव को अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। रामचन्द्रिका तथा विज्ञान गीता में विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले दुःखों का सविस्तार वर्णन मिलता है। जगत के नित्यता तथा सत्यता के बारे में केशव का वही विचार प्रतीत होता है, जो कबीर दास का था। जिस प्रकार कबीर ने दृश्य तथा अदृश्य संपूर्ण जगत् को काल का चबेना माना है—

खलक चबीना काल का
कुछ मुख में कुछ गोद ॥[4]

उसी प्रकार केशवदास ने भी चर तथा अचर जगत् ऊर्ध्व तथा अधोलोक तथा सभी प्राणी काल के वशीभूत माना है।—

जितने थिर चर जीव जग, अधर ऊदध के लोक।
अजर अमर अज अमित जन, कवलित काल सशोक ॥[5]

विज्ञान गीता में मन देवी से कहता है कि चित्त में अत्यधिक भय लगता है। संसार में

१–वि० गी० १४।१७ २—रा० चं० २४।१

३–(क) यह संसार सुवा सेमर ज्यों सुंदर देखि लुभायौ। —सा० १।३३५

(ख) ... ... स्वप्न स्वरूप सकल संसार।
सोयौ होइ सोइहिं सत मनौ। जो जागै सो मिथ्या जानै। —सू० सारावली, ६।५

४–कबीर वचनामृत, [साखी भाग], मुंशी राम शर्मा, पृ० २०५

५–वि० गी० १४।२२

सुख नहीं है। सभी जगह दुःख ही दुख है।[1] गर्भ में मल से मिला रहता है और संसार में आकर अनेक प्रकार के कष्ट सहता है। अनेक पीड़ाओं और रोगों से वह सदैव ही ग्रस्त रहता है। खेलों में माता पिता का भय नहीं रहता और गुरुओं के घरों मे दण्ड नहीं रहता है।[2] रामचन्द्रिका में भी राम विश्वामित्रादि मुनियों से कहते हैं कि जीव बाल्यावस्था में भली बुरी वस्तुओं को नहीं जानता। सभी वस्तुओं को सुखमय मानता है और खेल में ही लगा रहता है।[3] भूख प्यास आदि की चिन्ता नहीं करके वह सदैव खेल में लीन रहता है।[4] युवावस्था में सभी जीव काम की अग्नि में जल रहे हैं। शरीर में क्रोध और विरोध बनते हैं। विपत्ति में सारी चतुरता नष्ट हो हो जाती है। लोभ के कारण देश विदेशों में भ्रमण करता रहता है।[5] युवावस्था में मन चंचल रहता है। क्रोध रूपी बड़ा सर्प त्वचा को चबाता है और यौवन के बल के महामद में बेहोश रहता है—

जारति चित्त चिता दुचिताई।
दीह त्वचा अहि कोप चबाई॥
काम समुद्र झकोरनि भूल्यो।
यौवन चोर महामद भूल्यो॥[6]

युवावस्था में जीव परनारी रूप अग्नि में जलता है, लोक मर्यादा की गणना नहीं करता। जिस प्रकार मछली चारे के लोभ से कांटे में फंस जाती है, उसी प्रकार जीव भी कामेच्छा के कारण कामदेव के वशीभूत हो जाता है। गर्व उसे उच्च पद से गिरा देता है और क्रोध उसे बड़े बड़े जलते अंगारों से जलाता है। युवावस्था में जीव काम के वशीभूत होकर अपना कुल धर्म भूल जाता है। जब जगत् के जीवों के सिर पर काम पिशाच आ बसता है तब यंत्र, मंत्र, जड़ी बूटी किसी की भी कानि नहीं मानता।[7] बाणभट्ट ने भी अपनी कादंबरी में युवावस्था से उत्पन्न होने वाले बुरे गुणों पर प्रकाश डाला है—

१–देवि कों कहा करौं। चित्त में महा डरौं।
जग्ग में न सुख है। यत्र तत्र दुख है। —वि० गी० १४।१७

२–गर्भ मिलैइ रहै मल में जग आवत कोटिक कष्ट सहे जु।
को कहै पार न बोलि परै बहु रोग निकेतन ताप रहे जु॥
खेलत मात पिता न डरै गुरु गेहनि में गुरू दण्ड दहे जु।
दीरघ लोचन देवि सुसोश्रव बाल दशा दिन दुख नहे जु॥ —वि० गी० १४।१८

३–रा० चं० २४।३ ४—वही, २४।४

५–वि० गी० १४।२०   ६—रा० चं० २४।५

७–रा० चं० २४।६, ७, ८, ९

"यौवन के आरम्भ में मनुष्यों की बुद्धि शास्त्र रूपी जल से धुल जाने के कारण निर्मल होने पर भी प्रायः कलुषता प्राप्त होकर ही रहती है। यौवन के समय रजोगुण वश मनुष्य के स्वभाव में भ्रम उत्पन्न हो जाता है, उस समय प्रबल वायु जिस प्रकार धूल उड़ा उड़ा कर सूखे पत्तों को बहुत दूर ले जाती है, उसी प्रकार वह स्वभाव मनुष्य को इच्छानुसार से बहुत दूर खींच ले जाता है।[१]

वृद्धावस्था से उत्पन्न होने वाले दुःखों का वर्णन भी केशव ने किया है। वृद्धावस्था में शरीर की शक्ति कम हो जाती है। वाणी कांपने लगती है। दृष्टि भी डगमगाती है, शरीर की त्वचा अति ढीली होकर सिकुड़ जाती है और बुद्धि रूपी लता संकुचित हो जाती है। गर्दन भी झुक जाती है और चलने की शक्ति, जो बालकपन से अब तक संग ही संग रही, थक जाती है। जब मृत्यु की सहेली जरावस्था सब आधियों तथा व्याधियों को साथ लिए हुए मानव शरीर पर आ विराजती है तब शरीर के सब अंगों की स्वाभाविक शक्ति नष्ट हो जाती, जीव के साथ केवल एक दुराशा मात्र छिपी रह जाती है।[२] मृत्युकाल के अंकुर के समान सिर के बाल सफेद हो जाते हैं। वे सफेद बाल व्याधियों, जड़ों या भाल में लिखी हुई मानसिक व्यथाओं के असंख्य अक्षरों के समान होते हैं।[३] वृद्धावस्था का वर्णन करते हुए शंकराचार्य ने भी लिखा है कि वृद्धावस्था के कारण मानव का शरीर गलित हो जाता है, केश के बाल पक जाते हैं, मुँह से दांत गिर जाते हैं और वह लकड़ी के सहारे चलने लगता है तो भी आशा उसे नहीं छोड़ती है।[४]

इस प्रकार केशव ने जगत को दुःखमय माना है तथा उसमें मानव जीवन को भी निस्सार और क्षणिक स्वीकार कर लिया है।

१–यौवनारंभे च प्रायः शास्त्र जल प्रक्षालन निर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। ·· ··· ···अपहरति वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूत रजो भ्रांति रतिदूरं आत्मेच्छया यौवन समये पुरुषं प्रकृतिः।

—कादंबरी, बाणभट्, पृ० ३१५

२–कंपै उर बानि डगै नर डीठि त्वचा कुचै सकुचै मति बेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते संग ही संग खेली॥
लिए सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवैं ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह दशा जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराशा अकेली॥ —रा० चं० २४।२१

३–रा० चं० २४।१२, १३

४–अंगं गलितं पलितं मुंडं दशन विहीनं जातं तुंडं।
वृद्धोयाति गृहीत्वा दंडं तदपि नमुंचत्याशा पिण्डम्॥

४-६ सृष्टि दर्शन :

४-६१ सृष्टिकर्त्ता :

वेदांत मत के अनुसार एक ही ब्रह्म जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण हैं। सृष्टि के आरंभ में एक ब्रह्म ही था। ब्रह्म की इच्छा हुई कि एक मैं अनेक बनूँगा। "एकोहं बहुस्यां प्रजाय इति"। उनकी इस इच्छा शक्ति से ही जगत की सृष्टि का आरम्भ हुआ। पहले ब्रह्म से पृथ्वी आदि चराचर जगत की सृष्टि हुई।

"भगवान मनु ने कहा है कि यह परिदृश्यमान विश्व संसार एक समय गाढे अंधकार से ढका था। उस समय की अवस्था का पता लगाना कठिन है। किसी भी लक्षण द्वारा उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। उस समय यह तर्क और ज्ञान से अतीत होकर मानो प्रगाढ़ निद्रा में लीन था। पीछे स्वयंभू व्यक्त भगवान ने महाभूतादि चौबीस तत्वों से संसार को प्रकट करके उस तमोभूत अवस्था का विध्वंस किया।[1]

प्रत्येक पुराण में सृष्टि क्रम के विषय में लिखा गया है। क्योंकि पुराण के लक्षण में लिखा गया है कि सृष्टि और प्रलय का वर्णन करना उसका अनिवार्य धर्म है। विष्णु पुराण में इसके संबन्ध में विस्तार पूर्वक लिखा गया है।[2] सभी पुराणों में सृष्टि प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ कुछ प्रभेद हैं। परन्तु अन्यान्य विषय में कुछ कुछ विभिन्नता रहने पर भी इस विषय में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है कि एक परमेश्वर से ही जगत् की सृष्टि हुई है। संहिता, दर्शन, और पुराणादि शास्त्रों का यही मत है कि "द्यावा भूभी जनयन् देव एक आस्ते विश्वस्य कर्ता भुवनश्य भोक्ता।" एक देवता है। केशव ने शुक्राचार्य के द्वारा बलि के प्रति सृष्टि दर्शन का कथन कराया है। आनन्दमय देश, ब्रह्म का निवास स्थान है, वह तीनों लोकों को अत्यधिक प्रिय है। उस देश के राजा ब्रह्म बड़े शक्तिशाली हैं। वे जगत् के कर्ता भी हैं और विनाशक भी।[3] बृहदारण्यकोपनिषद् के

१—हिन्दी विश्व कोश, चौबीसवां भाग, पृ० ४२६

२—सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराण पंच लक्षणम्॥ —विष्णु पुराण, ३।४।२४

३—आनन्दमय वह देश है तिहुं लोक को अति इष्ट।
राजा वहां द्विवल पूरण सर्व भाइ निर्दिष्ट।
मंत्री प्रभाव प्रसिद्ध है इहि नाम अद्भुत भेष॥
कर्तार पालक विश्वपालक युक्ति शक्ति अशेष॥ —वि० गी० १६।१६

अनुसार प्रजापति ने जगत् की सृष्टि करके सोचा कि जो इस तत्व को जानता है, वह मेरे समान हो जाता है।[1] केशव ब्रह्मा, विष्णु और महेश में अभेद मानते हैं। इसी कारण विज्ञान गीता में सृष्टि के विषय में उन्होंने लिखा है कि इस सृष्टि की रचना कभी ब्रह्मा से, कभी विष्णु से और कभी शिव से होती है।[2] कभी शिव से ब्रह्मा और कभी ब्रह्मा से शिव और कभी शिव से विष्णु और कभी विष्णु से शिव होते हैं।[3] इस प्रकार केशव ने परमात्मा परब्रह्म को सृष्टिकर्ता माना है और शिव विष्णु और ब्रह्मा में अभेद स्वीकार किया है।

४-६२ लोक कल्पना :

विविध लोकों की कल्पना पौराणिक साहित्य की एक विशेषता कही जा सकती है। हिन्दू संस्कृति ने लोक को और हिन्दू विचार परम्परा ने लोकेश्वर को सदा सर्वोच्च स्थान दिया है। इन्हीं दोनों परम्पराओं के अनुसार हिन्दू संस्कृति और सभ्यता आज से बहुत पहले ही दृढ़ आस्तिक लोक तंत्र का निर्माण कर चुकी थी। यही कारण है कि हिन्दू संस्कृति और सभ्यता में हम पद-पद पर संस्कारों और यज्ञों का बोलबाला, धर्म में अभ्युदय और निःश्रेयस का समावेश, कर्म और ज्ञान का समन्वय और विधान में क्षात्र और ब्राह्मण का अटूट संयोग पाते हैं।[4]

केशव का पुराण साहित्य से घनिष्ट सम्बन्ध था। उन्होंने अपनी प्रतिभा और पांडित्य के सहारे विविध लोकों की कल्पना को अपने काव्य में प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप से स्थान दिया है।

४-६२१ लोकों की संख्या :

द्विलोक :

पर लोक के संबन्ध में इह और पर इस प्राथमिक द्वन्द के समान पृथ्वी और

१–सो वेदहं वावसृष्टि रस्म्य हंहीदं सर्वमसृक्षीतितत: ।
सुष्टिर भवत् सृष्टयाम् हास्यै तस्यां भवति एवं वेद । —बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।५

२–वि० गी० २१।११

३–हरते विधि हैं कबहूं बिधि ते हर ।
हरते हरिजू कबहूं हरि ते हर ॥ —वि० गी० २१।१३

४–कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० २३६

द्यौ—ये दो ही लोक वेदों में पहले आते हैं। स्वर्ग और मृत्यु, द्यावा पृथ्वी—यह द्वैत ही वेदों में पहले दीख पड़ता है। विश्व के माता पिता ये की हैं।[१] केशव ने इस द्विलोक की कल्पना को स्वीकर किया है।[२]

त्रिलोक :

केशव ने त्रिभुवन,[३] की कल्पना भी की है। उन्होंने अपने साहित्य में त्रयलोक,[४] तीनहुं लोक,[५] त्रिलोक,[६] त्रैलोक,[७] तिहुंलोक[८] आदि पर्याय शब्दों का प्रयोग किया है। शासन, पाल आदि से संयुक्त रूप भी मिलते हैं जिनके द्वारा भगवान के त्रिभुवन रक्षक होने का विश्वास प्रकट होता है। त्रिभुवन शासन[९] त्रिभुवनपति[१०] आदि भी इसी अर्थ के द्योतक हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में इनको भू: भुव: स्व: कहा गया है। वास्तव में द्यावा पृथ्वी के द्वंद से ही मध्यस्थ अन्तरिक्ष रूप—तीसरा लोक आप ही सिद्ध हुआ। इस प्रकार त्रैलोक्य की भावना रूढ़ हुई। वामन के तीन विक्रम द्यौ, पृथ्वी और अन्तरिक्ष—ये ही तीन लोक हैं।[११] वेदों के मंत्र भाग में परलोक के सम्बन्ध में त्रैलोक्य भावना ही मुख्य है।[१२] उपनिषदों में भी त्रैलोक्य भावना को ही प्रधानता दी गयी हैं।[१३]

सप्त लोक :

पौराणिक वाङ्मय में परलोक भावना अधिक विस्तृत और सुस्पष्ट है। इसमें द्विविधता, त्रिविधता, पंचविधता और सप्त विधतता के ये विविध प्रकार हैं। तथापि सप्त-विधतता ही सर्व प्रधान दीख पड़ती है। उदाहरणार्थ सप्त द्वीप,[१४] सप्त अधोलोक,[१५] सप्त ऊर्ध्व लोक[१६] इत्यादि का विस्तृत वर्णन ब्रह्मपुराणादि में है। केशव ने भी अपने साहित्य

१—ऋग्वेद, १।१५९-१६०
२—दुहूं लोक को एक साधैं सयाने।—रा० चं० १७।२२
३—वही, ६।२३ ४—वही, ७।४८
५—वही, ६।४५ ६—वही, ३६।२०
७—वि० गी० ३।६ ८—वही, ६।७२
९—रा० चं० ३३।१ १०—के० ग्रं० ४६८।१८
११—ऋग्वेद १०।५४ १२—वही, १०।६।३
१३—बृहदारण्यक, ३।६।८
१४—जंबु. प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शक और पुष्कर।
१५—अतल, वितल, सुतल; तलातल, रसातल, महातल, और पाताल।
१६—भू लोक, भुवर्लोक, स्वर्ग लोक, महालोक, जनोलोक, तपोलोक और सत्यलोक।

में सप्त विधतता का उल्लेख करके अपने पौराणिक ज्ञान का परिचय दिया है। लोकों के सम्बन्ध में सात लोक,[१] सातहु लोकन,[२] सप्त लोक[३] आदि पर्याय शब्दों के द्वारा सप्त लोक की कल्पना केशव साहित्य में मिलती है।

चतुर्दश लोक :—

हिन्दू संस्कृति के अनुसार चौदह भुवन माने जाते हैं। केशव ने इन चौदह लोकों का उल्लेख चौदहलोक,[४] लोक चतुर्दश,[५] आदि शब्दों के द्वारा किया है। कुछ स्थलों पर कोई निश्चित संख्या नहीं देकर अखिल लोक[६] शब्द के द्वारा असंख्य लोकों की कल्पना की है।

४—६२२ भूलोक :

केशव ने भूलोक के लिए भूतल,[७] पुहुमि,[८] भुव,[९] जग,[१०] जगत्,[११] संसार[१२] आदि शब्दों का प्रयोग किया है। भुव-भवन[१३] जैसे संयुक्त शब्दों के द्वारा भी भूलोक का बोध कराया गया है। इनके अतिरिक्त मण्डल शब्द से संयुक्त शब्द भी मिलते हैं जिनमें पृथ्वी के मंडलाकार होने का विश्वास सन्निहित है, कुमण्डल,[१४] छिति मण्डल[१५] इसके उदाहरण हैं।

केशव ने अपने साहित्य में सात द्वीपों का उल्लेख भी किया है। पृथ्वी मण्डल में सात द्वीपों के होने की मान्यता "सप्त द्वीप वती"[१६] शब्द के द्वारा केशव ने स्वीकार की है। विज्ञान गीता में केशव ने सातों द्वीपों का वर्णन किया है। पुष्कर द्वीप,[१७] शाकद्वीप,[१८]

१—रा० च० २०।३१
२—वही, २७।६
३—वही, २८।१६
४—रा० च० २७।१५
५—वही, ३६।१०
६—वही, १२।६२
७—वही, ७।३१
८—के० ग्रं० ४८२।४०
९—रा० च० ४।१३
१०—के० ग्र० ४६७।१३
११—वही, ४७०।८६, २७४।१२
१२—वही, २७।२५
१३—वही, ४६६।२४
१४—वही, ३६२।४८
१५—वही, २४४।१२
१६—सप्त द्वीप वति महि बसि रामचन्द्र के राजा।—रा० च० २८।२६
१७—वि० गी० ४।५
१८—वही, ४।११

क्रौंच द्वीप,[१] कुश द्वीप,[२] शाल्मालि द्वीपः[3] प्लक्ष द्वीप,[४] जंबू द्वीप[५] पुराण सम्मत हैं।

केशवदास ने जंबू द्वीप में नौ खण्डों का अस्तित्व स्वीकार किया है।[६] किन्तु छः खण्डों—इलावृत खण्ड,[७] भद्राश्वखण्ड,[८] हरिवर्ष खण्ड,[९] हिरण्मय खण्ड,[१०] रम्यक खण्ड[११] और भरत खण्ड[१२]—का ही वर्णन केशव साहित्य में मिलता है।

४—६२३ पातालादि लोक :

केशव ने पाताल के लिए रसातल,[१३] रसातले,[१४] आदि शब्दों का प्रयोग करके इस लोक की विशिष्टता का परिचय दिया है। सातों रसातल[१५] के द्वारा सातों अधोलोकों का उल्लेख किया गया है। डा० सदाशिव फड़के के अनुसार प्रधानतः चौदह भुवन या लोक हैं। उनमें सात ऊर्ध्व लोक, सात अधो लोक। उनमें अधो लोकों को बिल स्वर्ग भी कहा गया है। इस सप्त पाताल रूप विवरों में रहने वाले जीव सदा सानन्द रहते हैं। यहां के सुखोपभोग और सौन्दर्य विलास को असुरों की कपट विद्या और माया ने बहुत समृद्ध किया है। इन भू गर्भ सात स्तरों में[१६] अतल में मायासुर पुत्र बलस्वामी हैं,[१७] वितल में हाटकेश्वर शंकर भवानी के साथ युग्म भाव से रहते हैं।[१८] सुतल सुप्रसिद्ध बलि राजा का स्थान है।[१९] तलातल में मायासुर का राज्य है। महातल में क्रोधवश नामक सर्प समुदाय का निवास है। रसातल में दैत्य और दानव रहते हैं। और पाताल प्राणाग्नि मय है तथा यहां नागों के अधिपति रहते हैं। किन्तु केशव ने इतने विस्तार के साथ पाता-

१—वि०गी० ४।१३
२—वही, ४।१७
३—वही; ४।२०
४—वही, ४।२४
५—वही, ४।२८
६—है नौ खण्ड विराजत जाके।-वि० गी० ४।२६
७—वही, ४।२६
८—वही, ४।३३
९—वही, ४।३४
१०—वही, ४।३४
११—वही, ४।३५
१२—वही, ४।३८
१३—रा० च० १६।५०
१४—वही, १६।४५
१५—वही, २७।१६
१६—हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण, पृ० ५८८
१७—वि० गी० १६ वां प्रभाव
१८—रा० च० १३।५०
१९—छन्द माला।

लादि का परिचय नहीं दिया है। राजा बलि का उल्लेख विज्ञान गीता में है। शुक्राचार्य और बलि के संवाद का एक प्रभाव ही है। इससे दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुराण प्रसिद्ध कल्पना सिद्ध होती है। नाग कन्याओं का उल्लेख भी जहां तहां हुआ है। ये नाग कन्याएं अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध हैं। छन्दमाला के आरम्भ में भाषाओं के प्रसंग में नाग-भाषा का भी उल्लेख किया गया है और इनकी स्थिति धरती के नीचे ही मानी है। इसके अतिरिक्त पातालादि का विशेष उल्लेख नहीं है।

४—६२४ स्वर्ग:नरक :

डा० सदाशिव फडके ने स्वर्ग के विषय में इस प्रकार लिखा है कि सात ऊर्ध्व लोकों में भूलोक और भुवलोक को भौम स्वर्ग कहते हैं। उन दोनों के भीतर सूर्य, चन्द्र, धूव नक्षत्र, पृथ्वी आदि सभी स्थूल लोक आ जाते हैं। इनके ऊपर स्थित दिव्य स्वर्गों में से तीसरे स्वर्लोक को महेन्द्र स्वर्ग कहते हैं। महर्लोक को प्रजापत्य स्वर्ग, जनलोके, तपोलोक और सत्य लोक इन तीनों को ब्राह्म स्वर्ग कहते हैं। इन पांच दिव्य स्वर्गों में सात्विक अंश की अधिकता है और वे एक से एक बढ़कर हैं।[१]

केशव ने स्वर्ग[२] के लिए देवलोक,[३] अमर लोक,[४] सुरपुर,[५] देवपुर,[६] सुर-लोक[७] आदि पर्यायों का प्रयोग किया है। इसके अधिपति इन्द्र हैं। इन्द्र के सम्बन्ध में वैदिक और पौराणिक देवता प्रकरण में उल्लेख किया गया है। राजाओं की प्रशस्ति के संदर्भ में इन्द्र और स्वर्ग सम्बन्धी अप्रस्तुत का प्रयोग अत्यधिक मिलता है।

आकाश दिव्य शक्तियों का आवास माना गया है। मनुष्य की प्रारंभिक धार्मिक प्रक्रिया प्रकाश और अन्धकार के संघर्ष से प्रेरित थी। "द्वि" धातु से उत्पन्न दिव्य, देवता जैसे प्रतीक मनुष्य के प्रथम श्रद्धा भाजन बने, जो अन्धकार को पराजित करे वही देवता है। इसी धार्मिक भावना का उदात्ततम रूप वैदिक साहित्य में मिलता है जिसमें सर्वोच्च स्थान आकाश को प्राप्त है। यह धार्मिक भावना कालांतर में उपयोगिता से विच्छिन्न

१—हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण, पृ० ५८८

२—रा० चं० १।२७

३—वही, १।१६

४—वही, १।१३

५—वही, १।३६

६—वही, १।४२

७—वही, १७।३५

होती हुई सौन्दर्य के अभिप्रायों से युक्त होती गयी। सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि के रूप में मनुष्य का प्रकाश-प्रेम ही निहित है। इन प्रकाश पुंजों का स्थान आकाश है। आकाश के अनेक पर्याय केशव साहित्य में उपलब्ध होते हैं—आकास,[१] आकाश,[२] व्योम।[३] आकाश को दिव्य शक्तियों का आवास होने के कारण दिवि[४] भी कहा गया है। ख[५] का प्रयोग भी विशिष्ट है। इस बहु प्रचलित शब्द का प्रयोग श्लेष के लोभ से किया गया है। पृथ्वी और आकाश को सम्मिलित करके कुछ वैदिक शब्दों की रचना हुई। "द्यावा पृथ्वी" इसी प्रकार का शब्द है। केशव ने रोदसी[६] शब्द का प्रयोग आकाश और पृथ्वी के लिए किया है। नभ, गगन, अनन्त जैसे सामान्य पर्यायों का प्रयोग केशव के साहित्य में मिलता ही है। कुछ विशिष्ट घटनाओं के समय आकाशवाणी[७] के होने का भी उल्लेख करके केशव ने अपने पौराणिक विश्वास को प्रकट किया है। वैकुण्ठ[८] की पौराणिक कल्पना के अनुसार वहा शेष शय्या पर विष्णु शयन करते हैं और लक्ष्मी उनकी पाद सेवा में रत रहती है। नारदादि ऋषियों का यहां पर गमन है।[९] हरिपुर[१०] भी विष्णु लोक या बैकुण्ठ का पर्याय है। हरिवाहन गरुण[११] का भी इस लोक से सम्बन्ध है। पौराणिक विश्वास के अनुसार सत्यपुरी ब्रह्मा का निवास स्थान है। वहां ब्रह्मा सरस्वती के साथ विराजमान रहता है। केशव ने इसी विश्वास के अनुसार सत्यपुरी[१२] का उल्लेख किया है। गिरीस[१३] शब्द के द्वारा केशव ने परम शिव के निवास स्थान कैलास का भी उल्लेख किया है।

हिन्दुओं का विश्वास है कि मानव की मृत्यु के बाद वह अपने पाप या पुण्य के अनुसार नरक या स्वर्ग का अनुभव करता है। पुण्यात्मा स्वर्ग में जाकर अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव करता है तो पापात्मा नरक में जाकर अनेक यातनाओं को सहन करता है। पापियों को दण्ड देने वाला यमराज है तथा उसका लोक यमलोक कहा जाता है।

१–के० ग्रं पृ० ८८०।२१
२–वही, ५३५।२१
३—वही, ११६।३५
४–वी० च० ११।१५
५—क० प्रि० ७।३२
६–पूरति है भूरि धूरि रोदसी के आसपास।
७—मुंडन ईश शिखा जब जानी।
आइ आकाश भई नभ बानी॥—वि० गी० १३।७६
८—रा० चं० ३३।१८ राम चलैं वैकुण्ठहिं जैसे।
९—के० ग्रं ७७०।२६
१०–वही, ४८७।३६
११—वही, ११४।१६
१२–वि० गी० ३।१७
एक समै हम सत्यपुरिहि गये।
१३—के० ग्रं पृ० १२८।६२

केशव को यह मान्यता स्वीकृत है। उन्होंने अपने साहित्य में नर्क,[१], निरैपदपर्शी[२], (नरक-भोगी) आदि शब्दों को पर्याय के रूप में स्वीकार किया है। डा० सदाशिव कृष्ण फडके के अनुसार नरक के अट्ठाईस विभाग प्रख्यात हैं।[३] नरक लोक के समीप ही यमलोक है। उसे पितृ लोक कहते हैं। नित्य पितर अमर होते हैं। ये मनुष्यों से भिन्न हैं। इनकी उत्पत्ति पृथक और स्वतंत्र रूप से हुई है।[४] इन्हें देव भी कहते हैं। यहां से मृत होकर ऊपर गये हुए जो पितर हैं, वे नैमित्तिक हैं। पितरों में यम प्रथम पितर माने गये हैं। श्राद्धादि कर्म के द्वारा उनको उन्नत पद मिलता है। केशव ने इसी विश्वास को मान्यता देकर यम लोक तथा श्राद्ध कर्म का उल्लेख अपने साहित्य में किया है। उन्होंने अंतक लोक[५] (यमलोक) आदि शब्दों के द्वारा यमलोक का नामोल्लेख किया है। भरत अपने पिता की मृत्यु के कारण अति दुःखी हुए, तथापि उन्होंने ऐसी विधि से प्रेतक्रिया की कि राजा दशरथ को मुकुन्द पद प्राप्त हो गया।[६]

जो जीव मृत्यु के पश्चात् भूकर्षित होता है और विभिन्न वासनाओं के वश नीचे आकर्षित होता है, वह कुछ काल तक प्रेत लोक में रहता है। प्रेत वायु रूप होते हैं और श्मशान, कब्रस्थान, अन्धकार, शून्य और उजड़े हुए स्थानों में रहते हैं। केशव के विषय में यह किवदन्ती हैं कि उन्होंने अपने साथियों के साथ प्रेत यज्ञ किया था और वे प्रेत योनि को प्राप्त हुए। प्रेत रूप को प्राप्त होकर वे अनेक यातनाओं का अनुभव करने लगे तब तुलसी दास ने उन्हें रामचन्द्रिका इक्कीस बार पाठ करने की सम्मति दी थी तथा ऐसा करने से उनका उद्धार हो गया।

उपर्युक्त लोकों के अतिरिक्त धनद लोक[७] बरुणपुरी[८] आदि का भी उल्लेख केशव ने किया है।

१–स्वर्ग नर्क बन्धन मुकुत। मानो मन की गाथा। वि० गी० २१।२३

२–तबही नृप होय निरैपदपर्शी। —रा० चं० ३४।८

३–तामिस्र, अंधतामिश्र, रौरव, महा रौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकर मुख, अंधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्त सूर्मि, वज्रकंटक शाल्मलि, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लाला-भक्ष्य, दंदशूक, अवट निरोधन, पर्यावर्तन, सूचीमुख,—कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ५८६

४–तैत्तरीय ब्राह्मण, ८।३।८।२

५–चेतिरेचेति अजौ चित अंतरलोक अनेक लोई जैहैं। —रा० चं० १६।२६

६–क्रिया भरत कीनी। वियोग रस भीनी।
सबै गति नवीनी। मुकुन्द पद लीनी॥ —वही, १०।१२

७–धनदलोक सुरलोक युत। —रा० चं० २८।१६

८–वरुनपुरी धनपतिपुरी सुरपतिपुर सुखदानि। —वही, ३३।७

४-७ : साधना पक्ष :

४-७१ प्रास्ताविक :

योग हिन्दुओं का दर्शन और धर्म का प्रमुख अंग है। हिन्दुओं की साधना पद्धति की यह सब से समीचीन और वैज्ञानिक शैली है। मोक्ष प्राप्ति के लिए भारतीय दर्शन ने तीन साधनों का उल्लेख किया है—योग, भक्ति एवं ज्ञान। भारत वर्ष की धर्म साधना में योग प्राचीनतम साधना है, जिसका अवलंबन करके साधक संसार के त्रिविध तापों[1] तथा पंच क्लेशों[2] पर विजय प्राप्त करता है और मुक्ति का अधिकारी बन जाता है। प्रत्येक धर्म की साधना में योग किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। शुक्ल यजुर्वेद में कहा गया है—

तस्यको मोहः कश्शोकः एकत्वमनुपश्यतः।

वेदों के अतिरिक्त उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, भगवत गीता, योगवाशिष्ठ तथा योग ग्रंथ आदि में योग का उल्लेख मिलता है। बौद्ध, जैन, नाथ संप्रदाय आदि ग्रन्थों में योग को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

योग चित्तवृत्तियों के निरोध के द्वारा संसार से मुक्त होने का साधन है।[3] डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार आत्मा जिस शारीरिक या मानसिक साधन से परमात्मा से जुड़ जावे वही योग है।[4] इस का एक प्रकार है आत्म ज्ञान और दूसरा प्राण निरोध। यद्यपि दोनों मार्गों का नाम योग है तथापि प्राण निरोध के लिए ही योग शब्द अधिक प्रचलित है। भक्ति संप्रदायों की भावात्मक साधना से पूर्व निर्गुण संप्रदायों में योग साधना ही अधिक मान्य थी। सूर साहित्य में भी योग की शब्दावली अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त है। केशव साहित्य में योग सम्बन्धी उक्तियां अधिक मिलती हैं।

४-७२ योग साधना :

केशव के अनुसार मुक्ति प्राप्ति में शरीर बाधक नहीं है। योग साधना और

१—त्रिविध ताप—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक।
२—पंच क्लेश : अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।
३—योगश्चित्त वृत्ति निरोधः। —पतंजलि योगसूत्र, १
४—कबीर का रहस्यवाद, पृ० ६

प्राणायाम के द्वारा अदेह मुक्ति प्राप्त हो सकती है।[१] राजा शिखिध्वज की कहानी के संदर्भ में केशव ने लिखा है कि उसकी पत्नी कलावती ने बाल्यकाल में मुनिकन्याओं के साथ रहकर प्राणायाम की विधि सीखी थी और उसे पूर्णरूप से सिद्धि मिल गयी थी। उसने अपने पति को आत्मज्ञान का बोध कराया थां। जब वह आधी रात में राज्य छोड़-कर वन में तपस्या करने के लिए चला गया तब रानी ने अपने योगबल के प्रभाव से सब बातें समझ लीं और अपने पति के पास पहुँची।[२] इतना ही नहीं उसने देवपुत्र का वेश धारण करके उसे आत्मबोध का उपदेश दिया था। इस कहानी के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि केशव योग साधना पर विश्वास करते थे।

केशव ने लिखा है कि चित्त के त्याग किये बिना मुक्ति नहीं मिलती उनके अनु-सार देह का त्याग नहीं करना चाहिए, वरन् चित्त के त्याग से ही शरीर त्याग का ज्ञान होता है।[३] अहंपद रूपी बीज का चित्त में विनाश करना चाहिए। उसी समय सच्चा सर्वस्व त्याग होगा।[४] केशव का चित्त त्याग पतंजलि के चित्तवृत्ति निरोध से भिन्न नहीं है।

भगवान की उपासना के सुगम मार्ग के विषय में महादेव ने वशिष्ठ से कहा था कि अपने हृदय में निरंजन अविनाशी की ज्योति लाओ और निश्चल रूप से समाधि लगाओ। उसके द्वारा वासना का नाश हो जाता है। शुद्ध स्वाभाविक जल से स्नान करें, पूर्ण रूप से समाधि लगावें और चिदानंद की पूजा फल, फूल और मूल से करें। यह साधना ही शुद्ध तप है और यही योग और वियोग है। यही अनन्य धर्म है, जिसे मुनि लोग जानते हैं। इस प्रकार हम नित्य ही पूजा करते हैं। इसी पूजा के कारण इन्द्र देव-ताओं के राजा हो गये।[५] केशव ने इस प्रसंग में योग की पारिभाषिक शब्दावली का ही प्रयोग किया है।

१–क्रम क्रम साधे देह इहि केशव प्रणायाम।
कुंभ पूरक रोचकनि तो पूजै मन काम। —वि० गी० २५।६

२–वि० गी० १६।४३

३–देह त्यागनहिं कीजई, कीजै चित्तहि त्याग।
चित्त त्याग ते जानिबो, सांचो देही त्याग॥ —वही, १६।६४

४–वही, १६।६७

५–वही, १५।४६-५०

इससे स्पष्ट होता है कि जहां केशव योग साधना में समाधि के लिए निश्चलत्व तथा निर्वासनत्व की आवश्यकता समझते हैं, वहां पूर्ण प्रेम की भी महत्ता स्वीकार करते हैं। गीता में तो यहां तक कहा गया है कि योगी, तपस्वियों, ज्ञानियों तथा कर्मियों से भी श्रेष्ठ है।[1] योगवाशिष्ठ में योग का महत्व स्वीकृत है। उसके अनुसार जैसे पंखे की गति रुक जाने पर हवा की गति रुक जाती है, वैसे ही प्राणों की गति के रुक जाने पर मन शान्त हो जाता है। प्राण के निरोध करने से अवश्य ही मन शान्त हो जाता है और मन के शान्त होने पर अवश्य ही यह संसार विलीन होजाता है।[2]

४-७३ भक्ति साधना :

४-७४ सामान्य विवेचन : विशेषता :

भगवान को अनन्य शरण मानकर उस पर विश्वास रखना और भव सागर से मुक्ति प्राप्त करने के लिए उसकी उपासना करना ही भक्ति है। अपने को दीन तथा अल्प-शक्तिमान समझना तथा भगवान को दीन रक्षक सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान समझना भक्त का प्रधान लक्षण है। भक्ति के अभिप्राय में जगत् मिथ्या तथा क्षणिक है और भगवान सत्य स्वरूप तथा शाश्वत हैं। इसी कारण वह नश्वर जगत् के कार्य-कलापों से विमुख होकर मायातीत भगवान की शरण में जाना अनिवार्य मानता है। आत्मा और अनात्मा का विचार उत्पन्न करने वाला तथा मोक्षप्राप्ति का परोक्ष साधन ज्ञान है और उस ज्ञान की उत्पत्ति के लिए भक्ति परमावश्यक है शास्त्रों में भी यही प्रतिपादित है कि भक्ति के द्वारा ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है—"भक्त्याज्ञानं प्रजायते।" भगवत गीता के विभूति योग में उल्लिखित है कि मानव की भक्ति पर प्रसन्न होकर भगवान उसे ज्ञान फल तथा बुद्धि योग प्रदान करता है।[3]

१–तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्यो पिमतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥ —भगवत गीता, ६।६४

२–तालवृन्तस्य संस्पंदे शांते शान्तो यथानिलः।
प्राणखिल परिस्पंदे शान्ते शान्तं यथामनः॥ —योगवाशिष्ठ, ६।२।६९।४२
तस्मिन् संरोधिते नूनं मुपशान्तं भवेन्मनः।
मनः स्पंदोपशान्त्यायं संसारः प्रविलीयते॥ —वही, ५।७८।१३

३–तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धि योगं तं येन मा मुपयांतिते॥ —भगवत गीता, १०।१०

शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में लिखा गया है कि ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है।[1] नारद भक्ति सूत्र में उल्लिखित है कि भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूपा भी।[2] भीष्म प्रह्लाद, उद्धव और नारद जी ने कहा है कि वह ममकार भक्ति कहलाती है, जिसमें यह भावना निहित रहती है कि भगवान मेरा है।[3] शंकराचार्य ने लिखा है कि कुछ लोगों का अभिप्राय है कि आत्म स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जो निरन्तर विचार किया जाता है वह भक्ति है और कुछ लोगों का सिद्धान्त है कि आत्म पदार्थ का वास्तविक विचार तत्व ही भक्ति है।[4]

कर्म, ज्ञान और भक्ति ये मुक्ति के तीन साधन माने जाते हैं। डा० मुंशीराम शर्मा के मतानुसार जीव ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय द्वारा अपने को जड़त्व से पृक्त तथा चैतन्य से ओतप्रोत कर लेता है, वह उस परंज्योति के दर्शन करता है और जन्म मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।[5] आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने लिखा है—हमारी जीवन की पूर्णता- कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों के समन्वय में है। साधना किसी प्रकार की भी हो साधक की पूरी सत्ता के साथ ही होनी चाहिए, उसके किसी अंग को सर्वथा छोड़कर नहीं।[6] डा० राधाकृष्णन के अनुसार मुक्ति की उच्चतम स्थिति के सम्बन्ध में चाहे कितना मतभेद क्यों न हो, किन्तु इतना निर्विवाद है कि वह जीव की सक्रिय स्वतंत्र और पूर्णावस्था है। वास्तव में इसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। यदि इसका वर्णन अपेक्षित है तो उसे दिव्य जीवन की स्थिति कह सकते हैं। आत्मा का ब्रह्म से उसी प्रकार तादात्म्य समझना चाहिए जैसे सूर्य की किरणों का सूर्य से, व्यष्टि संगीत का विश्व संगीत से होता है। यही तादात्म्य मुक्ति है।[7] भक्ति की विशेषता बतलाते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है कि जो परम सयाने हैं वे संसार को दुःखरूप मानकर भगवान का भजन करते हैं

१—सापरानुरक्ति रीश्वरे।-शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, भक्ति चन्द्रिका, पृ० ५

२—सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा अमृत स्वरूपाच।-नारद भक्ति सूत्र, २।३

३—अनन्य ममता विष्णौ ममता प्रेम संकृता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्म प्रह्लादोद्धव नारदैः॥-नारद पांचरात्र,

४—स्वस्वरूपानुसंधानं भक्ति रित्यभिधीयते।
स्वात्मतत्वानुसंधान भक्ति रित्यपरेजगुः।-विवेक चूडामणि, शंकराचार्य।

५—डा० मुंशीराम शर्मा, प्रथमजा, पृ० ७१

६—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १७८-१७९

७—डा० राधाकृष्णन्, भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृ० २४१

और शुभाशुभ सभी प्रकार के कर्मों का परित्याग कर देते हैं ।[१] भागवत् के अनुसार भी जीव की सुख दुःख, जीवन्मरण आदि समस्त गतियों के लिए वे कर्म ही उत्तरदायी हैं ।[२] वहीं पर कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों योगों का बड़े विस्तार से विवेचन करते हुए उनको उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण भी बतलाया गया है । इसके साथ यह भी बतलाया गया कि कर्म ज्ञान, तप, दान, योग और वैराग्य आदि से भी अप्राप्य पदार्थ भक्ति योग से सरलता से प्राप्त किये जा सकते हैं ।[३] अतः इस भक्ति भाव से ओतप्रोत भक्त को भवबन्धन से मुक्ति सुलभ रूप से मिल जायेगी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रुति, स्मृति, पुराणों के अतिरिक्त हिन्दी के प्रसिद्ध भक्तकवि सूर, तुलसी आदि ने भी भक्ति को भव सागर से मुक्ति पाने का प्रमुख साधन माना है ।

केशवदास ने अपने साहित्य में भक्ति की विशेषता का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है । केशवके ग्रन्थों में रामचन्द्रिका तथा विज्ञान गीता ये दोनों उनके भक्ति सिद्धान्तों से ओतप्रोत हैं ।

केशव के मतानुसार हरि भक्ति से बढ़कर काम्य वस्तु कोई नहीं है । मेघनाद वध से प्रसन्न होकर देवेन्द्र ने जब लक्ष्मण से वर मांगने को कहा तब उन्होंने रामचन्द्र की भक्ति अपने मन में सदा स्थिर रहने का वर मांगा ।[४] अपने राजतिलक के अवसर पर राम ने शिव और ब्रह्मा को आनन्द पूर्वक अपनी भक्ति प्रदान की ।[५] किसी भी परिस्थिति में हरि भक्ति को छोड़कर अन्य बातों को नहीं मानना चाहिए ।[६] शान्ति और श्रद्धा विष्णु भक्ति की सखियां हैं । अतः किसी प्रकार वे उसे छोड़ने के अनुकूल नहीं हैं ।[७] इस संसार का अधिष्ठाता रामचन्द्र ही है । अतः उनकी शरण में जाने से जीव का उद्धार होगा ।[८]

१—मानस, ७।४१
२—भागवत्, १२।६।६५
३—वही, ११।२०।६।१०
४—कछु मांगिये वर वीर सत्वर । भक्ति श्रीरघुनाथ की ।—रा० चं० १०।३५
५—रघुनाथ शंभु स्वयंभु को निज भक्ति दी सुख पाय ।—वही, २६।३१
६—और बात न मानिये मन छोडि श्री हरि भक्ति ।—वि० गी० ६।२१
७—विष्णु भक्ति जगमें करी यद्यपि विरल प्रचार ।
तदपि शान्ति श्रद्धा सखी, तजति न प्रेम प्रकार ॥—वि० गी० ७।१४
८—उर रामचन्द्र जगती पति जान्यों ।—रा० चं० १५।१४

रावण के अंगद से यह पूछने पर कि तुमने समुद्र को कैसे पार किया, उसने जबाव दिया कि गोपद के समान लांघ कर आया।[1] भगवान की कृपा से इस संसार में असंभव भी संभव हो जाता है। यद्यपि सागर अलंघ्य था तो भी राम भक्ति के प्रभाव से अंगद ने उसे पार किया। इस बात के समर्थन में यह श्लोक दिया जा सकता है :

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपातमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

संतो के हृदय से क्षण के लिए भी श्रीहरि अलग नहीं होता। प्रति क्षण वे भगवान को अपने मन में रखकर उसका स्मरण करते हैं। केशव ने लिखा है कि संत हृदय में सदैव श्रीहरि निवास करते हैं।[2] भक्ति के द्वारा भौतिक संपत्ति की भी उन्नति हो जाती है। आयुर्बल कुल की शोभा, प्रभुता आदि को वृक्ष मानकर उसे दिन रात ब्रह्म भक्ति रूपी जल से सींचना चाहिए।[3] केशव जीवन मुक्ति के लिए भक्ति को परम साधन मानते हैं। मन को जीतकर पुत्र, मित्र और कलत्र का मोह छोड़ देना चाहिए और भगवान की भक्ति को अपने मन में स्थिर रखना चाहिए। ऐसा करने से भगवान की भक्ति के प्रसाद स्वरूप जीवन को मुक्ति मिलती है।[4] भगवान की भक्ति से सभी का अनुभव जब तक साधक को नहीं होता तब तक उसका मन भगवान की भक्ति में लीन नहीं होता। विषय वासना से निवृत्ति तथा ईश्वर की भक्ति में प्रवृत्ति से ही जीव की मुक्ति का साधन होता है। विज्ञान गीता में केशव ने लिखा है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दोनों मन की पत्नियां है किन्तु इनका स्वभाव पृथक है। महामोह आदि को लेकर इस संसार में प्रवृत्ति आयी और विवेक आदि से पूर्ण होकर निवृत्ति इस संसार में प्रकट हुई।[5] विज्ञान गीता का प्रतिपाद्य हरिभक्ति ही है। केशव ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि यदि किसी की इस संसार में परमार्थ तथा स्वार्थ दोनों को प्राप्त करने की आसक्ति है और साथ ही हरि-भक्ति को प्राप्त करनेकी भी उत्कट अभिलाषा है तो उसे विज्ञान गीता का अध्ययन करना चाहिए—

१—सागर कैसे तर्‍यौ ? जस गोपद।—वही, १४।१

२—सन्त हियो कि बसैं हरि संतत शोभ अनन्त कहै कवि कोहै।—रा० म० १४।४१

३—आयुर्बल कुलशोभा श्री; प्रभुतादिक तरु जान।—
ब्रह्मभक्ति जल शक्ति ते बाढत है दिन मान॥—वि० गी० १३।२७

४—वही, २१।३७

५—वि० गी० २।१४

परमारथ स्वारथ दुओ साधन की आसक्ति।
पढौ ज्ञान गीता हितौ जो चाहते हरिभक्ति ॥[१]

केशव ने विज्ञान गीता में इस बात पर अधिक जोर दिया है कि जब विवेक मोह को समाप्त कर प्रबोध से संयुक्त हो जाता है, तब जीव इस संसार में रहता हुआ भी सुख दुःखों से असंपृक्त रहता है।[२] इस प्रकार विवेक से प्रबोध का उदय होने के कारण जीवात्मा में भक्ति उत्पन्न हो जाती है तथा उसके द्वारा महिमा सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

४ - ७५ ब्राह्मण भक्ति :

केशव ने ब्राह्मण भक्ति को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। उन्होंने यहां तक स्वीकार किया है कि ब्रह्म भक्ति के द्वारा ही हरिभक्ति की उत्पत्ति होती है—

ब्रह्म भक्ति कीने नृपति, उपजि परे हरिभक्ति।[३]

इस लिए ब्राह्मणों की सारी शिक्षा सुननी चाहिए। ब्राह्मण को ब्रह्म के समान मानना चाहिए। उन्हें कभी दुःख नहीं देना चाहिए। उनका चरणोदक आशीर्वाद के रूप में ग्रहण करना चाहिए।[४] अहंकार छोड़कर उनकी पूजा करनी चाहिए। पृथ्वी तल पर देवताओं के बाद इनका ही स्थान है। इनकी पूजा करने से सभी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी। ब्राह्मण को छोड़कर अन्य किसी की उपासना नहीं करनी चाहिए।[५] ब्राह्मण के निग्रह, अनुग्रह तथा आशीर्वाद को समान रूप से स्वीकार करना उपयुक्त है। भृगु महर्षि ने विष्णु को उत्तम पात्र मानकर उनके हृदय पर पादघात् किया था। विष्णु ने उसे सहर्ष सहन किया था।[६] ब्राह्मण चाहे लंगड़ा हो, गूंगा अन्धा, अनाथ, राजा रंक अज्ञ या विज्ञ हो इनकी पूजा समान रूप से तथा मन, वचन और कर्म से प्रेम पूर्वक करनी चाहिए।[७] गायत्री से संयुक्त सभी ब्राह्मण हरिभक्ति हैं—

१—वि०गी० १।१०
२—वही, १।३२
३—वही, १६।२२
४—वही, १६।२३
५—वि० गी० १६।२४
६—वही, १६।२५
७—वही, १६।२६

गायत्री संयुक्त हैं सबै विप्र हरि भक्ति ।[1]

ब्राह्मणों में कोई उन्नत या निम्न स्तर का नहीं होता । विप्र युग रूप होता है :

विप्र होत युग रूपा ।[2]

इस प्रकार ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि केशव ब्राह्मण भक्ति को हरि भक्ति का साधन मानते है और सदाचारी ब्राह्मणों को देवता के समान मानते हैं ।

४—८ भक्ति के प्रकार और नवधा भक्ति :

ज्ञान मार्ग साधना मूलक होने के कारण सामान्य मानव के लिए सुलभ साध्य नहीं है । भावुक लोगों ने ऐसे लोगों के लिए एक सरलतम कर्म निकाला है और वह है भक्ति । केशव ने अपने साहित्य में भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया है, यद्यपि वह सूर तुलसी आदि के समान अनुभवजन्य नहीं है । डा० किरणचन्द्र शर्मा ने लिखा है—"केशव को अपनी पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण रामचन्द्रिका में रामचरित मानस की सी पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकी । केशव की राम कथा में भक्ति का बिल्कुल उन्मेष नहीं है और न रामचन्द्रिका को भक्ति ग्रंथ ही कहा जा सकता है । यों तो इष्ट के रूप गुण का कीर्तन भी एक प्रकार की भक्ति है, परन्तु केशव की चमत्कारपूर्ण शैली ने राम कथा में कहीं भी इष्ट के रूप तथा गुणों का वह चित्र अंकित होने नहीं दिया, जिससे सरस दृश्यों में रागात्मिका भक्ति का उदय तथा उत्कर्ष होता है । तो भी भक्ति के भग्नावशेष का रूप रामचन्द्रिका में मिल ही जाता है ।[3] केशव साहित्य का दार्शनिक दृष्टि से गहरा अध्ययन करने पर हम कह सकते हैं कि यद्यपि उनके साहित्य में चमत्कारपूर्ण शैली अधिक हैं तो भी भक्ति की सर्वांगीणता में कोई कमी नहीं है । यह स्वीकार करनी पड़ेगी कि केशव सूर और तुलसी के समान अनंय भक्त नहीं थे, किन्तु धर्म शास्त्रों के अध्ययन के कारण भक्ति के विषय में उनका अनुभव गंभीर था ।

भक्ति कई प्रकार की मानी गयी है । भागवत् और अध्यात्म रामायण नामक

१—वही, १६।२६

२—वही, १६।३०

३—केशवदासः जीवनी, कला और कृतित्व पृ० २३७

ग्रंथ उसे नवधा मानते हैं।[१] कबीर ने इसे दशधा माना है। नारदीय भक्ति सूत्र में उसे एकादशधा कहा गया है।[२] पद्मपुराण में भक्ति के प्रकारों के विषय में कुछ नवीनता दिखायी पड़ती है।[३] केशव ने भागवत् के समान विज्ञान गीता में नवधा भक्ति का ही उल्लेख किया है।[४] पर उन्होंने नवधा निरूपण में भक्ति को काव्य के नव रसों से मिश्रित करके अपनी मौलिकता दिखायी है। भक्ति के एक एक प्रकार में एक एक रस की प्राप्ति होती है। श्रवण में अद्भुत, स्मरण में करुण, दास्य में वीभत्स, पादसेवन में भयानक, वंदन में वीर, अर्जन में शृंगार, सख्य में हास्य, कीर्तन में रौद्र और आत्म निवेदन में शान्त रस का आविर्भाव होता है।[५]

भक्ति के उपर्युक्त नौ प्रकारों में से प्रथम छः कृत्य हैं और अन्तिम तीन भाव। कृत्यों में भी प्रथम तीन—श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण का सम्बन्ध ईश्वर के नाम और लीला रूपों से और अन्तिम तीन अर्थात् पाद सेवन, अर्चन और वंदन का सम्बन्ध उनके विग्रह स्वरूपों से है। सूरदास ने अपनी सारावली में भक्ति के दस प्रकारों का उल्लेख किया है।[६] परमानंद सागर में श्रवण में परीक्षित, कीर्तन में शुकदेव, स्मरण में प्रह्लाद,

१–श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्य मात्मनिवेदनम॥ —भागवत्, ७।५।२३

२–गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणशक्ति दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति कान्तासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयनासक्ति, परमविरहा सक्ति, रूपा एकधा अपि एकादशधा भवति। —नारदीय भक्ति सूत्र, ५।८२

३–सुदर्शनोर्ध्व पुंड्रादि तच्चिह्न् नैरंकनं शुभंम्।
सद्गुरोर्मन्त्रपठनमर्चनं विधिना हरेः॥
स्मरणंकीर्तनं विष्णोः सेवां च परमात्मनः।
प्रणामस्तस्य पुरतस्तदीयानां च पूजनं।
प्रमाद तीर्थ सेवाच भक्तिर्नवविधा स्मृता॥ —पद्म पुराण, उत्तर १५३।२३१-३४

४–नवरस मिश्रित साधि नृप नवधा भक्ति प्रमानु।
दानव मानव देवगण भक्त कमल हरिभानु॥ —वि० गी० १६।३८

५–जीतहु अद्भुत श्रवण सों, सुमिरन कारण जानि।
सहित जुगुप्सा दासता, पादभजन भय मानि।
वंदन वीर शृंगार सों, अर्चन सख्या सहास।
रौद्र कीर्तन सम सहित, आत्म निवेदन प्रकाश। —वि० गी० १६।३९-४०

६–स्रवन, कीरतन स्मरन पादरत अरचन वंदन दास।
सख्य और आतम निवेदन, प्रेम लच्छन जास॥ —सारा० ११६

पद सेवन में कमला, अर्चन में पृथु, वंदन में सुफलक सुत, दास्य में हनुमंत, सख्य में अर्जुन, आत्म समर्पण में बलि और प्रेमासक्ति में गोपियों का आदर्श स्वरूप बताकर 'दसधा' भक्ति का उल्लेख किया गया है।[१] यह बात पहले ही कही गयी है कि केशव भागवत् में प्रतिपादित नवधा भक्ति से अधिक प्रभावित है। अत: केशव के अनुसार भक्ति के नौ प्रकारों का विवरण नीचे दिया जाता है।

श्रवण :

परमाराध्य भगवान के गुण, नाम, चरित्र आदि का सुनना 'श्रवण' भक्ति के अन्तर्गत माना जाता है। केशव ने श्रवण भक्ति की महत्ता बताते हुए लिखा है कि पार्वती ने शिव से परमतत्व की कथा सुनने की इच्छा प्रकट की थी।[२] वीर सिंह देव ने केशव से पूछा कि तीर्थस्नान, गोदान, वेद और पुराणों की महिमा का गान करने पर भी व्यक्ति अपने मन के विकारों को नहीं छोड़ता, अत: मानसिक विकार दूर करने का अच्छा उपाय बताओ। यह सुनकर केशव ने पार्वती परमेश्वर का उदाहरण देकर विज्ञान गीता में आध्यात्मिक तत्व का प्रतिपादन किया है।[३] जहांगीर नगर में जहां तहां हरि की लीला सुनाई देने का उल्लेख किया गया है—

जहं तहं हरि लीला सुनि मीत।
राम कृष्ण के गावहिं गीत ॥[४]

रामचन्द्रिका में स्वयं राम ने परब्रह्म के तत्व की जिज्ञासा से प्रेरित होकर वशिष्ठ से उसका श्रवण किया है। विज्ञान गीता में प्रह्लाद ने विष्णु से तथा बलिराज ने शुक्राचार्य से परमत्व का श्रवण किया है।

कीर्तन :

कीर्तन से तात्पर्य है—इष्टदेव के नाम, गुण, उसकी लीला आदि की विशेषता स्वीकार करना तथा उनका गान करना। श्रीमद्भागवत में इस प्रकार की भक्ति का बड़ा महात्म्य बताया गया है। कलि युग दोषों का निलय है, किन्तु उसमें कृष्ण का कीर्तन एक

१–परमानंद सागर, हस्त० ३१४ (डा० मायारानी टंडन, अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन पृ० ५०१ से उद्धृत)
२–वि० गी० १।२६
३—वही: १।२८
४–वी० च० १८।२

ऐसा महान गुण है जिससे मानव परम गति को प्राप्त कर लेता है।[1] केशव ने अपने साहित्य में कीर्तन को बड़ा महत्व दिया है। रामचन्द्रिका में अनेक स्थलों पर राम नाम के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। उत्तरार्द्ध में वशिष्ठ के मुख से राम नाम का विस्तार के साथ वर्णन कराया गया है।[2]

भगवान की लीलाओं का गान भी कीर्तन भक्ति के अन्तर्गत माना जाता है। केशव ने रामचन्द्रिका में राम की लीलाओं का वर्णन किया है।[3] राम अजर, अमर, तथा अनन्त चरित्र हैं। उनके अद्‌भुत चरित्र को देखकर सुर नर और सिद्ध लोग आश्चर्य करते हैं। वे मन, वचन और कर्म से परस्त्री को शिला समान जानते हैं। अपनी माता पर किंचित काल तक चंवर ढारने से जो हाथ थक जाते थे, उन्हीं हाथों से उन्होंने शिव धनुष चढ़ाया था। जिस मंथरा ने कैकेयी को प्रेरणा देकर उन्हें वनवास दिलाया था उससे तो वे प्रसन्न रहे, किन्तु जो शूर्पनखा उनकी पत्नी बनने आयी थी उसकी नाक और कान कटवा डाले थे। चारा देते समय जब कभी कोई शुक चोंच से उंगली दबाता तो वे डर कर हाथ खींच लेते थे किन्तु बंधु सहित कबंध के भुज पाश में निर्भय होकर जा पड़े।[4]

राम सर्वज्ञ होकर भी अज्ञानों की तरह व्यग्र होकर अनेक स्थानों में घूम घूम कर सीता की खोज की। कई बार बाण चलाते समय निशाने को चूक जाते थे, पर सप्त तालवृक्षों को एक बार एक बाण से ही वेध दिया।[5] अपराधी सुग्रीव को मित्र बनाया तथा निरपराधी वाली को मार डाला। भूलकर भी वे जिस की ओर देखे वह पहाड़ के समान गुरु हो जाता है। पर समुद्र में पहाड़ भी पत्ते हो गये। घोड़े, हाथी इत्यादि सवारियों पर चढ़कर चलते समय सहज ही थक जाते हैं, पर लंका तक बिना थकावट के निश्शंक भाव से पैदल ही चले गये। पुष्पमय कंदुक लगते कांपते हैं और भय के कारण

१—कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेवकृष्णस्य मुक्तसंगः परंव्रजेत॥ —श्रीमद्‌भागवत्, १२।३।५१

२—रा० चं० २६।५-१२

३—रा० चं० २७।१०, ११, १३

४—वही, २७।१०, ११, १३

५—सर्वथा सर्वज्ञ सर्वग सर्वदा रक्ष एक।
अज्ञ ज्यों सीता विलोकी व्यग्र भ्रमत अनेक।
बाण चूक्यो लक्ष्य को को गनै केतकि बार।
ताल सातों बेधियो शर एक एकहि बार॥ —रा० चं० २७।१४

आखें मूंद लेते हैं, पर शत्रु के सामने हंस-हंस कर सेल, तलवार बाण और शूल सहन किये। पर्व त्योंहारों पर विप्रों को तोल कर सुवर्णदान करते हैं, पर शत्रु के भाई को अतुलित सोने की लंका ही दे दी। बिना पान खाये एक क्षण भी रह जायें तो बार-बार जम्हाई लेते हैं, किन्तु चौदह वर्ष तक नींद, भूख, प्यास को साधना से जीत लिया। यद्यपि आश्रितों के करोड़ों अपराधियों को क्षमा करते हैं, पर गो, ब्राह्मण और दीनों के प्रति अन्याय सह नहीं सकते। चौदह लोकों के सभी लोक बदनाम से डरते हैं, पर वे कभी नहीं डरते और महा पापियों को भी आश्रय देते हैं। अपने पूर्व पुरुष त्रिशंकु को उलटा लटका हुआ छोड़कर अवध के शूकर और शुनक को भी परम धाम प्रदान करते हैं। जिनका ध्यान एक क्षण मात्र के लिए हृदय आने से जन का जन्म मरण का झगड़ा मिट जाता है, उसी परब्रह्म ने अवतार लेकर भूमि का भार उतार दिया।[1]

नामस्मरण

भक्ति के क्षेत्र में नाम की बड़ी महत्ता स्वीकृत की गई हैं। इस नाम के साथ इतने संस्कार, इतनी भावनाएं तथा स्मृतियां इकट्ठी हो जाती हैं कि नाम का महत्व नामी के महत्व से किसी तरह न्यून नहीं ठहरता। तुलसी के अनुसार नाम राम से भी बड़ा है।[2] नाम और नामी एकाकार हो जाते हैं। यह नाम विशाल आदर्श का प्रतिनिधि बन जाता है। यही कारण है कि हमारी हिन्दू-संस्कृति में परमात्मा के नाम कीर्तन का बड़ा व्यापक प्रचार है। श्रुति, स्मृति, पुराणों में भी नाम के महत्व का समर्थन मिलता है। परमात्मा का नाम यशोजनक है।[3] नाम का ग्रहण आयु के लिए माना गया है।[4] इत्यादि वैदिक मंत्रों में नाम कीर्तन की प्रशस्ति की गयी है। भगवद्‌गीता में भी कहा गया है—सततं कीर्तयंतोमाम्।"[5] वेद मंत्रों को ही आधार मानकर भागवत् में कहा गया है कि जो आदमी भगवान का पवित्र नाम जान या अनजान में लेता है उसके पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार अग्नि से इंधन।[6]

१—रा० च० २७।१५-२४

२—ब्रह्म राम तें नामु बड़, बरदायक बरदानि।—मानस, बालकाण्ड, दो० २५

३—यस्य नाम महद्‌यशः—यजुर्वेद, ३२।३

४—अग्नेयः क्षत्रियो विद्वान्, नामगृह्णाति आयुषे।—अथर्ववेद। ६।७६।४

५—भगवद्‌गीता, ९।१४

६—अज्ञानादथवाज्ञानादुत्तमश्लोकनामयत्।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधोयथानलः॥—भागवत्, ६।२।१८

केशव ने अपने साहित्य में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। रामानन्द संप्रदाय से प्रभावित होने के कारण वे प्रत्येक वर्ण को राम नाम का अधिकारी मानते हैं। केशव का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र किसी भी वर्ण का व्यक्ति, चाहे पुरुष हो, चाहे स्त्री, राम नाम का अधिकारी है और राम का चरित्र श्रद्धापूर्वक श्रवण करने से पुत्र कलत्र संपत्ति तथा अनेक यज्ञ, दान और तीर्थाटन का फल प्राप्त होता है।[१] वशिष्ट के अनुसार सच्चिदानन्द ब्रह्म ही जगत में राम रूप में जन्म लेता है। इस नाम का आधा ही भाग "रा" का जप करने से उसकी अधोगति नष्ट होती है और पूरे नाम "राम" के जप से वैंकुण्ठ मिल जाता है। ये दोनों अक्षर दोनों लोकों को सुधार देते हैं। यदि कोई भी छल, कपट छोडकर राम नाम का जप करें तो वह लोक परलोक में सुखी रह सकता है।

कहै नाम आधो सो आधो नसावै।
कहै नाम पूरो सो वैकुण्ठ पावै॥
सुधारै दुहूं लोक को वर्ण दोऊ।
हिये छद्म छांड़े कहै वर्ण कोऊ॥[२]

राम नाम को कोई भी दूसरों को सुनावै या स्वयं सुने, कहलावे या कहे, जपावे या जपे तो उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे देवलोक की प्राप्ति होती है।[३]

कलिकाल के प्रभाव से जब संसार में वेद पुराणों का प्रभाव नष्ट होगा, जप, तीर्थाटन आदि से लोगों की श्रद्धा उठ जायेगी, तब केवल राम नाम लेने से ही जीव का उद्धार होगा।[४] केशव का विश्वास है कि यदि पापी भी मरण के अवसर पर राम का नाम लेता है तो वह सहज ही सुरपुर को प्राप्त कर सकता है।[५] और वह सदा के लिए क्रूर काल के फन्दे से बच जाता है

१—रामचन्द्र चरित्र को जु सुने सदा चित लाइ।
ताहि पुत्र कलत्र संपति देत श्री रघुनाथ॥
यज्ञदान अनेक तीरथ न्हान को फल होइ।
नारि का नर विप्र चत्रिय वैश्य शूद्र जो कोइ॥—रा० चं० ११।३८
२—वही, २६।६
३—सुनावै सुनै साधु संगी कहावै। कहावै कहै पाप पुंजै नसावै।
जपावै जपै वासना जारि डारै। तजै छद्म को देव लोकै सिधारै। वही, २६।७
४—जब वेद पुरान नसैहैं। जब तप तीरथहू मिटि जैहैं।
द्विज सुरभि नहिं कोउ विचारै। तब जग केवल नाम उधारै।—रा० चं० २६।८
५—मरनकाल कोउ कहै पापी होय पुनीत।
सुखहि सुरपुर जाइ है, सब जग गावै गीत।—वही, २६।१०

काल सर्प से कबल तें छोरत जिन को नाम ।[1]

भगवत् गीता में कहा गया है कि मृत्यु के समय पर जो आदमी मेरा स्मरण करते हुए अपना शरीर छोड़ देगा वह मुझ में लीन होगा ।[2] भागवत् के अनुसार अपने पुत्र नारायण का नाम लेने मात्र से अजामिल ने वैकुण्ठ प्राप्त किया ।[3] राम नाम की महिमा अवर्णनीय है । वह सामान्य मनुजों की समझ से परे हैं । उसके महत्व एवं प्रभाव को शिव, शेष, वाल्मीकि अथवा वेद ही जानते हैं ।[4]

राम नाम लेने से आदमी इस लोक का सुख भी प्राप्त कर सकता है । राम नाम मुँह से निकलते ही मंगलों का प्रसार होता है और अमंगलों का नाश—

फूलत शुभ सकल गात असुभ सैल से विलात ।
आवत ज्यों सुखद राम नाम मुख तिहारे ।।[5]

राम नाम से पाप जाल भाग जाते हैं । कवि ने लिखा है कि लव के सम्मुख से योद्धा गण ऐसे भागते हैं जैसे राम नाम से पाप ।

भागत हैं भट यों लव आगे ।
राम के नाम तें ज्यों अघ भागे ।।[6]

निराश के अन्धकार के समय मानव को आशा की ज्योति दिखाने वाला राम नाम ही है । सीता के अन्वेषण के लिए निकले हुए वानर जब अपने प्रयत्न में विफल हुए

१—वही, १७।१३

२—अन्त कालेच मामेध स्मरन्नुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयति समदूभावं यातिनास्त्यत्रसंशयः ।—भगवत् गीता, ८।५

३—म्रियमाणो हरे र्नाम गृह्णान् पुत्रोपचारितम् ।
अजामिलोप्यगाद्धाम किंपुनः श्रद्धया गृह्णन् ।।—भागवत्, ६।२।४६

४—राम नाम के तत्व को जानत वेद प्रभाव ।
गंगा धर कै धरणि धर वाल्मीकि मुनि राव ।—रा० चं० २६।११

५—वही, ३०।२०

तब राम नाम का गान करने लगे ।[१] जो राम का नाम जपे वही साधु है, जो न जपे वही पापी है । सब सुखों और मुक्तियों का उपाय केवल राम का नाम ही है ।[२] केशव अपने को ही संबोधित करके कहते हैं कि तू जब तक राम देव का गुण गान नहीं करेगा तब तक वैकुण्ठ की प्राप्ति नहीं हो सकती ।[३] वाल्मीकि के अनुसार राम नाम से ही सुख मिल सकता हैं । क्योंकि राम नाम ही ऋद्धि, सिद्धि और सत्य का धाम है । अन्य नामों से कोई प्रयोजन नहीं है ।[४] राम नाम मुक्ति प्रदायक है—नाम देहि मुक्ति को ।[५]

पादसेवन :

आराध्य की चरण सेवा पाद सेवन भक्ति के अन्तर्गत माना जाता है । केशव ने विष्णुके द्वारा प्रह्‌लादको उपदेश दिलाया है कि वह उनके चरणोंको इष्ट देवता के रूप में रखे, क्योंकि ये परमानन्द की सृष्टि करते हैं ।[६] अब विष्णु होकर विष्णु की सेवा करो । विष्णु होने पर भी यदि विष्णु की सेवा न की जाय तो सभी सेवाएं निष्फल हो जाती है ।[७] सब प्रकार की उपमाओं को छोड़कर, सभी भावों से ब्रह्‌मा के चरणों की सेवा करनी चाहिए—

छांडि मानज मान सो उपमान कीजै दास ।
पादसेवहु ब्रह्‌म तजि सर्वभाव निवास ।।[८]

अर्चन :

अर्चन से आशय श्रद्धा पूर्वक आराध्य की परिचर्या सेवा पूजा आदि से माना

१—राम परम धाम धरम राम करम गावहीं ।—रा० च० १३।३३
२—वही, २५।४०
३—न रामदेव गाइहै । न देव लोक पाइ हैं ।—रा० च० १।१६
४—वही; १६,१०
५—वही, १।३
६—परम भक्त प्रह्‌लाद सुनि, परम विष्णु पद इष्ट ।
परमानन्द मय देखि पुनि परमानन्द की सृष्टि ।।—वि० गी० १८।१४
७—केशव अब हो विष्णु ह्‌वै, करो विष्णु की सेव ।
विष्णु भये बिनु विष्णु को सेवा निष्फल देव ।—वि० गी० १८।४
८—वही, १६।४१

जाता है।[1] केशव के साहित्य में कुछ स्थलों पर अर्चन का उल्लेख किया गया है जिसके आधार पर अर्चन के विषय में उनके विचार प्रकट होते हैं। रम्यक् खण्ड में मनु राजा मनसा, वाचा, कर्मणा अखण्ड रूप में भगवान के मत्स्य राज की आराधना करता है।[2] इसी द्वीप पर परम भक्त हनुमान अत्यंत प्रेम से सीता राम की सेवा किया करते हैं—

सर्वदा हनुमन्त सेवत नित्य प्रेम अगाधु।[3]

विश्वामित्र के आश्रम में भी सदा भगवान का अर्चन होने का वर्णन केशव ने किया है—

देव अर्चमान मानिए।[4]

काशीपुर में कोई देवता की पूजा करता है और कोई ध्यान लगाता है—

एक पूजत देवता इक ध्यान धारण धीर।[5]

शिव वशिष्ट से कहते हैं कि स्नान करके पूर्ण प्रेम से समाधि लगाना और चिदानन्द की पूजा फल, मूल और फूल से करनी चाहिए।[6] यदि कोई निमेष भी अर्घ्य विधान[7] से भगवान की पूजा करें तो उसे बहुत सी दक्षिणाएँ देने तथा राजसूय यज्ञ करने का फल मिलेगा।[8] षोडसोपचारों के विधान से भगवान का अर्चन करने से लौकिक संपत्तियों के साथ साथ स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति संभव है।[9]

वन्दन :

आराध्य की सविनय स्तुति करके उनका प्रणाम करना वन्दन कहलाता है, जो

१—श्री हरिभक्ति रसामृत सिंधु। पूर्व विभाग, लहरी २'२७
२—वि० गी० ४।३५
३—वही, ४।३७
४—रा० चं० ३।३
५—वि० गी० ११।६
६—वही, १५।४७
७—"अर्घ्य" पूजन के १६ उपचारों में से एक है। पूजा के षोडशोपचार ये हैं—
आवाहन, आसान, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभूषण, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, नैवेद्य, तांबूल, परिक्रमा और वन्दना।
८—इहि पूजन जो पूजई केशव अर्ध निमेष।
मनहु सुदच्छिणा बहु करै, राजसूय सविशेष।—वि० गी० १५।४८
९—स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदां।

षोडशोपचारों की ही एक क्रिया है। केशव ने रामचन्द्रिका के प्रारम्भ में गणेश[1] सरस्वती[2] तथा श्री राम की वंदना की है। इसी प्रकार वीरसिंह देव चरित में शिव[3] की तथा कविप्रिया और रसिक प्रिया में गणेश की वंदना की है।[4]

दास्य :

दीनता पूर्वक स्वदोषों को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करके परम प्रभु से शरण और संरक्षण लेने की सविनय याचना करना दास्य भक्ति है।[5] राम के तिलकोत्सव के समय हनुमान, विभीषण आदि अपने को उनका दास मानकर उनकी सेवा करते हैं।— विभीषण और अंगद दोनों ओर चौंर डुलाते हैं।[6]

सख्य :

आराध्य के प्रति अंतरंग सखा जैसा परम प्रेममय, परन्तु निस्वार्थ भाव रखना सख्य भक्ति हैं। रामचन्द्रिका में सुग्रीव राम को अपना सखा मानकर उनकी सेवा करता है। जब सुग्रीव को हनुमान राम के चरणों पर डालता है तब वे उसे अपना मित्र समझकर उसे उसके राज्य और पत्नी को दिलाने का वचन देते हैं।[7]

आत्मनिवेदन :

अनन्य भाव से परमाध्य की प्रार्थना करना और उसकी शरण में जाना आत्म निवेदन है, जिसे पुष्टि संप्रदाय 'प्रपतित्' कहता है। केशव ने विज्ञान गीता में प्रह्लाद और बलिराज में आत्म निवेदन भक्ति का प्रतिपादन किया है। प्रह्लाद ने परम दयालु भगवान विष्णु को ही सर्वस्व समझकर अपना आत्म समर्पण कर दिया तो उसे परमानंद की प्राप्ति होने लगी। वह साक्षात् विष्णुमय हो गया। गरुड़, लक्ष्मी आदि उसकी सेवा करने लगे। भगवान ने उसके सामने प्रकट होकर कहा कि प्रह्लाद तुम जीवन्मुक्त हो गये हो। अब शरीर मत छोड़ो। आचंद्रार्क तुम्हारा राज्य सुखमय रहेगा।[8] अपने गुरु

१—रा० चं० १।१ २—वही, १।२
३—वी० च० १।१ ४—र० प्रि० १।१
५—कृष्णाश्रय, षोडश ग्रन्थ, भट्टनारायण शर्मा, पृ० ६८–६९
६—रा० चं० २६।२५
७—वानर हनुमान सिधार्यो। सूरज को सुत पायनि पार्यो।
राम कह्यो उठि वानर राई। राज सिरी सख त्यों तिय पाई॥ –रा० १२।५६
८—वि० गी० १८।२९, ३०, ३१

शुक्राचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर राजा बलि ने भी भगवान के प्रति आत्म निवेदन कर दिया और ब्रह्म के विषय में उसकी प्रीति बढ़ गयी।[१]

इस प्रकार केशव के साहित्य में नवधा भक्ति का उल्लेख मिलता है। यद्यपि केशव ने बहुत कम स्थलों पर साक्षात् भगवान का गुण गान करके प्रभु की दया की याचना की है तो भी अपने पात्रों के द्वारा भक्ति के उद्गारों को व्यक्त कराया है।

४-६ जीवन दर्शन : कर्मवाद : भाग्यवाद

कर्म की सर्व व्यापकता, कर्म की दुर्लंघ्य शक्ति और प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर नियमित रूप से पड़ता है। श्रीकृष्ण ने भगवत् गीता में कहा है कि भगवान का स्वभाव सच्चिदानंद मय, एक रस है। उसी अलौकिक सत्ता का त्याग करके जो भूतों की उत्पत्ति करता है, उसे कर्म कहते हैं।[२] मीमांसकों के अनुसार कर्म के तीन भेद हैं—(१) सहज कर्म (२) जैव कर्म (३) ऐश कर्म। इनके अतिरिक्त भारतीय दार्शनिक कर्म के और तीन भेद मानते हैं—(१) प्रारब्ध (२) संचित (३) क्रियमाण। हमारे समस्त पूर्व कर्म संचित हैं। उसमें से जितना भाग कर्म देवता हम से इस जन्म में भुगतवाना चाहते हैं, वह प्रारब्ध बन गया है। उसे हमें अवश्य भोगना पड़ता है। बाकी का संचित आगे जाकर क्रमशः प्रारब्ध बनेगा। क्रियमाण वह है जिसे हम अभी कर रहे हैं। एक ही कर्म भिन्न भिन्न परिस्थितियों में किये जाने पर पृथक पृथक फल उत्पन्न करता है।

केशव ने इस कर्म और पुनर्जन्म वाद का अपने साहित्य में उल्लेख किया है। उनके अनुसार कर्म के लेख का किसी भी प्रकार से विनाश नहीं होता। चाहे राजा हो चाहे रंक, सबको कर्म का फल भुगतना पड़ता है।[३] भले बुरे सभी इस संसार में अवतरित होते हैं और पाप पुण्य का अपनी इच्छानुसार अनुसरण करते हैं।[४] विज्ञान गीता में सरस्वती ने मन को बताया था कि होनहार होकर रहता है उसे ब्रह्मा भी मिटा नहीं सकता।[५]

१—वि० गी० १६।४४

२—भूत भावोद्भव करो विसर्गः कर्म संज्ञितः। —भगवत् गीता, ८।३

३—लिख्यौ कर्म कौ मेटि न जाइ। कहा रंक कहा राजा राइ। —वी० च० १।७२
विधि की लिपि लोपी न जाइ। —र० प्रि० १३।१७
ललाट लिखिता रेखा परिमाष्टुं न शक्यते। —

४—भले बुरे जग में अवतरे। पाप पुण्य सब को अनुसरै। —वी० च० १।७१

५—होन हार जग बात कछु, ह्वै ही रहै निदान।
—वि० गी० १३।१३

कर्म सिद्धान्त कार्य-करण सिद्धान्त का ही अनुगमन करता है। प्रत्येक कारण का परिणाम कोई न कोई अवश्य होगा। वाल्मीकि के अनुसार—'याहशं क्रियते कर्म ताहशं फलमश्नुते।'[1] वाली उक्ति कर्म सिद्धान्त का मूल सूत्र है। केशव को भी इस उक्ति पर विश्वास है। अंगद द्वारा अपमानित मंदोदरी ने रावण से कहा कि तुमने सीता को दुःख दिया है। उसका फल आज हमें भोगना पड़ा है। क्योंकि प्रकृति का नियम है कि जो जैसा करता है वह वैसा भोगता है, चाहे वह रंक हो चाहे राजा।[2] हिन्दू मत के अनुसार आदमी इस जन्म में जो पुण्य पाप करता है, उसका अनुभव परलोक में करना अनिवार्य होता है। किन्तु कुछ दार्शनिकों का मत है कि उत्कट पाप पुण्यों का फल मानव इसी जन्म में अनुभव करता है।[3] केशव का विश्वास है कि मानव ने जो कर्म किये हैं उन्हीं का आज अनुभव करते हैं।—

कालि जु कीने कर्म प्रभु, तेई कीजत आजु।
आजु राजु सोई करत, काल्हि करहुगे काजु॥[4]

केशव का विश्वास है कि पूर्व जन्म के अनुसार मानव को सुख दुःख प्रयत्न किये बिना ही प्राप्त होते हैं।[5] विधि की विडम्बना के वशीभूत दरिद्र प्रयत्न करने पर भी भाग्यवान नहीं बन सकता।[6] जब विधि प्रतिकूल बन जाता है तब सुकोमल कुसुम भी त्रिशूल के समान पीड़ा देने लगते हैं।[7] विधि के अनुग्रह से ही आदमी को सुख संपत्ति की प्राप्ति होती है।[8] बली वाली परलोक चला गया बलवान बली बांधा गया, अष्टैश्वर्य प्रदान करने वाला होने पर भी शिव केवल त्रिशूल तथा मुण्डमाला को धारण करता हैं, त्रिलोक विजयी कामदेव महादेव की नेत्राग्नि से भस्म हो गया और बली शेष को विष खाना पड़ा। बली बलराम भी शराब के वशीभूत हो गया। इन्द्र बली था तो भी उसे

१–वाल्मीकि रामायण, ६–१५–२३
२–(क) सीतहि दीन्हों दुख वृथा। सांचो देखौ आजु।
करै जु जैसी त्यों लहै। कहा रंक कहं राजु॥ –रा० चं० १६।३४
(ख) जोई करै सु भोगवै, यह समुझो नृपनाथ। –वि० गी० २१।१३
३–अत्युत्कटैर्हि पापपुण्यैः इहैव फलमश्नुते।
४–वि० गी० १४।१५
५–क० प्रि० ११।३४
६–के० ग्रं० ३।१८।१५
७–जब भगवंत होइ प्रतिकूल फूल फलते होय सुकोमल। —वी० च० १०।३०
८–सोभा सोभित आंगनरु, हय ही सत हय सार।
बारन बारन गुंजरत, बिन दीने संसार॥ क० प्रि० १५।६

अहल्या के विषय में कुचाल चलानी पड़ी। इससे स्पष्ट होता है कि चारों युगों में एक प्रारब्ध कर्म ही बलवान है।[१]

यद्यपि केशव ने अन्य भारतीय दार्शनिकों के समान कर्मवाद को स्वीकार किया है और उसका उल्लेख अनेक स्थलों पर किया है तो भी उन्होंने भाग्य वाद के साथ साथ उद्यम को भी प्रधानता दी है। उन्होंने लिखा है कि घटना बढ़ना तो कर्म के अनुसार चलता है। किन्तु उद्यम से सभी की कीर्ति जगमगा उठती है।[४] इतना ही नहीं उन्होंने जहांगीर जस चंद्रिका में यह प्रश्न उठाया कि भाग्य और उद्यम में कौन बड़ा है? तथा उसका समाधान जहांगीर के मुख से दिलाया कि भाग्य और उद्यम दोनों की ही समान प्रधानता है। आदमी कर्म के फलीभूत होने पर ही उद्यम करता है तथा फल पाता है।[५]

४-१० निष्कर्ष :

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि केशव का व्यक्तित्व भक्ति के तत्वों से अधिक प्रभावित था। उनके आश्रयदाता भी मथुरा और वृन्दावन के भक्ति संप्रदायों से संबन्धित थे। युग के भक्ति मूलक जीवन केन्द्र की ओर तत्कालीन शासक और कवि दोनों का आकर्षित होना स्वाभाविक था। केशव के भक्ति संस्कारों ने पौराणिक परम्परा और काव्य शास्त्रीय पद्धति का सहारा लेकर रामचन्द्रिका और रसिक प्रिया जैसी रचनाएं करायीं। इसके अतिरिक्त केशव की बहुज्ञता में योग, ज्ञान, और धर्मशास्त्र की रेखाएं भी कम मुखर नहीं थीं। उन रेखाओं को विज्ञान गीता में पूर्णतः और अन्य ग्रन्थों में अंशतः उभार मिला है। एक प्रकार से भारत की वे समस्त दार्शनिक धाराएं जिन्होंने मध्यकालीन मुनिमानस और लोकमानस को अभिसिंचित किया था, केशव साहित्य में स्फुट या अस्फुट रूप में प्रवाहित हो रहीं हैं। □

१-क० प्रि० ६।५४

२—घटि बढि अपने करमहि लगी। उद्दिम सबकी कीरति जगी। —वी० च० ५।१८

३-उदय भाग अति उदित मति सुनि सर्वज्ञ प्रमान।
जग में उद्दिम कर्म ये मेरे जान समान।
करम फलै उद्दिम करें उद्दिम करमहि पाइ।
एकै धरम दुहून को कीनो विधि तादाइ।
दुहू विधि उद्दिम करम है सुभ अरु असुभ अपार।
कारन या संसार में को समुझौ बुद्धि उदार॥ —के० ग्रं० ६३३।११७-११८, ११९

पंचम अध्याय : उपसंहार

आधुनिक युग में मनुष्य की बौद्धिक-साधना चरम पर पहुंच रही है। विज्ञान ने हमें सोचने-समझने की नवीन दिशाएँ, अध्ययन की विविध विधाएं और नवीन पद्धतियां प्रदान की हैं। साहित्य और संस्कृति का अध्ययन भी वैज्ञानिक पद्धतियों को न्यूनाधिक रूप में ग्रहण करता जा रहा है। सामाजिक विज्ञान मनुष्य को केन्द्र में रखकर उसकी वैयक्तिक और सामूहिक क्रिया प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। साहित्य और संस्कृति के जितने रूप हमारे सामने हैं, उनके मूल में मानव का जीवन संघर्ष और उसके विविध रूप निहित हैं। साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन मानव की इन्हीं चेष्टाओं का एक विशिष्ट माध्यम से उद्घाटित करता है। प्रस्तुत अध्ययन का लक्ष्य भी केशव साहित्य में प्रतिबिंबित मनुष्य के विविध रूपों और उनके द्वारा विकसित संस्कृति के विविध पक्षों का उद्घाटन है।

केशव साहित्य में तत्कालीन सामाजिक जीवन का पूर्ण परिचय तो नहीं मिलता, फिर भी समाज के प्रमुख वर्गों का प्रतिनिधित्व किसी न किसी प्रकार उसमें मिल जाता है। यद्यपि उनका साहित्य अभिजात वर्ग की रुचियों और जीवन पद्धति को लेकर चला है, उसमें दैनिक जीवन के सामान्य समस्यामूलक चित्रों को प्रस्तुत करने का अवकाश नहीं है, तथापि कुछ संकेत सामान्य जीवन के भी मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए विविध जातियों के जीवन और पारिवारिक व्यवस्था के विघटन की सूचना को लिया जा सकता है। केशव की सामाजिक परिकल्पना रूढ और पुराणाश्रयी है। कहीं-कहीं तो सुधारवाद और पुनरुत्थान की शक्तियों के प्रति प्रतिक्रिया ही प्रकट होती मिलती है। जहां तक सामाजिक जीवन के राजनैतिक पक्ष का सम्बन्ध है, उसमें तत्कालीन समस्याओं को भी स्थान मिला है। सामन्तीय शोषण की व्यंजना तो मिल जाती है, किन्तु उसका स्पष्ट कथन और उसके प्रति आक्रोश एक राज्याश्रित कवि के द्वारा संभव नहीं है। "राज्यश्री की निन्दा" जैसे प्रसंगों में केशव की निजी अनुभूतियों का कुछ कथन अवश्य हो गया है। केशव साहित्य के

आधार पर समाज का जो चित्र सामने आता है, उसमें स्वर्णयुग की सांस्कृतिक परछाइया भी हैं और पराजित वर्ग का विलास एवं संघर्ष भी। विलास एवं संघर्ष के मिले जुले चित्रों की यह परम्परा एक प्रकार केशव साहित्य से ही आरम्भ होती है और आगे मतिराम और पद्माकर जैसे कवियों में अपने चिन्ह बना लेती है। परवर्ती रीतिकालीन कवियों के साहित्य में प्राप्त संघर्ष उतना यथार्थ नहीं जितना केशव-साहित्य में प्राप्त संघर्ष। पीछे प्रशस्ति के स्तरों में संघर्ष की यथार्थता डूब गयी। सामान्य जन "दुराज" की अव्यवस्था और दुहरे शोषण से पीडित था। सामाजिक जीवन के विगत मूल्यों को पकड़े रहने का आग्रह भी केशव साहित्य में मिलता है।

केशव साहित्य में तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन को अधिक स्फीति मिली है। सांस्कृतिक दृष्टि से भक्ति आन्दोलन का आरम्भ वर्गवादी आभिजात्य के प्रति एक साहित्यिक क्रान्ति से हुआ और उसका अन्त पौराणिक पुनरुत्थानवाद में हुआ। इस प्रक्रिया में संस्कृति के विगत पक्षों को पुनः प्रतिष्ठा देना अनिवार्य हो गया। इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान ने साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। कृष्णाश्रयी साहित्य में यदि स्वच्छन्द, वन्य एवं ग्रामीण संस्कृति को अधिक स्थान मिला तो राम साहित्य में अभिजात संस्कृति को। संस्कृति के पुरातन मूल्यों की इस शाखा के साहित्य में पूर्ण प्रतिष्ठा है। केशव की रामचन्द्रिका में सांस्कृतिक जीवन की रामायणकालीन मान्यताओं को अधिक अभिव्यक्ति मिली है। केवल वर्णनों में तत्कालीन सांस्कृतिक जीवन की कुछ झलक मिल जाती है। इस पक्ष पर भी काव्यशास्त्रीय अनुशासन अधिक है, फिर भी राम के साहित्य में प्रतिष्ठित आदर्श रूप के साथ कला-विलास आदि का संबन्ध जोड़कर केशव ने तत्कालीन राजकीय संस्कृति का परिचय दिया है। राजकीय संस्कृति विलास केन्द्रीय थी। विलास की विधियों और चेष्टाओं में कामशास्त्रीय और काव्य-शास्त्रीय पद्धति को अपनाने के लिए पर्याप्त अवकाश था। इन सब के चित्रण में केशव ने पर्याप्त रुचि ली है।

विलास-केन्द्रीय-संस्कृति का एक और पक्ष है और वह है उसका धार्मिक दृष्टि से उदात्त और दार्शनिक दृष्टि से काम प्रतीकों में नियोजित रूप। यह रूप कृष्ण भक्ति शाखा के साहित्य में उभार पाता गया है। काव्यशास्त्रीय पद्धति, कामशास्त्रीय विलास-क्रम, भक्ति दर्शन और साहित्य का जितना अधिक तादात्म्य इस शाखा के साहित्य में हुआ उतना अन्य दुर्लभ है। सभी अविच्छेद्य रूप से परस्पर समन्वित हैं। परवर्ती कवियों में धार्मिक और दार्शनिक मांसलता कम होती गयी : केवल निर्जीव ढांचा मात्र रह गया और विलास पक्ष अधिक से अधिक मांसल होता गया। यह रूप परवर्ती मधुरोपासक भक्त कवियों और रीतिकालीन राज्याश्रित कवियों में अधिक मिलता है। विलासोन्मुख संस्कृति के इस रूप की राज्याश्रित परंपरा का आराम्भ केशव की रसिकप्रिया से ही मानना

चाहिए। संस्कृति की इन आन्तरिक धाराओं के साथ केशव साहित्य में सांस्कृतिक जीवन के अन्य पक्षों के आनुषंगिक उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। खान-पान, रहन-सहन, पर्व-त्योहार, मनोरंजन आदि के विभिन्न प्रकार केशव साहित्य में अप्राप्य नहीं हैं। प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप में इनके उल्लेख आ ही गये हैं। कुल मिलाकर केशव साहित्य में प्राप्त सांस्कृतिक जीवन अभिजात वर्गीय ही कहा जा सकता है। लोक संस्कृति और लोकमानस की प्रतिक्रियाओं का उल्लेख तो कहीं कहीं हुआ है, पर इतना अधिक नहीं कि उसका एक स्वतंत्र रूप वन सके। शिष्ट वर्गों के शिष्टाचार और कला-विलास में ही कवि ने विशेष रुचि ली है।

दार्शनिक दृष्टि से केशव का युग भक्ति दर्शन की दिग्विजय का युग है। भ्रमर-गीत और उद्धव गोपी प्रसंग भक्ति की ज्ञान और योग पर विजय की गाथा का ही कथन करते हैं। तुलसी का ज्ञान दीपक भी भक्ति चिंतामणि की किरणों से पराजित हो जाता है। निर्गुण भक्त कवियों में प्राप्त ज्ञान और भक्ति का सहअस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। ज्ञान और योग को यदि कहीं स्थान रह जाता है तो साहित्य के अप्रस्तुत विधान में। भक्ति दर्शन का समाहार एक ओर तो नैतिकता में हो जाता है और दर्शन की सूक्ष्म समस्याएं समाप्त हो जाती हैं तथा नैतिक जीवन के सम्यक् निर्वाह के द्वारा मोक्ष प्राप्ति की मान्यता दृढ हो जाती है। दूसरी और भक्ति दर्शन काव्यशास्त्रीय और कामशास्त्रीय रस में डूब कर शास्त्रीय ऊहापोह से मुक्त हो जाता है। केशव की रसिक प्रिया में भक्ति दर्शन की यही परिणति मिलती है और रामचन्द्रिका में भक्ति दर्शन की नैतिक परिणति को स्थान मिला है। इतना सब होते हुए भी केशव का संस्कारी मन वैदिक कर्मकाण्ड और औपनिषदिक ज्ञान काण्ड से पूर्णतः मुक्त न हो सका। स्थान-स्थान पर वैदिक कर्मों की अभिव्यक्ति भी मिलती है और विज्ञान-गीता में ज्ञान काण्ड की धारा भी प्रकट हुई है। विधा की दृष्टि से प्रबोधचन्द्रोदय और विषय की दृष्टि से योगवाशिष्ट का इस पर प्रभाव है। गीता दर्शन को भी विज्ञानगीता में स्थान मिला है। इस प्रकार केशव साहित्य में ज्ञान काण्ड का साहित्यिक पुनरावर्तन मिल जाता है। योग की पूर्ण प्रतिष्ठा केशव को अभीष्ट नहीं थी। यद्यपि उसके प्रति उन्होंने कहीं अनास्था प्रकट नहीं की। योग प्रतीक भी केशव के साहित्य में अप्रस्तुत विधान में स्थान पाते रहे।

केशव साहित्य में संस्कृति और दर्शन के सूत्रों की व्यवस्था को देखते हुए कहा जा सकता है कि केशव बहुज्ञ थे। यह बहुज्ञता केशव के कवि कर्म को प्रयोगशील बनाने में सहायकर ही है। कहीं कहीं उनकी बहुज्ञता सन्दर्भोचित न रहने के कारण उनके साहित्य पर बोझ भी बन गयी है। और कहीं-कहीं उसके कारण अप्रस्तुत की श्रीवृद्धि भी हुई।

विज्ञानगीता तो साहित्य और दर्शन की एक मिलीजुली परम्परा में आती है। शेष कृतियों में सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक उपादान साहित्य के उद्धारक के रूप में ही आये हैं। यह बात निश्चित है कि मर्मस्पर्शी अनुभूतियों की केशव साहित्य के परिमाण देखते हुए आनुपातिक न्यूनता ही है। उस न्यूनता के कारण साहित्य में गहराई कम हो जाती है। इस क्षति की पूर्ति सांस्कृतिक उपादान साहित्य को एक विस्तृत सांस्कृतिक परिवेश देकर कहते हैं। यह समस्त सामग्री लोकमानस के साथ साहित्य का तादात्म्य कराने में सहायक होती हैं। किन्तु यह प्रयोजन केशव साहित्य में अधिक सिद्ध नहीं होता। इसका कारण है भाषा और अलंकार जन्य दुरूहता। यदि यह दुरूहता नहीं होती तो सांस्कृतिक और दार्शनिक सूत्र पुराण पोषित लोक मानस के साथ केशव साहित्य का पूर्ण तादात्म्य करा देते। दूसरी बात यह भी कही जा सकती है कि परिनिश्चित और शास्त्रीय संस्कृति और दर्शन को लोक-संस्कृतिक और लोक धर्म की अपेक्षा अधिक स्थान मिला है। इस कारण से भी केशव साहित्य का प्रभाव-वृत्त सीमित हो जाता है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन साहित्य में प्राकृतिक उपादानों की अपेक्षा सांस्कृतिक तत्व अधिक हैं। केशव साहित्य के पर्यवेक्षण से यह बात भी पुष्ट हो जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि केशव अपने युग के प्रति उदासीन रहकर कलाविलास में मग्न रहने वाले कवि नहीं थे। यदि यह बात कही जाती हैं तो उसका आधार केशव का समग्र साहित्य नहीं, कुछ कृतियां ही होती हैं। उनके प्रशस्तिमूलक चरित काव्यों में युग के स्पंदन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

साहित्य की विधाएँ भी कुछ विशिष्ट सांस्कृतिक सन्दर्भों से संबद्ध हो जाती हैं। उन्हीं के अनुरूप भाषा और शैली का नियोजन होता है। केशव ने भी सांस्कृतिक संदर्भों के अनुसार काव्य विधाओं का चुनाव किया है। उदाहरण के लिए "रतनसेन" बावनी" का संदर्भ अपभ्रंश मूलक भाषा और छन्द शैली की परम्परा बना चुका था। केशव ने उसी सांस्कृतिक परम्परा को ग्रहण किया है। दार्शनिक चिंतन के लिए हमारी संस्कृति में प्रारम्भ से ही नाटकीय सम्वादयोजना चली आयी है। प्रबन्ध चन्द्रोदय को छोड़ भी दिया जाय तो भी हमारे यहां का दार्शनिक चिंतन सम्वाद मूलक ही रहा है। वेद, उपनिषद, पुराण सभी इसके प्रमाण हैं। केशव ने उस सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार ही विद्या का चुनाव किया है। कभी कभी लौकिक सन्दर्भ को अधिक उदत्त और लोक मानस के अनुकूल बनाने के लिए अलौकिक, प्रतीकात्मक और अतिमानवीय पात्रों की सम्वाद योजना भी एक सांस्कृतिक आवश्यकता हो जाती है। इस प्रकार के अलौकिक सन्दर्भ सूत्र उनके प्रशस्ति गायन को सांस्कृतिक उदात्तता प्रदान करते हैं। प्रशस्ति के निर्जीव स्वर जीवन दर्शन से

भर उठते हैं। इस प्रकार केशव ने अपने साहित्य के लिए विधा, भाषा और शैली का चुनाव भी सांस्कृतिक दृष्टि से किया है।

अन्त में यही कहा जा सकता है, कि केशव साहित्य की पृष्ठभूमि में एक व्यापक सांस्कृतिक परिवेश है। वह अप्रस्तुत परिवेश प्रस्तुत कथ्य के साथ चाहे पूर्णतः सामंजस्य न कर पाया हो फिर भी अधिकांश स्थलों पर उसका औचित्य सिद्ध होता है। अब तक केशव के अलंकारवाद को दृष्टि में रखकर तज्जन्य दुरूहता को लेकर ही टीका-टिप्पणी होती रही है। साँस्कृतिक दृष्टि से देखने पर केशव साहित्य नवीन दिशाएं ग्रहण करने लगता है। अध्ययन की विस्तृत दृष्टि केशव साहित्य के साँस्कृतिक वैविध्य और वैभव को प्रकट करती है। □



परिशिष्ट :

ग्रंथ सूची

(क) हिन्दी ग्रन्थ

१—अकबरी दरबार के कवि—डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल, प्रकाशक : लखनऊ विश्व-विद्यालय, प्रथम संस्करण, सं २००७ वि०

२—अध्ययन—डा० भगीरथ मिश्र, प्रकाशक : हिन्दी साहित्य भंडार, गंगाप्रसाद रोड, अमीनाबाद, लखनऊ, सन् १९६२ ई०

३—अशोक के फूल—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, नई-दिल्ली, १९५९

४—अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, भाग १-२ –डा० दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक : साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००४ वि०

५—अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन–डा० मायारानी टंडन, प्रकाशक : साहित्य भंडार, लखनऊ, १९६०

६—आइन अकबरी–अनु० रामलाल पाण्डेय,

७—आचार्य कवि केशवदास–प्रो० कृष्णचन्द्र वर्मा, साहित्य प्रकाशन, मालीवाडा, दिल्ली, सं० १९५७ ई०

८—आधुनिक समीक्षा : कुछ समस्याएं–डा० देवराज, राजपाल एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६, १९५४

९—आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास–डा० वेंकटशर्मा, रामलाल पुरी, आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६, १९६२

१०—कबीर का रहस्यवाद–डा० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, १९४२ ई०

११—कबीर ग्रन्थावली—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१२—कवितावली—गीता प्रेस, गोरखपुर, २००० वि०

१३–कवि प्रिया—केशवदास (प्रिया प्रकाश टीका) टीकाकार लालाभगवानदीन, कल्याण-दास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी-२, तृतीय संस्करण, २०२१ वि०

१४–कवि समय—डा० विष्णु स्वरूप, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५ १९६३

१५–कादंबरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, चौखंबा विद्याभवन वाराणसी, १९५८ ई०

१६–कालिदास के ग्रन्थों पर आधारित तत्कालीन भारतीय संस्कृति—डा० गायत्री वर्मा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय। पो० बाक्स० नं० ७०, पिशाचमोचन, वाराणसी-१, १९६३ ई०

१७—केशवदास—डा० हीरालाल दीक्षित, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०११ वि०

१८—केशव और उनका साहित्य—डा० विजयपाल सिंह, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, १९६२ ई०

१९—केशव कौमुदी—टीकाकार लाला भगवानदीन, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद-२

२०—केशव कौमुदी उत्तरार्ध— वही

२१—केशव ग्रन्थावली—खण्ड-१, २, ३ —सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी एकादमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद,

२२—केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व—डा० किरण चन्द्र शर्मा, भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली, १९६१

२३—गोस्वामी, तुलसीदास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, अष्टम संस्करण, सं० २०१५ वि०

२४—गोस्वामी तुलसीदास जी का सामाजिक आदर्श—श्रीमति सुधारानी शुक्ला, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

२५—घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा—डा० मोहनलाल गौड़, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१५ वि०

२६—छायावाद : काव्य और दर्शन—डा० हरनारायण सिंह, ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर-१, १९६४ ई०

२७—जहांगीरनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४

२८—जातककालीन भारतीय संस्कृति—मोहनलाल मेहतो वियोगी, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, १९५८ ई०

२९—जायसी ग्रन्थावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१३ वि०

३०—तुलसी ग्रन्थावली—खण्ड १-२—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००४ वि०

३१—तुलसीदास : जीवनी और विचारधारा—डा० राजाराम रस्तोगी, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर।

३२—तुलसी रसायन—डा० भगीरथ मिश्र, साहित्य भवन, प्राइवेट, लिमिटेड, इलाहाबाद, द्वि० सं० १९६२ ई०

३३—दर्शन का प्रयोजन—डा० भगवानदास, ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस, तृ० सं० २०१० वि०

३४—नाथ संप्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकादमी, इलाहाबाद, १९५० ई०

३५—पद्मावत—संजीविनी व्याख्या, व्याख्याकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, सं० २०१८ वि०

३६—पाणिनि कालीन भारत वर्ष—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास बनारस, सं० २०१२ वि०

३७—पाश्चात्य समालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव—डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, १९६० ई०

३८—पूर्व मध्यकालीन भारत—डा० वासुदेव उपाध्याय, भारती भंडार, प्रयाग, १९५२ ई०

३९—पोद्दार अभिनंदन ग्रन्थ—डा० गुलाबराय, अखिल भारतीय व्रज साहित्य मंडल, मथुरा, २०१० वि०

४०—प्रकृति और काव्य—डा० रघुवंश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ९६ दरिया गंज, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९६०

४१—प्राचीन भारतीय प्रसाधन—अत्रिदेव विद्यालंकार, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५८ ई०

४२—प्राचीन मध्यकालीन भारत—डा० पी० सरन, रणजीत प्रिंटिंग वर्क्स, ४९७२ चांदनी चौक, दिल्ली, सं० १९५६ ई०

४३—प्रामाणिक हिन्दी कोश—सं० रामचन्द्र वर्मा, साहित्य रत्नमाला कार्यालय, २०-धर्मकूप, बनारस

४४—बिहारी और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़।

४५—बिहारी रत्नाकर—टीकाकार जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', ग्रंथकार शिवाला, बनारस, द्वि० सं० १९६० ई०

४६—भारत के तीर्थ—मिथिलेश 'प्रभाकर', प्रकाश प्रकाशन, आगरा, द्वि० सं०

४७—भारत के त्यौहार—श्री सुरेश चन्द्र शर्मा,आत्माराम एण्ड संस,दिल्ली-६ १९६३ ई०

४८—भारत के पक्षी—राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, प्रकाश प्रकाशन, २२९ मोती कटरा, आगरा, द्वि० सं० १९६२

४९—भारतीय दर्शन, प्रथम भाग-डा० सर्वपल्लि राधाकृष्णन, नन्दकिशोर गोमिल विद्यालकार, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६, १९६६ ई०

५०—भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६३ ई०

५१—भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता - डा० प्रसन्नकुमार आचार्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्र० सं० २०१४ वि०

५२—भारतीय संस्कृति और कला—डा० राधाकमल मुखर्जी, अनु० रमेश वर्मा, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६, १९५९

५३—भारतीय संस्कृति का इतिहास—कालीशकर भटनागर और डा० बी० डी० गुप्ता, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, द्विती० १०६४

५४—भावना और समीक्षा—डा० ओम प्रकाश, भारत प्रकाशन, सुभाष रोड, अलीगढ़।

५५—मध्यकालीन भारत की सामाजिक व्यवस्था—अनु० यूसुफ अली, हिन्दी एकादमी, १९५६

५६—मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं सस्कृति—उमाकान्त मेहरा, विनोद पुस्तक मंदिर हास्पिटल रोड, आगरा, १९६३, ई०

५७—मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद—डा० कपिल देव पाण्डेय, चौखंबा, विद्याभवन, वाराणसी, १९६३ ई०

५८—मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियां—डा० सावित्री सिन्हा, आत्माराम एण्ड संस,दिल्ली १९५३

५९—मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, राजकिशोर अग्रवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड, आगरा, १९६० ई०

६०—मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति—डा० हरगूलाल, भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा दिल्ली-६, १६६७

६१—मुगलकालीन भारत—डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, (ई० १५२६-१८०३ तक) शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, तृ० सं० १६५६

६२—रसिक प्रिया—केशवदास, प्रियाप्रसाद तिलक, टीकाकार आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, सं० २०१० वि०

६३—रहीम रत्नाकर—प्रका० राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी नगर, वार्धा, तृतीय संस्करण, १६५६

६४—राजस्थान का इतिहास—जेम्स टाड, अनु० गिरिधर शुक्ल, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, ४२६ अहियापुर, इलाहाबाद ।

६५—राजस्थान की जातियां–बजरंगलाल, लोहिया, कलकत्ता, १६५४

६६—रामचरित मानस, तुलसीदास, आ० बिश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं०)–प्र० रामचन्द्र देव, मंत्री, सर्वभारीय काशीराज व्यास, रामनगर दुर्ग, वाराणसी,

६७—रामचन्द्रिका विशिष्ट अध्ययन—डा० गार्गी गुप्त, भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा दिल्ली, १६६४

६८—रामायण कालीन समाज,—डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, सस्तासाहित्य मंडल, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १६६४

६६—रामायण कालीन संस्कृति— वही, द्वि० सं० १६६५

७०—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ-सं०डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन समिति, ८७ विवेकानन्द रोड, कलकत्ता—३, १६५७ ई०

७१—रीतिकाव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ६६-दरियागंज, दिल्ली, तृ० सं० १६५६

७२—रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना—डा० बच्चनसिंह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१५ वि०

७३—विज्ञानगीता—केशवदास, व्या० श्यामसुन्दर द्विवेदी, प्र० मातृभाषा मन्दिर, दारागंज, प्रयाग, सं० २०११ वि०

७४—विचार और वितर्क—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड, इलाहाबाद, द्वि० सं० १६६२ ई०

७५—विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६२ई०

७६—वीरसिंह देव चरित—केशवदास, टीकाकार, श्यामसुन्दर द्विवेदी, मातृभाषा मन्दिर, दरागंज, सं० २०१३ वि०

७७—साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी

७८—साहित्य और कला,—भगवत् शरण उपाध्याय, आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरीगेट, दिल्ली-६, १९६० ई०

७९—सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा, भरत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, द्वि० सं० २०१७ वि०

८०—सूर निर्णय—द्वारकादास पारीख, प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, द्वि० सं० स० २००८ वि०

८१—सूर सागर—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

८२—सूर सारावली—सूरदास, डा० प्रेमनारायण टंडन, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, १९६१ ई०

८३—संक्षिप्त रामचन्द्रिका—पं० जगन्नाथ तिवारी, गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा द्वि० सं० १९४९ ई०

८४—संगीत शास्त्र, के० वासुदेव शास्त्री, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर-प्रदेश, १९५८ ई०

८५—संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० सावित्री शुक्ला, विश्व-विद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६३ ई०

८६—संस्कृति का दार्शनिक विवेचन—डा० देवराज, प्रकाशन व्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९५७ ई०

८७—हर्ष चरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन— डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद, पटना, १९५३ ई०

८८—हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहार,—डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा, २९५७ ई०

८९—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, द्वि० सं० २०२५ वि०

९०—हिन्दी के मध्यकालीन खण्डकाव्य—डा० सियाराम तिवारी, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६, १९६४ ई०

९१—हिन्दी विश्व कोश, २४ वां भाग—सं० नगेन्द्रनाथ बसु और विश्वनाथ बसु, विश्व कोशलेन, बाग बजार, कलकत्ता, १९३१ ई०

९२—हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका— डा० रामनरेश वर्मा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०२० वि०

९३—हिन्दी शब्द सागर, सं० श्यामसुन्दर दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९१६

९४—हिन्दी साहित्य का अतीत—डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्र० चन्द्रभूषण मित्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मानल, राणसी, सं० २०१७ ई०

९५—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, प्र० रामनारायणलाल, इलाबाल, चतुर्थ सं० १९५८ ई०

९६—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आ० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सातवां सं०, सं० २००८ वि०

९७—हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—प्रथम भाग, सं० डा० राजबली पाण्डेय नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४ वि०

९८—हिन्दी साहित्य की परम्परा--डा० हंसराज अग्रवाल, ओरियंटल बुक डिपो, नईसड़क, दिल्ली।

९९—हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर,बंबई-४, षष्ट सं० १९५९ ई०

१००—हिन्दी साहित्य के दार्शनिक आधार—पद्मचन्द्र अग्रवाल, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, १९५४

१०१—हिन्दी साहित्य कोश—सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, प्र० सं०, सं० १९५८ ई०

१०२—हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां—प्रो० शिवकुमार, आशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली ६, तृ० सं०, १९६६ ई०

१०३—हिन्दी सन्त काव्य संग्रह। सं० गोपाल शरण द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकोदेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, १९५२

१०४—हिन्दू सभ्यता, डा० राधामुकुद मुकर्जी, अ० श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, १९५५

१०५—हिन्दू संस्कार,—डा० राजबली पाण्डेय, चौखंबा विद्याभवन, चौक, वाराणसी १९५६ ई०

(ख) संस्कृत ग्रन्थ :

१—अथर्व वेद—प्र० स्वाध्याय मंडल, पारडी, सूरत, सं० २०१३

२—अमर कोश—अमरसिंह, रायल एण्ड कंपनी, कडपा, १९४८ ई०

३—अष्टाध्यायी—पाणिनि, वेंकटेश्वर प्रैस, बंबई, १९५८

४—आपस्तंब गृह्य सूत्र—चौखंबा संस्कृत सीरिज आफीस, वाराणसी

५—आश्वलायन गृह्य सूत्र—चौखंबा संस्कृत सीरिज आफीस, वाराणसी

६—ईशावास्योपनिषद—गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० २००८ वि०

७—उत्तरराम चरित—भवभूति, चन्द्रकला विद्योतिनी टीका, चौखंबा संस्कत पुस्तकालय, बनारस

८—ऋग्वेद संहिता, सं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, सूरत सं० २०१३ वि०

९—कर्पूर मंजरी, राजशेखर, सं० श्रीरामकुमार आचार्य, चौखंबा भवन, सं० २०१२ वि०

१०—कवि कंठाभरण—क्षेमेन्द्र, काव्यमाला सीरिस, निर्णय नागर प्रेस, बंबई

११—कादंबरी, बाण भट्ट, सं० श्रीकृष्ण मोहन अवस्थी, चौखंबा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, १९६२ ई०

१२—काव्य प्रकाश—मम्मट, आनन्दाश्रम प्रेस, पूना, १९२१

१३—काव्य मीमांसा—राज शेखर, जयगुप्तदास हरिदास गुप्त, चौखंबा संस्कृत सीरिज आफीस, बनारस, सं० १९९२ वि०

१४—काव्यादर्श—दण्डी, व्याख्या० रामचन्द्र मिश्र, चौखंबा सीरिज आफिस, वाराणसी

१५—किरातार्जुनीय—भारवि, निर्णय नागर प्रेस, बंबई।

१६—केनोपनिषद्—गीताप्रैस, गोरखपुर सं० २०११ वि०

१७—छान्दोग्योपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०११ वि०

१८—नाट्यशास्त्र—भरतमुनि, सं० रामकृष्ण कवि, बरोडा ओरियंटल इंस्टिट्यूट, १९५६

१९—नारद पांचरात्र—सं० के० यम० बेनर्जी, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, न्यूसीरिज सं० १७

२०—नारद भक्ति सूत्र—सं० और अनु० दोंड्ल वेंकटरामि रेड्डि, रामकृष्ण मठ, मैलापुर, मद्रास-४, १९५३ ई०

२१—निरुक्त, यास्क—भाग-४, टीका० दुर्गाचार्य, मनसुखराय मोर, ५-क्लाइवरोड, सं० २०१० वि०

२२—बृहदारण्यकोपनिषद्—गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २०११ वि०

२३—बोधायन धर्म सूत्र—चौखंबा सीरिज आफीस, वाराणसी

२४—भगवद् गीता—गीता प्रेस, गोरखपुर

२५—भागवत्—निर्णयसागर प्रेस, पांडुरंगजवाजी, २६-२४ कोलभाट लेन, बंबई, १९२९ ई०

२६—भारतस्य सांस्कृतिक निधिः—डा० रामजी उपाध्याय प्र० गान्धी विश्व परिषद्, ढाना-सागर, म० प्र०, १९५८ ई०

२७—मनुस्मृति—मनुमुनि, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९४६ ई०

२८—मनमत-सं० टी० गणपति शास्त्री, प्रकाशक महाराज, तिरुवानकूर

२९—महाभारत-गीताप्रेस, गोरखपुर

३०—यजुर्वेद संहिता-श्रीपाददामोदर सातवलेकर भट्टाचार्य, प्र० वसन्त श्रीपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी, सूरत।

३१—योगवाशिष्ट और उसके सिद्धान्त—डा० भीखनलाल आत्रेय, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, बनारस, १९५७ ई०

३२—योगसूत्र, पतंजलि, सं० काशीनाथ शास्त्री अगाशे।

३३—रसमंजरी—भानुदत्त—सं० श्री बदरीनाथ शर्मा, श्रीहरिकृष्ण निबन्ध भवन, वाराणसी-१, १९५८ ई०

३४—लोचन—अभिनव गुप्त, सं० महामहोपाध्याय, प्रो० कुपपुस्वामी शास्त्री, कुप्पुस्वामी शास्त्री रीसर्च इन्स्टिट्यूट, मद्रास, १९४४ ई०

३५—वात्स्यायन कामसूत्र—अनु० कविराज विपिन चन्द्र बन्धु—देवराज वर्मा किरण पब्लिकेशन्स, पो० बा० न० ५२५, नई दिल्ली।

३६—वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०१७ वि०

३७—विष्णु पुराण—चौखंबा संस्कृत सीरीज आफीस, वाराणसी-१

३८—वेदान्त सार—आपदेव कृत व्याख्या सहित, चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

३९—शतपथ ब्राह्मण—अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी, सं० १९९४ वि०

४०—शांडिल्य भक्ति सूत्र—सं० जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, १८७६ ई०

४१—शृंगार तिलक—रुद्रट, काव्यमाला सीरीज, निर्णय सागर प्रेस, बंबई

४२—संगीत रत्नाकर—शारंगदेव

४३—संपादक – पी० यस० सुब्रह्मण्यशास्त्री, अडयार लाइब्ररी, १९५२ ई०

पत्र-पत्रिकाएं :

१—कल्याण · हिन्दू संस्कृति अंक, वर्ष १४, गोरखपुर,सौर माघ २००६, जनवरी १९५०, संख्या-१, पूर्णसंख्या-२७८

२—परिषद् पत्रिका—जनवरी १९६६, सं० वैद्यनाथ पांडेय

३—माध्यम (पत्रिका) —वर्ष २, अंक ४, अगस्त, १९६४

४—रीतिकालीन मूल्यांकन—डा० विजयपाल सिंह, अध्यक्षीय भाषण, भारतीय हिन्दी परिषद्, २२ वां अधिवेशन, उज्जैन, २७, दिसंबर, १९६६

५—सम्मेलन पत्रिका (लोक सांस्कृतिक अंक), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सं० २०१० वि०



अंग्रेजी ग्रन्थ

No.	Book	Author	Publisher
1	2	3	4
1.	Ain-I Akbar.	Abul-L-Fazl-Allami, Translated into English by H. Blochmann. Ed. by S. L. Goomer.	Naresh Jain, New Imperial Book Depot, Dev Nagar, New Delhi-5.
2	Essays in Criticism.	Mathew Arnold Ed. Littlewood. S. R.	Macmillan & Co., Martin's Street, London, 1913.
3.	Glimps of Education.	Dr. Radhakumud Mukherjee.	Annals of Bhandarkar, Oriental Research Institute, Vol. XXV.
4.	Glimqs of Medieval Indian Culture.	Yousuf Hussain, D. Litt. (Paris)	Asian Publishing House, Bombay. II Ed. 1959.
5.	Golden Bough	Frazer. I Vol. Abridged Ed.	New York, 1958
6.	Hindu Views of Life.	Dr. Radhakrishan. I Edition.	Published in G. Britain, 1927
7.	India As Known to Panini.	Dr. Vasudeva Saran Agrawal.	University of Lucknow. 1953.
8.	India Old and New	Valentine Chirol.	—
9.	Manasara An Encyclo-Paedia of Hindu Architectu-	Prasannakumar Acharya I. E. S. Oxford University	London, New York, Bombay, Calcutta, Madras, China, Japan.

10 Mythology of the Aryan Nations	By COX.	
11. Oxford History of India.	Vincent A Smith Ed. Percival Spear.	Chowkamba Sanskrit Series, Varanasi 1.
12. (The) Practical-Sanskrit - English Dictionary.	Apte. 3rd. Ed.Revised.	Gopal Narayana & Co. , Bombay.
13. Primitive Culture 7th Ed.	E. B. Tylor	Brentano's New York. 1924.
14. Psychology and Folklore.	R. R. Mereth	
15. Some Aspects of Society and Culture During Mughal Age.	Dr. Prananath Chopra	Shivalal Agrawal & Co Ltd., Educational Publishers; Agra-1955.
16. The Theatre of the Hindus I Ed.1955.	H. H. Wilson, V. Raghavan, K. R. Pishoroti, Mulyacharan Vidyadhushan.	Sunil Gupta, India Ltd., Calcutta-12.
17. Theory of Literature. IV Ed. 1955.	Rene Wellek And Austin Warren	Jeonathan Cape,thirty Bedford Square, London.